महाभारत

संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद

संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद

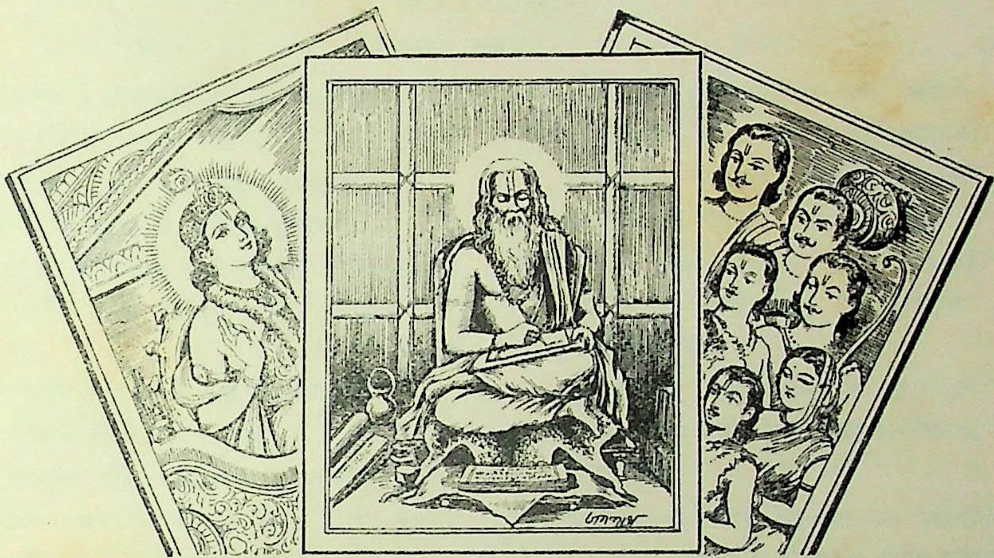


वर्ष २

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या ५

ॐ श्रीपरमात्मने नमः



महाभारत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष २ } गोरखपुर, फाल्गुन २०१३, मार्च १९५७ { संख्या ५ पूर्ण संख्या १७

वेदमय महाभारत

हरिः सद्भक्तानां सकलपुरुषार्थैकनिलयो
हरेः स्वे भक्तास्ते हरिरतिरसास्वादनपराः ।
इति स्वान्तं व्यासः श्रुतिनिधिरखण्डामृतरसं
जगौ लोके कृत्वा श्रुतिमयमहाभारतमसौ ॥

'भगवान् श्रीहरि अपने श्रेष्ठ भक्तोंके सम्पूर्ण पुरुषार्थोंकी प्राप्तिके एकमात्र आश्रय हैं और भगवान्के वे अपने भक्त भगवत्-प्रेम-रसका निरन्तर आस्वादन करते रहते हैं ।' वेदनिधि व्यासजीने वेदमय महाभारतका निर्माण करके संसारमें अपने इसी अखण्डामृतरसस्वरूप सिद्धान्तका गान किया है।

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार

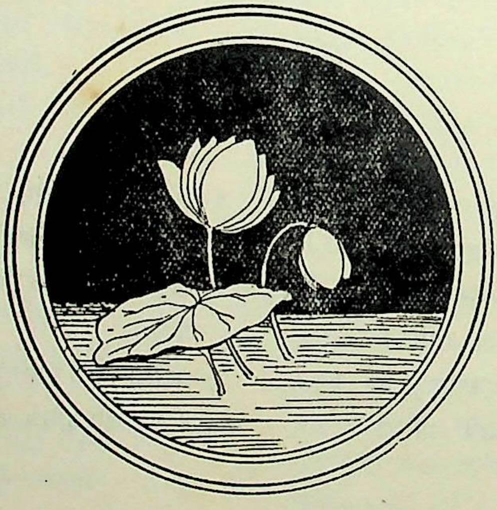
टीकाकार—पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'

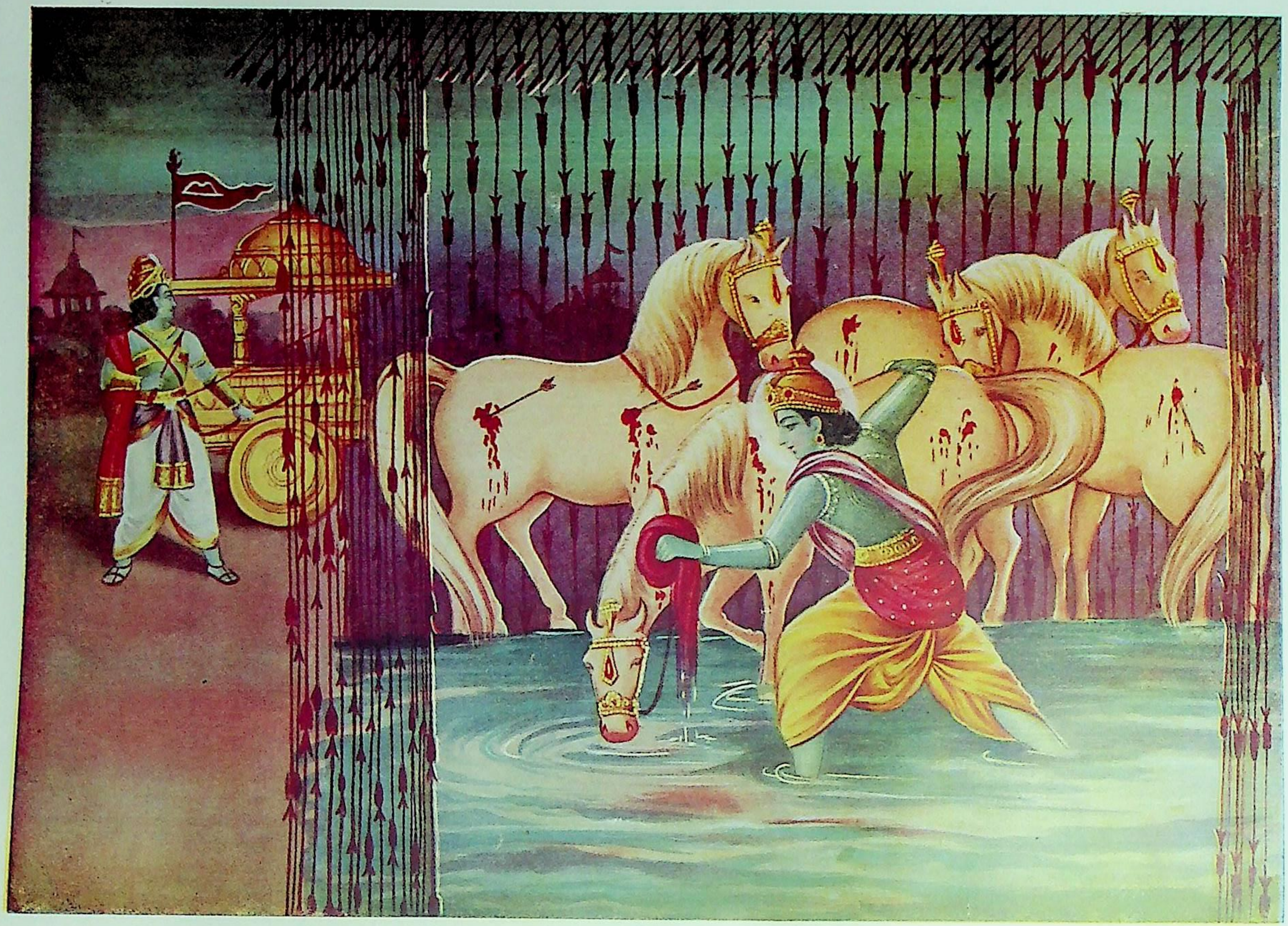
मुद्रक-प्रकाशक—घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

चित्र-सूची





श्रीकृष्णद्वारा अर्जुनके अश्वोंकी परिचर्या

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके द्वारा शल्यके भाईका वध तथा द्रोणाचार्यकी रथसेनाका पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

तथा प्रमथमानं तं महेष्वासानजिह्मगैः।
आर्जुनिं मामकाः संख्ये के त्वेनं समवारयन्॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! अर्जुनकुमार अभिमन्यु जब इस प्रकार अपने बाणोंद्वारा बड़े-बड़े धनुर्धरोंको मथ रहा था, उस समय मेरे पक्षके किन योद्धाओंने उसे युद्धमें रोका था?॥ १॥

संजय उवाच

शृणु राजन् कुमारस्य रणे विक्रीडितं महत्।
बिभित्सतो रथानीकं भारद्वाजेन रक्षितम्॥ २॥

संजयने कहा—राजन्! रणक्षेत्रमें कुमार अभिमन्युकी विशाल रणक्रीड़ाका वर्णन सुनिये। वह द्रोणाचार्यद्वारा सुरक्षित रथियोंकी सेनाको विदीर्ण करना चाहता था॥ २॥

मद्रेशं सादितं दृष्ट्वा सौभद्रेणाशुगै रणे।
शल्यादवरजः क्रुद्धः किरन् बाणान् समभ्ययात्॥ ३॥

सुभद्राकुमारने रणभूमिमें अपने शीघ्रगामी बाणोंद्वारा घायल करके मद्रराज शल्यको धराशायी कर दिया, यह देखकर उनका छोटा भाई कुपित हो बाणोंकी वर्षा करता हुआ अभिमन्युपर चढ़ आया॥ ३॥

स विद्ध्वा दशभिर्बाणैः साश्वयन्तारमार्जुनिम्।
उदक्रोशन्महाशब्दं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ ४॥

उसने दस बाणोंद्वारा घोड़े और सारथिसहित अभिमन्युको क्षत-विक्षत करके बड़े जोरसे गर्जना की और कहा—'अरे! खड़ा रह, खड़ा रह'॥ ४॥

तस्यार्जुनिः शिरोग्रीवं पाणिपादं धनुर्हयान्।
छत्रं ध्वजं नियन्तारं त्रिवेणुं तल्पमेव च॥ ५॥
चक्रं युगं च तूणीरं ह्यनुकर्षं च सायकैः।
पताकां चक्रगोप्तारौ सर्वोपकरणानि च॥ ६॥
लघुहस्तः प्रचिच्छेद ददृशे तं न कश्चन।
स पपात क्षितौ क्षीणः प्रविद्धाभरणाम्बरः॥ ७॥
वायुनेव महाशैलः सम्भग्नोऽमिततेजसा।

तब शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले अर्जुनकुमारने अपने सायकोंद्वारा शल्यके भाईके मस्तक, ग्रीवा, हाथ, पैर, धनुष, अश्व, छत्र, ध्वज, सारथि, त्रिवेणु, तल्प (शय्या), पहिये, जूआ, तरकस, अनुकर्ष, पताका, चक्ररक्षक तथा अन्य समस्त उपकरणोंको काट डाला। उस समय कोई भी उसे देख न सका। जैसे वायुके वेगसे कोई महान् पर्वत टूटकर गिर पड़े, उसी प्रकार अमिततेजस्वी अभिमन्युका मारा हुआ वह शल्यराजका भाई छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके वस्त्र और आभूषणोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे॥ ५–७½॥

अनुगास्तस्य वित्रस्ताः प्राद्रवन् सर्वतो दिशः॥ ८॥
आर्जुनेः कर्म तद् दृष्ट्वा सम्प्रणेदुः समन्ततः।
नादेन सर्वभूतानि साधु साध्विति भारत॥ ९॥

उसके सेवक भयभीत होकर सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये। भारत! अर्जुनकुमारके उस अद्भुत पराक्रमको देखकर समस्त प्राणी साधुवाद देते हुए सब ओर हर्षध्वनि करने लगे॥ ८-९॥

शल्यभ्रातर्यथारुग्णे बहुशस्तस्य सैनिकाः।
कुलाधिवासनामानि श्रावयन्तोऽर्जुनात्मजम्॥ १०॥
अभ्यधावन्त संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः।

शल्यके भाईके मारे जानेपर उसके बहुत-से सैनिक अपने कुल और निवासस्थानके नाम सुनाते हुए कुपित हो हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये अर्जुनकुमार अभिमन्युकी ओर दौड़े॥ १०½॥

रथैरश्वैर्गजैश्चान्ये पद्भिश्चान्ये बलोत्कटाः॥ ११॥
बाणशब्देन महता रथनेमिस्वनेन च।
हुंकारैः क्ष्वेडितोत्क्रुष्टैः सिंहनादैः सगर्जितैः॥ १२॥
ज्यातलत्रस्वनैरन्ये गर्जन्तोऽर्जुननन्दनम्।
ब्रुवन्तश्च न नो जीवन् मोक्ष्यसे जीवितादिति॥ १३॥

कितने ही वीर रथ, घोड़े और हाथीपर सवार होकर आये। दूसरे बहुत-से प्रचण्ड बलशाली योद्धा पैदल ही दौड़ पड़े। बाणोंकी सनसनाहट, रथके पहियोंकी जोर-जोरसे होनेवाली घर्घराहट, हुङ्कार, कोलाहल, ललकार, सिंहनाद, गर्जना, धनुषकी टङ्कार तथा हस्तत्राणके चट-चट शब्दके साथ गर्जन-तर्जन करते हुए अन्यान्य बहुत-से योद्धा अर्जुनकुमार अभिमन्युपर यह कहते हुए टूट पड़े, 'अब तू हमारे हाथसे जीवित नहीं छूट सकता। तुझे जीवनसे ही हाथ धोना पड़ेगा'॥ ११–१३॥

तांस्तथा ब्रुवतो दृष्ट्वा सौभद्रः प्रहसन्निव।
यो योऽस्मै प्राहरत् पूर्वं तं तं विव्याध पत्रिभिः॥ १४॥

उनको ऐसा कहते देख सुभद्राकुमार अभिमन्यु मानो जोर-जोरसे हँसने लगा और जिस-जिस योद्धाने उसपर पहले प्रहार किया, उस-उसको उसने भी अपने पंखयुक्त बाणोंद्वारा घायल कर दिया॥ १४॥

संदर्शयिष्यन्नस्त्राणि विचित्राणि लघूनि च।
आर्जुनिः समरे शूरो मृदुपूर्वमयुध्यत॥ १५॥

शूरवीर अर्जुनकुमारने समराङ्गणमें अपने विचित्र एवं शीघ्रगामी अस्त्रोंका प्रदर्शन करते हुए पहले मृदुभावसे ही युद्ध किया॥ १५॥

वासुदेवादुपात्तं यदस्त्रं यच्च धनंजयात्।
अदर्शयत तत् कार्ष्णिः कृष्णाभ्यामविशेषवत् ॥ १६ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुनसे अभिमन्युने जो-जो अस्त्र प्राप्त किये थे, उनका उन्हीं दोनोंकी भाँति वह युद्धस्थलमें प्रदर्शन करने लगा ॥ १६ ॥

दूरमस्य गुरुं भारं साध्वसं च पुनः पुनः।
संदधद् विसृजंश्चेषून् निर्विशेषमदृश्यत ॥ १७ ॥

भारी भार और भय उससे दूर हो गया था। वह बारंबार बाणोंका संधान करता और छोड़ता हुआ एक-सा दिखायी देता था ॥ १७ ॥

चापमण्डलमेवास्य विस्फुरद् दिक्ष्वदृश्यत।
सुदीप्तस्य शरत्काले सवितुर्मण्डलं यथा ॥ १८ ॥

जैसे शरद् ऋतुमें अत्यन्त प्रकाशित होनेवाले सूर्यदेवका मण्डल दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार अभिमन्युका मण्डलाकार धनुष ही सम्पूर्ण दिशाओंमें उद्भासित होता दिखायी देता था ॥ १८ ॥

ज्याशब्दः शुश्रुवे तस्य तलशब्दश्च दारुणः।
महाशनिमुचः काले पयोदस्येव निःस्वनः ॥ १९ ॥

उसके धनुषकी प्रत्यञ्चा और हथेलीका शब्द वर्षाकालमें महान् वज्र गिरानेवाले मेघकी गर्जनाके समान भयंकर सुनायी पड़ता था ॥ १९ ॥

ह्रीमानमर्षी सौभद्रो मानकृत् प्रियदर्शनः।
सम्मिमानयिषुर्वीरानिष्वस्त्रैश्चाप्ययुध्यत ॥ २० ॥

लज्जाशील, अमर्षी, दूसरोंको मान देनेवाला और देखनेमें प्रिय लगनेवाला सुभद्राकुमार अभिमन्यु विपक्षी वीरोंका सम्मान करनेकी इच्छासे धनुष-बाणोंद्वारा युद्ध करता रहा ॥

मृदुर्भूत्वा महाराज दारुणः समपद्यत।
वर्षाभ्यतीतो भगवाञ्छरदीव दिवाकरः ॥ २१ ॥

महाराज ! जैसे वर्षाकाल बीतनेपर शरत्कालमें भगवान् सूर्य प्रचण्ड हो उठते हैं, उसी प्रकार अभिमन्यु पहले मृदु होकर अन्तमें शत्रुओंके लिये अति उग्र हो उठा ॥ २१ ॥

शरान् विचित्रान् सुबहून् रुक्मपुङ्खाञ्छिलाशितान्।
मुमोच शतशः क्रुद्धो गभस्तीनिव भास्करः ॥ २२ ॥

जैसे सूर्य अपनी सहस्रों किरणोंको सब ओर बिखेर देते हैं, उसी प्रकार क्रोधमें भरा हुआ अभिमन्यु सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखसे युक्त सैकड़ों विचित्र एवं बहु-संख्यक बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २२ ॥

क्षुरप्रैर्वत्सदन्तैश्च विपाठैश्च महायशाः।
नाराचैरर्धचन्द्राभैर्भल्लैरञ्जलिकैरपि ॥ २३ ॥
अवाकिरद् रथानीकं भारद्वाजस्य पश्यतः।
ततस्तत्सैन्यमभवद् विमुखं शरपीडितम् ॥ २४ ॥

उस महायशस्वी वीरने द्रोणाचार्यके देखते-देखते उनकी रथसेनापर क्षुरप्र, वत्सदन्त, विपाठ, नाराच, अर्धचन्द्राकार बाण, भल्ल एवं अञ्जलिक आदिकी वर्षा आरम्भ कर दी। इससे उन बाणोंद्वारा पीड़ित हुई वह सेना युद्धसे विमुख होकर भाग चली ॥ २३-२४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युपराक्रमविषयक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

द्रोणाचार्यके द्वारा अभिमन्युके पराक्रमकी प्रशंसा तथा दुर्योधनके आदेशसे दुःशासनका अभिमन्युके साथ युद्ध आरम्भ करना

धृतराष्ट्र उवाच

द्वैधीभवति मे चित्तं ह्रिया तुष्ट्या च संजय।
मम पुत्रस्य यत् सैन्यं सौभद्रः समवारयत् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! सुभद्राकुमारने मेरे पुत्रकी सेनाको जो आगे बढ़नेसे रोक दिया, इसे सुनकर लज्जा और प्रसन्नतासे मेरे चित्तकी दो अवस्थाएँ हो रही हैं ॥ १ ॥

विस्तरेणैव मे शंस सर्वं गावल्गणे पुनः।
विक्रीडितं कुमारस्य स्कन्दस्येवासुरैः सह ॥ २ ॥

गवल्गणनन्दन ! जैसे कुमार कार्तिकेयने असुरोंके साथ रणक्रीड़ा की थी, उसी प्रकार कुमार अभिमन्युने जो युद्धका खेल किया था, वह सब मुझसे विस्तारपूर्वक कहो ॥

संजय उवाच

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि विमर्दमतिदारुणम्।
एकस्य च बहूनां च यथाऽऽसीत् तुमुलो रणः ॥ ३ ॥

संजयने कहा—महाराज ! मैं अत्यन्त खेदके साथ आपको उस अत्यन्त भयंकर नरसंहारका वृत्तान्त बता रहा हूँ, जिसके लिये एक वीरका बहुत-से महारथियोंके साथ तुमुल युद्ध हुआ था ॥ ३ ॥

अभिमन्युः कृतोत्साहः कृतोत्साहानरिंदमान्।
रथस्थो रथिनः सर्वांस्तावकानभ्यवर्षयत् ॥ ४ ॥

अभिमन्यु युद्धके लिये उत्साहसे भरा था। वह रथपर बैठकर आपके उत्साहभरे शत्रुदमन समस्त रथारोहियोंपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४ ॥

द्रोणं कर्णं कृपं शल्यं द्रौणिं भोजं बृहद्बलम्।
दुर्योधनं सोमदत्तिं शकुनिं च महाबलम् ॥ ५ ॥

नानानृपान् नृपसुतान् सैन्यानि विविधानि च ।
अलातचक्रवत् सर्वांश्चरन् बाणैः समार्पयत् ॥ ६ ॥

द्रोण, कर्ण, कृप, शल्य, अश्वत्थामा, भोजवंशी कृतवर्मा, बृहद्बल, दुर्योधन, भूरिश्रवा, महाबली शकुनि, अनेकानेक नरेश, राजकुमार तथा उनकी विविध प्रकारकी सेनाओंपर अभिमन्यु अलातचक्रकी भाँति चारों ओर घूमकर बाणोंका प्रहार कर रहा था ॥ ५-६ ॥

निघ्नन्नमित्रान् सौभद्रः परमास्त्रैः प्रतापवान् ।
अदर्शयत तेजस्वी दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ७ ॥

भारत ! प्रतापी एवं तेजस्वी वीर सुभद्राकुमार अपने दिव्यास्त्रोंद्वारा शत्रुओंका नाश करता हुआ सम्पूर्ण दिशाओंमें दृष्टिगोचर हो रहा था ॥ ७ ॥

तद् दृष्ट्वा चरितं तस्य सौभद्रस्यामितौजसः ।
समकम्पन्त सैन्यानि त्वदीयानि सहस्रशः ॥ ८ ॥

अमिततेजस्वी अभिमन्युका वह चरित्र देखकर आपके सहस्रों सैनिक भयसे काँपने लगे ॥ ८ ॥

अथाब्रवीन्महाप्राज्ञो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
हर्षेणोत्फुल्लनयनः कृपमाभाष्य सत्वरम् ॥ ९ ॥
घट्टयन्निव मर्माणि पुत्रस्य तव भारत ।
अभिमन्युं रणे दृष्ट्वा तदा रणविशारदम् ॥ १० ॥

तदनन्तर परम बुद्धिमान् और प्रतापी वीर द्रोणाचार्यके नेत्र हर्षसे खिल उठे। भारत ! उन्होंने युद्धविशारद अभिमन्युको युद्धमें स्थित देखकर आपके पुत्रके मर्मस्थलपर चोट करते हुए-से उस समय तुरंत ही कृपाचार्यको सम्बोधित करके कहा—॥ ९-१० ॥

एष गच्छति सौभद्रः पार्थानां प्रथितो युवा ।
नन्दयन् सुहृदः सर्वान् राजानं च युधिष्ठिरम् ॥ ११॥
नकुलं सहदेवं च भीमसेनं च पाण्डवम् ।
बन्धून् सम्बन्धिनश्चान्यान् मध्यस्थान् सुहृदस्तथा।१२।

'यह पार्थकुलका प्रसिद्ध तरुण वीर सुभद्राकुमार अभिमन्यु अपने समस्त सुहृदोंको, राजा युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव तथा पाण्डुपुत्र भीमसेनको, अन्यान्य भाई-बन्धुओं, सम्बन्धियों तथा मध्यस्थ सुहृदोंको भी आनन्द प्रदान करता हुआ जा रहा है ॥ ११-१२ ॥

नास्य युद्धे समं मन्ये कंचिदन्यं धनुर्धरम् ।
इच्छन् हन्यादिमां सेनां किमर्थमपि नेच्छति ॥ १३ ॥

'मैं दूसरे किसी धनुर्धर वीरको युद्धभूमिमें इसके समान नहीं मानता। यदि यह चाहे तो इस सारी सेनाको नष्ट कर सकता है; परंतु न जाने यह क्यों ऐसा चाहता नहीं है' ॥

द्रोणस्य प्रीतिसंयुक्तं श्रुत्वा वाक्यं तवात्मजः ।
आर्जुनिं प्रति संक्रुद्धो द्रोणं दृष्ट्वा स्मयन्निव ॥ १४ ॥
अथ दुर्योधनः कर्णमब्रवीद् बाह्लिकं नृपः ।
दुःशासनं मद्रराजं तांस्तथान्यान् महारथान् ॥ १५॥

अभिमन्युके सम्बन्धमें द्रोणाचार्यका यह प्रीतियुक्त वचन सुनकर आपका पुत्र राजा दुर्योधन क्रोधमें भर गया और द्रोणाचार्यकी ओर देखकर मुसकराता हुआ-सा कर्ण, बाह्लिक, दुःशासन, मद्रराज शल्य तथा अन्य महारथियोंसे बोला—॥

सर्वमूर्धाभिषिक्तानामाचार्यो ब्रह्मवित्तमः ।
अर्जुनस्य सुतं मूढं नायं हन्तुमिहेच्छति ॥ १६ ॥

ये सम्पूर्ण मूर्धाभिषिक्त राजाओंके आचार्य तथा सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता द्रोण अर्जुनके इस मूढ़ पुत्रको मारना नहीं चाहते हैं ॥ १६ ॥

न ह्यस्य समरे मुच्येदन्तकोऽप्याततायिनः ।
किमङ्ग पुनरेवान्यो मर्त्यः सत्यं ब्रवीमि वः ॥ १७ ॥

'प्रिय सैनिको ! मैं आपलोगोंसे सच्ची बात कहता हूँ । यदि ये युद्धमें मारनेके लिये उद्यत हो जायँ तो इनके सामने यमराज भी युद्ध नहीं कर सकता; फिर दूसरा कोई मनुष्य तो इनके सामने टिक ही कैसे सकता है ? ॥ १७ ॥

अर्जुनस्य सुतं त्वेष शिष्यत्वादभिरक्षति ।
शिष्याः पुत्राश्च दयितास्तदपत्यं च धर्मिणाम् ॥ १८ ॥

'परंतु ये अर्जुनके पुत्रकी रक्षा करते हैं; क्योंकि अर्जुन इनके शिष्य हैं। शिष्य और पुत्र तो प्रिय होते ही हैं। उनकी संतानें भी धर्मात्मा पुरुषोंको प्रिय जान पड़ती हैं ॥

संरक्ष्यमाणो द्रोणेन मन्यते वीर्यमात्मनः ।
आत्मसम्भावितो मूढस्तं प्रमथ्नीत मा चिरम् ॥ १९ ॥

'यह द्रोणाचार्यसे रक्षित होनेके कारण अपने बल और पराक्रमपर अभिमान कर रहा है। यह मूर्ख अभिमन्यु आत्मश्लाघा करनेवाला है। तुम सब लोग मिलकर इसे शीघ्र ही मथ डालो' ॥ १९ ॥

एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सात्वतीपुत्रमभ्ययुः ।
संरब्धास्ते जिघांसन्तो भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ २० ॥

राजा दुर्योधनके ऐसा कहनेपर वे सब वीर अत्यन्त कुपित हो सुभद्राकुमार अभिमन्युको मार डालनेकी इच्छासे द्रोणाचार्यके देखते-देखते उसपर टूट पड़े ॥ २० ॥

दुःशासनस्तु तच्छ्रुत्वा दुर्योधनवचस्तदा ।
अब्रवीत् कुरुशार्दूल दुर्योधनमिदं वचः ॥ २१ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! उस समय दुर्योधनके उपर्युक्त वचनको सुनकर दुःशासनने उससे यह बात कही—॥ २१ ॥

अहमेनं हनिष्यामि महाराज ब्रवीमि ते ।
मिषतां पाण्डुपुत्राणां पञ्चालानां च पश्यताम् ॥ २२ ॥

'महाराज ! मैं आपसे (प्रतिज्ञापूर्वक) कहता हूँ । मैं पाञ्चालों और पाण्डवोंके देखते-देखते इस अभिमन्युको मार डालूँगा ॥ २२ ॥

ग्रसिष्याम्यद्य सौभद्रं यथा राहुर्दिवाकरम् ।
उत्क्रुश्य चाब्रवीद् वाक्यं कुरुराजमिदं पुनः ॥ २३ ॥

'जैसे राहु सूर्यपर ग्रहण लगाता है, उसी प्रकार आज मैं सुभद्राकुमार अभिमन्युको ग्रस लूँगा ।' इतना कहकर उसने जोर-जोरसे गर्जना करके पुनः कुरुराज दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥ २३ ॥

श्रुत्वा कृष्णौ मया ग्रस्तं सौभद्रमतिमानिनौ ।
गमिष्यतः प्रेतलोकं जीवलोकान्न संशयः ॥ २४ ॥

'सुभद्राकुमार अभिमन्युको मेरे द्वारा कालकवलित हुआ सुनकर अत्यन्त अभिमानी श्रीकृष्ण और अर्जुन इस जीवलोकसे प्रेतलोकको चले जायँगे—इसमें संशय नहीं है ॥ २४ ॥

तौ च श्रुत्वा मृतौ व्यक्तं पाण्डोः क्षेत्रोद्भवाः सुताः ।
एकाह्ना ससुहृद्वर्गाः क्लैब्याद्धास्यन्ति जीवितम् ॥ २५ ॥

'उन दोनोंको मरा हुआ सुनकर पाण्डुके क्षेत्रमें उत्पन्न हुए ये चारों पाण्डव कायरतावश अपने सुहृद्वर्गके साथ एक ही दिन प्राण त्याग देंगे ॥ २५ ॥

तस्मादस्मिन् हते शत्रौ हताः सर्वेऽहितास्तव ।
शिवेन मां ध्याहि राजन्नेष हन्मि रिपूंस्तव ॥ २६ ॥

'अतः इस अपने शत्रु अभिमन्युके मारे जानेपर आपके सारे दुश्मन स्वतः नष्ट हो जायँगे । राजन् ! आप मेरा कल्याण मनाइये । मैं अभी आपके शत्रुओंका नाश किये देता हूँ' ॥

एवमुक्त्वानदद् राजन् पुत्रो दुःशासनस्तव ।
सौभद्रमभ्ययात् क्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २७ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर आपका पुत्र दुःशासन जोर-जोरसे गर्जना करने लगा । वह क्रोधमें भरकर सुभद्राकुमारपर बाणोंकी वर्षा करता हुआ उसके सामने गया ॥ २७ ॥

तमतिक्रुद्धमायान्तं तव पुत्रमरिंदमः ।
अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैः षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ २८ ॥

आपके पुत्रको अत्यन्त कुपित हो आते देख शत्रुसूदन अभिमन्युने छब्बीस पैने बाणोंद्वारा उसे घायल कर दिया ॥

दुःशासनस्तु संक्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ।
अयोधयत सौभद्रमभिमन्युश्च तं रणे ॥ २९ ॥

मदकी धारा बहानेवाले गजराजके समान क्रोधमें भरा हुआ दुःशासन उस रणक्षेत्रमें अभिमन्युसे और अभिमन्यु दुःशासनसे युद्ध करने लगे ॥ २९ ॥

तौ मण्डलानि चित्राणि रथाभ्यां सव्यदक्षिणम् ।
चरमाणावयुध्येतां रथशिक्षाविशारदौ ॥ ३० ॥

रथ-युद्धकी शिक्षामें निपुण वे दोनों योद्धा अपने रथोंद्वारा दायें-बायें विचित्र मण्डलाकार गतिसे विचरते हुए युद्ध करने लगे ॥ ३० ॥

अथ पणवमृदङ्गदुन्दुभीनां
क्रकचमहानकभेरिझर्झराणाम् ।
निनदमतिभृशं नराः प्रचक्रु-
र्लवणजलोद्भवसिंहनादमिश्रम् ॥ ३१ ॥

उस समय बाजे बजानेवाले लोग ढोल, मृदंग, दुन्दुभि, क्रकच, बड़ी ढोल, भेरी और झाँझके अत्यन्त भयंकर शब्द करने लगे । उसमें शङ्ख और सिंहनादकी भी ध्वनि मिली हुई थी ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुःशासनयुद्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें दुःशासनयुद्धविषयक उनतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके द्वारा दुःशासन और कर्णकी पराजय

संजय उवाच

(ततः समभवद् युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ।
तस्मिन् काले महाबाहुः सौभद्रः परवीरहा ॥
सशरं कार्मुकं छित्त्वा लाघवेन व्यपातयत् ।
दुःशासनं शरैर्घोरैः संततक्ष समन्ततः ॥)

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर उन दोनों पुरुषसिंहोंमें घोर युद्ध होने लगा । उस समय शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबाहु सुभद्राकुमारने बड़ी फुर्तीके साथ दुःशासनके बाणसहित धनुषको काट गिराया और उसे अपने भयंकर बाणोंद्वारा सब ओरसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥

शरविक्षतगात्रं तु प्रत्यमित्रमवस्थितम् ।
अभिमन्युः स्मयन् धीमान् दुःशासनमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

इसके बाद बुद्धिमान् अभिमन्यु किंचित् मुसकराकर [illegible] सामने विपक्षमें खड़े हुए दुःशासनसे, जिसका शरीर बाणोंसे अत्यन्त घायल हो गया था, इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे मानिनं शूरमागतम् ।
निष्ठुरं त्यक्तधर्माणमाक्रोशनपरायणम् ॥ २ ॥

'बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज मैं युद्धमें सामने आये हुए और अपनेको शूरवीर माननेवाले तुझ अभिमानी, निष्ठुर, धर्मत्यागी और दूसरोंकी निन्दामें तत्पर रहनेवाले शत्रुको प्रत्यक्ष देख रहा हूँ ॥ २ ॥

यत् सभायां त्वया राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः ।
कोपितः परुषैर्वाक्यैर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥
जयोन्मत्तेन भीमश्च बह्वबद्धं प्रभाषितः ।
अक्षकूटं समाश्रित्य सौबलस्यात्मनो बलम् ॥ ४ ॥
[illegible] तस्य कोपान्महात्मनः ।

'ओ मूर्ख ! तूने द्यूतक्रीडामें विजय पानेसे उन्मत्त होकर सभामें राजा धृतराष्ट्रके सुनते हुए जो अपने निष्ठुर वचनोंद्वारा धर्मराज युधिष्ठिरको कुपित किया था और शकुनिके आत्मबल—जूएमें छल-कपटका आश्रय लेकर जो भीमसेनके प्रति बहुत-सी अंट-संट बातें कही थीं, इससे उन महात्मा धर्मराजको जो क्रोध हुआ, उसीका यह फल है कि तुझे आज यह दुर्दिन प्राप्त हुआ है ॥ ३–४½ ॥

परवित्तापहारस्य क्रोधस्याप्रशमस्य च ॥ ५ ॥
लोभस्य ज्ञाननाशस्य द्रोहस्यात्याहितस्य च।
पितॄणां मम राज्यस्य हरणस्योग्रधन्विनाम् ॥ ६ ॥
तत् त्वयेदमनुप्राप्तं प्रकोपाद् वै महात्मनाम् ।

'दूसरोंके धनका अपहरण, क्रोध, अशान्ति, लोभ, ज्ञानलोप, द्रोह, दुःसाहसपूर्ण बर्ताव तथा मेरे उग्र धनुर्धर पितरोंके राज्यका अपहरण—इन सभी बुराइयोंके फलस्वरूप उन महात्मा पाण्डवोंके क्रोधसे तुझे आज यह बुरा दिन प्राप्त हुआ है ॥ ५–६½ ॥

स तस्योग्रमधर्मस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते ॥ ७ ॥
शासितास्म्यद्य ते बाणैः सर्वसैन्यस्य पश्यतः।
अद्याहमनृणस्तस्य कोपस्य भविता रणे ॥ ८ ॥

'दुर्मते ! तू अपने उस अधर्मका भयंकर फल प्राप्त कर। आज मैं सारी सेनाओंके देखते-देखते अपने बाणोंद्वारा तुझे दण्ड दूँगा। आज मैं युद्धमें उन महात्मा पितरोंके उस क्रोधका बदला चुकाकर उऋण हो जाऊँगा ॥ ७–८ ॥

अमर्षितायाः कृष्णायाः काङ्क्षितस्य च मे पितुः।
अद्य कौरव्य भीमस्य भवितास्म्यनृणो युधि ॥ ९ ॥

'कुरुकुलकलङ्क ! आज रोषमें भरी हुई माता कृष्णा तथा पितृतुल्य (ताऊ) भीमसेनका अभीष्ट मनोरथ पूर्ण करके इस युद्धमें उनके ऋणसे उऋण हो जाऊँगा ॥ ९ ॥

न हि मे मोक्ष्यसे जीवन् यदि नोत्सृजसे रणम् ।
एवमुक्त्वा महाबाहुर्बाणं दुःशासनान्तकम् ॥ १० ॥
संदधे परवीरघ्नः कालाग्न्यनिलवर्चसम् ।

'यदि तू युद्ध छोड़कर भाग नहीं जायगा तो आज मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकेगा।' ऐसा कहकर शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले महाबाहु अभिमन्युने काल, अग्नि और वायुके समान तेजस्वी बाणका संधान किया, जो दुःशासनके प्राण लेनेमें समर्थ था ॥ १०½ ॥

तस्योरस्तूर्णमासाद्य जत्रुदेशे विभिद्य तम् ॥ ११ ॥
जगाम सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः।
अथैनं पञ्चविंशत्या पुनरेव समार्पयत् ॥ १२ ॥

वह बाण तुरंत ही उसके वक्षःस्थलपर पहुँचकर उसके गलेकी हँसलीको विदीर्ण करता हुआ पंखसहित भीतर घुस गया, मानो कोई सर्प बाँबीमें समा गया हो। तत्पश्चात् अभिमन्युने दुःशासनको पचीस बाण और मारे ॥ ११–१२ ॥

शरैरग्निसमस्पर्शैराकर्णसमचोदितैः ।
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १३ ॥
दुःशासनो महाराज कश्मलं चाविशन्महत् ।

धनुषको कानतक खींचकर चलाये हुए उन बाणोंद्वारा, जिनका स्पर्श अग्निके समान दाहक था, गहरी चोट खाकर दुःशासन व्यथित हो रथकी बैठकमें बैठ गया। महाराज ! उस समय उसे भारी मूर्छा आ गयी ॥ १३½ ॥

सारथिस्त्वरमाणस्तु दुःशासनमचेतनम् ॥ १४ ॥
रणमध्यादपोवाह सौभद्रशरपीडितम् ।

तब अभिमन्युके बाणोंसे पीड़ित एवं अचेत हुए दुःशासनको सारथि बड़ी उतावलीके साथ युद्धस्थलसे बाहर हटा ले गया ॥ १४½ ॥

पाण्डवा द्रौपदेयाश्च विराटश्च समीक्ष्य तम् ॥ १५ ॥
पञ्चालाः केकयाश्चैव सिंहनादमथानदन् ।

उस समय पाण्डव, पाँचों द्रौपदीकुमार, राजा विराट, पाञ्चाल और केकय दुःशासनको पराजित हुआ देख जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ १५½ ॥

वादित्राणि च सर्वाणि नानालिङ्गानि सर्वशः ॥ १६ ॥
प्रावादयन्त संहृष्टाः पाण्डूनां तत्र सैनिकाः।
अपश्यन् स्मयमानाश्च सौभद्रस्य विचेष्टितम् ॥ १७ ॥

पाण्डवोंके सैनिक वहाँ हर्षमें भरकर नाना प्रकारके सभी रणवाद्य बजाने लगे और मुसकराते हुए वे सुभद्राकुमारका पराक्रम देखने लगे ॥ १६–१७ ॥

अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं पराजितम् ।
धर्ममारुतशक्राणामश्विनोः प्रतिमास्तथा ॥ १८ ॥
धारयन्तो ध्वजाग्रेषु द्रौपदेया महारथाः।
सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ १९ ॥
केकया धृष्टकेतुश्च मत्स्याः पञ्चालसृंजयाः।
पाण्डवाश्च मुदा युक्ता युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ २० ॥
अभ्यद्रवन्त त्वरिता द्रोणानीकं बिभित्सवः।

घमंडमें भरे हुए अपने कट्टर शत्रुको पराजित हुआ देख अपनी ध्वजाओंके अग्रभागमें धर्म, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमारोंकी प्रतिमा धारण करनेवाले महारथी द्रौपदीकुमार, सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, केकय-राजकुमार, धृष्टकेतु, मत्स्य, पाञ्चाल, सृंजय तथा युधिष्ठिर आदि पाण्डव बड़े हर्षके साथ उतावले होकर द्रोणाचार्यके व्यूहका भेदन करनेकी इच्छासे उसपर टूट पड़े ॥ १८–२०½ ॥

ततोऽभवन्महायुद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ २१ ॥
जयमाकाङ्क्षमाणानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।

तदनन्तर विजयकी अभिलाषा रखकर युद्धमें कभी पीठ न दिखानेवाले आपके शूरवीर सैनिकोंका शत्रुओंके साथ महान् युद्ध होने लगा ॥ २१½ ॥

तथा तु वर्तमाने वै संग्रामेऽतिभयंकरे ॥ २२ ॥
दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् ।

महाराज ! जब इस प्रकार अत्यन्त भयंकर संग्राम हो रहा था, उस समय दुर्योधनने राधापुत्र कर्णसे यों कहा—॥

पश्य दुःशासनं वीरमभिमन्युवशं गतम् ॥ २३ ॥
प्रतपन्तमिवादित्यं निघ्नन्तं शात्रवान् रणे ।

'कर्ण ! देखो, वीर दुःशासन सूर्यके समान शत्रु-सैनिकोंको संतप्त करता हुआ युद्धमें उन्हें मार रहा था, इसी अवस्थामें वह अभिमन्युके वशमें पड़ गया है ॥ २३½ ॥

अथ चैते सुसंरब्धाः सिंहा इव बलोत्कटाः ॥ २४ ॥
सौभद्रमुद्यतास्त्रातुमभ्यधावन्त पाण्डवाः ।

'इधर ये क्रोधमें भरे हुए पाण्डव सुभद्राकुमारकी रक्षा करनेके लिये उद्यत हो प्रचण्ड बलशाली सिंहोंके समान धावा कर चुके हैं' ॥ २४½ ॥

ततः कर्णः शरैस्तीक्ष्णैरभिमन्युं दुरासदम् ॥ २५ ॥
अभ्यवर्षत संक्रुद्धः पुत्रस्य हितकृत् तव ।

यह सुनकर आपके पुत्रका हित करनेवाला कर्ण अत्यन्त क्रोधमें भरकर दुर्द्धर्ष वीर अभिमन्युपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २५½ ॥

तस्य चानुचरांस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेषुभिः ॥ २६ ॥
अवज्ञापूर्वकं शूरः सौभद्रस्य रणाजिरे ।

शूरवीर कर्णने समराङ्गणमें सुभद्राकुमारके सेवकोंको भी तीखे एवं उत्तम बाणोंद्वारा अवहेलनापूर्वक बींध डाला ॥

अभिमन्युस्तु राधेयं त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ २७ ॥
अविध्यत् त्वरितो राजन् द्रोणं प्रेप्सुर्महामनाः ।

राजन् ! उस समय महामनस्वी अभिमन्युने द्रोणाचार्यके समीप पहुँचनेकी इच्छा रखकर तुरंत ही तिहत्तर बाणोंद्वारा कर्णको घायल कर दिया ॥ २७½ ॥

तं तथा नाशकत् कश्चिद् द्रोणाद् वारयितुं रथी ॥ २८ ॥
आरुजन्तं रथव्रातान् वज्रहस्तात्मजात्मजम् ।

कोई भी रथी रथसमूहोंको नष्ट-भ्रष्ट करते हुए इन्द्र-कुमार अर्जुनके उस पुत्रको द्रोणाचार्यकी ओर जानेसे रोक न सका ॥ २८½ ॥

ततः कर्णो जयप्रेप्सुर्मानी सर्वधनुष्मताम् ॥ २९ ॥
सौभद्रं शतशोऽविध्यदुत्तमास्त्राणि दर्शयन् ।
सोऽस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो रामशिष्यः प्रतापवान् ॥ ३० ॥
समरे शत्रुदुर्धर्षमभिमन्युमपीडयत् ।

विजय पानेकी इच्छा रखनेवाले, सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें मानी, अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, परशुरामजीके शिष्य और प्रतापी वीर कर्णने अपने उत्तम अस्त्रोंका प्रदर्शन करते हुए सैकड़ों बाणोंद्वारा शत्रुदुर्जय सुभद्राकुमार अभिमन्युको बींध डाला और समराङ्गणमें उसे पीड़ा देना आरम्भ किया ॥

स तथा पीड्यमानस्तु राधेयेनास्त्रवृष्टिभिः ॥ ३१ ॥
समरेऽमरसंकाशः सौभद्रो न व्यशीर्यत ।

कर्णके द्वारा उसकी अस्त्रवर्षासे पीड़ित होनेपर भी देवतुल्य अभिमन्यु समरभूमिमें शिथिल नहीं हुआ ॥ ३१½ ॥

ततः शिलाशितैस्तीक्ष्णैर्भल्लैरानतपर्वभिः ॥ ३२ ॥
छित्त्वा धनूंषि शूराणामार्जुनिः कर्णमार्दयत् ।

तत्पश्चात् अर्जुनकुमारने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए झुकी हुई गाँठवाले तीखे भल्लोंद्वारा शूरवीरोंके धनुष काटकर कर्णको सब ओरसे पीड़ा दी ॥ ३२½ ॥

धनुर्मण्डलनिर्मुक्तैः शरैराशीविषोपमैः ॥ ३३ ॥
सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वमाशु स्मयन्निव ।

उसने मुसकराते हुए-से अपने मण्डलाकार धनुषसे छूटे हुए विषधर सर्पोंके समान भयानक बाणोंद्वारा छत्र, ध्वज, सारथि और घोड़ोंसहित कर्णको शीघ्र ही घायल कर दिया ॥

कर्णोऽपि चास्य चिक्षेप बाणान् संनतपर्वणः ॥ ३४ ॥
असम्भ्रान्तश्च तान् सर्वानगृह्णात् फाल्गुनात्मजः ।

कर्णने भी उसके ऊपर झुकी हुई गाँठवाले बहुत-से बाण चलाये; परंतु अर्जुनकुमारने उन सबको बिना किसी घबराहटके सह लिया ॥ ३४½ ॥

ततो मुहूर्तात् कर्णस्य बाणेनैकेन वीर्यवान् ॥ ३५ ॥
सध्वजं कार्मुकं वीरश्छित्त्वा भूमावपातयत् ।

तदनन्तर दो ही घड़ीमें पराक्रमी वीर अभिमन्युने एक बाण मारकर कर्णके ध्वजसहित धनुषको पृथ्वीपर काट गिराया॥

ततः कृच्छ्रगतं कर्णं दृष्ट्वा कर्णादनन्तरः ॥ ३६ ॥
सौभद्रमभ्ययात् तूर्णं दृढमुद्यम्य कार्मुकम् ।
तत उच्चुक्रुशुः पार्थास्तेषां चानुचरा जनाः ।
वादित्राणि च संजघ्नुः सौभद्रं चापि तुष्टुवुः ॥ ३७ ॥

कर्णको संकटमें पड़ा देख उसका छोटा भाई सुदृढ़ धनुष हाथमें लेकर तुरंत ही सुभद्राकुमारका सामना करनेके लिये आ पहुँचा । उस समय कुन्तीके सभी पुत्र और उनके अनुगामी सैनिक जोर-जोरसे गरजने, बाजे बजाने और अभिमन्युकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ३६-३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि कर्णदुःशासनपराभवे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें कर्ण तथा दुःशासनकी पराजयविषयक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ३९ श्लोक हैं)

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके द्वारा कर्णके भाईका वध तथा कौरवसेनाका संहार और पलायन

संजय उवाच

सोऽतिगर्जन् धनुष्पाणिर्ज्यां विकर्षन् पुनः पुनः।
तयोर्महात्मनोस्तूर्णं रथान्तरमवापतत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं–राजन्! कर्णका वह भाई हाथमें धनुष ले अत्यन्त गरजता और प्रत्यञ्चाको बार-बार खींचता हुआ तुरंत ही उन दोनों महामनस्वी वीरोंके रथोंके बीचमें आ पहुँचा ॥ १ ॥

सोऽविध्यद् दशभिर्बाणैरभिमन्युं दुरासदम्।
सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वमाशु स्मयन्निव ॥ २ ॥

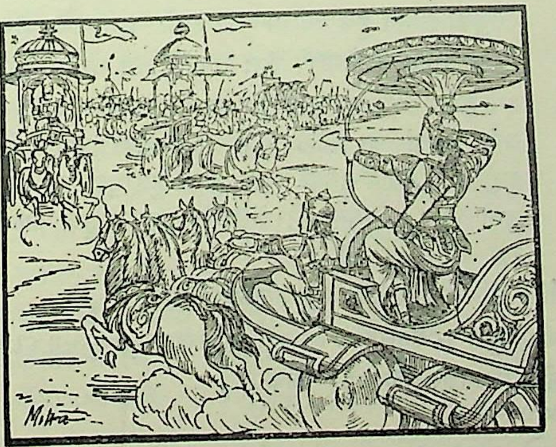
उसने मुसकराते हुए-से दस बाण मारकर दुर्जय वीर अभिमन्युको छत्र, ध्वजा, सारथि और घोड़ोंसहित शीघ्र ही घायल कर दिया ॥ २ ॥

पितृपैतामहं कर्म कुर्वाणमतिमानुषम्।
दृष्ट्वार्दितं शरैः कार्ष्णिं त्वदीया हृषिताऽभवन् ॥ ३ ॥

अपने पिता-पितामहोंके अनुसार मानवीय शक्तिसे बढ़कर पराक्रम प्रकट करनेवाले अर्जुनकुमार अभिमन्युको उस समय बाणोंसे पीड़ित देखकर आपके सैनिक हर्षसे खिल उठे॥

तस्याभिमन्युरायस्य स्मयन्नेकेन पत्रिणा।
शिरः प्रच्यावयामास तद्रथात् प्रापतद् भुवि ॥ ४ ॥
कर्णिकारमिवाधूतं वातेनापतितं नगात्।

तब अभिमन्युने मुसकराते हुए-से अपने धनुषको खींचकर एक ही बाणसे कर्णके भाईका मस्तक धड़से अलग कर दिया। उसका वह सिर रथसे नीचे पृथ्वीपर गिर पड़ा,



मानो वायुके वेगसे हिलकर उखड़ा हुआ कनेरका वृक्ष पर्वत-शिखरसे नीचे गिर गया हो ॥ ४½ ॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा राजन् कर्णो व्यथां ययौ ॥ ५ ॥
विमुखीकृत्य कर्णं तु सौभद्रः कङ्कपत्रिभिः।
अन्यानपि महेष्वासांस्तूर्णमेवाभिदुद्रुवे ॥ ६ ॥

राजन्! अपने भाईको मारा गया देख कर्णको बड़ी व्यथा हुई। इधर सुभद्राकुमार अभिमन्युने गीधकी पाँखवाले बाणोंद्वारा कर्णको युद्धसे भगाकर दूसरे-दूसरे महाधनुर्धर वीरोंपर भी तुरंत ही धावा किया ॥ ५-६ ॥

ततस्तद् विततं सैन्यं हस्त्यश्वरथपत्तिमत्।
क्रुद्धोऽभिमन्युरभिनत् तिग्मतेजा महारथः ॥ ७ ॥

उस समय क्रोधमें भरे हुए प्रचण्ड तेजस्वी महारथी अभिमन्युने हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे युक्त उस विशाल चतुरङ्गिणी सेनाको विदीर्ण कर डाला ॥ ७ ॥

कर्णस्तु बहुभिर्बाणैरर्द्यमानोऽभिमन्युना।
अपायाज्जवनैरश्वैस्ततोऽनीकमभज्यत ॥ ८ ॥

अभिमन्युके चलाये हुए बहुसंख्यक बाणोंसे पीड़ित हुआ कर्ण अपने वेगशाली घोड़ोंकी सहायतासे शीघ्र ही रणभूमिसे भाग गया। इससे सारी सेनामें भगदड़ मच गयी॥

शलभैरिव चाकाशे धाराभिरिव चावृते।
अभिमन्योः शरै राजन् न प्राज्ञायत किंचन ॥ ९ ॥

राजन्! उस दिन अभिमन्युके बाणोंसे सारा आकाश-मण्डल इस प्रकार आच्छादित हो गया था, मानो टिड्डी-दलोंसे अथवा वर्षाकी धाराओंसे व्याप्त हो गया हो। उस आकाशमें कुछ भी सूझता नहीं था ॥ ९ ॥

तावकानां तु योधानां वध्यतां निशितैः शरैः।
अन्यत्र सैन्धवाद् राजन् न स्म कश्चिदतिष्ठत ॥ १० ॥

महाराज! पैने बाणोंद्वारा मारे जाते हुए आपके योद्धाओंमेंसे सिंधुराज जयद्रथको छोड़कर दूसरा कोई वहाँ ठहर न सका ॥ १० ॥

सौभद्रस्तु ततः शङ्खं प्रध्माप्य पुरुषर्षभः।
शीघ्रमभ्यपतत् सेनां भारतीं भरतर्षभ ॥ ११ ॥

भरतश्रेष्ठ! तब पुरुषप्रवर सुभद्राकुमार अभिमन्युने शङ्ख बजाकर पुनः शीघ्र ही भारतीय सेनापर धावा किया ॥

स कक्षेऽग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून्।
मध्ये भारतसैन्यानामार्जुनिः पर्यवर्तत ॥ १२ ॥

सूखे जंगलमें छोड़ी हुई आगके समान वेगसे शत्रुओंको दग्ध करता हुआ अभिमन्यु कौरव-सेनाके बीचमें विचरने लगा॥

रथनागाश्वमनुजानर्दयन् निशितैः शरैः।
सम्प्रविश्याकरोद् भूमिं कबन्धगणसंकुलाम् ॥ १३ ॥

उस सेनामें प्रवेश करके उसने अपने तीखे बाणोंद्वारा रथों, हाथियों, घोड़ों और पैदल मनुष्योंको पीड़ित करते हुए सारी रणभूमिको बिना मस्तकके शरीरोंसे पाट दिया ॥ १३ ॥

सौभद्रचापप्रभवैर्निकृत्ताः परमेषुभिः।

स्वानेवाभिमुखान् घ्नन्तः प्राद्रवन् जीवितार्थिनः॥ १४ ॥

सुभद्राकुमारके धनुषसे छूटे हुए उत्तम बाणोंसे क्षत-विक्षत हो आपके सैनिक अपने जीवनकी रक्षाके लिये सामने आये हुए अपने ही पक्षके योद्धाओंको मारते हुए भाग चले ॥

ते घोरा रौद्रकर्माणो विपाठा बहवः शिताः।
निघ्नन्तो रथनागाश्वाञ्जग्मुराशु वसुंधराम् ॥ १५ ॥

अभिमन्युके वे भयंकर कर्म करनेवाले, घोर, तीक्ष्ण और बहुसंख्यक विपाठ नामक बाण आपके रथों, हाथियों और घोड़ोंको नष्ट करते हुए शीघ्र ही धरतीमें समा जाते थे ॥

सायुधाः साङ्गुलित्राणाः सगदाः साङ्गदा रणे।
दृश्यन्ते बाहवश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ १६ ॥

उस युद्धमें आयुध, दस्ताने, गदा और बाजूबंदसहित वीरोंकी सुवर्णभूषण-भूषित भुजाएँ कटकर गिरी दिखायी देती थीं ॥ १६ ॥

शराश्चापानि खड्गाश्च शरीराणि शिरांसि च।
सकुण्डलानि स्रग्वीणि भूमावासन् सहस्रशः ॥ १७ ॥

उस युद्धभूमिमें धनुष, बाण, खड्ग, शरीर तथा हार और कुण्डलोंसे विभूषित मस्तक सहस्रोंकी संख्यामें छिन्न-भिन्न होकर पड़े थे ॥ १७ ॥

सोपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डैश्च बन्धुरैः।
अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्बहुधा पतितैर्युगैः ॥ १८ ॥
शक्तिचापासिभिश्चैव पतितैश्च महाध्वजैः।
चर्मचापशरैश्चैव व्यवकीर्णैः समन्ततः ॥ १९ ॥
निहतैः क्षत्रियैरश्वैर्वारणैश्च विशाम्पते।
अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेनासीत् सुदारुणा ॥ २० ॥

आवश्यक सामग्री, बैठक, ईषादण्ड, बन्धुर, अक्ष, पहिए और जूए चूर-चूर और टुकड़े-टुकड़े होकर गिरे थे। शक्ति, धनुष, खड्ग, गिरे हुए विशाल ध्वज, ढाल और बाण भी छिन्न-भिन्न होकर सब ओर बिखरे पड़े थे। प्रजानाथ! बहुत-से क्षत्रिय, घोड़े और हाथी भी मारे गये थे। इन सबके कारण वहाँकी भूमि क्षणभरमें अत्यन्त भयंकर और अगम्य हो गयी थी ॥ १८–२० ॥

वध्यतां राजपुत्राणां क्रन्दतामितरेतरम्।
प्रादुरासीन्महाशब्दो भीरूणां भयवर्धनः ॥ २१ ॥

बाणोंकी चोट खाकर परस्पर क्रन्दन करते हुए राजकुमारोंका महान् शब्द सुनायी पड़ता था, जो कायरोंका भय बढ़ानेवाला था ॥ २१ ॥

स शब्दो भरतश्रेष्ठ दिशः सर्वा व्यनादयत्।
सौभद्रश्चाद्रवत् सेनां घ्नन् वराश्वरथद्विपान् ॥ २२ ॥

भरतश्रेष्ठ! वह शब्द सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित कर रहा था। सुभद्राकुमार श्रेष्ठ घोड़ों, रथों और हाथियोंका संहार करता हुआ कौरव-सेनापर टूट पड़ा था ॥ २२ ॥

कक्षमग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून्।
मध्ये भारतसैन्यानामार्जुनिः प्रत्यदृश्यत ॥ २३ ॥

सूखे जंगलमें छोड़ी हुई आगकी भाँति अर्जुनकुमार अभिमन्यु वेगसे शत्रुओंको दग्ध करता हुआ कौरवसेनाओंके बीचमें दृष्टिगोचर हो रहा था ॥ २३ ॥

विचरन्तं दिशः सर्वाः प्रदिशश्चापि भारत।
तं तदा नानुपश्यामः सैन्ये च रजसाऽऽवृते ॥ २४ ॥

भारत! धूलसे आच्छादित हुई सेनाके भीतर सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओंमें विचरते हुए अभिमन्युको उस समय हमलोग देख नहीं पाते थे ॥ २४ ॥

आददानं गजाश्वानां नृणां चायूंषि भारत।
क्षणेन भूयः पश्यामः सूर्यं मध्यंदिने यथा ॥ २५ ॥
अभिमन्युं महाराज प्रतपन्तं द्विषद्गणान्।
स वासवसमः संख्ये वासवस्यात्मजात्मजः।
अभिमन्युर्महाराज सैन्यमध्ये व्यरोचत ॥ २६ ॥
(यथा पुरा वह्निसुतोऽसुरसैन्येषु वीर्यवान्।)

भरतनन्दन! हाथियों, घोड़ों और पैदल-सैनिकोंकी आयुको छीनते हुए अभिमन्युको हमने क्षणभरमें दोपहरके सूर्यकी भाँति शत्रुसेनाको पुनः तपाते देखा था। महाराज! इन्द्रकुमार अर्जुनका वह पुत्र युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी जान पड़ता था। जैसे पूर्वकालमें पराक्रमी कुमार कार्तिकेय असुरोंकी सेनामें उसका संहार करते हुए सुशोभित होते थे, उसी प्रकार अभिमन्यु कौरव-सेनामें विचरता हुआ शोभा पा रहा था ॥ २५–२६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युका पराक्रमविषयक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल २६½ श्लोक हैं)

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके पीछे जानेवाले पाण्डवोंको जयद्रथका वरके प्रभावसे रोक देना

धृतराष्ट्र उवाच

बालमत्यन्तसुखिनं स्वबाहुबलदर्पितम्।
युद्धेषु कुशलं वीरं कुलपुत्रं तनुत्यजम् ॥ १ ॥
गाहमानमनीकानि सदश्वैश्च त्रिहायनैः।
अपि यौधिष्ठिरात् सैन्यात् कश्चिदन्वपतद् बली ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! अत्यन्त सुखमें पला हुआ वीर

बालक अभिमन्यु युद्धमें कुशल था। उसे अपने बाहुबलपर गर्व था। वह उत्तम कुलमें उत्पन्न होनेके कारण अपने शरीरको निछावर करके युद्ध कर रहा था। जिस समय वह तीन सालकी अवस्थावाले उत्तम घोड़ोंके द्वारा मेरी सेनाओंमें प्रवेश कर रहा था, उस समय युधिष्ठिरकी सेनासे क्या कोई बलवान् वीर उसके पीछे-पीछे व्यूहके भीतर आ सका था ?॥ १-२॥

संजय उवाच

युधिष्ठिरो भीमसेनः शिखण्डी सात्यकिर्यमौ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च द्रुपदश्च सकेकयः॥ ३॥
धृष्टकेतुश्च संरब्धो मत्स्याश्चाभ्यपतन् रणे।
तेनैव तु पथा यान्तः पितरो मातुलैः सह॥ ४॥
अभ्यद्रवन् परीप्सन्तो व्यूढानीकाः प्रहारिणः।

संजयने कहा—राजन्! युधिष्ठिर, भीमसेन, शिखण्डी, सात्यकि, नकुल-सहदेव, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, केकय-राजकुमार, रोषमें भरा हुआ धृष्टकेतु तथा मत्स्यदेशीय योद्धा—ये सब-के-सब युद्धस्थलमें आगे बढ़े। अभिमन्युके ताऊ, चाचा तथा मामागण अपनी सेनाको व्यूहद्वारा संगठित करके प्रहार करनेके लिये उद्यत हो अभिमन्युकी रक्षाके लिये उसीके बनाये हुए मार्गसे व्यूहमें जानेके उद्देश्यसे एक साथ दौड़ पड़े॥ ३-४½॥

तान् दृष्ट्वा द्रवतः शूरांस्त्वदीया विमुखाऽभवन्॥ ५॥
ततस्तद् विमुखं दृष्ट्वा तव सूनोर्महद् बलम्।
जामाता तव तेजस्वी संस्तम्भयिषुराद्रवत्॥ ६॥

उन शूरवीरोंको आक्रमण करते देख आपके सैनिक भाग खड़े हुए। आपके पुत्रकी विशाल सेनाको रणसे विमुख हुई देख उसे स्थिरतापूर्वक स्थापित करनेकी इच्छासे आपका तेजस्वी जामाता जयद्रथ वहाँ दौड़ा हुआ आया॥ ५-६॥

सैन्धवस्य महाराज पुत्रो राजा जयद्रथः।
स पुत्रगृद्धिनः पार्थान् सहसैन्यानवारयत्॥ ७॥

महाराज! सिंधुनरेशके पुत्र राजा जयद्रथने अपने पुत्रको बचानेकी इच्छा रखनेवाले कुन्तीकुमारोंको सेनासहित आगे बढ़नेसे रोक दिया॥ ७॥

उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यमस्त्रमुदीरयन्।
वार्धक्षत्रिरुपासेधत् प्रवणादिव कुञ्जरः॥ ८॥

जैसे हाथी नीची भूमिमें आकर वहींसे शत्रुका निवारण करता है, उसी प्रकार भयंकर एवं महान् धनुष धारण करनेवाले वृद्धक्षत्रकुमार जयद्रथने दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करके शत्रुओंकी प्रगति रोक दी॥ ८॥

धृतराष्ट्र उवाच

अतिभारमहं मन्ये सैन्धवे संजयाहितम्।
यदेकः पाण्डवान् क्रुद्धान् पुत्रप्रेप्सूनवारयत्॥ ९॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय! मैं तो समझता हूँ, सिंधुराज जयद्रथपर यह बहुत बड़ा भार आ पड़ा था, जो अकेले होनेपर भी उसने पुत्रकी रक्षाके लिये उत्सुक एवं क्रोधमें भरे हुए पाण्डवोंको रोका॥ ९॥

अत्यद्भुतमहं मन्ये बलं शौर्यं च सैन्धवे।
तस्य प्रब्रूहि मे वीर्यं कर्म चाग्र्यं महात्मनः॥ १०॥

सिंधुराजमें ऐसे बल और शौर्यका होना मैं अत्यन्त आश्चर्यकी बात मानता हूँ। महामना जयद्रथके बल और श्रेष्ठ पराक्रमका मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन करो॥ १०॥

किं दत्तं हुतमिष्टं वा किं सुतप्तमथो तपः।
सिंधुराजो हि येनैकः पाण्डवान् समवारयत्॥ ११॥

सिंधुराजने कौन-सा ऐसा दान, होम, यज्ञ अथवा उत्तम तप किया था, जिससे वह अकेला ही समस्त पाण्डवोंको रोकनेमें समर्थ हो सका॥ ११॥

(दमो वा ब्रह्मचर्यं वा सूत यच्चास्य सत्तम।
देवं कतममाराध्य विष्णुमीशानमब्जजम्॥
सिन्धुराट् तनये सक्तान् क्रुद्धः पार्थानवारयत्।
नैवं कृतं महत् कर्म भीष्मेणाशासिषं तथा॥)

साधुशिरोमणे सूत! जयद्रथमें जो इन्द्रियसंयम अथवा ब्रह्मचर्य हो, वह बताओ। विष्णु, शिव अथवा ब्रह्मा किस देवताकी आराधना करके सिन्धुराजने अपने पुत्रकी रक्षामें तत्पर हुए पाण्डवोंको क्रोधपूर्वक रोक दिया? भीष्मने भी ऐसा महान् पराक्रम किया हो, उसका पता मुझे नहीं है॥

संजय उवाच

द्रौपदीहरणे यत् तद् भीमसेनेन निर्जितः।
मानात् स तप्तवान् राजा वरार्थी सुमहत् तपः॥ १२॥

संजयने कहा—महाराज! द्रौपदीहरणके प्रसंगमें जो जयद्रथको भीमसेनसे पराजित होना पड़ा था, उसीसे अभिमानवश अपमानका अनुभव करके राजाने वर प्राप्त करनेकी इच्छा रखकर बड़ी भारी तपस्या की॥ १२॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः संनिवर्त्य सः।
क्षुत्पिपासातपसहः कृशो धमनिसंततः॥ १३॥

प्रिय लगनेवाले विषयोंकी ओरसे सम्पूर्ण इन्द्रियोंको हटाकर भूख-प्यास और धूपका कष्ट सहन करता हुआ जयद्रथ अत्यन्त दुर्बल हो गया। उसके शरीरकी नस-नाड़ियाँ दिखायी देने लगीं॥ १३॥

देवमाराधयच्छर्वं गृणन् ब्रह्म सनातनम्।
भक्तानुकम्पी भगवांस्तस्य चक्रे ततो दयाम्॥ १४॥
स्वप्नान्तेऽप्यथ चैवाह हरः सिन्धुपतेः सुतम्।
वरं वृणीष्व प्रीतोऽस्मि जयद्रथ किमिच्छसि॥ १५॥

वह सनातन ब्रह्मस्वरूप भगवान् शङ्करकी स्तुति करता हुआ उनकी आराधना करने लगा। तब भक्तोंपर दया करनेवाले

भगवान्‌ने उसपर कृपा की और स्वप्नमें जयद्रथको दर्शन देकर उससे कहा—'जयद्रथ ! तुम क्या चाहते हो ? वर माँगो । मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ' ॥ १४-१५ ॥

एवमुक्तस्तु शर्वेण सिन्धुराजो जयद्रथः ।
उवाच प्रणतो रुद्रं प्राञ्जलिर्नियतात्मवान् ॥ १६ ॥

भगवान् शङ्करके ऐसा कहनेपर सिंधुराज जयद्रथने अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर उन रुद्रदेवको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—॥ १६ ॥



पाण्डवेयानहं संख्ये भीमवीर्यपराक्रमान् ।
वारयेयं रथेनैकः समस्तानिति भारत ॥ १७ ॥
एवमुक्तस्तु देवेशो जयद्रथमथाब्रवीत् ।
ददामि ते वरं सौम्य विना पार्थं धनंजयम् ॥ १८ ॥
वारयिष्यसि संग्रामे चतुरः पाण्डुनन्दनान् ।
एवमस्त्विति देवेशमुक्त्वाबुद्ध्यत पार्थिवः ॥ १९ ॥

'प्रभो ! मैं युद्धमें भयंकर बल-पराक्रमसे सम्पन्न समस्त पाण्डवोंको अकेला ही रथके द्वारा परास्त करके आगे बढ़नेसे रोक दूँ' ।भारत ! उसके ऐसा कहनेपर देवेश्वर भगवान् शिवने जयद्रथसे कहा—'सौम्य ! मैं तुम्हें वर देता हूँ । तुम कुन्तीपुत्र अर्जुनको छोड़कर शेष चार पाण्डवोंको (एक दिन) युद्धमें आगे बढ़नेसे रोक दोगे ।' तब देवेश्वर महादेवसे 'एवमस्तु' कहकर राजा जयद्रथ जाग उठा ॥ १७–१९ ॥

स तेन वरदानेन दिव्येनास्त्रबलेन च ।
एकः संवारयामास पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ २० ॥

उसी वरदानसे अपने दिव्य अस्त्र-बलके द्वारा जयद्रथने अकेले ही पाण्डवोंकी सेनाको रोक दिया ॥ २० ॥

तस्य ज्यातलघोषेण क्षत्रियान् भयमाविशत् ।
परांस्तु तव सैन्यस्य हर्षः परमकोऽभवत् ॥ २१ ॥

उसके धनुषकी टंकार सुनकर शत्रुपक्षके क्षत्रियोंके मनमें भय समा गया; परंतु आपके सैनिकोंको बड़ा हर्ष हुआ ॥२१॥

दृष्ट्वा तु क्षत्रिया भारं सैन्धवे सर्वमाहितम् ।
उत्क्रुश्याभ्यद्रवन् राजन् येन यौधिष्ठिरं बलम् ॥ २२ ॥

राजन् ! उस समय सारा भार जयद्रथके ही ऊपर पड़ा देख आपके क्षत्रियवीर कोलाहल करते हुए जिस ओर युधिष्ठिरकी सेना थी, उसी ओर टूट पड़े ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि जयद्रथयुद्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें जयद्रथयुद्धविषयक बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल २४ श्लोक हैं)

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

पाण्डवोंके साथ जयद्रथका युद्ध और व्यूहद्वारको रोक रखना

संजय उवाच

यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र सिन्धुराजस्य विक्रमम् ।
शृणु तत् सर्वमाख्यास्ये यथा पाण्डूनयोधयत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजेन्द्र ! आप मुझसे जो सिंधुराज जयद्रथके पराक्रमका समाचार पूछ रहे हैं, वह सब सुनिये । उसने जिस प्रकार पाण्डवोंके साथ युद्ध किया था, वह सारा वृत्तान्त बताऊँगा ॥ १ ॥

तमूहुर्वाजिनो वश्याः सैन्धवाः साधुवाहिनः ।
विकुर्वाणा बृहन्तोऽश्वाः श्वसनोपमरंहसः ॥ २ ॥

सारथिके वशमें रहकर अच्छी तरह सवारीका काम देनेवाले, वायुके समान वेगशाली तथा नाना प्रकारकी चाल दिखाते हुए चलनेवाले सिंधुदेशीय विशाल अश्व जयद्रथको वहन करते थे ॥ २ ॥

गन्धर्वनगराकारं विधिवत्कल्पितं रथम् ।
तस्याभ्यशोभयत् केतुर्वाराहो राजतो महान् ॥ ३ ॥

विधिपूर्वक सजाया हुआ उसका रथ गन्धर्वनगरके समान जान पड़ता था । उसका रजतनिर्मित एवं वाराह-चिह्नसे युक्त महान् ध्वज उसके रथकी शोभा बढ़ा रहा था ॥

श्वेतच्छत्रपताकाभिश्चामरव्यजनेन च ।
स बभौ राजलिङ्गैस्तैस्तारापतिरिवाम्बरे ॥ ४ ॥

श्वेत छत्र, पताका, चँवर और व्यजन—इन राजचिह्नोंसे वह आकाशमें चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित हो रहा था ॥४॥

मुक्तावज्रमणिस्वर्णैर्भूषितं तदयस्मयम् ।
वरूथं विबभौ तस्य ज्योतिर्भिः खमिवावृतम् ॥ ५ ॥

उसके रथका मुक्ता, मणि, सुवर्ण तथा हीरोंसे विभूषित लोहमय आवरण नक्षत्रोंसे व्याप्त हुए आकाशके समान सुशोभित होता था ॥ ५ ॥

स विस्फार्य महच्चापं किरन्निषुगणान् बहून् ।
तत् खण्डं पूरयामास यद् व्यदारयदार्जुनिः ॥ ६ ॥

उसने अपना विशाल धनुष फैलाकर बहुत-से बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए व्यूहके उस भागको योद्धाओंद्वारा भर दिया, जिसे अभिमन्युने तोड़ डाला था ॥ ६ ॥

स सात्यकिं त्रिभिर्बाणैरष्टभिश्च वृकोदरम् ।
धृष्टद्युम्नं तथा षष्ट्या विराटं दशभिः शरैः ॥ ७ ॥
द्रुपदं पञ्चभिस्तीक्ष्णैः सप्तभिश्च शिखण्डिनम् ।
केकयान् पञ्चविंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥
युधिष्ठिरं तु सप्तत्या ततः शेषानपानुदत् ।
इषुजालेन महता तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९ ॥

उसने सात्यकिको तीन, भीमसेनको आठ, धृष्टद्युम्नको साठ, विराटको दस, द्रुपदको पाँच, शिखण्डीको सात, केकयराजकुमारोंको पचीस, द्रौपदीपुत्रोंको तीन-तीन तथा युधिष्ठिरको सत्तर तीखे बाणोंद्वारा घायल कर दिया। तत्पश्चात् बाणोंका बड़ा भारी जाल-सा बिछाकर उसने शेष सैनिकोंको भी पीछे हटा दिया। यह एक अद्भुत-सी बात थी ॥ ७—९ ॥



अथास्य शितपीतेन भल्लेनादिश्य कार्मुकम् ।
चिच्छेद प्रहसन् राजा धर्मपुत्रः प्रतापवान् ॥ १० ॥

तब प्रतापी राजा धर्मपुत्र युधिष्ठिरने एक तीखे और पानीदार भल्लके द्वारा उसके धनुषको काटनेकी घोषणा करके हँसते-हँसते काट डाला ॥ १० ॥

अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
विव्याध दशभिः पार्थं तांश्चैवान्यांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ११ ॥

उस समय जयद्रथने पलक मारते-मारते दूसरा धनुष हाथमें लेकर युधिष्ठिरको दस तथा अन्य वीरोंको तीन-तीन बाणोंसे बींध डाला ॥ ११ ॥

तत् तस्य लाघवं ज्ञात्वा भीमो भल्लैस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
धनुर्ध्वजं च च्छत्रं च क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १२ ॥

उसकी इस फुर्तीको देख और समझकर भीमसेनने तीन-तीन भल्लोंद्वारा उसके धनुष, ध्वज और छत्रको शीघ्र ही पृथ्वीपर काट गिराया ॥ १२ ॥

सोऽन्यदादाय बलवान् सज्यं कृत्वा च कार्मुकम् ।
भीमस्यापातयत् केतुं धनुरश्वांश्च मारिष ॥ १३ ॥

आर्य ! तब उस बलवान् वीरने दूसरा धनुष ले उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर भीमके धनुष, ध्वज और घोड़ोंको धराशायी कर दिया ॥ १३ ॥

स हताश्वादवप्लुत्य च्छिन्नधन्वा रथोत्तमात् ।
सात्यकेराप्लुतो यानं गिर्यग्रमिव केसरी ॥ १४ ॥

धनुष कट जानेपर अपने अश्वहीन उत्तम रथसे कूदकर भीमसेन सात्यकिके रथपर जा बैठे, मानो कोई सिंह पर्वतके शिखरपर जा चढ़ा हो ॥ १४ ॥

ततस्त्वदीयाः संहृष्टाः साधु साध्विति वादिनः ।
सिन्धुराजस्य तत् कर्म प्रेक्ष्याश्रद्धेयमद्भुतम् ॥ १५ ॥

सिंधुराजके उस अद्भुत पराक्रमको, जो सुननेपर विश्वास करने योग्य नहीं था, प्रत्यक्ष देख आपके सभी सैनिक अत्यन्त हर्षमें भरकर उसे साधुवाद देने लगे ॥ १५ ॥

संक्रुद्धान् पाण्डवानेको यद् दधारास्त्रतेजसा ।
तत् तस्य कर्म भूतानि सर्वाण्येवाभ्यपूजयन् ॥ १६ ॥

जयद्रथने अकेले ही अपने अस्त्रोंके तेजसे जो क्रोधमें भरे हुए पाण्डवोंको रोक लिया, उसके उस पराक्रमकी सभी प्राणी प्रशंसा करने लगे ॥ १६ ॥

सौभद्रेण हतैः पूर्वं सोत्तरायोधिभिर्द्विपैः ।
पाण्डूनां दर्शितः पन्थाः सैन्धवेन निवारितः ॥ १७ ॥

सुभद्राकुमार अभिमन्युने पहले गजारोहियोंसहित बहुत-से गजराजोंको मारकर व्यूहमें प्रवेश करनेके लिये जो पाण्डवोंको मार्ग दिखा दिया था, उसे जयद्रथने बंद कर दिया ॥ १७ ॥

यतमानास्तु ते वीरा मत्स्यपञ्चालकेकयाः ।
पाण्डवाश्चान्वपद्यन्त प्रतिशेकुर्न सैन्धवम् ॥ १८ ॥

वे वीर मत्स्य, पाञ्चाल, केकय तथा पाण्डव बारंबार प्रयत्न करके व्यूहपर आक्रमण करते थे; परंतु सिंधुराजके सामने टिक नहीं पाते थे ॥ १८ ॥

यो यो हि यतते भेत्तुं द्रोणानीकं तवाहितः ।
तं तमेव वरं प्राप्य सैन्धवः प्रत्यवारयत् ॥ १९ ॥

आपका जो-जो शत्रु द्रोणाचार्यके व्यूहको तोड़नेका प्रयत्न करता, उसी-उसी श्रेष्ठ वीरके पास पहुँचकर जयद्रथ उसे रोक देता था ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि जयद्रथयुद्धे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें जयद्रथका युद्धविषयक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युका पराक्रम और उसके द्वारा वसातीय आदि अनेक योद्धाओंका वध

संजय उवाच

सैन्धवेन निरुद्धेषु जयगृद्धिषु पाण्डुषु ।
सुघोरमभवद्युद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! विजयकी अभिलाषा रखनेवाले पाण्डवोंको जब सिंधुराज जयद्रथने रोक दिया, उस समय आपके सैनिकोंका शत्रुओंके साथ बड़ा भयंकर युद्ध हुआ ॥ १ ॥

प्रविश्याथार्जुनिः सेनां सत्यसंधो दुरासदः ।
व्यक्षोभयत तेजस्वी मकरः सागरं यथा ॥ २ ॥

तदनन्तर सत्यप्रतिज्ञ दुर्धर्ष और तेजस्वी वीर अभिमन्युने आपकी सेनाके भीतर घुसकर इस प्रकार तहलका मचा दिया, जैसे बड़ा भारी मगर समुद्रमें हलचल पैदा कर देता है ॥ २ ॥

तं तथा शरवर्षेण क्षोभयन्तमरिन्दमम् ।
यथा प्रधानाः सौभद्रमभ्ययू रथसत्तमाः ॥ ३ ॥

इस प्रकार बाणोंकी वर्षासे कौरवसेनामें हलचल मचाते हुए शत्रुदमन सुभद्राकुमारपर आपकी सेनाके प्रधान-प्रधान महारथियोंने एक साथ आक्रमण किया ॥ ३ ॥

तेषां तस्य च सम्मर्दो दारुणः समपद्यत ।
सृजतां शरवर्षाणि प्रसक्तममितौजसाम् ॥ ४ ॥

उस समय अति तेजस्वी कौरव योद्धा परस्पर सटे हुए बाणोंकी वर्षा कर रहे थे । उनके साथ अभिमन्युका भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ४ ॥

रथव्रजेन संरुद्धस्तैरमित्रैस्तथाऽऽर्जुनिः ।
वृषसेनस्य यन्तारं हत्वा चिच्छेद कार्मुकम् ॥ ५ ॥

यद्यपि शत्रुओंने अपने रथसमूहके द्वारा अर्जुनकुमार अभिमन्युको सब ओरसे घेर लिया था, तो भी उसने वृषसेनके सारथिको घायल करके उसके धनुषको भी काट डाला ॥

तस्य विव्याध बलवाञ्शरैरश्वानजिह्मगैः ।
वातायमानैरथ तैरश्वैरपहृतो रणात् ॥ ६ ॥

तब बलवान् वृषसेन अपने सीधे जानेवाले बाणोंद्वारा अभिमन्युके घोड़ोंको बींधने लगा । इससे उसके वे घोड़े हवाके समान वेगसे भाग चले । इस प्रकार उन अश्वोंद्वारा वह रणभूमिसे दूर पहुँचा दिया गया ॥ ६ ॥

तेनान्तरेणाभिमन्योर्यन्तापासारयद् रथम् ।
रथव्रजास्ततो हृष्टाः साधु साध्विति चुक्रुशुः ॥ ७ ॥

अभिमन्युके कार्यमें इस प्रकार विघ्न आ जानेसे वृषसेनका सारथि अपने रथको वहाँसे दूर हटा ले गया । इससे वहाँ जुटे हुए रथियोंके समुदाय हर्षमें भरकर 'बहुत अच्छा बहुत अच्छा' कहते हुए कोलाहल करने लगे ॥ ७ ॥

तं सिंहमिव संक्रुद्धं प्रमथ्नन्तं शरैररीन् ।
आरादायान्तमभ्येत्य वसातीयोऽभ्ययाद् द्रुतम् ॥ ८ ॥

तदनन्तर सिंहके समान अत्यन्त क्रोधमें भरकर अपने बाणोंद्वारा शत्रुओंको मथते हुए अभिमन्युको समीप आते देख वसातीय तुरंत वहाँ उपस्थित हो उसका सामना करनेके लिये गया ॥ ८ ॥

सोऽभिमन्युं शरैः षष्ट्या रुक्मपुङ्खैरवाकिरत् ।
अब्रवीच्च न मे जीवञ्जीवतो युधि मोक्ष्यसे ॥ ९ ॥

उसने अभिमन्युपर सुवर्णमय पंखवाले साठ बाण बरसाये और कहा—'अब तू मेरे जीते-जी इस युद्धमें जीवित नहीं छूट सकेगा' ॥ ९ ॥

तमयस्मयवर्माणमिषुणा दूरपातिना ।
विव्याध हृदि सौभद्रः स पपात व्यसुः क्षितौ ॥ १० ॥

तब अभिमन्युने लोहमय कवच धारण करनेवाले वसातीयको दूरतकके लक्ष्यको मार गिरानेवाले बाणद्वारा उसकी छातीमें चोट पहुँचायी, जिससे वह प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १० ॥

वसातीयं हतं दृष्ट्वा क्रुद्धाः क्षत्रियपुङ्गवाः ।
परिवव्रुस्तदा राजंस्तव पौत्रं जिघांसवः ॥ ११ ॥

राजन् ! वसातीयको मारा गया देख क्रोधमें भरे हुए क्षत्रियशिरोमणि वीरोंने आपके पौत्र अभिमन्युको मार डालनेकी इच्छासे उस समय चारोंओरसे घेर लिया ॥ ११ ॥

विस्फारयन्तश्चापानि नानारूपाण्यनेकशः ।
तद् युद्धमभवद् रौद्रं सौभद्रस्यारिभिः सह ॥ १२ ॥

वे अपने नाना प्रकारके धनुषोंकी बारंबार टंकार करने लगे। सुभद्राकुमारका शत्रुओंके साथ वह बड़ा भयंकर युद्ध हुआ ॥ १२ ॥

तेषां शरान् सेष्वसनाञ्शरीराणि शिरांसि च।
सकुण्डलानि स्रग्वीणि क्रुद्धश्चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ १३॥

उस समय अर्जुनकुमारने कुपित होकर उनके धनुष, बाण, शरीर तथा हार और कुण्डलोंसे युक्त मस्तकोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ १३ ॥

सखड्गाः साङ्गुलित्राणाः सपट्टिशपरश्वधाः।
अदृश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ १४॥

सोनेके आभूषणोंसे विभूषित उनकी भुजाएँ खड्ग, दस्ताने, पट्टिश और फरसोंसहित कटी दिखायी देने लगीं ॥

स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पातितैश्च महाभुजैः।
वर्मभिश्चर्मभिर्हारैर्मुकुटैश्छत्रचामरैः ॥ १५ ॥
उपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः।
अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः ॥ १६ ॥
अनुकर्षैः पताकाभिस्तथा सारथिवाजिभिः।
रथैश्च भग्नैर्नागैश्च हतैः कीर्णाभवन्मही ॥ १७ ॥

काटकर गिराये हुए हार, आभूषण, वस्त्र, विशाल भुजा, कवच, ढाल, मनोहर मुकुट, छत्र, चँवर, आवश्यक सामग्री, रथकी बैठक, ईषादण्ड, बन्धुर, चूर-चूर हुई धुरी, टूटे हुए पहिये, टूक-टूक हुए जूए, अनुकर्ष, पताका, सारथि, अश्व, टूटे हुए रथ और मरे हुए हाथियोंसे वहाँकी सारी पृथ्वी आच्छादित हो गयी थी ॥ १५-१७ ॥

निहतैः क्षत्रियैः शूरैर्नानाजनपदेश्वरैः।
जयगृद्धैर्वृता भूमिर्दारुणा समपद्यत ॥ १८ ॥

विजयकी अभिलाषा रखनेवाले विभिन्न जनपदोंके स्वामी क्षत्रियवीर उस युद्धमें मारे गये। उनकी लाशोंसे पटी हुई पृथ्वी बड़ी भयानक जान पड़ती थी ॥ १८ ॥

दिशो विचरतस्तस्य सर्वाश्च प्रदिशस्तथा।
रणेऽभिमन्योः क्रुद्धस्य रूपमन्तरधीयत ॥ १९ ॥

उस रणक्षेत्रमें कुपित होकर सम्पूर्ण दिशा-विदिशाओंमें विचरते हुए अभिमन्युका रूप अदृश्य हो गया था ॥ १९ ॥

काञ्चनं यद्यदस्यासीद् वर्म चाभरणानि च।
धनुषश्च शराणां च तदपश्याम केवलम् ॥ २० ॥

उसके कवच, आभूषण, धनुष और बाणके जो-जो अवयव सुवर्णमय थे, केवल उन्हींको हम दूरसे देख पाते थे ॥

तं तदा नाशकत् कश्चिच्चक्षुर्भ्यामभिवीक्षितुम्।
आददानं शरैर्योधान् मध्ये सूर्यमिव स्थितम् ॥ २१ ॥

अभिमन्यु जिस समय बाणोंद्वारा योद्धाओंके प्राण ले रहा था और व्यूहके मध्यभागमें सूर्यके समान खड़ा था, उस समय कोई वीर उसकी ओर आँख उठाकर देखनेका साहस नहीं कर पाता था ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युका पराक्रमविषयक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके द्वारा सत्यश्रवा, क्षत्रियसमूह, रुक्मरथ तथा उसके मित्रगणों और सैकड़ों राजकुमारोंका वध और दुर्योधनकी पराजय

संजय उवाच

आददानस्तु शूराणामायूंष्यभवदार्जुनिः।
अन्तकः सर्वभूतानां प्राणान् काल इवागते ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! मृत्युकाल उपस्थित होनेपर जैसे यमराज समस्त प्राणियोंके प्राण हर लेते हैं, उसी प्रकार अर्जुनकुमार अभिमन्यु भी वीरोंकी आयुका अपहरण करते हुए उनके लिये यमराज ही हो गये थे ॥ १ ॥

स शक्र इव विक्रान्तः शक्रसूनोः सुतो बली।
अभिमन्युस्तदानीकं लोडयन् समदृश्यत ॥ २ ॥

इन्द्रकुमार अर्जुनका बलवान् पुत्र अभिमन्यु इन्द्रके समान पराक्रमी था। वह उस समय सारे व्यूहका मन्थन करता दिखायी देता था ॥ २ ॥

प्रविश्यैव तु राजेन्द्र क्षत्रियेन्द्रान्तकोपमः।
सत्यश्रवसमादत्त व्याघ्रो मृगमिवोल्बणः ॥ ३ ॥

राजेन्द्र! क्षत्रियशिरोमणियोंके लिये यमराजके समान अभिमन्युने उस सेनामें प्रवेश करते ही जैसे उन्मत्त व्याघ्र हरिणको दबोच लेता है, उसी प्रकार सत्यश्रवाको ले बैठा ॥

सत्यश्रवसि चाक्षिप्ते त्वरमाणा महारथाः।
प्रगृह्य विपुलं शस्त्रमभिमन्युमुपाद्रवन् ॥ ४ ॥

सत्यश्रवाके मारे जानेपर उन सभी महारथियोंने प्रचुर अस्त्र-शस्त्र लेकर बड़ी उतावलीके साथ अभिमन्युपर आक्रमण किया ॥ ४ ॥

अहं पूर्वमहं पूर्वमिति क्षत्रियपुङ्गवाः।
स्पर्धमानाः समाजग्मुर्जिघांसन्तोऽर्जुनात्मजम् ॥ ५ ॥

वे सभी क्षत्रियशिरोमणि 'पहले मैं, पहले मैं', इस प्रकार परस्पर होड़ लगाते हुए अर्जुनकुमारको मार डालनेकी इच्छासे आगे बढ़े ॥ ५ ॥

क्षत्रियाणामनीकानि प्रद्रुतान्यभिधावताम् ।
जग्रास तिमिरासाद्य क्षुद्रमत्स्यानिवार्णवे ॥ ६ ॥

उस समय धावा करनेवाले क्षत्रियोंकी उन आगे बढ़ती हुई सेनाओंको अभिमन्युने उसी प्रकार कालका ग्रास बना लिया, जैसे महासागरमें तिमि नामक महामत्स्य छोटे-छोटे मत्स्योंको निगल जाता है ॥ ६ ॥

ये केचन गतास्तस्य समीपमपलायिनः ।
न ते प्रतिन्यवर्तन्त समुद्रादिव सिन्धवः ॥ ७ ॥

युद्धसे न भागनेवाले जो कोई शूरवीर उस समय अभिमन्युके पास गये, वे फिर नहीं लौटे । जैसे समुद्रमें मिली हुई नदियाँ फिर वहाँसे लौट नहीं पाती हैं ॥ ७ ॥

महाग्राहगृहीतेव वातवेगभयार्दिता ।
समकम्पत सा सेना विभ्रष्टा नौरिवार्णवे ॥ ८ ॥

जिसका समुद्रमें मार्ग भूल गया हो, जो वायुके वेगसे भयाक्रान्त हो रही हो तथा जिसे किसी बहुत बड़े ग्राहने पकड़ लिया हो—ऐसी नौका जैसे डगमगाने लगती है, उसी प्रकार वह सेना अभिमन्युके भयसे काँप रही थी ॥ ८ ॥

अथ रुक्मरथो नाम मद्रेश्वरसुतो बली ।
त्रस्तामाश्वासयन् सेनामत्रस्तो वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

इसी समय मद्रराजका बलवान् पुत्र रुक्मरथ आकर अपनी डरी हुई सेनाको आश्वासन देता हुआ निर्भय होकर बोला—॥ ९ ॥

अलं त्रासेन वः शूरा नैष कश्चिन्मयि स्थिते ।
अहमेनं ग्रहीष्यामि जीवग्राहं न संशयः ॥ १० ॥

'शूरवीरो ! तुम्हें डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं । यह अभिमन्यु मेरे रहते कुछ भी नहीं है । मैं अभी इसे जीते-जी पकड़ लूँगा । इसमें संशय नहीं है' ॥ १० ॥

एवमुक्त्वा तु सौभद्रमभिदुद्राव वीर्यवान् ।
सुकल्पितेनोह्यमानः स्यन्दनेन विराजता ॥ ११ ॥

ऐसा कहकर पराक्रमी रुक्मरथ सुन्दर सजे-सजाये तेजस्वी रथपर आरूढ़ हो सुभद्राकुमार अभिमन्युकी ओर दौड़ा ॥

सोऽभिमन्युं त्रिभिर्बाणैर्विद्ध्वा वक्षस्यथानदत् ।
त्रिभिश्च दक्षिणे बाहौ सव्ये च निशितैस्त्रिभिः ॥ १२ ॥

उसने अभिमन्युकी छातीमें तीन बाण मारकर सिंहनाद किया । फिर तीन बाण दाहिनी और तीन तीखे बाण बायीं भुजामें मारे ॥ १२ ॥

स तस्येष्वसनं छित्त्वा फाल्गुनिः सव्यदक्षिणौ ।
भुजौ शिरश्च स्वक्षिभ्रु क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १३ ॥

तब अर्जुनकुमारने रुक्मरथका धनुष काटकर उसकी बायीं-दायीं भुजाओंको तथा सुन्दर नेत्र एवं भौंहोंसे सुशोभित मस्तकको भी तुरंत ही पृथ्वीपर काट गिराया ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा रुक्मरथं रुग्णं पुत्रं शल्यस्य मानिनम् ।
जीवग्राहं जिघृक्षन्तं सौभद्रेण यशस्विना ॥ १४ ॥
संग्रामदुर्मदा राजन् राजपुत्राः प्रहारिणः ।
वयस्याः शल्यपुत्रस्य सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १५ ॥
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः ।
आर्जुनिं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवारयन् ॥ १६ ॥

राजन् ! राजा शल्यके अभिमानी पुत्र रुक्मरथको जो, अभिमन्युको जीते-जी पकड़ना चाहता था, यशस्वी सुभद्राकुमारके द्वारा मारा गया देख शल्यपुत्रके बहुत-से मित्र राजकुमार, जो प्रहार करनेमें कुशल और युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले थे, अर्जुनकुमारको चारों ओरसे घेरकर बाणोंकी वर्षा करने लगे । उनके ध्वज सुवर्णके बने हुए थे, वे महाबली वीर चार हाथके धनुष खींच रहे थे ॥ १४-१६ ॥

शूरैः शिक्षाबलोपेतैस्तरुणैरत्यमर्षणैः ।
दृष्ट्वैकं समरे शूरं सौभद्रमपराजितम् ॥ १७ ॥
छाद्यमानं शरव्रातैर्हृष्टो दुर्योधनोऽभवत् ।
वैवस्वतस्य भवनं गतं ह्येनममन्यत ॥ १८ ॥

शिक्षा और बलसे सम्पन्न, तरुण अवस्थावाले, अत्यन्त अमर्षशील और शूरवीर राजकुमारोंद्वारा, किसीसे परास्त न होनेवाले शौर्यसम्पन्न सुभद्राकुमारको अकेले ही समराङ्गणमें बाणसमूहोंसे आच्छादित होते देख राजा दुर्योधनको बड़ा हर्ष हुआ । उसने यह मान लिया कि अब अभिमन्यु यमराजके लोकमें पहुँच गया ॥ १७-१८ ॥

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्नानालिङ्गैः सुतेजनैः ।
अदृश्यमार्जुनिं चक्रुर्निमेषात् ते नृपात्मजाः ॥ १९ ॥

उन राजकुमारोंने सोनेके पंखवाले नाना प्रकारके चिह्नोंसे सुशोभित और पैने बाणोंद्वारा अर्जुनकुमार अभिमन्युको पलक मारते-मारते अदृश्य कर दिया ॥ १९ ॥

ससूताश्वध्वजं तस्य स्यन्दनं तं च मारिष ।
आचितं समपश्याम श्वाविधं शललैरिव ॥ २० ॥

आर्य ! सारथि, घोड़े और ध्वजसहित अभिमन्युके उस रथको मैंने उसी प्रकार बाणोंसे व्याप्त देखा, जैसे साही(सेह) का शरीर काँटोंसे भरा रहता है ॥ २० ॥

स गाढविद्धः क्रुद्धश्च तोत्रैर्गज इवार्दितः ।
गान्धर्वमस्त्रमायच्छद् रथमायां च भारत ॥ २१ ॥

भारत ! बाणोंसे गहरी चोट खाकर अभिमन्यु अङ्कुशसे पीड़ित हुए गजराजकी भाँति कुपित हो उठा । उसने गान्धर्वास्त्रका प्रयोग किया और रथमाया (रथयुद्धकी शिक्षामें निपुणता) प्रकट की ॥ २१ ॥

अर्जुनेन तपस्तप्त्वा गन्धर्वेभ्यो यदाहृतम् ।
तुम्बुरुप्रमुखेभ्यो वै तेनामोहयताहितान् ॥ २२ ॥

अर्जुनने तपस्या करके तुम्बुरु आदि गन्धर्वोंसे जो अस्त्र प्राप्त किया था, उसीसे अभिमन्युने अपने शत्रुओंको मोहित कर दिया ॥ २२ ॥

एकधा शतधा राजन् दृश्यते स्म सहस्रधा ।
अलातचक्रवत् संख्ये क्षिप्रमस्त्राणि दर्शयन् ॥ २३ ॥

राजन् ! वह शीघ्रतापूर्वक अस्त्रसंचालनका कौशल दिखाता हुआ युद्धमें अलातचक्रकी भाँति एक, शत तथा सहस्रों रूपोंमें दृष्टिगोचर होता था ॥ २३ ॥

रथचर्यास्त्रमायाभिर्मोहयित्वा परंतपः ।
बिभेद शतधा राजञ्शरीराणि महीक्षिताम् ॥ २४ ॥

महाराज ! शत्रुओंको संताप देनेवाले अभिमन्युने रथ-चर्या तथा अस्त्रोंकी मायासे मोहित करके राजाओंके शरीरोंके सौ-सौ टुकड़े कर दिये ॥ २४ ॥

प्राणाः प्राणभृतां संख्ये प्रेषितानि शितैः शरैः ।
राजन् प्रापुरमुं लोकं शरीराण्यवनिं ययुः ॥ २५ ॥

राजन् ! उस युद्धस्थलमें उसके पैने बाणोंसे प्रेरित हुए प्राणधारियोंके शरीर तो पृथ्वीपर गिर पड़े, परंतु प्राण परलोकमें जा पहुँचे ॥ २५ ॥

धनूंष्यश्वान् नियन्तॄंश्च ध्वजान् बाहूंश्च साङ्गदान् ।
शिरांसि च शितैर्बाणैस्तेषां चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ २६ ॥

अर्जुनकुमारने अपने तीखे बाणोंद्वारा उनके धनुष, घोड़े, सारथि, ध्वज, अङ्गदयुक्त बाहु तथा मस्तक भी काट डाले ॥ २६ ॥

चूतारामो यथा भग्नः पञ्चवर्षः फलोपगः ।
राजपुत्रशतं तद्वत् सौभद्रेण निपातितम् ॥ २७ ॥

जैसे पाँच वर्षोंका लगाया हुआ आमका बाग, जो फल देनेके योग्य हो गया हो, काट दिया जाय, उसी प्रकार सैकड़ों राजकुमारोंको सुभद्राकुमारने वहाँ मार गिराया ॥

क्रुद्धाशीविषसंकाशान् सुकुमारान् सुखोचितान् ।
एकेन निहतान् दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनोऽभवत् ॥ २८ ॥

क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्पोंके समान भयंकर तथा सुख भोगनेके योग्य उन सुकुमार राजकुमारोंको एकमात्र अभिमन्युद्वारा मारा गया देख दुर्योधन भयभीत हो गया ॥

रथिनः कुञ्जरानश्वान् पदातींश्चापि मज्जतः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनः क्षिप्रमुपायात् तममर्षितः ॥ २९ ॥

रथियों, हाथियों, घोड़ों और पैदलोंको भी अभिमन्यु-रूपी समुद्रमें डूबते देख अमर्षमें भरे हुए दुर्योधनने शीघ्र ही उसपर धावा किया ॥ २९ ॥

तयोः क्षणमिवापूर्णः संग्रामः समपद्यत ।
अथाभवत् ते विमुखः पुत्रः शरशताहतः ॥ ३० ॥

उन दोनोंमें एक क्षणतक अधूरा-सा युद्ध हुआ । इतनेहीमें आपका पुत्र दुर्योधन सैकड़ों बाणोंसे आहत होकर वहाँसे भाग गया ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुर्योधनपराजये पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें दुर्योधनकी पराजयविषयक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके द्वारा लक्ष्मण तथा क्राथपुत्रका वध और सेनासहित छः महारथियोंका पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

यथा वदसि मे सूत एकस्य बहुभिः सह ।
संग्रामं तुमुलं घोरं जयं चैव महात्मनः ॥ १ ॥
अश्रद्धेयमिवाश्चर्यं सौभद्रस्याथ विक्रमम् ।
किं तु नात्यद्भुतं तेषां येषां धर्मो व्यपाश्रयः ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—सूत ! जैसा कि तुम बता रहे हो, अकेले महामना अभिमन्युका बहुत-से योद्धाओंके साथ अत्यन्त भयंकर संग्राम हुआ और उसमें विजय भी उसीकी हुई—सुभद्राकुमारका यह पराक्रम आश्चर्यजनक है । उसपर सहसा विश्वास नहीं होता; परंतु जिन लोगोंका धर्म ही आश्रय है, उनके लिये यह कोई अत्यन्त अद्भुत बात नहीं है ॥ १-२ ॥

दुर्योधने च विमुखे राजपुत्रशते हते ।
सौभद्रे प्रतिपत्तिं कां प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥ ३ ॥

संजय ! जब दुर्योधन भाग गया और सैकड़ों राजकुमार मारे गये, उस समय मेरे पुत्रोंने सुभद्राकुमारका सामना करनेके लिये क्या उपाय किया ? ॥ ३ ॥

संजय उवाच

संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना लोमहर्षणाः ।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ ४ ॥

संजयने कहा—महाराज ! आपके सभी सैनिकोंके मुँह सूख गये थे, आँखें भयसे चञ्चल हो रही थीं, सारे अंग पसीने-पसीने हो रहे थे और रोंगटे खड़े हो गये थे । वे भागनेमें ही उत्साह दिखा रहे थे । शत्रुओंको जीतनेका उत्साह उनके मनमें तनिक भी नहीं था ॥ ४ ॥

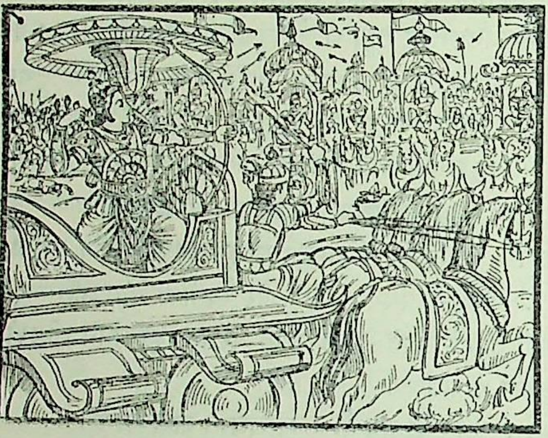
हतान् भ्रातॄन् पितॄन् पुत्रान् सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ।
उत्सृज्योत्सृज्य संजग्मुस्त्वरयन्तो हयद्विपान् ॥ ५ ॥

वे युद्धमें मारे गये भाइयों, पितरों, पुत्रों, सुहृदों, सम्बन्धियों तथा बन्धु-बान्धवोंको छोड़-छोड़कर अपने घोड़े

और हाथियोंको उतावलीके साथ हाँकते हुए भाग रहे थे ॥

तान् प्रभग्नांस्तथा दृष्ट्वा द्रोणो द्रौणिर्बृहद्बलः।
कृपो दुर्योधनः कर्णः कृतवर्माथ सौबलः ॥ ६ ॥
अभ्यधावन् सुसंक्रुद्धाः सौभद्रमपराजितम् ।
ते तु पौत्रेण ते राजन् प्रायशो विमुखीकृताः ॥ ७ ॥

राजन् ! उन सबको भागते देख द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, बृहद्बल, कृपाचार्य, दुर्योधन, कर्ण, कृतवर्मा और शकुनि—



ये सब अत्यन्त क्रोधमें भरकर अपराजित वीर अभिमन्युपर टूट पड़े; परंतु आपके उस पौत्र अभिमन्युने उन सबको प्रायः युद्धसे भगा दिया ॥ ६-७ ॥

एकस्तु सुखसंवृद्धो बाल्याद् दर्पाच्च निर्भयः ।
इष्वस्त्रविन्महातेजा लक्ष्मणोऽऽर्जुनिमभ्ययात् ॥ ८ ॥

उस समय सुखमें पला हुआ, धनुर्वेदका ज्ञाता, एकमात्र महातेजस्वी लक्ष्मण अपने बालस्वभाव तथा अभिमानके कारण निर्भय हो अभिमन्युके सामने आ गया ॥ ८ ॥

तमन्वगेवास्य पिता पुत्रगृद्धी न्यवर्तत ।
अनुदुर्योधनं चान्ये न्यवर्तन्त महारथाः ॥ ९ ॥

पुत्रकी रक्षा चाहनेवाला पिता दुर्योधन भी उसीके साथ-साथ लौट पड़ा । फिर दुर्योधनके पीछे दूसरे महारथी लौट आये ॥ ९ ॥

तं तेऽभिषिषिचुर्बाणैर्मेघा गिरिमिवाम्बुभिः ।
स तु तान् प्रममाथैको विष्वग्वातो यथाम्बुदान् ॥ १० ॥

जैसे बादल किसी पर्वतको अपने जलकी धाराओंसे सींचते हैं, उसी प्रकार वे महारथी अभिमन्युपर बाणोंकी वर्षा करने लगे । जैसे चारों ओरसे बहनेवाली हवा (चौवाई) बादलोंको उड़ा देती है, उसी प्रकार अकेले अभिमन्युने उन सबको मथ डाला ॥ १० ॥

पौत्रं तव च दुर्धर्षं लक्ष्मणं प्रियदर्शनम् ।
पितुः समीपे तिष्ठन्तं शूरमुद्यतकार्मुकम् ॥ ११ ॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धं धनेश्वरसुतोपमम् ।
आससाद रणे कार्ष्णिर्मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ १२ ॥

राजन् ! आपका प्रियदर्शन पौत्र लक्ष्मण बड़ा दुर्धर्ष वीर था । वह धनुष उठाये अपने पिताके ही पास खड़ा था । अत्यन्त सुखमें पला हुआ वह वीर कुबेरके पुत्रके समान जान पड़ता था । जैसे मतवाला हाथी किसी मदोन्मत्त गजराजसे भिड़ जाय, उसी प्रकार अर्जुनकुमारने लक्ष्मणपर आक्रमण किया ॥ ११-१२ ॥

लक्ष्मणेन तु संगम्य सौभद्रः परवीरहा ।
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैर्बाह्वोरुरसि चार्पितः ॥ १३ ॥

लक्ष्मणसे भिड़नेपर उसके द्वारा शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सुभद्राकुमारकी भुजाओं और छातीमें अत्यन्त तीखे बाणों-द्वारा प्रहार किया गया ॥ १३ ॥

संक्रुद्धो वै महाराज दण्डाहत इवोरगः ।
पौत्रस्तव महाराज तव पौत्रमभाषत ॥ १४ ॥

महाराज ! उस प्रहारसे लाठीकी चोट खाये हुए सर्पके समान अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए आपके पौत्र अभिमन्युने आपके दूसरे पौत्र लक्ष्मणसे कहा—॥ १४ ॥

सुदृष्टः क्रियतां लोको ह्यमुं लोकं गमिष्यसि ।
पश्यतां बान्धवानां त्वां नयामि यमसादनम् ॥ १५ ॥

'लक्ष्मण ! इस संसारको अच्छी तरह देख लो । अब शीघ्र ही परलोककी यात्रा करोगे । इन बान्धव-जनोंके देखते-देखते मैं तुम्हें यमलोक पहुँचाये देता हूँ' ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा ततो भल्लं सौभद्रः परवीरहा ।
उद्बबर्ह महाबाहुर्निर्मुक्तोरगसंनिभम् ॥ १६ ॥

ऐसा कहकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबाहु सुभद्राकुमारने केंचुलसे निकले हुए सर्पके समान एक भल्लको तरकससे निकाला ॥ १६ ॥

स तस्य भुजनिर्मुक्तो लक्ष्मणस्य सुदर्शनम् ।
सुनसं सुभ्रु केशान्तं शिरोऽहार्षीत् सकुण्डलम् ॥ १७ ॥

अभिमन्युके हाथोंसे छूटे हुए उस भल्लने लक्ष्मणके देखनेमें सुन्दर, सुघड़ नासिका, मनोहर भौंह, सुन्दर केशान्तभाग और रुचिर कुण्डलोंसे युक्त मस्तकको धड़से अलग कर दिया ॥

लक्ष्मणं निहतं दृष्ट्वा हाहेत्युच्चुक्रुशुर्जनाः ।
ततो दुर्योधनः क्रुद्धः प्रिये पुत्रे निपातिते ॥ १८ ॥
हतैनमिति चुक्रोश क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।

लक्ष्मणको मारा गया देख सब लोग जोर-जोरसे हाहाकार करने लगे । अपने प्यारे पुत्रके मारे जानेपर क्षत्रियशिरोमणि दुर्योधन कुपित हो उठा और समस्त क्षत्रियोंसे बोला—'अहो ! इस अभिमन्युको मार डालो' ॥ १८½ ॥

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रोणपुत्रो बृहद्बलः ॥ १९ ॥
कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड् रथाः पर्यवारयन् ।

तब द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल

और हृदिकपुत्र कृतवर्मा—इन छः महारथियोंने अभिमन्युको घेर लिया ॥ १९½ ॥

तांस्तु विद्ध्वा शितैर्बाणैर्विमुखीकृत्य चार्जुनिः ॥ २० ॥
वेगेनाभ्यपतत् क्रुद्धः सैन्धवस्य महद् बलम् ।

यह देख अर्जुनकुमारने अपने पैने बाणोंद्वारा उन सबको घायल करके भगा दिया और क्रोधमें भरकर बड़े वेगसे जयद्रथकी विशाल सेनापर धावा किया ॥ २०½ ॥

आवव्रुस्तस्य पन्थानं गजानीकेन दंशिताः ॥ २१ ॥
कलिङ्गाश्च निषादाश्च क्राथपुत्रश्च वीर्यवान् ।

उस समय कलिङ्गदेशीय सैनिक, निषादगण तथा पराक्रमी क्राथपुत्र—इन सबने कवच धारण करके गजसेनाके द्वारा अभिमन्युका रास्ता रोक दिया ॥ २१½ ॥

तत् प्रसक्तमिवात्यर्थं युद्धमासीद् विशाम्पते ॥ २२ ॥
ततस्तत् कुञ्जरानीकं व्यधमद् धृष्टमार्जुनिः ।
यथा वायुर्नित्यगतिर्जलदाञ्छतशोऽम्बरे ॥ २३ ॥

प्रजानाथ ! तब वहाँ अत्यन्त निकटसे घोर युद्ध आरम्भ हो गया । अर्जुनकुमारने पैने बाणोंद्वारा उस धृष्ट गजसेनाको उसी प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे सदागति वायु आकाशमें सैकड़ों मेघखण्डोंको छिन्न-भिन्न कर देती है ॥ २२-२३ ॥

ततः क्राथः शरव्रातैरार्जुनिं समवाकिरत् ।
अथेतरे संनिवृत्ताः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥ २४ ॥

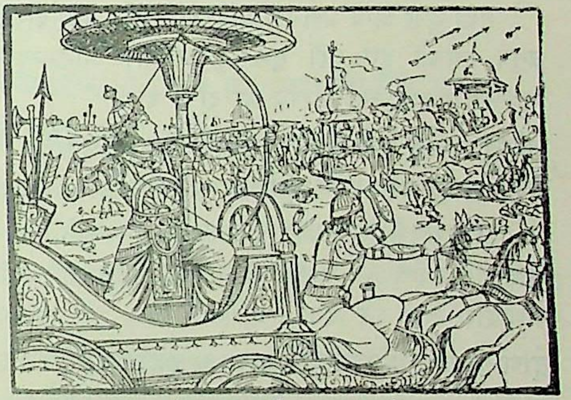
तदनन्तर क्राथने अर्जुनकुमार अभिमन्युपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी । इतनेहीमें द्रोण आदि दूसरे महारथी भी पुनः लौट आये ॥ २४ ॥

परमास्त्राणि धुन्वानाः सौभद्रमभिदुद्रुवुः ।
तान् निवार्यार्जुनिर्बाणैः क्राथपुत्रमथार्दयत् ॥ २५ ॥

उन सबने अपने उत्तम अस्त्रोंका प्रयोग करते हुए सुभद्राकुमारपर आक्रमण किया । अभिमन्युने अपने बाणोंद्वारा उन सबका निवारण करके क्राथपुत्रको अधिक पीड़ा दी ॥

शरौघेणाप्रमेयेण त्वरमाणो जिघांसया ।
सधनुर्बाणकेयूरौ बाहू समुकुटं शिरः ॥ २६ ॥
सच्छत्रध्वजयन्तारं रथं चाश्वान् न्यपातयत् ।

फिर उसने असंख्य बाणसमूहोंद्वारा क्राथपुत्रको मार डालनेकी इच्छासे जल्दी करते हुए उसकी धनुष-बाणों और केयूरसहित दोनों भुजाओं, मुकुटमण्डित मस्तक, छत्र, ध्वज और सारथिसहित रथ तथा घोड़ोंको भी मार गिराया ॥



कुलशीलश्रुतिबलैः कीर्त्या चास्त्रबलेन च ।
युक्ते तस्मिन् हते वीराः प्रायशो विमुखाऽभवन् ॥ २७ ॥

कुल, शील, शास्त्रज्ञान, बल, कीर्ति तथा अस्त्र-बलसे सम्पन्न उस वीर क्राथपुत्रके मारे जानेपर आपकी सेनाके प्रायः सभी शूरवीर सैनिक युद्ध छोड़कर भाग गये ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि लक्ष्मणवधे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें लक्ष्मणवधविषयक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युका पराक्रम, छः महारथियोंके साथ घोर युद्ध और उसके द्वारा वृन्दारक तथा दश हजार अन्य राजाओंके सहित कोसलनरेश बृहद्बलका वध

धृतराष्ट्र उवाच

तथा प्रविष्टं तरुणं सौभद्रमपराजितम् ।
कुलानुरूपं कुर्वाणं संग्रामेष्वपलायिनम् ॥ १ ॥
आजानेयैः सुबलिभिर्यान्तमश्वैस्त्रिहायनैः ।
प्लवमानमिवाकाशे के शूराः समवारयन् ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! कभी पराजित न होनेवाला तथा युद्धमें पीठ न दिखानेवाला तरुण, सुभद्राकुमार अभिमन्यु जब इस प्रकार जयद्रथकी सेनामें प्रवेश करके अपने कुलके अनुरूप पराक्रम प्रकट कर रहा था और तीन वर्षकी अवस्थावाले अच्छी जातिके बलवान् घोड़ोंद्वारा मानो आकाशमें तैरता हुआ आक्रमण करता था, उस समय किन शूरवीरोंने उसे रोका था ? ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

अभिमन्युः प्रविश्यैतांस्तावकान् निशितैः शरैः ।
अकरोत् पार्थिवान् सर्वान् विमुखान् पाण्डुनन्दनः ३

संजयने कहा—राजन् ! पाण्डुकुलनन्दन अभिमन्युने उस सेनामें प्रविष्ट होकर आपके इन सभी राजाओंको अपने तीखे बाणोंद्वारा युद्धसे विमुख कर दिया ॥ ३ ॥

तं तु द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिश्च स बृहद्बलः ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड् रथाः पर्यवारयन् ॥ ४ ॥

तब द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल और हृदिकपुत्र कृतवर्मा—इन छः महारथियोंने उसे चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥

दृष्ट्वा तु सैन्धवे भारमतिमात्रं समाहितम् ।
सैन्यं तव महाराज युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

महाराज ! सिंधुराज जयद्रथपर बहुत बड़ा भार आया देख आपकी सेनाने राजा युधिष्ठिरपर धावा किया ॥ ५ ॥

सौभद्रमितरे वीरमभ्यवर्षञ्शराम्बुभिः ।
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः ॥ ६ ॥

तथा कुछ अन्य महाबली योद्धाओंने अपने चार हाथके धनुष खींचते हुए वहाँ सुभद्राकुमार वीर अभिमन्युपर बाणरूपी जलकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ६ ॥

तांस्तु सर्वान् महेष्वासान् सर्वविद्यासु निष्ठितान् ।
व्यष्टम्भयद् रणे बाणैः सौभद्रः परवीरहा ॥ ७ ॥

परंतु शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अभिमन्युने सम्पूर्ण विद्याओंमें प्रवीण उन समस्त महाधनुर्धरोंको रणक्षेत्रमें अपने बाणोंद्वारा स्तब्ध कर दिया ॥ ७ ॥

द्रोणं पञ्चाशताविध्यद् विंशत्या च बृहद्बलम् ।
अशीत्या कृतवर्माणं कृपं षष्ट्या शिलीमुखैः ॥ ८ ॥
रुक्मपुङ्खैर्महावेगैराकर्णसमचोदितैः ।
अविध्यद् दशभिर्बाणैरश्वत्थामानमार्जुनिः ॥ ९ ॥

अर्जुनकुमार अभिमन्युने द्रोणको पचास, बृहद्बलको बीस, कृतवर्माको असी, कृपाचार्यको साठ और अश्वत्थामाको कानतक खींचकर छोड़े हुए स्वर्णमय पंखयुक्त, महावेगशाली दस बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ८-९ ॥

स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन च शितेन च ।
फाल्गुनिर्द्विषतां मध्ये विव्याध परमेषुणा ॥ १० ॥

अर्जुनकुमारने शत्रुओंके मध्यमें खड़े हुए कर्णके कानमें पानीदार पैने और उत्तम बाणद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥

पातयित्वा कृपस्याश्वांस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
अथैनं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ ११ ॥

कृपाचार्यके चारों घोड़ों तथा उनके दो पार्श्वरक्षकोंको धराशायी करके उनकी छातीमें दस बाणोंद्वारा प्रहार किया ॥

ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्धनम् ।
पुत्राणां तव वीराणां पश्यतामवधीद् बली ॥ १२ ॥

तदनन्तर बलवान् अभिमन्युने कुरुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले वीर वृन्दारकको आपके वीर पुत्रोंके देखते-देखते मार डाला ॥ १२ ॥

तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ।
वरं वरममित्राणामारुजन्तमभीतवत् ॥ १३ ॥

तब शत्रुदलके प्रधान-प्रधान वीरोंका बेखटके वध करते हुए अभिमन्युको अश्वत्थामाने पचीस बाण मारे ॥ १३ ॥

स तु बाणैः शितैस्तूर्णं प्रत्यविध्यत मारिष ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणामश्वत्थामानमार्जुनिः ॥ १४ ॥

आर्य ! अर्जुनकुमारने भी आपके पुत्रोंके देखते-देखते तुरंत ही अश्वत्थामाको पैने बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ १४ ॥

षष्ट्या शराणां तं द्रौणिस्तिग्मधारैः सुतेजनैः ।
उग्रैर्नाकम्पयद् विद्ध्वा मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १५ ॥

तब द्रोणपुत्रने तीखी धारवाले तेज और भयंकर साठ बाणोंद्वारा अभिमन्युको बींध डाला; परंतु बींधकर भी वह मैनाक पर्वतके समान स्थित अभिमन्युको कम्पित न कर सका ॥

स तु द्रौणिं त्रिसप्तत्या हेमपुङ्खैरजिह्मगैः ।
प्रत्यविध्यन्महातेजा बलवानपकारिणम् ॥ १६ ॥

महातेजस्वी बलवान् अभिमन्युने सुवर्णमय पंखसे युक्त तिहत्तर बाणोंद्वारा अपने अपकारी अश्वत्थामाको पुनः घायल कर दिया ॥ १६ ॥

तस्मिन् द्रोणो बाणशतं पुत्रगृद्धी न्यपातयत् ।
अश्वत्थामा तथाष्टौ च परीप्सन् पितरं रणे ॥ १७ ॥

तब अपने पुत्रके प्रति स्नेह रखनेवाले द्रोणाचार्यने अभिमन्युको सौ बाण मारे । साथ ही अश्वत्थामाने भी अपने पिताकी रक्षा करते हुए रणक्षेत्रमें उसपर आठ बाण चलाये ॥

कर्णो द्वाविंशतिं भल्लान् कृतवर्मा च विंशतिम् ।
बृहद्बलस्तु पञ्चाशत् कृपः शारद्वतो दश ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् कर्णने बाईस, कृतवर्माने बीस, बृहद्बलने पचास तथा शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यने अभिमन्युको दस भल्ल मारे ॥

तांस्तु प्रत्यवधीत् सर्वान् दशभिर्दशभिः शरैः ।
तैरर्द्यमानः सौभद्रः सर्वतो निशितैः शरैः ॥ १९ ॥

उन सबके चलाये हुए तीखे बाणोंद्वारा सब ओरसे पीड़ित हुए सुभद्राकुमारने उन सभीको दस-दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १९ ॥

तं कोसलानामधिपः कर्णिनाताडयद्धृदि ।
स तस्याश्वान् ध्वजं चापं सूतं चापातयत् क्षितौ ॥ २० ॥

तत्पश्चात् कोसलनरेश बृहद्बलने एक बाणद्वारा अभिमन्युकी छातीमें चोट पहुँचायी । यह देख अभिमन्युने उनके चारों घोड़ों तथा ध्वज, धनुष एवं सारथिको भी पृथ्वीपर मार गिराया ॥ २० ॥

अथ कोसलराजस्तु विरथः खड्गचर्मभृत् ।
इयेष फाल्गुनेः कायाच्छिरो हर्तुं सकुण्डलम् ॥ २१ ॥

रथहीन होनेपर कोसलनरेशने हाथमें ढाल और तलवार ले ली तथा अभिमन्युके शरीरसे उसके कुण्डलयुक्त

मस्तकको काट लेनेका विचार किया ॥ २१ ॥

स कोसलानामधिपं राजपुत्रं बृहद्बलम् ।
हृदि विव्याध बाणेन स भिन्नहृदयोऽपतत् ॥ २२ ॥

इतनेहीमें अभिमन्युने एक बाणद्वारा कोसलनरेश राजपुत्र बृहद्बलके हृदयमें गहरी चोट पहुँचायी। इससे उनका वक्षःस्थल विदीर्ण हो गया और वे गिर पड़े ॥ २२ ॥

बभञ्ज च सहस्राणि दश राज्ञां महात्मनाम् ।
सृजतामशिवा वाचः खड्गकार्मुकधारिणाम् ॥ २३ ॥

इसके बाद अशुभ वचन बोलनेवाले तथा खड्ग एवं धनुष धारण करनेवाले दस हजार महामनस्वी राजाओंका भी उसने संहार कर डाला ॥ २३ ॥

तथा बृहद्बलं हत्वा सौभद्रो व्यचरद् रणे ।
व्यष्टम्भयन्महेष्वासो योधांस्तव शराम्बुभिः ॥ २४ ॥

इस प्रकार महाधनुर्धर अभिमन्यु बृहद्बलका वध करके आपके योद्धाओंको अपने बाणरूपी जलकी वर्षासे स्तब्ध करता हुआ रणक्षेत्रमें विचरने लगा ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि बृहद्बलवधे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें बृहद्बलवधविषयक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युद्वारा अश्वकेतु, भोज और कर्णके मन्त्री आदिका वध एवं छः महारथियोंके साथ घोर युद्ध और उन महारथियोंद्वारा अभिमन्युके धनुष, रथ, ढाल और तलवारका नाश

संजय उवाच

स कर्णं कर्णिना कर्णे पुनर्विव्याध फाल्गुनिः ।
शरैः पञ्चाशता चैनमविध्यत् कोपयन् भृशम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर अर्जुनकुमार अभिमन्युने एक बाणद्वारा कर्णके कानमें पुनः चोट पहुँचायी और उसे क्रोध दिलाते हुए उसने पचास बाण मारकर अत्यन्त घायल कर दिया ॥ १ ॥

प्रतिविव्याध राधेयस्तावद्भिरथ तं पुनः ।
शरैराचितसर्वाङ्गो बह्वशोभत भारत ॥ २ ॥

भरतनन्दन ! तब राधापुत्र कर्णने भी अभिमन्युको उतने ही बाणोंसे बींध डाला। उसका सारा अंग बाणोंसे व्याप्त होनेके कारण वह बड़ी शोभा पा रहा था ॥ २ ॥

कर्णं चाप्यकरोत् क्रुद्धो रुधिरोत्पीडवाहिनम् ।
कर्णोऽपि विबभौ शूरः शरैश्छिन्नोऽसृगाप्लुतः ॥ ३ ॥
(संध्यानुगतपर्यन्तः शरदीव दिवाकरः ।)

फिर क्रोधमें भरे हुए अभिमन्युने कर्णको भी बाणोंसे क्षत-विक्षत करके उसे रक्तकी धारा बहानेवाला बना दिया। उस समय शूरवीर कर्ण भी बाणोंसे छिन्न-भिन्न और खूनसे लथपथ हो बड़ी शोभा पाने लगा, मानो शरत्कालका सूर्य संध्याके समय सम्पूर्ण रूपसे लाल दिखायी दे रहा हो ॥ ३ ॥

तावुभौ शरचित्राङ्गौ रुधिरेण समुक्षितौ ।
बभूवतुर्महात्मानौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ४ ॥

उन दोनोंके शरीर बाणोंसे व्याप्त होनेके कारण विचित्र दिखायी देते थे। दोनों ही रक्तसे भींग गये तथा वे दोनों महामनस्वी वीर फूलोंसे भरे हुए पलाश-वृक्षके समान प्रतीत होते थे ॥ ४ ॥

अथ कर्णस्य सचिवान् षट् शूरांश्चित्रयोधिनः ।
साश्वसूतध्वजरथान् सौभद्रो निजघान ह ॥ ५ ॥

तदनन्तर सुभद्राकुमारने कर्णके विचित्र युद्ध करनेवाले छः शूरवीर मन्त्रियोंको उनके घोड़े, सारथि, रथ तथा ध्वज-सहित मार डाला ॥ ५ ॥

तथेतरान् महेष्वासान् दशभिर्दशभिः शरैः ।
प्रत्यविध्यदसम्भ्रान्तस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६ ॥

इतना ही नहीं, उसने बिना किसी घबराहटके दस-दस बाणोंद्वारा अन्य महाधनुर्धरोंको भी आहत कर दिया। वह अद्भुत-सी बात थी ॥ ६ ॥

मागधस्य तथा पुत्रं हत्वा षड्भिरजिह्मगैः ।
साश्वंससूतं तरुणमश्वकेतुमपातयत् ॥ ७ ॥

इसी प्रकार उसने मगधराजके तरुण पुत्र अश्वकेतुको छः बाणोंद्वारा मारकर उसे घोड़ों और सारथिसहित रथसे नीचे गिरा दिया ॥ ७ ॥

मार्तिकावतकं भोजं ततः कुञ्जरकेतनम् ।
क्षुरप्रेण समुन्मथ्य ननाद विसृजञ्शरान् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् हाथीके चिह्नसे युक्त ध्वजावाले मार्तिकावतक-नरेश भोजको एक क्षुरप्रद्वारा नष्ट करके अभिमन्युने बाणों-की वर्षा करते हुए सिंहनाद किया ॥ ८ ॥

तस्य दौःशासनिर्विद्ध्वा चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
सूतमेकेन विव्याध दशभिश्चार्जुनात्मजम् ॥ ९ ॥

तब दुःशासनकुमारने चार बाणोंद्वारा अभिमन्युके चारों घोड़ोंको घायल करके एकसे सारथिको और दस बाणों-द्वारा स्वयं अभिमन्युको बींध डाला ॥ ९ ॥

ततो दौःशासनिं कार्ष्णिर्विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
संरम्भाद् रक्तनयनो वाक्यमुच्चैरथाब्रवीत् ॥ १० ॥

यह देख अर्जुनकुमारने क्रोधसे लाल आँखें करके

सात बाणोंद्वारा दुःशासनपुत्रको बींध डाला और उच्च स्वरसे यह बात कही—॥ १० ॥

पिता तवाहवं त्यक्त्वा गतः कापुरुषो यथा ।
दिष्ट्या त्वमपि जानीषे योद्धुं न त्वद्य मोक्ष्यसे ॥ ११ ॥

'अरे ! तेरा पिता कायरकी भाँति युद्ध छोड़कर भाग गया है । सौभाग्यकी बात है कि तू भी युद्ध करना जानता है; किंतु आज तू जीवित नहीं छूट सकेगा' ॥ ११ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं कर्मारपरिमार्जितम् ।
नाराचं विससर्जास्मै तं द्रौणिस्त्रिभिराच्छिनत् ॥ १२ ॥

यह वचन कहकर अभिमन्युने कारीगरके माँजे हुए एक नाराचको दुःशासनपुत्रपर चलाया; परंतु अश्वत्थामाने तीन बाण मारकर उसे बीचमें ही काट दिया ॥ १२ ॥

तस्यार्जुनिर्ध्वजं छित्त्वा शल्यं त्रिभिरताडयत् ।
तं शल्यो नवभिर्बाणैर्गार्ध्रपत्रैरताडयत् ॥ १३ ॥
हृदयसम्भ्रान्तवद् राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ।

तब अर्जुनकुमारने अश्वत्थामाका ध्वज काटकर शल्यको तीन बाण मारे । राजन् ! शल्यने भी मनमें तनिक भी सम्भ्रम या घबराहटका अनुभव न करते हुए-से गीधके पंखसे युक्त नौ बाणोंद्वारा अभिमन्युको आहत कर दिया । यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ १३½ ॥

तस्यार्जुनिर्ध्वजं छित्त्वा हत्वोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ १४ ॥
तं विव्याधायसैः षड्भिः सोपाक्रामद् रथान्तरम् ।

उस समय अभिमन्युने शल्यके ध्वजको काटकर उनके दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी मार डाला और उनको भी लोहेके बने हुए छः बाणोंसे बींध दिया; फिर तो शल्य भागकर दूसरे रथपर चले गये ॥ १४½ ॥

शत्रुंजयं चन्द्रकेतुं मेघवेगं सुवर्चसम् ॥ १५ ॥
सूर्यभासं च पञ्चैतान् हत्वा विव्याध सौबलम् ।
तं सौबलस्त्रिभिर्विद्ध्वा दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् शत्रुंजय, चन्द्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चा और सूर्यभास—इन पाँच वीरोंको मारकर अभिमन्युने सुबलपुत्र शकुनिको भी घायल कर दिया । तब शकुनिने भी तीन बाणोंसे अभिमन्युको घायल करके दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥

सर्व एनं विमथ्नीमः पुरैकैकं हिनस्ति नः ।
अथाब्रवीत् पुनर्द्रोणं कर्णो वैकर्तनो रणे ॥ १७ ॥

'राजन् ! यह एक-एकके साथ युद्ध करके हमें मारे, इसके पहले ही हम सब लोग मिलकर इस अभिमन्युको मथ डालें ।' तदनन्तर विकर्तनपुत्र कर्णने रणक्षेत्रमें पुनः द्रोणाचार्यसे पूछा—॥ १७ ॥

पुरा सर्वान् प्रमथ्नाति ब्रूह्यस्य वधमाशु नः ।
ततो द्रोणो महेष्वासः सर्वांस्तान् प्रत्यभाषत ॥ १८ ॥

'आचार्य ! अभिमन्यु हमलोगोंको मार डाले' इसके पहले ही हमें शीघ्र यह बताइये कि इसका वध किस प्रकार होगा ?' तब महाधनुर्धर द्रोणाचार्यने उन सबसे कहा—॥ १८ ॥

अस्ति वास्यान्तरं किंचित् कुमारस्याथ पश्यत ।
अण्वप्यस्यान्तरं ह्यद्य चरतः सर्वतोदिशम् ॥ १९ ॥

'देखो, क्या इस कुमार अभिमन्युमें कहीं कोई दुर्बलता या छिद्र है ? सम्पूर्ण दिशाओंमें विचरते हुए अभिमन्युमें आज कोई छोटा-सा भी छिद्र हो तो देखो ॥ १९ ॥

शीघ्रतां नरसिंहस्य पाण्डवेयस्य पश्यत ।
धनुर्मण्डलमेवास्य रथमार्गेषु दृश्यते ॥ २० ॥
संदधानस्य विशिखाञ्शीघ्रं चैव विमुञ्चतः ।

'इस पुरुषसिंह पाण्डवपुत्रकी शीघ्रता तो देखो । शीघ्रतापूर्वक बाणोंका संधान करते और छोड़ते समय रथके मार्गोंमें इसके धनुषका मण्डलमात्र दिखायी देता है ॥ २०½ ॥

आरुजन्नपि मे प्राणान् मोहयन्नपि सायकैः ॥ २१ ॥
प्रहर्षयति मां भूयः सौभद्रः परवीरहा ।
अति मां नन्दयत्येष सौभद्रो विचरन् रणे ॥ २२ ॥

'शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला सुभद्राकुमार अभिमन्यु यद्यपि अपने बाणोंद्वारा मेरे प्राणोंको अत्यन्त कष्ट दे रहा है, मुझे मूर्छित किये देता है, तथापि बारंबार मेरा हर्ष बढ़ा रहा है । रणक्षेत्रमें विचरता हुआ सुभद्राका यह पुत्र मुझे अत्यन्त आनन्दित कर रहा है ॥ २१-२२ ॥

अन्तरं यस्य संरब्धा न पश्यन्ति महारथाः ।
अस्यतो लघुहस्तस्य दिशः सर्वा महेषुभिः ॥ २३ ॥
न विशेषं प्रपश्यामि रणे गाण्डीवधन्वनः ।

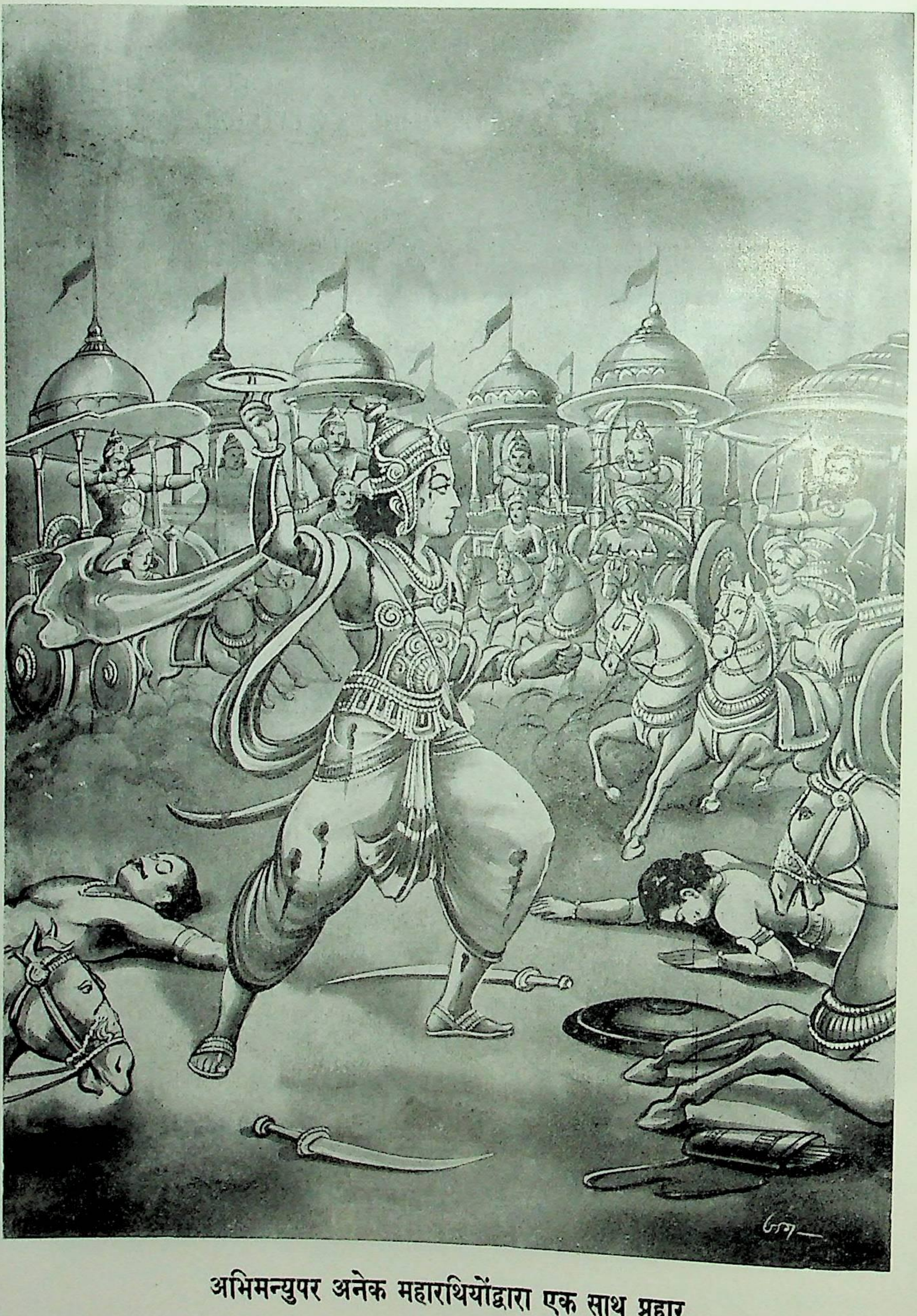
'क्रोधमें भरे हुए महारथी इसके छिद्रको नहीं देख पाते हैं । यह शीघ्रतापूर्वक हाथ चलाता हुआ अपने महान् बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको व्याप्त कर रहा है । मैं युद्धस्थलमें गाण्डीवधारी अर्जुन और इस अभिमन्युमें कोई अन्तर नहीं देख पाता हूँ' ॥ २३½ ॥

अथ कर्णः पुनर्द्रोणमाहार्जुनिशराहतः ॥ २४ ॥
स्थातव्यमिति तिष्ठामि पीड्यमानोऽभिमन्युना ।

तदनन्तर कर्णने अभिमन्युके बाणोंसे आहत होकर पुनः द्रोणाचार्यसे कहा—'आचार्य ! मैं अभियन्युके बाणोंसे पीड़ित होता हुआ भी केवल इसलिये यहाँ खड़ा हूँ कि युद्धके मैदानमें डटे रहना ही क्षत्रियका धर्म है (अन्यथा मैं कभी भाग गया होता) ॥ २४½ ॥

तेजस्विनः कुमारस्य शराः परमदारुणाः ॥ २५ ॥
क्षिण्वन्ति हृदयं मेऽद्य घोराः पावकतेजसः ।
तमाचार्योऽब्रवीत् कर्णं शनकैः प्रहसन्निव ॥ २६ ॥

'तेजस्वी कुमार अभिमन्युके ये अत्यन्त दारुण और अग्निके समान तेजस्वी घोर बाण आज मेरे वक्षः-



अभिमन्युपर अनेक महारथियोंद्वारा एक साथ प्रहार

स्थलको विदीर्ण किये देते हैं।' यह सुनकर द्रोणाचार्य ठहाका मारकर हँसते हुए-से धीरे-धीरे कर्णसे इस प्रकार बोले—॥ २५-२६ ॥

अभेद्यमस्य कवचं युवा चाशुपराक्रमः।
उपदिष्टा मया चास्य पितुः कवचधारणा ॥ २७ ॥
तामेष निखिलां वेत्ति ध्रुवं परपुरंजयः।
शक्यं त्वस्य धनुश्छेत्तुं ज्यां च बाणैः समाहितैः ॥ २८ ॥

'कर्ण ! अभिमन्युका कवच अभेद्य है। यह तरुण वीर शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाला है। मैंने इसके पिताको कवच धारण करनेकी विधि बतायी है। शत्रुनगरीपर विजय पानेवाला यह वीर कुमार निश्चय ही वह सारी विधि जानता है (अतः इसका कवच तो अभेद्य ही है); परंतु मनोयोगपूर्वक चलाये हुए बाणोंसे इसके धनुष और प्रत्यञ्चाको काटा जा सकता है ॥ २७—२८ ॥

अभीषूंश्च हयांश्चैव तथोभौ पार्ष्णिसारथी।
एतत् कुरु महेष्वास राधेय यदि शक्यते ॥ २९ ॥

'साथ ही इसके घोड़ोंकी बागडोरोंको, घोड़ोंको तथा दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी नष्ट किया जा सकता है। महाधनुर्धर राधापुत्र ! यदि कर सको तो यही करो ॥ २९ ॥

अथैनं विमुखीकृत्य पश्चात् प्रहरणं कुरु।
सधनुष्को न शक्योऽयमपि जेतुं सुरासुरैः ॥ ३० ॥

'अभिमन्युको युद्धसे विमुख करके पीछे इसके ऊपर प्रहार करो, धनुष लिये रहनेपर तो इसे सम्पूर्ण देवता और असुर भी जीत नहीं सकते ॥ ३० ॥

विरथं विधनुष्कं च कुरुष्वैनं यदीच्छसि।
तदाचार्यवचः श्रुत्वा कर्णो वैकर्तनस्त्वरन् ॥ ३१ ॥
अस्यतो लघुहस्तस्य पृषत्कैर्धनुराच्छिनत्।
अश्वानस्यावधीद् भोजो गौतमः पार्ष्णिसारथी ॥ ३२ ॥

'यदि तुम इसे परास्त करना चाहते हो तो इसके रथ और धनुषको नष्ट कर दो।' आचार्यकी यह बात सुनकर विकर्तनपुत्र कर्णने बड़ी उतावलीके साथ अपने बाणोंद्वारा शीघ्रतापूर्वक हाथ चलाते हुए अस्त्रोंका प्रयोग करनेवाले अभिमन्युके धनुषको काट दिया। भोजवंशी कृतवर्माने उसके घोड़े मार डाले और कृपाचार्यने दोनों पार्श्वरक्षकोंका काम तमाम कर दिया ॥ ३१—३२ ॥

शेषास्तु छिन्नधन्वानं शरवर्षैरवाकिरन्।
त्वरमाणास्त्वराकाले विरथं षण्महारथाः ॥ ३३ ॥
शरवर्षैरकरुणा बालमेकमवाकिरन्।

शेष महारथी धनुष कट जानेपर अभिमन्युके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। इस प्रकार शीघ्रता करनेके अवसरपर शीघ्रता करनेवाले छः निर्दय महारथी एक रथहीन बालकपर बाणोंकी बौछार करने लगे ॥ ३३½ ॥

स छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ॥ ३४ ॥
खड्गचर्मधरः श्रीमानुत्पपात विहायसा।

धनुष कट जाने और रथ नष्ट हो जानेपर तेजस्वी वीर अभिमन्यु अपने धर्मका पालन करते हुए ढाल और तलवार हाथमें लेकर आकाशमें उछल पड़ा ॥ ३४½ ॥

मार्गैः सकौशिकाद्यैश्च लाघवेन बलेन च ॥ ३५ ॥
आर्जुनिर्व्यचरद् व्योम्नि भृशं वै पक्षिराडिव।

अर्जुनकुमार अभिमन्यु कौशिक आदि मार्गों (पैतरों) द्वारा तथा शीघ्रकारिता और बल-पराक्रमसे पक्षिराज गरुड़की भाँति भूतलकी अपेक्षा आकाशमें ही अधिक विचरण करने लगा ॥

मय्येव निपतत्येष सासिरित्यूर्ध्वदृष्टयः ॥ ३६ ॥
विव्यधुस्तं महेष्वासं समरे छिद्रदर्शिनः।

समराङ्गणमें छिद्र देखनेवाले योद्धा 'जान पड़ता है यह मेरे ही ऊपर तलवार लिये टूटा पड़ता है' इस आशङ्कासे ऊपरकी ओर दृष्टि करके महाधनुर्धर अभिमन्युको बींधने लगे ॥

तस्य द्रोणोऽच्छिनन्मुष्टौ खड्गं मणिमयत्सरुम् ॥ ३७ ॥
क्षुरप्रेण महातेजास्त्वरमाणः सपत्नजित्।

उस समय शत्रुओंपर विजय पानेवाले महातेजस्वी द्रोणाचार्यने शीघ्रता करते हुए एक क्षुरप्रके द्वारा अभिमन्युकी मुट्ठीमें स्थित हुए मणिमय मूठसे युक्त खड्गको काट डाला ॥

राधेयो निशितैर्बाणैर्व्यधमच्चर्म चोत्तमम् ॥ ३८ ॥
व्यसिचर्मेषुपूर्णाङ्गः सोऽन्तरिक्षात् पुनः क्षितिम्।
आस्थितश्चक्रमुद्यम्य द्रोणं क्रुद्धोऽभ्यधावत ॥ ३९ ॥

राधानन्दन कर्णने अपने पैने बाणोंद्वारा उसके उत्तम ढालके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। ढाल और तलवारसे वञ्चित हो जानेपर बाणोंसे भरे हुए शरीरवाला अभिमन्यु पुनः आकाशसे पृथ्वीपर उतर आया और चक्र हाथमें ले कुपित हो द्रोणाचार्यकी ओर दौड़ा ॥ ३८—३९ ॥

स चक्ररेणूज्ज्वलशोभिताङ्गो
बभावतीवोज्ज्वलचक्रपाणिः ।
रणेऽभिमन्युः क्षणमास रौद्रः
स वासुदेवानुकृतिं प्रकुर्वन् ॥ ४० ॥

अभिमन्युका शरीर चक्रकी प्रभासे उज्ज्वल तथा धूलराशिसे सुशोभित था। उसके हाथमें तेजोमय उज्ज्वल चक्र प्रकाशित हो रहा था। इससे उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। उस रणक्षेत्रमें चक्रधारणद्वारा भगवान् श्रीकृष्णका अनुकरण करता हुआ अभिमन्यु क्षणभरके लिये बड़ा भयंकर प्रतीत होने लगा ॥ ४० ॥

स्रुतरुधिरकृतैकरागवक्त्रो
भ्रुकुटिपुटाकुटिलोऽतिसिंहनादः ।
प्रभुरमितबलो रणेऽभिमन्यु-
र्नृपवरमध्यगतो भृशं व्यराजत् ॥ ४१ ॥

अभिमन्युके वस्त्र उसके शरीरसे बहनेवाले एकमात्र रुधिरके रंगमें रँग गये थे। भौंहें टेढ़ी होनेसे उसका मुख-मण्डल सब ओरसे कुटिल प्रतीत होता था और वह बड़े जोर-जोरसे सिंहनाद कर रहा था। ऐसी अवस्थामें प्रभावशाली अनन्त बलवान् अभिमन्यु उस रणक्षेत्रमें पूर्वोक्त नरेशोंके बीचमें खड़ा होकर अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युविरथकरणे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युको रथहीन करनेसे सम्बन्ध रखनेवाला अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ४१½ श्लोक हैं)

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अभिमन्युका कालिकेय, वसाति और कैकय रथियोंको मार डालना एवं छः महारथियोंके सहयोगसे अभिमन्युका वध और भागती हुई अपनी सेनाको युधिष्ठिरका आश्वासन देना

संजय उवाच

विष्णोः स्वसुर्नन्दकरः स विष्णवायुधभूषणः।
रराजातिरथः संख्ये जनार्दन इवापरः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! भगवान् श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्राको आनन्दित करनेवाला तथा श्रीकृष्णके ही समान चक्ररूपी आयुधसे सुशोभित होनेवाला अतिरथी वीर अभिमन्यु उस युद्धस्थलमें दूसरे श्रीकृष्णके समान प्रकाशित हो रहा था ॥ १ ॥

मारुतोद्धूतकेशान्तमुद्यतारिवरायुधम् ।
वपुः समीक्ष्य पृथ्वीशा दुःसमीक्ष्यं सुरैरपि ॥ २ ॥
तच्चक्रं भृशमुद्विग्नाः संचिच्छिदुरनेकधा।

हवा उसके केशान्तभागको हिला रही थी। उसने अपने हाथमें चक्रनामक उत्तम आयुध उठा रक्खा था। उस समय उसके शरीर और उस चक्रको—जिसकी ओर दृष्टिपात करना देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन था—देखकर समस्त भूपालगण अत्यन्त उद्विग्न हो उठे और उन सबने मिलकर उस चक्रके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ २½ ॥

महारथस्ततः कार्ष्णिः संजग्राह महागदाम् ॥ ३ ॥
विधनुःस्यन्दनासिस्तैर्विचक्रश्चारिभिः कृतः।
अभिमन्युर्गदापाणिरश्वत्थामानमार्दयत् ॥ ४ ॥

तब महारथी अभिमन्युने एक विशाल गदा हाथमें ले ली। शत्रुओंने उसे धनुष, रथ, खड्ग और चक्रसे भी वञ्चित कर दिया था। इसलिये गदा हाथमें लिये हुए अभिमन्युने अश्वत्थामापर धावा किया ॥ ३-४ ॥

स गदामुद्यतां दृष्ट्वा ज्वलन्तीमशनीमिव।
अपाक्रामद् रथोपस्थाद् विक्रमांस्त्रीन् नरर्षभः ॥ ५ ॥

प्रज्वलित वज्रके समान उस गदाको ऊपर उठी हुई देख नरश्रेष्ठ अश्वत्थामा अपने रथकी बैठकसे तीन पग पीछे हट गया ॥ ५ ॥



तस्याश्वान् गदया हत्वा तथोभौ पार्ष्णिसारथी।
शराचिताङ्गः सौभद्रः श्वाविद्वत् समदृश्यत ॥ ६ ॥

उस गदासे अश्वत्थामाके चारों घोड़ों तथा दोनों पार्श्वरक्षकोंको मारकर बाणोंसे भरे हुए शरीरवाला सुभद्राकुमार साहीके समान दिखायी देने लगा ॥ ६ ॥

ततः सुबलदायादं कालिकेयमपोथयत्।
जघान चास्यानुचरान् गान्धारान् सप्तसप्ततिम् ॥ ७ ॥

तदनन्तर उसने सुबलपुत्र कालिकेयको मार गिराया और उसके पीछे चलनेवाले सतहत्तर गान्धारोंका भी संहार कर डाला ॥ ७ ॥

पुनश्चैव वसातीयाञ्जघान रथिनो दश।
केकयानां रथान् सप्त हत्वा च दश कुञ्जरान् ॥ ८ ॥
दौःशासनिरथं साश्वं गदया समपोथयत्।

इसके बाद दस वसातीय रथियोंको मार डाला। केकयोंके सात रथों और दस हाथियोंको मारकर दुःशासनकुमारके घोड़ोंसहित रथको भी गदाके आघातसे चूर-चूर कर डाला।

ततो दौःशासनिः क्रुद्धो गदामुद्यम्य मारिष ॥ ९ ॥
अभिदुद्राव सौभद्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।

[illegible] दुःशासनपुत्र कुपित हो गदा हाथमें

लेकर अभिमन्युकी ओर दौड़ा और इस प्रकार बोला—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ९½ ॥

तावुद्यतगदौ वीरावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ ॥ १० ॥
भ्रातृव्यौ सम्प्रजह्राते पुरेव त्र्यम्बकान्धकौ ।

वे दोनों वीर एक दूसरेके शत्रु थे । अतः गदा हाथमें लेकर एक दूसरेका वध करनेकी इच्छासे परस्पर प्रहार करने लगे । ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें भगवान् शंकर और अन्धकासुर परस्पर गदाका आघात करते थे ॥

तावन्योन्यं गदाग्राभ्यामाहत्य पतितौ क्षितौ ॥ ११ ॥
इन्द्रध्वजाविवोत्सृष्टौ रणमध्ये परंतपौ ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले वे दोनों वीर रणक्षेत्रमें गदाके अग्रभागसे एक दूसरेको चोट पहुँचाकर नीचे गिराये हुए दो इन्द्र-ध्वजोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ११½ ॥

दौःशासनिरथोत्थाय कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ १२ ॥
उत्तिष्ठमानं सौभद्रं गदया मूर्ध्न्यताडयत् ।

तत्पश्चात् कुरुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले दुःशासनपुत्रने पहले उठकर उठते हुए सुभद्राकुमारके मस्तकपर गदाका प्रहार किया ॥ १२½ ॥

गदावेगेन महता व्यायामेन च मोहितः ॥ १३ ॥
विचेता न्यपतद् भूमौ सौभद्रः परवीरहा ।
एवं विनिहतो राजन्नेको बहुभिराहवे ॥ १४ ॥

गदाके उस महान् वेग और परिश्रमसे मोहित होकर शत्रुवीरोंका नाश करनेवाला अभिमन्यु अचेत हो पृथ्वीपर गिर पड़ा । राजन् ! इस प्रकार उस युद्धस्थलमें बहुत-से योद्धाओंने मिलकर एकाकी अभिमन्युको मार डाला ।१३-१४।

क्षोभयित्वा चमूं सर्वां नलिनीमिव कुञ्जरः ।
अशोभत हतो वीरो व्याधैर्वनगजो यथा ॥ १५ ॥

जैसे हाथी कभी सरोवरको मथ डालता है, उसी प्रकार सारी सेनाको क्षुब्ध करके व्याधोंके द्वारा जंगली हाथीकी भाँति मारा गया वीर अभिमन्यु वहाँ अद्भुत शोभा पा रहा था॥

तं तथा पतितं शूरं तावकाः पर्यवारयन् ।
दावं दग्ध्वा यथा शान्तं पावकं शिशिरात्यये ॥ १६ ॥
विमृद्य नगशृङ्गाणि संनिवृत्तमिवानिलम् ।
अस्तंगतमिवादित्यं तप्त्वा भारतवाहिनीम् ॥ १७ ॥
उपप्लुतं यथा सोमं संशुष्कमिव सागरम् ।
पूर्णचन्द्राभवदनं काकपक्षवृताक्षिकम् ॥ १८ ॥
तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा तावकास्ते महारथाः ।
मुदा परमया युक्ताश्चुक्रुशुः सिंहवन्मुहुः ॥ १९ ॥

इस प्रकार रणभूमिमें गिरे हुए शूरवीर अभिमन्युको आपके सैनिकोंने चारों ओरसे घेर लिया । जैसे ग्रीष्म ऋतुमें जंगलको जलाकर आग बुझ गयी हो, जिस प्रकार वायु वृक्षोंकी शाखाओंको तोड़-फोड़कर शान्त हो रही हो, जैसे संसारको संतप्त करके सूर्य अस्ताचलको चले गये हों, जैसे चन्द्रमापर ग्रहण लग गया हो तथा जैसे समुद्र सूख गया हो, उसी प्रकार समस्त कौरव-सेनाको संतप्त करके पूर्णचन्द्रमाके समान मुखवाला अभिमन्यु पृथ्वीपर पड़ा था; उसके सिरके बड़े-बड़े बालों (काकपक्ष) से उसकी आँखें ढक गयी थीं । उस दशामें उसे देखकर आपके महारथी बड़ी प्रसन्नताके साथ बारंबार सिंहनाद करने लगे ॥ १६–१९ ॥

आसीत् परमको हर्षस्तावकानां विशाम्पते ।
इतरेषां तु वीराणां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ २० ॥

प्रजानाथ ! आपके पुत्रोंको तो बड़ा हर्ष हुआ; परंतु पाण्डव वीरोंके नेत्रोंसे आँसू बहने लगा ॥ २० ॥

अन्तरिक्षे च भूतानि प्राक्रोशन्त विशाम्पते ।
दृष्ट्वा निपतितं वीरं च्युतं चन्द्रमिवाम्बरात् ॥ २१ ॥

महाराज ! उस समय अन्तरिक्षमें खड़े हुए प्राणी आकाशसे गिरे हुए चन्द्रमाके समान वीर अभिमन्युको रणभूमिमें पड़ा देख उच्च स्वरसे आपके महारथियोंकी निन्दा करने लगे ॥ २१ ॥

द्रोणकर्णमुखैः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
एकोऽयं निहतः शेते नैष धर्मो मतो हि नः ॥ २२ ॥

द्रोण और कर्ण आदि छः कौरव महारथियोंके द्वारा असहाय अवस्थामें मारा गया यह एक बालक यहाँ सो रहा है । हमारे मतमें यह धर्म नहीं है ॥ २२ ॥

तस्मिन् विनिहते वीरे बह्वशोभत मेदिनी ।
द्यौर्यथा पूर्णचन्द्रेण नक्षत्रगणमालिनी ॥ २३ ॥

वीर अभिमन्युके मारे जानेपर वह रणभूमि पूर्ण चन्द्रमा-से युक्त तथा नक्षत्रमालाओंसे अलंकृत आकाशकी भाँति बड़ी शोभा पा रही थी ॥ २३ ॥

रुक्मपुङ्खैश्च सम्पूर्णा रुधिरौघपरिप्लुता ।
उत्तमाङ्गैश्च शूराणां भ्राजमानैः सकुण्डलैः ॥ २४ ॥
विचित्रैश्च परिस्तोमैः पताकाभिश्च संवृता ।
चामरैश्च कुथाभिश्च प्रविद्धैश्चाम्बरोत्तमैः ॥ २५ ॥
तथाश्वनरनागानामलंकारैश्च सुप्रभैः ।
खड्गैः सुनिशितैः पीतैर्निर्मुक्तैर्भुजगैरिव ॥ २६ ॥
चापैश्च विविधैश्छिन्नैः शक्त्यृष्टिप्रासकम्पनैः ।
विविधैश्चायुधैश्चान्यैः संवृता भूरशोभत ॥ २७ ॥

सुवर्णमय पंखवाले बाणोंसे वहाँकी भूमि भरी हुई थी । रक्तकी धाराओंमें डूबी हुई थी । शूरवीरोंके कुण्डलमण्डित तेजस्वी मस्तकों, हाथियोंके विचित्र झूलों, पताकाओं, चामरों, हाथीकी पीठपर बिछाये जानेवाले कम्बलों, इधर-उधर पड़े हुए उत्तम वस्त्रों, हाथी, घोड़े और मनुष्योंके चमकीले आभूषणों, केंचुलसे निकले हुए सर्पोंके समान पैने और पानीदार खड्गों, भाँति-भाँतिके कटे हुए धनुषों, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, कम्पन तथा अन्य नाना प्रकारके आयुधोंसे आच्छादित हुई रणभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही थी ॥

वाजिभिश्चापि निर्जीवैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः ।
सारोहैर्विषमा भूमिः सौभद्रेण निपातितैः ॥ २८ ॥

सुभद्राकुमार अभिमन्युके द्वारा मार गिराये हुए रक्त-स्नात निर्जीव और सजीव घोड़ों और घुड़सवारोंके कारण वह भूमि विषम एवं दुर्गम हो गयी थी ॥ २८ ॥

साङ्कुशैः समहामात्रैः सवर्मायुधकेतुभिः ।
पर्वतैरिव विध्वस्तैर्विशिखैर्मथितैर्गजैः ॥ २९ ॥
पृथिव्यामनुकीर्णैश्च व्यश्वसारथियोधिभिः ।
ह्रदैरिव प्रक्षुभितैर्हतनागै रथोत्तमैः ॥ ३० ॥
पदातिसंघैश्च हतैर्विविधायुधभूषणैः ।
भीरूणां त्रासजननी घोररूपाभवन्मही ॥ ३१ ॥

अङ्कुश, महावत, कवच, आयुध और ध्वजाओंसहित बड़े-बड़े गजराज बाणोंद्वारा मथित होकर भहराये हुए पर्वतों-के समान जान पड़ते थे । जिन्होंने बड़े-बड़े गजराजोंको मार डाला था, वे श्रेष्ठ रथ घोड़े, सारथि और योद्धाओंसे रहित हो मथे गये सरोवरोंके समान चूर-चूर होकर पृथ्वीपर बिखरे पड़े थे । नाना प्रकारके आयुधों और आभूषणोंसे युक्त पैदल सैनिकोंके समूह भी उस युद्धमें मारे गये थे । इन सबके कारण वहाँकी भूमि अत्यन्त भयानक तथा भीरु पुरुषों-के मनमें भय उत्पन्न करनेवाली हो गयी थी ॥ २९–३१ ॥

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ चन्द्रार्कसदृशद्युतिम् ।
तावकानां परा प्रीतिः पाण्डूनां चाभवद् व्यथा ॥ ३२ ॥

चन्द्रमा और सूर्यके समान कान्तिमान् अभिमन्युको पृथ्वीपर पड़ा देख आपके पुत्रोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और पाण्डवोंकी अन्तरात्मा व्यथित हो उठी ॥ ३२ ॥

अभिमन्यौ हते राजञ्शिशुकेऽप्राप्तयौवने ।
सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा धर्मराजस्य पश्यतः ॥ ३३ ॥

राजन् ! जो अभी युवावस्थाको प्राप्त नहीं हुआ था, उस बालक अभिमन्युके मारे जानेपर धर्मराज युधिष्ठिरके देखते-देखते उनकी सारी सेना भागने लगी ॥ ३३ ॥

दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा सौभद्रे विनिपातिते ।
अजातशत्रुस्तान् वीरानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३४ ॥

सुभद्राकुमारके धराशायी होनेपर अपनी सेनामें भगदड़ पड़ी देख अजातशत्रु युधिष्ठिरने अपने पक्षके उन वीरोंसे यह वचन कहा—॥ ३४ ॥

स्वर्गमेष गतः शूरो यो हतो न पराङ्मुखः ।
संस्तम्भयत मा भैष्ट विजेष्यामो रणे रिपून् ॥ ३५ ॥

'यह शूरवीर अभिमन्यु जो प्राणोंपर खेल गया, परंतु युद्धमें पीठ न दिखा सका, निश्चय ही स्वर्गलोकमें गया है। तुम सब लोग धैर्य धारण करो । भयभीत न होओ । हम लोग रणक्षेत्रमें शत्रुओंको अवश्य जीतेंगे' ॥ ३५ ॥

इत्येवं स महातेजा दुःखितेभ्यो महाद्युतिः ।
धर्मराजो युधां श्रेष्ठो ब्रुवन् दुःखमपानुदत् ॥ ३६ ॥

महातेजस्वी और परम कान्तिमान् योद्धाओंमें श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिरने अपने दुखी सैनिकोंसे ऐसा कहकर उनके दुःखका निवारण किया ॥ ३६ ॥

युद्धे ह्याशीविषाकारान् राजपुत्रान् रणे रिपून् ।
पूर्वं निहत्य संग्रामे पश्चादार्जुनिरभ्ययात् ॥ ३७ ॥

युद्धमें विषधर सर्पके समान भयंकर शत्रुरूप राजकुमारों-को पहले मारकर पीछेसे अर्जुनकुमार अभिमन्यु स्वर्गलोक-में गया था ॥ ३७ ॥

हत्वा दश सहस्राणि कौसल्यं च महारथम् ।
कृष्णार्जुनसमः कार्ष्णिः शक्रलोकं गतो ध्रुवम् ॥ ३८ ॥

दस हजार रथियों और महारथी कोसलनरेश बृहद्बलको मारकर श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान पराक्रमी अभिमन्यु निश्चय ही इन्द्रलोकमें गया है ॥ ३८ ॥

रथाश्वनरमातङ्गान् विनिहत्य सहस्रशः ।
अवितृप्तः स संग्रामादशोच्यः पुण्यकर्मकृत् ।
गतः पुण्यकृतां लोकाञ्शाश्वतान् पुण्यनिर्जितान् ॥ ३९ ॥

रथ, घोड़े, पैदल और हाथियोंका सहस्रोंकी संख्यामें संहार करके भी वह युद्धसे तृप्त नहीं हुआ था । पुण्यकर्म करनेके कारण अभिमन्यु शोकके योग्य नहीं है । वह पुण्यात्माओंके पुण्योपार्जित सनातन लोकोंमें जा पहुँचा है ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युवधे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युवधविषयक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

तीसरे (तेरहवें) दिनके युद्धकी समाप्तिपर सेनाका शिविरको प्रस्थान एवं रणभूमिका वर्णन

संजय उवाच

वयं तु प्रवरं हत्वा तेषां तैः शरपीडिताः।
निवेशायाभ्युपायामः सायाह्ने रुधिरोक्षिताः॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! हमलोग शत्रुओंके उस प्रमुख वीरका वध करके उनके बाणोंसे पीड़ित हो संध्याके समय शिविरमें विश्रामके लिये चले आये। उस समय हमलोगोंके शरीर रक्तसे भीग गये थे॥ १॥

निरीक्षमाणास्तु वयं परे चायोधनं शनैः।
अपयाता महाराज ग्लानिं प्राप्ता विचेतसः॥ २ ॥

महाराज! हम और शत्रुपक्षके लोग युद्धस्थलको देखते हुए धीरे-धीरे वहाँसे हट गये। पाण्डव-दलके लोग अत्यन्त शोकग्रस्त हो अचेत हो रहे थे॥ २॥

ततो निशाया दिवसस्य चाशिवः
शिवारुतैः संधिरवर्तताद्भुतः।
कुशेशयापीडनिभे दिवाकरे
विलम्बमानेऽस्तमुपेत्य पर्वतम्॥ ३ ॥

उस समय जब सूर्य अस्ताचलपर पहुँचकर ढल रहे थे, कमलनिर्मित मुकुटके समान जान पड़ते थे। दिन और रात्रिकी संधिरूप वह अद्भुत संध्या सियारिनोंके भयंकर शब्दोंसे अमङ्गलमयी प्रतीत हो रही थी॥ ३॥

वरासिशक्त्यृष्टिवरूथचर्मणां
विभूषणानां च समाक्षिपन् प्रभाः।
दिवं च भूमिं च समानयन्निव
प्रियां तनुं भानुरुपैति पावकम्॥ ४ ॥

सूर्यदेव श्रेष्ठ तलवार, शक्ति, ऋष्टि, वरूथ, ढाल और आभूषणोंकी प्रभाको छीनते तथा आकाश और पृथ्वीको समान अवस्थामें लाते हुए-से अपने प्रिय शरीर—अग्निमें प्रवेश कर रहे थे॥ ४॥

महाभ्रकूटाचलशृङ्गसंनिभै-
र्गजैरनेकैरिव वज्रपातितैः।
स वैजयन्त्यङ्कुशवर्मयन्तृभि-
र्निपातितैर्नष्टगतिश्चिता क्षितिः॥ ५ ॥

महान् मेघोंके समुदाय तथा पर्वतशिखरोंके समान विशालकाय बहुसंख्यक हाथी इस प्रकार पड़े थे, मानो वज्रसे मार गिराये गये हों। वैजयन्ती पताका, अङ्कुश, कवच और महावतोंसहित धराशायी किये गये उन गजराजोंकी लाशोंसे सारी धरती पट गयी थी, जिसके कारण वहाँ चलने-फिरनेका मार्ग बंद हो गया था॥ ५॥

हतेश्वरैश्चूर्णितपत्त्युपस्करै-
र्हताश्वसूतैर्विपताककेतुभिः।
महारथैर्भूः शुशुभे विचूर्णितैः
पुरैरिवामित्रहतैर्नराधिप॥ ६ ॥

नरेश्वर! शत्रुओंके द्वारा तहस-नहस किये गिये विशाल नगरोंके समान बड़े-बड़े रथ चूर-चूर होकर गिरे थे। उनके घोड़े और सारथि मार दिये गये थे तथा ध्वजा-पताकाएँ नष्ट कर दी गयी थीं। इसी प्रकार उनके सवार मरे पड़े थे, पैदल सैनिक तथा युद्धसम्बन्धी अन्य उपकरण चूर-चूर हो गये थे। इन सबके द्वारा उस रणभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही थी॥

रथाश्ववृन्दैः सह सादिभिर्हतैः
प्रविद्धभाण्डाभरणैः पृथग्विधैः।
निरस्तजिह्वादशनान्त्रलोचनै-
र्धरा बभौ घोरविरूपदर्शना॥ ७ ॥

रथों और अश्वोंके समूह सवारोंके साथ नष्ट हो गये थे। भिन्न-भिन्न प्रकारके भाण्ड और आभूषण छिन्न-भिन्न होकर पड़े थे। मनुष्यों और पशुओंकी जिह्वा, दाँत, आँत और आँखें बाहर निकल आयी थीं। इन सबसे वहाँकी भूमि अत्यन्त घोर और विकराल दिखायी देती थी॥ ७॥

प्रविद्धवर्माभरणाम्बरायुधा
विपन्नहस्त्यश्वरथानुगा नराः।
महार्हशय्यास्तरणोचितास्तदा
क्षितावनाथा इव शेरते हताः॥ ८ ॥

योद्धाओंके कवच, आभूषण, वस्त्र और आयुध छिन्न-भिन्न हो गये। हाथी, घोड़े तथा रथोंका अनुसरण करनेवाले पैदल मनुष्य अपने प्राण खोकर पड़े थे। जो राजा और राजकुमार बहुमूल्य शय्याओं तथा बिछौनोंपर शयन करनेके योग्य थे, वे ही उस समय मारे जाकर अनाथकी भाँति पृथ्वीपर पड़े थे॥

अतीव हृष्टाः श्वशृगालवायसा
बकाः सुपर्णाश्च वृकास्तरक्षवः।
वयांस्यसृक्पान्यथ रक्षसां गणाः
पिशाचसंघाश्च सुदारुणा रणे॥ ९ ॥

कुत्ते, सियार, कौए, बगले, गरुड़, भेड़िये, तेंदुए, रक्त पीनेवाले पक्षी, राक्षसोंके समुदाय तथा अत्यन्त भयंकर पिशाचगण उस रणभूमिमें बहुत प्रसन्न हो रहे थे॥ ९॥

त्वचो विनिर्भिद्य पिबन् वसामसृक्
तथैव मज्जाः पिशितानि चाश्नुवन्।
वपां विलुम्पन्ति हसन्ति गान्ति च
प्रकर्षमाणाः कुणपान्यनेकशः॥ १०॥

वे मृतकोंकी त्वचा विदीर्ण करके उनके वसा तथा रक्तको पी रहे थे, मज्जा और मांस खा रहे थे, चर्बियोंको काटकर चबा लेते थे तथा बहुत-से मृतकोंको इधर-उधर खींचते हुए वे हँसते और गीत गाते थे ॥ १० ॥

शरीरसंघातवहा ह्यसृग्जला
रथोडुपा कुञ्जरशैलसङ्कटा।
मनुष्यशीर्षोपलमांसकर्दमा
प्रविद्धनानाविधशस्त्रमालिनी ॥ ११ ॥
भयावहा वैतरणीव दुस्तरा
प्रवर्तिता योधवरैस्तदा नदी।
उवाह मध्येन रणाजिरे भृशं
भयावहा जीवमृतप्रवाहिनी ॥ १२ ॥

उस समय श्रेष्ठ योद्धाओंने रणभूमिमें रक्तकी नदी बहा दी, जो वैतरणीके समान दुष्कर एवं भयंकर प्रतीत होती थी। उसमें जलकी जगह रक्तकी ही धारा बहती थी। ढेर-के-ढेर शरीर उसमें बह रहे थे। उसमें तैरते हुए रथ नावके समान जान पड़ते थे। हाथियोंके शरीर वहाँ पर्वतकी चट्टानों-के समान व्याप्त हो रहे थे। मनुष्योंकी खोपड़ियाँ प्रस्तर-खण्डोंके समान और मांस कीचड़के समान जान पड़ते थे। वहाँ टूटे-फूटे पड़े हुए नाना प्रकारके शस्त्रसमूह मालाओंके समान प्रतीत होते थे। वह अत्यन्त भयंकर नदी रणक्षेत्रके मध्यमागमें बहती और मृतकों तथा जीवितोंको भी बहा ले जाती थी ॥ ११-१२ ॥

पिबन्ति चाश्नन्ति च यत्र दुर्दृशाः
पिशाचसंघास्तु नदन्ति भैरवाः।
सुनन्दिताः प्राणभृतां क्षयङ्कराः
समानभक्षाः श्वसृगालपक्षिणः ॥ १३ ॥

जिनकी ओर देखना भी कठिन था, ऐसे भयंकर पिशाचसमूह वहाँ खाते-पीते और गर्जना करते थे। समस्त प्राणियोंका विनाश करनेवाले वे पिशाच बहुत ही प्रसन्न थे। कुत्तों, सियारों और पक्षियोंको भी समानरूपसे भोजनसामग्री प्राप्त हुई थी ॥ १३ ॥

तथा तदायोधनमुग्रदर्शनं
निशामुखे पितृपतिराष्ट्रवर्धनम्।
निरीक्षमाणाः शनकैर्जहुर्नराः
समुत्थिता नृत्तकबन्धसंकुलम् ॥ १४ ॥

प्रदोषकालमें यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाली वह युद्धभूमि बड़ी भयंकर दिखायी देती थी। वहाँ सब ओर नाचते हुए कबन्ध (धड़) व्याप्त हो रहे थे। यह सब देखते हुए उभय पक्षके योद्धाओंने वहाँसे धीरे-धीरे चलकर उस युद्धस्थलको त्याग दिया ॥ १४ ॥

अपेतविध्वस्तमहार्हभूषणं
निपातितं शक्रसमं महाबलम्।
रणेऽभिमन्युं ददृशुस्तदा जना
व्यपोढहव्यं सदसीव पावकम् ॥ १५ ॥

उस समय लोगोंने देखा, इन्द्रके समान महाबली अभिमन्यु रणक्षेत्रमें गिरा दिया गया है। उसके बहुमूल्य आभूषण छिन्न-भिन्न होकर शरीरसे दूर जा पड़े हैं और वह यज्ञवेदीपर हविष्यरहित अग्निके समान निस्तेज हो गया है ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि तृतीयदिवसावहारे समरभूमिवर्णने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें तीसरे दिनके युद्धमें सेनाके शिबिरमें प्रस्थान करते समय समरभूमिका वर्णनविषयक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका विलाप

संजय उवाच

हते तस्मिन् महावीर्ये सौभद्रे रथयूथपे।
विमुक्तरथसंनाहाः सर्वे निक्षिप्तकार्मुकाः ॥ १ ॥
उपोपविष्टा राजानं परिवार्य युधिष्ठिरम्।
तदेव युद्धं ध्यायन्तः सौभद्रगतमानसाः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! महापराक्रमी रथयूथपति सुभद्राकुमार अभिमन्युके मारे जानेपर समस्त पाण्डव महारथी रथ और कवचका त्याग कर और धनुषको नीचे डालकर राजा युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेरकर उनके पास बैठ गये। उन सबका मन सुभद्राकुमार अभिमन्युमें ही लगा था और वे उसी युद्धका चिन्तन कर रहे थे ॥ १-२ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा विललाप सुदुःखितः।
अभिमन्यौ हते वीरे भ्रातुः पुत्रे महारथे ॥ ३ ॥

उस समय राजा युधिष्ठिर अपने भाईके वीर पुत्र महारथी अभिमन्युके मारे जानेके कारण अत्यन्त दुखी हो विलाप करने लगे—॥ ३ ॥

(एष जित्वा कृपं शल्यं राजानं च सुयोधनम्।
द्रोणं द्रौणिं महेष्वासं तथैवान्यान् महारथान् ॥)
द्रोणानीकमसम्बाधं मम प्रियचिकीर्षया।
(हत्वा शत्रुगणान् वीरानेष शेते निपातितः।
कृतास्त्रान् युद्धकुशलान् महेष्वासान् महारथान् ॥
कुलशीलगुणैर्युक्ताञ्छूरान् विख्यातपौरुषान्।

द्रोणेन विहितं व्यूहमभेद्यममरैरपि ॥
अदृष्टपूर्वमस्माभिः चक्रं चक्रायुधप्रियः ।)
भित्त्वा व्यूहं प्रविष्टोऽसौ गोमध्यमिव केसरी ॥ ४ ॥

'अहो ! कृपाचार्य, शल्य, राजा दुर्योधन, द्रोणाचार्य, महाधनुर्धर अश्वत्थामा तथा अन्य महारथियोंको जीतकर, मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे द्रोणाचार्यके निर्बाध सैन्यव्यूहको विनष्ट करके वीर शत्रुसमूहोंका संहार करनेके पश्चात् यह पुत्र अभिमन्यु मार गिराया गया और अब रणक्षेत्रमें सो रहा है ! जो अस्त्रविद्याके विद्वान्, युद्धकुशल, कुल-शील और गुणोंसे युक्त, शूरवीर तथा अपने पराक्रमके लिये प्रसिद्ध थे, उन महाधनुर्धर महारथियोंको परास्त करके देवताओंके लिये भी जिसका भेदन करना असम्भव है तथा हमने जिसे पहले कभी देखातक नहीं था, उस द्रोणनिर्मित चक्रव्यूहका भेदन करके चक्रधारी श्रीकृष्णका प्यारा भानजा वह अभिमन्यु उसके भीतर उसी प्रकार प्रवेश कर गया, जैसे सिंह गौओंके झुंडमें घुस जाता है ॥ ४ ॥

(विक्रीडितं रणे तेन निघ्नता वै परान् वरान् ।)
यस्य शूरा महेष्वासाः प्रत्यनीकगता रणे ।
प्रभग्ना विनिवर्तन्ते कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ ५ ॥

'उसने रणक्षेत्रमें प्रमुख-प्रमुख शत्रुवीरोंका वध करते हुए अद्भुत रणक्रीडा की थी। युद्धमें उसके सामने जानेपर शत्रुपक्षके अस्त्रविद्याविशारद युद्धदुर्मद और महान् धनुर्धर शूरवीर भी हतोत्साह हो भाग खड़े होते थे ॥ ५ ॥

अत्यन्तशत्रुरस्माकं येन दुःशासनः शरैः ।
क्षिप्रं ह्यभिमुखः संख्ये विसंज्ञो विमुखीकृतः ॥ ६ ॥
स तीर्त्वा दुस्तरं वीरो द्रोणानीकमहार्णवम् ।
प्राप्य दौःशासनिं कार्ष्णिः प्राप्तो वैवस्वतक्षयम् ॥ ७ ॥

'जिस वीर अर्जुनकुमारने युद्धस्थलमें हमारे अत्यन्त शत्रु दुःशासनको सामने आनेपर शीघ्र ही अपने बाणोंसे अचेत करके भगा दिया, वही महासागरके समान दुस्तर द्रोण-सेनाको पार करके भी दुःशासनपुत्रके पास जाकर यमलोकमें पहुँच गया ॥ ६-७ ॥

कथं द्रक्ष्यामि कौन्तेयं सौभद्रे निहतेऽर्जुनम् ।
सुभद्रां वा महाभागां प्रियं पुत्रमपश्यतीम् ॥ ८ ॥

'सुभद्राकुमार अभिमन्युके मार दिये जानेपर अब मैं कुन्तीकुमार अर्जुनकी ओर आँख उठाकर कैसे देखूँगा ? अथवा अपने प्रियपुत्रको अब नहीं देख पानेवाली महाभागा सुभद्राके सामने कैसे जाऊँगा ? ॥ ८ ॥

किंस्विद् वयमपेतार्थमश्लिष्टमसमञ्जसम् ।
तावुभौ प्रतिवक्ष्यामो हृषीकेशधनंजयौ ॥ ९ ॥

'हाय ! हमलोग भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंके सामने किस प्रकार यह अनर्थपूर्ण, असंगत और अनुचित वृत्तान्त कह सकेंगे ॥ ९ ॥

अहमेव सुभद्रायाः केशवार्जुनयोरपि ।
प्रियकामो जयाकाङ्क्षी कृतवानिदमप्रियम् ॥ १० ॥

'मैंने ही अपने प्रिय कार्यकी इच्छा, विजयकी अभिलाषा रखकर सुभद्रा, श्रीकृष्ण और अर्जुनका यह अप्रिय कार्य किया है ॥ १० ॥

न लुब्धो बुध्यते दोषाँल्लोभान्मोहात् प्रवर्तते ।
मधुलिप्सुर्हि नापश्यं प्रपातमहमीदृशम् ॥ ११ ॥

'लोभी मनुष्य किसी कार्यके दोषको नहीं समझता। वह लोभ और मोहके वशीभूत होकर उसमें प्रवृत्त हो जाता है। मैंने मधुके समान मधुर लगनेवाले राज्यको पानेकी लालसा रखकर यह नहीं देखा कि इसमें ऐसे भयंकर पतनका भय है ॥ ११ ॥

यो हि भोज्ये पुरस्कार्यो यानेषु शयनेषु च ।
भूषणेषु च सोऽस्माभिर्बालो युधि पुरस्कृतः ॥ १२ ॥

'हाय ! जिस सुकुमार बालकको भोजन और शयन करने, सवारीपर चलने तथा भूषण, वस्त्र पहननेमें आगे रखना चाहिये था, उसे हमलोगोंने युद्धमें आगे कर दिया ॥ १२ ॥

कथं हि बालस्तरुणो युद्धानामविशारदः ।
सदश्व इव सम्बाधे विषमे क्षेममर्हति ॥ १३ ॥

'वह तरुण कुमार अभी बालक था। युद्धकी कलामें पूरा प्रवीण नहीं हुआ था । फिर गहन वनमें फँसे हुए सुन्दर अश्वकी भाँति वह उस विषम संग्राममें कैसे सकुशल रह सकता था ? ॥ १३ ॥

नो चेद्धि वयमप्येनं महीमनु शयीमहि ।
बीभत्सोः कोपदीप्तस्य दग्धाः कृपणचक्षुषा ॥ १४ ॥

'यदि हमलोग अभिमन्युके साथ ही उस रणक्षेत्रमें शयन न कर सके तो अब क्रोधसे उत्तेजित हुए अर्जुनके शोकाकुल नेत्रोंसे हमें अवश्य दग्ध होना पड़ेगा ॥ १४ ॥

अलुब्धो मतिमान् ह्रीमान् क्षमावान् रूपवान् बली ।
वपुष्मान् मानकृद् वीरः प्रियः सत्यपराक्रमः ॥ १५ ॥
यस्य श्लाघन्ति विबुधाः कर्माण्यूर्जितकर्मणः ।
निवातकवचाञ्जघ्ने कालकेयांश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥
महेन्द्रशत्रवो येन हिरण्यपुरवासिनः ।
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण पौलोमाः सगणा हताः ॥ १७ ॥
परेभ्योऽप्यभयार्थिभ्यो यो ददात्यभयं विभुः ।
तस्यास्माभिर्न शकितस्त्रातुमप्यात्मजो बली ॥ १८ ॥

'जो लोभरहित, बुद्धिमान्, लज्जाशील, क्षमावान्, रूपवान्, बलवान्, सुन्दर शरीरधारी, दूसरोंको मान देनेवाले, प्रीतिपात्र, वीर तथा सत्यपराक्रमी हैं, जिनके कर्मोंकी देवतालोग भी प्रशंसा करते हैं, जिनके कर्म सबल एवं महान् हैं,

जिन पराक्रमी वीरने निवातकवचों तथा कालकेय नामक दैत्योंका विनाश किया था, जिन्होंने आँखोंकी पलक मारते-मारते हिरण्यपुरनिवासी इन्द्रशत्रु पौलोम नामक दानवोंका उनके गणोंसहित संहार कर डाला था तथा जो सामर्थ्यशाली अर्जुन अभयकी इच्छा रखनेवाले शत्रुओंको भी अभय-दान देते हैं, उन्हींके बलवान् पुत्रकी भी हमलोग रक्षा नहीं कर सके ॥ १५-१८ ॥

भयं तु सुमहत् प्राप्तं धार्तराष्ट्रान् महाबलान् ।
पार्थः पुत्रवधात् क्रुद्धः कौरवाञ्शोषयिष्यति ॥ १९ ॥

'अहो ! महाबली धृतराष्ट्रपुत्रोंपर बड़ा भारी भय आ पहुँचा है; क्योंकि अपने पुत्रके वधसे कुपित हुए कुन्तीकुमार अर्जुन कौरवोंको सोख लेंगे—उनका मूलोच्छेद कर डालेंगे ॥ १९ ॥

क्षुद्रः क्षुद्रसहायश्च स्वपक्षक्षयमातुरः ।
व्यक्तं दुर्योधनो दृष्ट्वा शोचन् हास्यति जीवितम् ॥ २० ॥

'दुर्योधन नीच है । उसके सहायक भी ओछे स्वभावके हैं, अतः वह निश्चय ही (अर्जुनके हाथों) अपने पक्षका विनाश देखकर शोकसे व्याकुल हो जीवनका परित्याग कर देगा ॥ २० ॥

न मे जयः प्रीतिकरो न राज्यं
न चामरत्वं न सुरैः सलोकता ।
इमं समीक्ष्याप्रतिवीर्यपौरुषं
निपातितं देववरात्मजात्मजम् ॥ २१ ॥

'जिसके बल और पुरुषार्थकी कहीं तुलना नहीं थी, देवेन्द्रकुमार अर्जुनके पुत्र इस अभिमन्युको रणक्षेत्रमें मारा गया देख अब मुझे विजय, राज्य, अमरत्व तथा देवलोककी प्राप्ति भी प्रसन्न नहीं कर सकती' ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि युधिष्ठिरप्रलापे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें युधिष्ठिरप्रलापविषयक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४ श्लोक मिलाकर कुल २५ श्लोक हैं)

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

विलाप करते हुए युधिष्ठिरके पास व्यासजीका आगमन और अकम्पन-नारद-संवादकी प्रस्तावना करते हुए मृत्युकी उत्पत्तिका प्रसंग आरम्भ करना

संजय उवाच

अथैनं विलपन्तं तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
कृष्णद्वैपायनस्तत्र आजगाम महानृषिः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार विलाप करते हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके पास वहाँ महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी आये ॥ १ ॥

अर्चयित्वा यथान्यायमुपविष्टं युधिष्ठिरः ।
अब्रवीच्छोकसंतप्तो भ्रातुः पुत्रवधेन च ॥ २ ॥

उस समय युधिष्ठिरने उनकी यथायोग्य पूजा की और जब वे बैठ गये, तब भतीजेके वधसे शोकसंतप्त हो युधिष्ठिर उनसे इस प्रकार बोले—॥ २ ॥

अधर्मयुक्तैर्बहुभिः परिवार्य महारथैः ।
युध्यमानो महेष्वासैः सौभद्रो निहतो रणे ॥ ३ ॥

'मुने ! बहुत-से अधर्मपरायण महाधनुर्धर महारथियोंने चारों ओरसे घेरकर रणक्षेत्रमें युद्ध करते हुए सुभद्राकुमार अभिमन्युको असहायावस्थामें मार डाला है ॥ ३ ॥

बालश्च बालबुद्धिश्च सौभद्रः परवीरहा ।
अनुपायेन संग्रामे युध्यमानो विशेषतः ॥ ४ ॥

'शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला अभिमन्यु अभी बालक था; बालोचित बुद्धिसे युक्त था । विशेषतः संग्राममें वह उपयुक्त साधनोंसे रहित होकर युद्ध कर रहा था ॥ ४ ॥

मया प्रोक्तः स संग्रामे द्वारं संजनयस्व नः ।
प्रविष्टेऽभ्यन्तरे तस्मिन् सैन्धवेन निवारिताः ॥ ५ ॥

'मैंने युद्धस्थलमें उससे कहा था कि तुम व्यूहमें हमारे प्रवेशके लिये द्वार बना दो । तब वह द्वार बनाकर भीतर प्रविष्ट हो गया और जब हमलोग उसी द्वारसे व्यूहमें प्रवेश करने लगे, उस समय सिंधुराज जयद्रथने हमें रोक दिया ॥

ननु नाम समं युद्धमेष्टव्यं युद्धजीविभिः ।
इदं चैवासमं युद्धमीदृशं यत् कृतं परैः ॥ ६ ॥

'युद्धजीवी क्षत्रियोंको अपने समान साधनसम्पन्न वीरके साथ युद्ध करनेकी इच्छा करनी चाहिये । शत्रुओंने जो अभिमन्युके साथ इस प्रकार युद्ध किया है, यह कदापि समान नहीं है ॥ ६ ॥

तेनास्मि भृशसंतप्तः शोकबाष्पसमाकुलः ।
शमं नैवाधिगच्छामि चिन्तयानः पुनः पुनः ॥ ७ ॥

'इसीलिये मैं अत्यन्त संतप्त हूँ, शोकाश्रुओंसे मेरे नेत्र भरे हुए हैं । मैं बारंबार चिन्तामग्न होकर शान्ति नहीं पा रहा हूँ' ॥ ७ ॥

संजय उवाच

तं तथा विलपन्तं वै शोकव्याकुलमानसम् ।
उवाच भगवान् व्यासो युधिष्ठिरमिदं वचः ॥ ८ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार शोकसे व्याकुल-

चित्त होकर विलाप करते हुए राजा युधिष्ठिरसे भगवान् वेदव्यासने इस प्रकार कहा ॥ ८ ॥

व्यास उवाच

युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
व्यसनेषु न मुह्यन्ति त्वादृशा भरतर्षभ ॥ ९ ॥

व्यासजी बोले—सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशेषज्ञ, परम बुद्धिमान्, भरतकुलभूषण युधिष्ठिर ! तुम्हारे-जैसे पुरुष संकट-के समय मोहित नहीं होते हैं ॥ ९ ॥

स्वर्गमेष गतः शूरः शत्रून् हत्वा बहून् रणे ।
अबालसदृशं कर्म कृत्वा वै पुरुषोत्तमः ॥ १० ॥

यह पुरुषोत्तम अभिमन्यु शूरवीर था । इसने रणक्षेत्रमें अबालोचित पराक्रम करके बहुत-से शत्रुओंको मारकर स्वर्ग-लोककी यात्रा की है ॥ १० ॥

अनतिक्रमणीयो वै विधिरेष युधिष्ठिर ।
देवदानवगन्धर्वान् मृत्युर्हरति भारत ॥ ११ ॥

भरतनन्दन युधिष्ठिर! यह विधाताका विधान है । इसका कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता । मृत्यु देवताओं, दानवों तथा गन्धर्वोंके भी प्राण हर लेती है ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाच

इमे वै पृथिवीपालाः शेरते पृथिवीतले ।
निहताः पृतनामध्ये मृतसंज्ञा महाबलाः ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर बोले—मुने ! ये महाबली भूपालगण सेनाके मध्यमें मारे जाकर 'मृत' नाम धारण करके पृथ्वीपर सो रहे हैं ॥ १२ ॥

नागायुतबलाश्चान्ये वायुवेगबलास्तथा ।
त एते निहताः संख्ये तुल्यरूपा नरैर्नराः ॥ १३ ॥

इनमेंसे कितने ही राजा दस हजार हाथियोंके समान बलवान् थे तथा कितनोंके वेग और बल वायुके समान थे । ये सब मनुष्य एक समान रूपवाले हैं, जो दूसरे मनुष्योंद्वारा युद्धमें मार डाले गये हैं ॥ १३ ॥

नैषां पश्यामि हन्तारं प्राणिनां संयुगे क्वचित् ।
विक्रमेणोपसम्पन्नास्तपोबलसमन्विताः ॥ १४ ॥

इन प्राणशक्तिसम्पन्न वीरोंका युद्धमें कहीं कोई वध करनेवाला मुझे नहीं दिखायी देता था; क्योंकि ये सबके सब पराक्रमसे सम्पन्न और तपोबलसे संयुक्त थे ॥ १४ ॥

जेतव्यमिति चान्योन्यं येषां नित्यं हृदि स्थितम् ।
अथ चेमे हताः प्राज्ञाः शेरते विगतायुषः ॥ १५ ॥

जिनके हृदयमें सदा एक-दूसरेको जीतनेकी अभिलाषा रहती थी, वे ही ये बुद्धिमान् नरेश आयु समाप्त होनेपर युद्ध-में मारे जाकर धरतीपर सो रहे हैं ॥ १५ ॥

मृता इति च शब्दोऽयं वर्तते च ततोऽर्थवत् ।
इमे मृता महीपालाः प्रायशो भीमविक्रमाः ॥ १६ ॥

अतः इनके विषयमें 'मृत' शब्द सार्थक हो रहा है । ये भयंकर पराक्रमी भूमिपाल प्रायः 'मर गये' कहे जाते हैं ॥ १६ ॥

निश्चेष्टा निरभीमानाः शूराः शत्रुवशंगताः ।
राजपुत्राश्च संरब्धा वैश्वानरमुखं गताः ॥ १७ ॥

ये शूरवीर राजकुमार चेष्टा और अभिमानसे रहित हो शत्रुओंके अधीन हो गये थे । वे कुपित होकर बाणोंकी आगमें कूद पड़े थे ॥ १७ ॥

अत्र मे संशयः प्राप्तः कुतः संज्ञा मृता इति ।
कस्य मृत्युः कुतो मृत्युः केन मृत्युरिमाः प्रजाः ॥ १८ ॥
हरत्यमरसंकाश तन्मे ब्रूहि पितामह ।

मुझे संदेह होता है कि इन्हें 'मर गये' ऐसा क्यों कहा जाता है ? मृत्यु किसकी होती है ? किस निमित्तसे होती है ? तथा वह किसलिये इन प्रजाओं (प्राणियों) का अपहरण करती है ? देवतुल्य पितामह ! ये सब बातें आप मुझे बताइये॥

संजय उवाच

तं तथा परिपृच्छन्तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
आश्वासनमिदं वाक्यमुवाच भगवानृषिः ॥ १९ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार पूछते हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे मुनिवर भगवान् व्यासने यह आश्वासन-जनक वचन कहा ॥ १९ ॥

व्यास उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
अकम्पनस्य कथितं नारदेन पुरा नृप ॥ २० ॥

व्यासजी बोले—नरेश्वर ! जानकार लोग इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासका दृष्टान्त दिया करते हैं । वह इतिहास पूर्वकालमें नारदजीने राजा अकम्पनसे कहा था ॥ २० ॥

स चापि राजा राजेन्द्र पुत्रव्यसनमुत्तमम् ।
अप्रसह्यतमं लोके प्राप्तवानिति मे मतिः ॥ २१ ॥

राजेन्द्र ! राजा अकम्पनको भी अपने पुत्रकी मृत्युका बड़ा भारी शोक प्राप्त हुआ था, जो मेरे विचारमें सबसे अधिक असह्य दुःख है ॥ २१ ॥

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि मृत्योः प्रभवमुत्तमम् ।
ततस्त्वं मोक्ष्यसे दुःखात् स्नेहबन्धनसंश्रयात् ॥ २२ ॥

इसलिये मैं तुम्हें मृत्युकी उत्पत्तिका उत्तम वृत्तान्त बताऊँगा, उसे सुनकर तुम स्नेह-बन्धनके कारण होनेवाले दुःखसे छूट जाओगे ॥ २२ ॥

समस्तपापराशिघ्नं शृणु कीर्तयतो मम ।
धन्यमाख्यानमायुष्यं शोकघ्नं पुष्टिवर्धनम् ॥ २३ ॥
पवित्रमरिसंघघ्नं मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
यथैव वेदाध्ययनमुपाख्यानमिदं तथा ॥ २४ ॥

यह उपाख्यान समस्त पापराशिका नाश करनेवाला है ।

मैं इसका वर्णन करता हूँ, सुनो। यह धन और आयुको बढ़ानेवाला, शोकनाशक, पुष्टिवर्धक, पवित्र, शत्रुसमूहका निवारक और मङ्गलकारी कार्योंमें सबसे अधिक मङ्गलकारक है। जैसे वेदोंका स्वाध्याय पुण्यदायक होता है, उसी प्रकार यह उपाख्यान भी है ॥ २३-२४ ॥

श्रवणीयं महाराज प्रातर्नित्यं नृपोत्तमैः।
पुत्रानायुष्मतो राज्यमीहमानैः श्रियं तथा ॥ २५ ॥

महाराज! दीर्घायु पुत्र, राज्य और धन-सम्पत्ति चाहनेवाले श्रेष्ठ राजाओंको प्रतिदिन प्रातःकाल इस इतिहासका श्रवण करना चाहिये ॥ २५ ॥

पुरा कृतयुगे तात आसीद् राजा ह्यकम्पनः।
स शत्रुवशमापन्नो मध्ये संग्राममूर्धनि ॥ २६ ॥

तात! प्राचीनकालकी बात है, सत्ययुगमें अकम्पन नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे। वे युद्धमें शत्रुओंके वशमें पड़ गये ॥ २६ ॥

तस्य पुत्रो हरिर्नाम नारायणसमो बले।
श्रीमान् कृतास्त्रो मेधावी युधि शक्रोपमो बली ॥ २७ ॥

राजाके एक पुत्र था, जिसका नाम था हरि। वह बलमें भगवान् नारायणके समान था। वह अस्त्रविद्यामें पारंगत, मेधावी, श्रीसम्पन्न तथा युद्धमें इन्द्रके तुल्य पराक्रमी था ॥

स शत्रुभिः परिवृतो बहुधा रणमूर्धनि।
व्यस्यन् बाणसहस्राणि योधेषु च गजेषु च ॥ २८ ॥

वह रणक्षेत्रमें शत्रुओंद्वारा घिर जानेपर शत्रुपक्षके योद्धाओं और गजारोहियोंपर बारंबार सहस्रों बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २८ ॥

स कर्म दुष्करं कृत्वा संग्रामे शत्रुतापनः।
शत्रुभिर्निहतः संख्ये पृतनायां युधिष्ठिर ॥ २९ ॥

युधिष्ठिर! वह शत्रुओंको संताप देनेवाला वीर राजकुमार संग्राममें दुष्कर पराक्रम दिखाकर अन्तमें शत्रुओंके हाथसे वहाँ सेनाके बीचमें मारा गया ॥ २९ ॥

स राजा प्रेतकृत्यानि तस्य कृत्वा शुचान्वितः।
शोचन्नहनि रात्रौ च नालभत् सुखमात्मनः ॥ ३० ॥

राजा अकम्पनको बड़ा शोक हुआ। वे पुत्रका अन्त्येष्टि संस्कार करके दिन-रात उसीके शोकमें मग्न रहने लगे। उनकी अन्तरात्माको (थोड़ा-सा भी) सुख नहीं मिला ॥ ३० ॥

तस्य शोकं विदित्वा तु पुत्रव्यसनसम्भवम्।
आजगामाथ देवर्षिर्नारदोऽस्य समीपतः ॥ ३१ ॥

राजा अकम्पनको अपने पुत्रकी मृत्युसे महान् शोक हो रहा है, यह जानकर देवर्षि नारद उनके समीप आये ॥ ३१ ॥

स तु राजा महाभागो दृष्ट्वा देवर्षिसत्तमम्।
पूजयित्वा यथान्यायं कथामकथयत् तदा ॥ ३२ ॥

उस समय महाभाग राजा अकम्पनने देवर्षिप्रवर नारदजीको आया देख उनकी यथायोग्य पूजा करके उनसे अपने पुत्रकी मृत्युका वृत्तान्त कहा ॥ ३२ ॥

तस्य सर्वं समाचष्ट यथावृत्तं नरेश्वरः।
शत्रुभिर्विजयं संख्ये पुत्रस्य च वधं तथा ॥ ३३ ॥

राजाने क्रमशः शत्रुओंकी विजय और युद्धस्थलमें अपने पुत्रके मारे जानेका सब समाचार उनसे ठीक-ठीक कह सुनाया ॥

मम पुत्रो महावीर्य इन्द्रविष्णुसमद्युतिः।
शत्रुभिर्बहुभिः संख्ये पराक्रम्य हतो बली ॥ ३४ ॥

(वे बोले—) 'देवर्षे! मेरा पुत्र इन्द्र और विष्णुके समान तेजस्वी, महापराक्रमी और बलवान् था; परंतु युद्धमें बहुत-से शत्रुओंने मिलकर एक साथ पराक्रम करके उसे मार डाला है ॥ ३४ ॥

क एष मृत्युर्भगवन् किंवीर्यबलपौरुषः।
एतदिच्छामि तत्त्वेन श्रोतुं मतिमतां वर ॥ ३५ ॥

'भगवन्! यह मृत्यु क्या है? इसका वीर्य, बल और पौरुष कैसा है? बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महर्षे! मैं यह सब यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ' ॥ ३५ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा नारदो वरदः प्रभुः।
आख्यानमिदमाचष्ट पुत्रशोकापहं महत् ॥ ३६ ॥

राजाकी यह बात सुनकर वर देनेमें समर्थ एवं प्रभावशाली नारदजीने यह पुत्रशोकनाशक उत्तम उपाख्यान कहना आरम्भ किया ॥ ३६ ॥

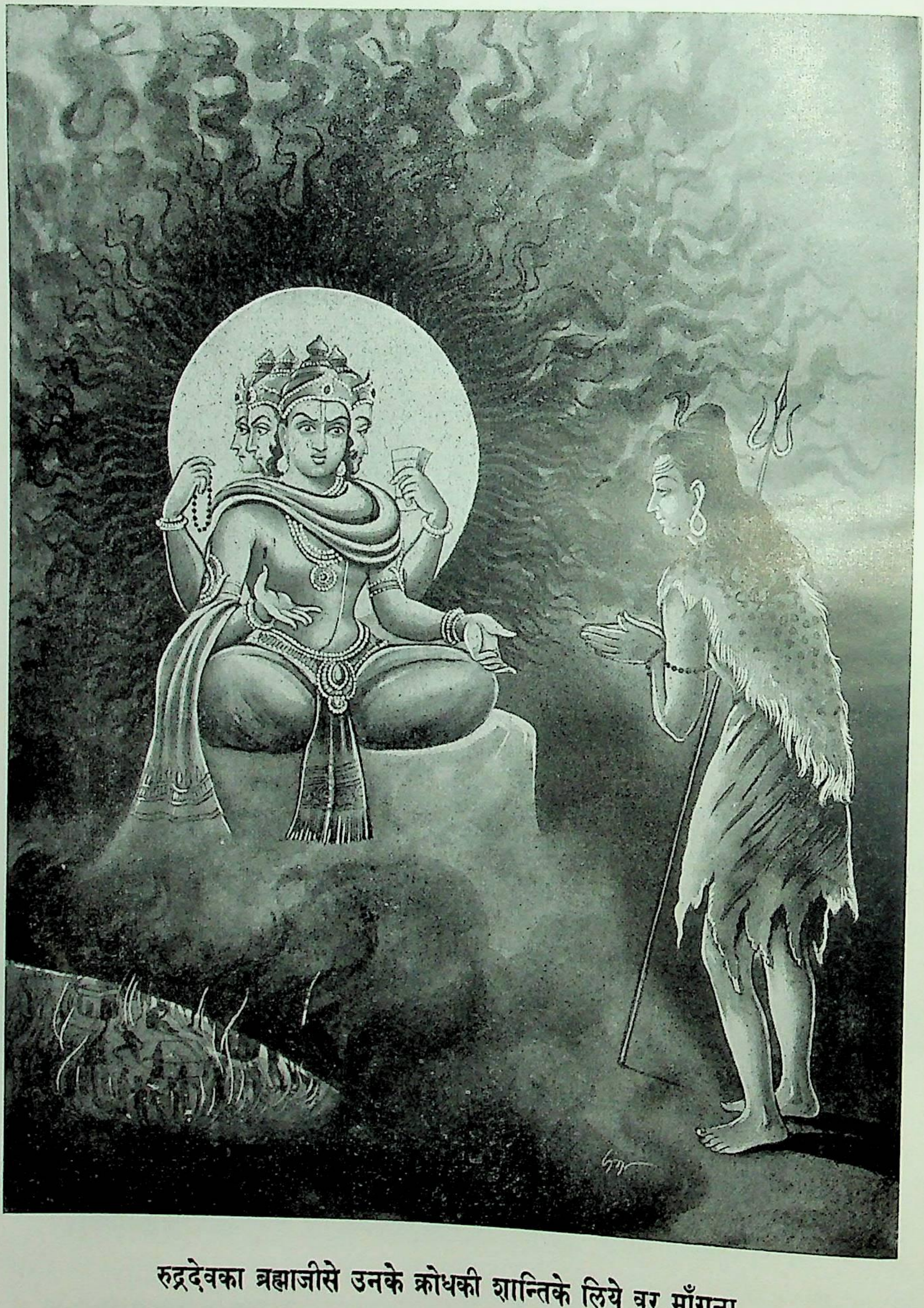
नारद उवाच

शृणु राजन् महाबाहो आख्यानं बहुविस्तरम्।
यथावृत्तं श्रुतं चैव मयापि वसुधाधिप ॥ ३७ ॥

नारदजी बोले—पृथ्वीपते! तुम्हारे पुत्रकी मृत्यु जिस प्रकार घटित हुई है, वह सब वृत्तान्त मैंने भी यथार्थरूपसे सुन लिया है। महाबाहु नरेश! अब मैं तुम्हारे सामने एक बहुत विस्तृत कथा आरम्भ करता हूँ। तुम ध्यान देकर सुनो ॥

प्रजाः सृष्ट्वा तदा ब्रह्मा आदिसर्गे पितामहः।
असंहृतं महातेजा दृष्ट्वा जगदिदं प्रभुः ॥ ३८ ॥
तस्य चिन्ता समुत्पन्ना संहारं प्रति पार्थिव।
चिन्तयन्न ह्यसौ वेद संहारं वसुधाधिप ॥ ३९ ॥

आदि सृष्टिके समय महातेजस्वी एवं शक्तिशाली पितामह ब्रह्माने जब प्रजावर्गकी सृष्टि की थी, उस समय संहारकी कोई व्यवस्था नहीं की थी, अतः इस सम्पूर्ण जगत्को प्राणियोंसे परिपूर्ण एवं मृत्युरहित देख प्राणियोंके संहारके लिये चिन्तित हो उठे। राजन्! पृथ्वीपते! बहुत सोचने-विचारनेपर भी ब्रह्माजीको प्राणियोंके संहारका कोई उपाय नहीं ज्ञात हो सका ॥ ३८-३९ ॥



रुद्रदेवका ब्रह्माजीसे उनके क्रोधकी शान्तिके लिये वर माँगना

तस्य रोषान्महाराज खेभ्योऽग्निरुदतिष्ठत।
तेन सर्वा दिशो व्याप्ताः सान्तर्देशा दिधक्षता ॥ ४० ॥

महाराज! उस समय क्रोधवश ब्रह्माजीके श्रवण-नेत्र आदि इन्द्रियोंसे अग्नि प्रकट हो गयी। वह अग्नि इस जगत्‌को दग्ध करनेकी इच्छासे सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओं (कोणों) में फैल गयी ॥ ४० ॥

ततो दिवं भुवं चैव ज्वालामालासमाकुलम्।
चराचरं जगत् सर्वं ददाह भगवान् प्रभुः ॥ ४१ ॥
ततो हतानि भूतानि चराणि स्थावराणि च।
महता क्रोधवेगेन त्रासयन्निव वीर्यवान् ॥ ४२ ॥

तदनन्तर आकाश और पृथ्वीमें सब ओर आगकी प्रचण्ड लपटें व्याप्त हो गयीं। दाह करनेमें समर्थ एवं अत्यन्त शक्तिशाली भगवान् अग्निदेव महान् क्रोधके वेगसे सबको त्रस्त-से करते हुए सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को दग्ध करने लगे। इससे बहुत-से स्थावर-जंगम प्राणी नष्ट हो गये॥

ततो रुद्रो जटी स्थाणुर्निशाचरपतिर्हरः।
जगाम शरणं देवं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥ ४३ ॥

तत्पश्चात् राक्षसोंके स्वामी जटाधारी दुःखहारी स्थाणु नामधारी भगवान् रुद्र परमेष्ठी भगवान् ब्रह्माजीकी शरणमें गये॥

तस्मिन्नापतिते स्थाणौ प्रजानां हितकाम्यया।
अब्रवीत् परमो देवो ज्वलन्निव महामुनिः ॥ ४४ ॥

प्रजावर्गके हितकी इच्छासे भगवान् रुद्रके आनेपर परमदेव महामुनि ब्रह्माजी अपने तेजसे प्रज्वलित होते हुए-से इस प्रकार बोले—॥ ४४ ॥

किं कुर्मः कामं कामार्ह कामाज्जातोऽसि पुत्रक।
करिष्यामि प्रियं सर्वं ब्रूहि स्थाणो यदिच्छसि ॥ ४५ ॥

'अपने अभीष्ट मनोरथको प्राप्त करने योग्य पुत्र! तुम मेरे मानसिक संकल्पसे उत्पन्न हुए हो। मैं तुम्हारी कौन-सी कामना पूर्ण करूँ? स्थाणो! तुम जो कुछ चाहते हो, बतलाओ। मैं तुम्हारा सम्पूर्ण प्रिय कार्य करूँगा' ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शंकर और ब्रह्माका संवाद, मृत्युकी उत्पत्ति तथा उसे समस्त प्रजाके संहारका कार्य सौंपा जाना

स्थाणुरुवाच

प्रजासर्गनिमित्तं हि कृतो यत्नस्त्वया विभो।
त्वया सृष्टाश्च वृद्धाश्च भूतग्रामाः पृथग्विधाः ॥ १ ॥

स्थाणु (रुद्रदेव) ने कहा—प्रभो! आपने प्रजाकी सृष्टिके लिये स्वयं ही यत्न किया है। आपने ही नाना प्रकारके प्राणिसमुदायकी सृष्टि एवं वृद्धि की है ॥ १ ॥

तास्तवेह पुनः क्रोधात् प्रजा दह्यन्ति सर्वशः।
ता दृष्ट्वा मम कारुण्यं प्रसीद भगवन् प्रभो ॥ २ ॥

आपकी वे ही सारी प्रजाएँ पुनः आपके ही क्रोधसे यहाँ दग्ध हो रही हैं। इससे उनके प्रति मेरे हृदयमें करुणा भर आयी है। अतः भगवन्! प्रभो! आप उन प्रजाओंपर कृपादृष्टि करके प्रसन्न होइये ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

संहर्तुं न च मे काम एतदेवं भवेदिति।
पृथिव्या हितकामं तु ततो मां मन्युराविशत् ॥ ३ ॥

ब्रह्माजी बोले—रुद्र! मेरी इच्छा यह नहीं है कि इस प्रकार इस जगत्‌का संहार हो। वसुधाके हितके लिये ही मेरे मनमें क्रोधका आवेश हुआ था ॥ ३ ॥

इयं हि मां सदा देवी भारार्ता समचूचुदत्।
संहारार्थं महादेव भारेणाभिहता सती ॥ ४ ॥

महादेव! इस पृथ्वीदेवीने भारसे पीड़ित होकर मुझे जगत्‌के संहारके लिये प्रेरित किया था। यह सती-साध्वी देवी महान् भारसे दबी हुई थी ॥ ४ ॥

ततोऽहं नाधिगच्छामि तथा बहुविधं तदा।
संहारमप्रमेयस्य ततो मां मन्युराविशत् ॥ ५ ॥

मैंने अनेक प्रकारसे इस अनन्त जगत्‌के संहारके उपायपर विचार किया, परंतु मुझे कोई उपाय सूझ न पड़ा। इसीलिये मुझमें क्रोधका आवेश हो गया ॥ ५ ॥

रुद्र उवाच

संहारार्थं प्रसीदस्व मा रुषो वसुधाधिप।
मा प्रजाः स्थावराश्चैव जंगमाश्च व्यनीनशः ॥ ६ ॥

रुद्रने कहा—वसुधाके स्वामी पितामह! आप रोष न कीजिये। जगत्‌का संहार बंद करनेके लिये प्रसन्न होइये। इन स्थावर-जङ्गम प्राणियोंका विनाश न कीजिये ॥

तव प्रसादाद् भगवन्निदं वर्तेत् त्रिधा जगत्।
अनागतमतीतं च यच्च सम्प्रति वर्तते ॥ ७ ॥

भगवन्! आपकी कृपासे यह जगत् भूत, भविष्य और वर्तमान—तीन रूपोंमें विभक्त हो जाय ॥ ७ ॥

भगवन् क्रोधसंदीप्तः क्रोधादग्निमवासृजत्।
स दहत्यश्मकूटानि द्रुमांश्च सरितस्तथा ॥ ८ ॥

प्रभो! आपने क्रोधसे प्रज्वलित होकर क्रोधपूर्वक जिस

अग्निकी सृष्टि की है, वह पर्वत-शिखरों, वृक्षों और सरिताओं-को दग्ध कर रही है ॥ ८ ॥

पल्वलानि च सर्वाणि सर्वांश्चैव तृणोलपान्।
स्थावरं जङ्गमं चैव निःशेषं कुरुते जगत् ॥ ९ ॥
तदेतद् भस्मसाद्भूतं जगत् स्थावरजङ्गमम्।
प्रसीद भगवन् स त्वं रोषो न स्याद् वरो मम ॥ १० ॥

यह समस्त छोटे-छोटे जलाशयों, सब प्रकारके तृण और लताओं तथा स्थावर और जङ्गम जगत्को सम्पूर्णरूपसे नष्ट कर रही है। इस प्रकार यह सारा चराचर जगत् जलकर भस्म हो गया। भगवन्! आप प्रसन्न होइये। आपके मनमें रोष न हो, यही मेरे लिये आपकी ओरसे वर प्राप्त हो॥९-१०॥

सर्वे हि सृष्टा नश्यन्ति तव देव कथंचन।
तस्मान्निवर्ततां तेजस्त्वय्येवेदं प्रलीयताम् ॥ ११ ॥

देव! आपके रचे हुए समस्त प्राणी किसी-न-किसी रूपमें नष्ट होते चले जा रहे हैं; अतः आपका यह तेजस्वरूप क्रोध जगत्के संहारसे निवृत्त हो आपमें ही विलीन हो जाय॥

तत् पश्य देव सुभृशं प्रजानां हितकाम्यया।
यथेमे प्राणिनः सर्वे निवर्तेरंस्तथा कुरु ॥ १२ ॥

प्रभो! आप प्रजावर्गके अत्यन्त हितकी इच्छासे इनकी ओर कृपापूर्ण दृष्टिसे देखिये, जिससे ये समस्त प्राणी नष्ट होनेसे बच जायँ, वैसा कीजिये ॥ १२ ॥

अभावं नेह गच्छेयुरुत्सन्नजननाः प्रजाः।
आदिदेव नियुक्तोऽस्मि त्वया लोकेषु लोककृत् ॥१३॥

संतानोंका नाश हो जानेसे इस जगत्के सम्पूर्ण प्राणियोंका अभाव न हो जाय। आदिदेव! आपने सम्पूर्ण लोकोंमें मुझे लोकस्रष्टाके पदपर नियुक्त किया है ॥ १३ ॥

मा विनश्येज्जगन्नाथ जगत् स्थावरजङ्गमम्।
प्रसादाभिमुखं देवं तस्मादेवं ब्रवीम्यहम् ॥१४॥

जगन्नाथ! यह चराचर जगत् नष्ट न हो, इसीलिये सदा कृपा करनेको उद्यत रहनेवाले प्रभुके सामने मैं ऐसी प्रार्थना कर रहा हूँ ॥ १४ ॥

नारद उवाच

श्रुत्वा हि वचनं देवः प्रजानां हितकारणे।
तेजः संधारयामास पुनरेवान्तरात्मनि ॥१५॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! प्रजाके हितके लिये महादेवका यह वचन सुनकर भगवान् ब्रह्माने पुनः अपनी अन्तरात्मामें ही उस तेज (क्रोध) को धारण कर लिया ॥

ततोऽग्निमुपसंहृत्य भगवाँल्लोकसत्कृतः।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च कथयामास वै प्रभुः ॥१६॥

तब विश्ववन्दित भगवान् ब्रह्माने उस अग्निका उपसंहार करके मनुष्योंके लिये प्रवृत्ति (कर्म) और निवृत्ति (ज्ञान) मार्गोंका उपदेश दिया ॥ १६ ॥

उपसंहरतस्तस्य तमग्निं रोषजं तथा।
प्रादुर्बभूव विश्वेभ्यो गोभ्यो नारी महात्मनः ॥१७॥
कृष्णरक्ता तथा पिङ्गरक्तजिह्वास्यलोचना।
कुण्डलाभ्यां च राजेन्द्र तप्ताभ्यां तप्तभूषणा ॥१८॥

उस क्रोधाग्निका उपसंहार करते समय महात्मा ब्रह्माजीकी सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे एक नारी प्रकट हुई, जो काले और लाल रंगकी थी। उसकी जिह्वा, मुख और नेत्र पीले और लाल रंगके थे। राजेन्द्र! वह तपाये हुए सोनेके कुण्डलोंसे सुशोभित थी और उसके सभी आभूषण तप्त सुवर्णके बने हुए थे ॥ १७-१८ ॥

सा निःसृत्य तथा खेभ्यो दक्षिणां दिशमाश्रिता।
स्मयमाना च सावेक्ष्य देवौ विश्वेश्वरावुभौ ॥१९॥

वह उनकी इन्द्रियोंसे निकलकर दक्षिण दिशामें खड़ी हुई और उन दोनों देवताओं एवं जगदीश्वरोंकी ओर देखकर मन्द-मन्द मुसकराने लगी ॥ १९ ॥

तामाहूय तदा देवो लोकादिनिधनेश्वरः।
(उक्तवान् मधुरं वाक्यं सान्त्वयित्वा पुनः पुनः।)
मृत्यो इति महीपाल जहि चेमाः प्रजा इति ॥२०॥

महीपाल! उस समय सम्पूर्ण लोकोंके आदि और अन्तके स्वामी ब्रह्माजीने उस नारीको अपने पास बुलाकर उसे बारंबार सान्त्वना देते हुए मधुर वाणीमें 'मृत्यो' (हे मृत्यु) कह करके पुकारा और कहा—'तू इन समस्त प्रजाओंका संहार कर ॥ २० ॥



त्वं हि संहारबुद्ध्याथ प्रादुर्भूता रुषो मम।
तस्मात् संहर सर्वास्त्वं प्रजाः सजडपण्डिताः ॥२१॥
मम त्वं हि नियोगेन ततः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि।

'देवि ! तू संहारबुद्धिसे मेरे रोषद्वारा प्रकट हुई है, इसलिये मूर्ख और पण्डित सभी प्रजाओंका संहार करती रह, मेरी आज्ञासे तुझे यह कार्य करना होगा। इससे तू कल्याण प्राप्त करेगी' ॥ २१½ ॥

एवमुक्ता तु सा तेन मृत्युः कमललोचना ॥ २२ ॥
दध्यौ चात्यर्थमबला प्ररुरोद च सुस्वरम्।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर वह मृत्युनामवाली कमललोचना अबला अत्यन्त चिन्तामग्न हो गयी और फूट-फूटकर रोने लगी ॥ २२½ ॥

पाणिभ्यां प्रतिजग्राह तान्यश्रूणि पितामहः।
सर्वभूतहितार्थाय तां चाप्यनुनयत् तदा ॥ २३ ॥

पितामह ब्रह्माने उसके उन आँसुओंको समस्त प्राणियोंके हितके लिये अपने दोनों हाथोंमें ले लिया और उस नारीको भी अनुनयसे प्रसन्न किया ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युकथने त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें मृत्युवर्णनविषयक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल २३½ श्लोक हैं)

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मृत्युकी घोर तपस्या, ब्रह्माजीके द्वारा उसे वरकी प्राप्ति तथा नारद-अकम्पन-संवादका उपसंहार

नारद उवाच

विनीय दुःखमबला आत्मन्येव प्रजापतिम्।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा लतेवावर्जिता पुनः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर वह अबला अपने भीतर ही उस दुःखको दबाकर झुकायी हुई लताके समान विनम्र हो हाथ जोड़कर ब्रह्माजीसे बोली ॥ १ ॥

मृत्युरुवाच

त्वया सृष्टा कथं नारी ईदृशी वदतां वर।
क्रूरं कर्माहितं कुर्यां तदेव किमु जानती ॥ २ ॥

मृत्युने कहा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ प्रजापते ! आपने मुझे ऐसी नारीके रूपमें क्यों उत्पन्न किया ? मैं जान-बूझकर वही क्रूरतापूर्ण अहितकर कर्म कैसे करूँ ? ॥ २ ॥

बिभेम्यहमधर्माद्धि प्रसीद भगवन् प्रभो।
प्रियान् पुत्रान् वयस्यांश्च भ्रातॄन् मातॄः पितॄन् पतीन्॥३॥
अपध्यास्यन्ति मे देव मृतेष्वेभ्यो बिभेम्यहम्।

भगवन् ! मैं पापसे डरती हूँ। प्रभो ! मुझपर प्रसन्न होइये। जब मैं लोगोंके प्यारे पुत्रों, मित्रों, भाइयों, माताओं, पिताओं तथा पतियोंको मारने लगूँगी, देव ! उस समय उनके सम्बन्धी इन लोगोंके मेरे द्वारा मारे जानेपर सदा मेरा अनिष्ट-चिन्तन करेंगे। अतः मैं इन सबसे बहुत डरती हूँ ॥ ३½ ॥

कृपणानां हि रुदतां ये पतन्त्यश्रुबिन्दवः ॥ ४ ॥
तेभ्योऽहं भगवन् भीता शरणं त्वाहमागता।

भगवन् ! रोते हुए दीन-दुखी प्राणियोंके नेत्रोंसे जो आँसुओंकी बूँदें गिरती हैं, उनसे भयभीत होकर मैं आपकी शरणमें आयी हूँ ॥ ४½ ॥

यमस्य भवनं देव गच्छेयं न सुरोत्तम ॥ ५ ॥
कायेन विनयोपेता मूर्ध्नोदग्रनखेन च।
एतदिच्छाम्यहं कामं त्वत्तो लोकपितामह ॥ ६ ॥

देव ! सुरश्रेष्ठ ! लोकपितामह ! मैं शरीर और मस्तकको झुकाकर, हाथ जोड़कर विनीतभावसे आपकी शरणागत होकर केवल इसी अभिलाषाकी पूर्ति चाहती हूँ कि मुझे यमराजके भवनमें न जाना पड़े ॥ ५-६ ॥

इच्छेयं त्वत्प्रसादाद्धि तपस्तप्तुं प्रजेश्वर।
प्रदिशेमं वरं देव त्वं मह्यं भगवन् प्रभो ॥ ७ ॥

प्रजेश्वर ! मैं आपकी कृपासे तपस्या करना चाहती हूँ। देव ! भगवन् ! प्रभो ! आप मुझे यही वर प्रदान करें ॥

त्वया ह्युक्ता गमिष्यामि धेनुकाश्रममुत्तमम्।
तत्र तप्स्ये तपस्तीव्रं तवैवाराधने रता ॥ ८ ॥

आपकी आज्ञा लेकर मैं उत्तम धेनुकाश्रमको चली जाऊँगी और वहाँ आपकी ही आराधनामें तत्पर रहकर कठोर तपस्या करूँगी ॥ ८ ॥

न हि शक्ष्यामि देवेश प्राणान् प्राणभृतां प्रियान्।
हर्तुं विलपमानानामधर्मादभिरक्ष माम् ॥ ९ ॥

देवेश्वर ! मैं रोते-बिलखते प्राणियोंके प्यारे प्राणोंका अपहरण नहीं कर सकूँगी, आप इस अधर्मसे मुझे बचावें ॥

ब्रह्मोवाच

मृत्यो संकल्पितासि त्वं प्रजासंहारहेतुना।
गच्छ संहर सर्वास्त्वं प्रजा मा ते विचारणा ॥ १० ॥

ब्रह्माजीने कहा—मृत्यो ! प्रजाके संहारके लिये ही मेरे द्वारा संकल्पपूर्वक तेरी सृष्टि की गयी है। जा, तू सारी प्रजाका संहार कर। तेरे मनमें कोई अन्यथा विचार नहीं होना चाहिये ॥ १० ॥

भविता त्वेतदेवं हि नैतज्जात्वन्यथा भवेत्।
भव त्वनिन्दिता लोके कुरुष्व वचनं मम ॥ ११ ॥

यह बात इसी प्रकार होनेवाली है। इसमें कभी कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। तू लोकमें निन्दित न हो, मेरी आज्ञाका पालन कर ॥ ११ ॥

नारद उवाच

एवमुक्ताभवत् प्रीता प्राञ्जलिर्भगवन्मुखी ।
संहारे नाकरोद् बुद्धिं प्रजानां हितकाम्यया ॥१२॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर उन्हींकी ओर मुँह करके हाथ जोड़े खड़ी हुई वह नारी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई; परंतु उसने प्रजाके हितकी कामनासे संहार-कार्यमें मन नहीं लगाया ॥ १२ ॥

तूष्णीमासीत् तदा देवः प्रजानामीश्वरेश्वरः ।
प्रसादं चागमत् क्षिप्रमात्मनैव प्रजापतिः ॥१३॥

तब प्रजेश्वरोंके भी स्वामी भगवान् ब्रह्मा चुप हो गये। फिर वे भगवान् प्रजापति तुरंत अपने आप ही प्रसन्नताको प्राप्त हुए॥

स्मयमानश्च देवेशो लोकान् सर्वानवेक्ष्य च ।
लोकास्त्वासन् यथापूर्वं दृष्टास्तेनापमन्युना ॥१४॥

देवेश्वर ब्रह्मा सम्पूर्ण लोकोंकी ओर देखकर मुसकराये। उन्होंने क्रोधशून्य होकर देखा, इसलिये वे सभी लोक पहले-के समान हरे-भरे हो गये ॥ १४ ॥

निवृत्तरोषे तस्मिंस्तु भगवत्यपराजिते ।
सा कन्यापि जगामाथ समीपात् तस्य धीमतः ॥१५॥

उन अपराजित भगवान् ब्रह्माका रोष निवृत्त हो जानेपर वह कन्या भी उन परम बुद्धिमान् देवेश्वरके निकटसे अन्यत्र चली गयी ॥ १५ ॥

अपसृत्याप्रतिश्रुत्य प्रजासंहरणं तदा ।
त्वरमाणा च राजेन्द्र मृत्युर्धेनुकमभ्यगात् ॥१६॥

राजेन्द्र ! उस समय प्रजाका संहार करनेके विषयमें कोई प्रतिज्ञा न करके मृत्यु वहाँसे हट गयी और बड़ी उतावली-के साथ धेनुकाश्रममें जा पहुँची ॥ १६ ॥

सा तत्र परमं तीव्रं चचार व्रतमुत्तमम् ।
सा तदा ह्येकपादेन तस्थौ पद्मानि षोडश ॥१७॥
पञ्च चाब्दानि कारुण्यात् प्रजानां तु हितैषिणी ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः संनिवर्त्य सा ॥१८॥

उसने वहाँ अत्यन्त कठोर और उत्तम व्रतका पालन आरम्भ किया। उस समय वह दयावश प्रजावर्गका हित करनेकी इच्छा-से अपनी इन्द्रियोंको प्रिय विषयोंसे हटाकर इक्कीस पद्म वर्षोंतक एक पैरपर खड़ी रही ॥ १७-१८ ॥

ततस्त्वेकेन पादेन पुनरन्यानि सप्त वै ।
तस्थौ पद्मानि षट् चैव सप्त चैकं च पार्थिव ॥१९॥

नरेश्वर ! तदनन्तर पुनः अन्य इक्कीस पद्म वर्षोंतक वह एक पैरसे खड़ी होकर तपस्या करती रही ॥ १९ ॥

ततः पद्मायुतं तात मृगैः सह चचार सा ।
पुनर्गत्वा ततो नन्दां पुण्यां शीतामलोदकाम् ॥२०॥
अप्सु वर्षसहस्राणि सप्त चैकं च सावसत् ।

तात ! इसके बाद दस हजार पद्म वर्षोंतक वह मृगोंके साथ विचरती रही, फिर शीतल एवं निर्मल जलवाली पुण्य-मयी नन्दानदीमें जाकर उसके जलमें उसने आठ हजार वर्ष व्यतीत किये ॥ २०½ ॥

धारयित्वा तु नियमं नन्दायां वीतकल्मषा ॥२१॥
सा पूर्वं कौशिकीं पुण्यां जगाम नियमैधिता ।
तत्र वायुजलाहारा चचार नियमं पुनः ॥२२॥

इस प्रकार नन्दानदीमें नियमोंके पालनपूर्वक रहकर वह निष्पाप हो गयी। तदनन्तर व्रत-नियमोंसे सम्पन्न हो मृत्यु पहले पुण्यमयी कौशिकी नदीके तटपर गयी और वहाँ वायु तथा जलका आहार करती हुई पुनः कठोर नियमोंका पालन करने लगी ॥ २१-२२ ॥

पञ्चगङ्गासु सा पुण्या कन्या वेतसकेषु च ।
तपोविशेषैर्बहुभिः कर्षयद् देहमात्मनः ॥२३॥

उस पवित्र कन्याने पञ्चगङ्गामें तथा वेतसवनमें बहुत-सी भिन्न-भिन्न तपस्याओंद्वारा अपने शरीरको अत्यन्त दुर्बल कर दिया ॥ २३ ॥

ततो गत्वा तु सा गङ्गां महामेरुं च केवलम् ।
तस्थौ चाश्मेव निश्चेष्टा प्राणायामपरायणा ॥२४॥

इसके बाद वह गङ्गाजीके तट और प्रमुख तीर्थ महामेरुके शिखरपर जाकर प्राणायाममें तत्पर हो प्रस्तर-मूर्तिकी भाँति निश्चेष्ट भावसे बैठी रही ॥ २४ ॥

पुनर्हिमवतो मूर्ध्नि यत्र देवाः पुरायजन् ।
तत्राङ्गुष्ठेन सा तस्थौ निखर्वं परमा शुभा ॥२५॥

फिर हिमालयके शिखरपर जहाँ पहले देवताओंने यज्ञ किया था, वहाँ वह परम शुभलक्षणा कन्या एक निखर्व वर्षोंतक अँगूठेके बलपर खड़ी रही ॥ २५ ॥

पुष्करेष्वथ गोकर्णे नैमिषे मलये तथा ।
अपाकर्षत् स्वकं देहं नियमैर्मानसप्रियैः ॥२६॥

तदनन्तर पुष्कर, गोकर्ण, नैमिषारण्य तथा मलयाचलके तीर्थोंमें रहकर मनको प्रिय लगनेवाले नियमोंद्वारा उसने अपने शरीरको अत्यन्त क्षीण कर दिया ॥ २६ ॥

अनन्यदेवता नित्यं दृढभक्ता पितामहे ।
तस्थौ पितामहं चैव तोषयामास धर्मतः ॥२७॥

दूसरे किसी देवतामें मन न लगाकर वह सदा पितामह ब्रह्मामें ही सुदृढ़ भक्तिभाव रखती थी। उस कन्याने अपने धर्माचरणसे पितामहको संतुष्ट कर लिया ॥ २७ ॥

ततस्तामब्रवीत् प्रीतो लोकानां प्रभवोऽव्ययः ।
सौम्येन मनसा राजन् प्रीतः प्रीतमनास्तदा ॥२८॥

राजन् ! तब लोकोंकी उत्पत्तिके कारणभूत अविनाशी ब्रह्मा उस समय मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो सौम्य हृदयसे प्रीतिपूर्वक उससे बोले—॥ २८ ॥

मृत्यो किमिदमत्यन्तं तपांसि चरसीति ह ।
ततोऽब्रवीत् पुनर्मृत्युर्भगवन्तं पितामहम् ॥२९॥

'मृत्यो ! तू किसलिये इस प्रकार अत्यन्त कठोर तपस्या कर रही है ?' तब मृत्युने भगवान् पितामहसे फिर इस प्रकार कहा—॥ २९ ॥

नाहं हन्यां प्रजा देव स्वस्थाश्चाक्रोशतीस्तथा ।
एतदिच्छामि सर्वेश त्वत्तो वरमहं प्रभो ॥३०॥

'देव ! प्रभो ! सर्वेश्वर ! मैं आपसे यही वर पाना चाहती हूँ कि मुझे रोती-चिल्लाती हुई स्वस्थ प्रजाओंका वध न करना पड़े॥

अधर्मभयभीतास्मि ततोऽहं तप आस्थिता ।
भीतायास्तु महाभाग प्रयच्छाभयमव्यय ॥३१॥

'महाभाग ! मैं अधर्मके भयसे बहुत डरती हूँ; इसीलिये तपस्यामें लगी हुई हूँ । अविनाशी परमेश्वर ! मुझ भयभीत अबलाको अभय-दान दीजिये ॥ ३१ ॥

आर्ता चानागसी नारी याचामि भव मे गतिः ।
तामब्रवीत् ततो देवो भूतभव्यभविष्यवित् ॥३२॥

'नाथ ! मैं एक निरपराध नारी हूँ और आपके सामने आर्तभावसे याचना करती हूँ, आप मेरे आश्रयदाता हों ।' तब भूत, भविष्य और वर्तमानके ज्ञाता भगवान् ब्रह्माने उससे कहा—॥ ३२ ॥

अधर्मो नास्ति ते मृत्यो संहरन्त्या इमाः प्रजाः ।
मया चोक्तं मृषा भद्रे भविता न कथंचन ॥३३॥

'मृत्यो ! इन प्रजाओंका संहार करनेसे तुझे अधर्म नहीं होगा । भद्रे ! मेरी कही हुई बात किसी प्रकार झूठी नहीं हो सकती ॥ ३३ ॥

तस्मात् संहर कल्याणि प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः ।
धर्मः सनातनश्च त्वां सर्वथा पावयिष्यति ॥३४॥

'इसलिये कल्याणि ! तू चार श्रेणियोंमें विभाजित समस्त प्राणियोंका संहार कर । सनातन धर्म तुझे सब प्रकारसे पवित्र बनाये रखेगा ॥ ३४ ॥

लोकपालो यमश्चैव सहाया व्याधयश्च ते ।
अहं च विबुधाश्चैव पुनर्दास्याम ते वरम् ॥३५॥
यथा त्वमेनसा मुक्ता विरजाः ख्यातिमेष्यसि ।

'लोकपाल, यम तथा नाना प्रकारकी व्याधियाँ तेरी सहायता करेंगी । मैं और सम्पूर्ण देवता तुझे पुनः वरदान देंगे, जिससे तू पापमुक्त हो अपने निर्मल स्वरूपसे विख्यात होगी' ॥ ३५½ ॥

सैवमुक्ता महाराज कृताञ्जलिरिदं विभुम् ॥३६॥
पुनरेवाब्रवीद् वाक्यं प्रसाद्य शिरसा तदा ।

महाराज ! उनके ऐसा कहनेपर मृत्यु हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर भगवान् ब्रह्माको प्रसन्न करके उस समय पुनः यह वचन बोली—॥ ३६½ ॥

यद्येवमेतत् कर्तव्यं मया न स्याद् विना प्रभो ॥३७॥
तवाज्ञा मूर्ध्नि मे न्यस्ता यत् ते वक्ष्यामि तच्छृणु ।

'प्रभो ! यदि इस प्रकार यह कार्य मेरे बिना नहीं हो सकता तो आपकी आज्ञा मैंने शिरोधार्य कर ली है, परंतु इसके विषयमें मैं आपसे जो कुछ कहती हूँ, उसे (ध्यान देकर) सुनिये ॥ ३७½ ॥

लोभः क्रोधोऽभ्यसूयेर्ष्या द्रोहो मोहश्च देहिनाम् ॥३८॥
अह्रीश्चान्योन्यपरुषा देहं भिन्द्युः पृथग्विधाः ।

'लोभ, क्रोध, असूया, ईर्ष्या, द्रोह, मोह, निर्लज्जता और एक दूसरेके प्रति कही हुई कठोर वाणी—ये विभिन्न दोष ही देहधारियोंकी देहका भेदन करें' ॥ ३८½ ॥

ब्रह्मोवाच

तथा भविष्यते मृत्यो साधु संहर भोः प्रजाः ।
अधर्मस्ते न भविता नापध्यास्याम्यहं शुभे ॥३९॥

ब्रह्माजीने कहा—मृत्यो ! ऐसा ही होगा । तू उत्तम रीतिसे प्राणियोंका संहार कर । शुभे ! इससे तुझे पाप नहीं लगेगा और मैं भी तेरा अनिष्ट-चिन्तन नहीं करूँगा ॥ ३९ ॥

यान्यश्रुबिन्दूनि करे ममासं-
स्ते व्याधयः प्राणिनामात्मजाताः ।
ते मारयिष्यन्ति नरान् गतासून्
नाधर्मस्ते भविता मा स्म भैषीः ॥ ४० ॥

तेरे आँसुओंकी बूँदें, जिन्हें मैंने हाथमें ले लिया था, प्राणियोंके अपने ही शरीरोंसे उत्पन्न हुई व्याधियाँ बनकर गतायु प्राणियोंका नाश करेंगी । तुझे अधर्मकी प्राप्ति नहीं होगी; इसलिये तू भय न कर ॥ ४० ॥

नाधर्मस्ते भविता प्राणिनां वै
त्वं वै धर्मस्त्वं हि धर्मस्य चेशा ।
धर्म्या भूत्वा धर्मनित्या धरित्री
तस्मात् प्राणान् सर्वथेमान् नियच्छ ॥४१॥

निश्चय ही, तुझे पाप नहीं लगेगा । तू प्राणियोंका धर्म और उस धर्मकी स्वामिनी होगी । अतः सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाली और धर्मानुकूल जीवन बितानेवाली धरित्री होकर इन समस्त जीवोंके प्राणोंका नियन्त्रण कर ॥ ४१ ॥

सर्वेषां वै प्राणिनां कामरोषौ
संत्यज्य त्वं संहरस्वेह जीवान् ।
एवं धर्मस्त्वां भविष्यत्यनन्तो
मिथ्यावृत्तान् मारयिष्यत्यधर्मः ॥ ४२ ॥

काम और क्रोधका परित्याग करके इस जगत्‌के समस्त प्राणियोंके प्राणोंका संहार कर । ऐसा करनेसे तुझे अक्षय धर्मकी प्राप्ति होगी । मिथ्याचारी पुरुषोंको तो उनका अधर्म ही मार डालेगा ॥ ४२ ॥

तेनात्मानं पावयस्वात्मना त्वं
पापेऽऽत्मानं मज्जयिष्यन्त्यसत्यात्।
तस्मात् कामं रोषमप्यागतं त्वं
संत्यज्यान्तः संहरस्वेति जीवान् ॥४३॥

तू धर्माचरणद्वारा स्वयं ही अपने आपको पवित्र कर। असत्यका आश्रय लेनेसे प्राणी स्वयं अपने आपको पाप-पङ्कमें डुबो लेंगे। इसलिये अपने मनमें आये हुए काम और क्रोधका त्याग करके तू समस्त जीवोंका संहार कर॥४३॥

नारद उवाच

सा वै भीता मृत्युसंज्ञोपदेशा-
च्छापाद् भीता बाढमित्यब्रवीत् तम्।
सा च प्राणं प्राणिनामन्तकाले
कामक्रोधौ त्यज्य हरत्यसक्ता ॥ ४४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! वह मृत्यु नामवाली नारी ब्रह्माजीके उस उपदेशसे और विशेषतः उनके शापके भयसे भीत होकर उनसे बोली—'बहुत अच्छा, आपकी आज्ञा स्वीकार है'। वही मृत्यु अन्तकाल आनेपर काम और क्रोधका परित्याग करके अनासक्त भावसे समस्त प्राणियोंके प्राणोंका अपहरण करती है ॥ ४४ ॥

मृत्युस्त्वेषां व्याधयस्तत्प्रसूता
व्याधी रोगो रुज्यते येन जन्तुः।
सर्वेषां च प्राणिनां प्रायणान्ते
तस्माच्छोकं मा कृथा निष्फलं त्वम्॥४५॥

यही प्राणियोंकी मृत्यु है, इसीसे व्याधियोंकी उत्पत्ति हुई है। व्याधि नाम है रोगका, जिससे प्राणी रुग्ण होता है (उसका स्वास्थ्य भंग होता है)। आयु समाप्त होनेपर सभी प्राणियोंकी मृत्यु इसी प्रकार होती है। अतः राजन्! तुम व्यर्थ शोक न करो ॥ ४५ ॥

सर्वे देवाः प्राणिभिः प्रायणान्ते
गत्वा वृत्ताः संनिवृत्तास्तथैव।
एवं सर्वे प्राणिनस्तत्र गत्वा
वृत्ता देवा मर्त्यवद् राजसिंह ॥ ४६ ॥

आयुके अन्तमें सारी इन्द्रियाँ प्राणियोंके साथ परलोकमें जाकर स्थित होती हैं और पुनः उनके साथ ही इस लोकमें लौट आती हैं। नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार सभी प्राणी देवलोकमें जाकर वहाँ देवस्वरूपमें स्थित होते हैं तथा वे कर्म-देवता मनुष्योंकी भाँति भोगोंकी समाप्ति होनेपर पुनः इस लोकमें लौट आते हैं ॥ ४६ ॥

वायुर्भीमो भीमनादो महौजा
भेत्ता देहान् प्राणिनां सर्वगोऽसौ।
नो वाऽऽवृत्तिं नैव वृत्तिं कदाचित्
प्राप्नोत्युग्रोऽनन्ततेजोविशिष्टः ॥ ४७ ॥

भयंकर शब्द करनेवाला महान् बलशाली भयानक प्राणवायु प्राणियोंके शरीरोंका ही भेदन करता है (चेतन आत्माका नहीं, क्योंकि) वह सर्वव्यापी, उग्र प्रभावशाली और अनन्त तेजसे सम्पन्न है। उसका कभी आवागमन नहीं होता ॥ ४७ ॥

सर्वे देवा मर्त्यसंज्ञाविशिष्टा-
स्तस्मात् पुत्रं मा शुचो राजसिंह।
स्वर्गं प्राप्तो मोदते ते तनूजो
नित्यं रम्यान् वीरलोकानवाप्य ॥ ४८ ॥

राजसिंह! सम्पूर्ण देवता भी मर्त्य (मरणधर्मा) नामसे विभूषित हैं, इसलिये तुम अपने पुत्रके लिये शोक न करो। तुम्हारा पुत्र स्वर्गलोकमें जा पहुँचा है और नित्य रमणीय वीर-लोकोंमें रहकर आनन्दका अनुभव करता है ॥ ४८ ॥

त्यक्त्वा दुःखं संगतः पुण्यकृद्भि-
रेषा मृत्युर्देवदिष्टा प्रजानाम्।
प्राप्ते काले संहरन्ती यथावत्
स्वयं कृता प्राणहरा प्रजानाम् ॥ ४९ ॥

वह दुःखका परित्याग करके पुण्यात्मा पुरुषोंसे जा मिला है। प्राणियोंके लिये यह मृत्यु भगवान्‌की ही दी हुई है; जो समय आनेपर यथोचित रूपसे (प्रजाजनोंका) संहार करती है। प्रजावर्गके प्राण लेनेवाली इस मृत्युको स्वयं ब्रह्माजीने ही रचा है ॥ ४९ ॥

आत्मानं वै प्राणिनो घ्नन्ति सर्वे
नैतान् मृत्युर्दण्डपाणिर्हिनस्ति।
तस्मान्मृतान् नानुशोचन्ति धीरा
मृत्युं ज्ञात्वा निश्चयं ब्रह्मसृष्टम्।
इत्थं सृष्टिं देवक्लृप्तां विदित्वा
पुत्रान्नष्टाच्छोकमाशु त्यजस्व ॥ ५० ॥

सब प्राणी स्वयं ही अपने आपको मारते हैं। मृत्यु हाथमें डंडा लेकर इनका वध नहीं करती है। अतः धीर पुरुष मृत्युको ब्रह्माजीका रचा हुआ निश्चित विधान समझकर मरे हुए प्राणियोंके लिये कभी शोक नहीं करते हैं। इस प्रकार ब्रह्माजीकी बनायी हुई सारी सृष्टिको ही मृत्युके वशीभूत जानकर तुम अपने पुत्रके मर जानेसे प्राप्त होनेवाले शोकका शीघ्र परित्याग कर दो ॥ ५० ॥

द्वैपायन उवाच

एतच्छ्रुत्वार्थवद् वाक्यं नारदेन प्रकाशितम्।
उवाचाकम्पनो राजा सखायं नारदं तथा ॥ ५१ ॥

व्यासजी कहते हैं—युधिष्ठिर! नारदजीकी कही हुई यह अर्थभरी बात सुनकर राजा अकम्पन अपने मित्र नारदसे इस प्रकार बोले— ॥ ५१ ॥

व्यपेतशोकः प्रीतोऽस्मि भगवन्नृषिसत्तम ।
श्रुत्वेतिहासं त्वत्तस्तु कृतार्थोऽस्म्यभिवादये ॥ ५२ ॥

'भगवन्! मुनिश्रेष्ठ! आपके मुँहसे यह इतिहास सुनकर मेरा शोक दूर हो गया। मैं प्रसन्न और कृतार्थ हो गया हूँ और आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ ॥ ५२ ॥

तथोक्तो नारदस्तेन राज्ञा ऋषिवरोत्तमः ।
जगाम नन्दनं शीघ्रं देवर्षिरमितात्मवान् ॥ ५३ ॥

राजा अकम्पनके इस प्रकार कहनेपर ऋषियोंमें श्रेष्ठतम अमितात्मा देवर्षि नारद शीघ्र ही नन्दन वनको चले गये ॥

पुण्यं यशस्यं स्वर्ग्यं च धन्यमायुष्यमेव च ।
अस्येतिहासस्य सदा श्रवणं श्रावणं तथा ॥ ५४ ॥

जो इस इतिहासको सदा सुनता और सुनाता है, उसके लिये यह पुण्य, यश, स्वर्ग, धन तथा आयु प्रदान करनेवाला है ॥ ५४ ॥

एतदर्थपदं श्रुत्वा तदा राजा युधिष्ठिर ।
क्षत्रधर्मं च विज्ञाय शूराणां च परां गतिम् ॥ ५५ ॥
सम्प्राप्तोऽसौ महावीर्यः स्वर्गलोकं महारथः ।

युधिष्ठिर! उस समय महारथी महापराक्रमी राजा अकम्पन इस उत्तम अर्थको प्रकाशित करनेवाले वृत्तान्तको सुनकर तथा क्षत्रियधर्म एवं शूरवीरोंकी परम गतिके विषयमें जानकर यथासमय स्वर्गलोकको प्राप्त हुए ॥ ५५½ ॥

अभिमन्युः परान् हत्वा प्रमुखे सर्वधन्विनाम् ॥ ५६ ॥
युध्यमानो महेष्वासो हतः सोऽभिमुखो रणे ।
असिना गदया शक्त्या धनुषा च महारथः ।
विरजाः सोमसूनुः स पुनस्तत्र प्रलीयते ॥ ५७ ॥

महाधनुर्धर अभिमन्यु पूर्वजन्ममें चन्द्रमाका पुत्र था, वह महारथी वीर समराङ्गणमें समस्त धनुर्धरोंके सामने शत्रुओंका वध करके खड्ग, शक्ति, गदा और धनुषद्वारा सम्मुख युद्ध करता हुआ मारा गया है तथा दुःखरहित हो पुनः चन्द्रलोकमें ही चला गया है ॥ ५६–५७ ॥

तस्मात् परां धृतिं कृत्वा भ्रातृभिः सह पाण्डव ।
अप्रमत्तः सुसंनद्धः शीघ्रं योद्धुमुपाक्रम ॥ ५८ ॥

अतः पाण्डुनन्दन! तुम भाइयोंसहित उत्तम धैर्य धारण करके प्रमाद छोड़कर भलीभाँति कवच आदिसे सुसज्जित हो पुनः शीघ्र ही युद्धके लिये तैयार हो जाओ ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युप्रजापतिसंवादे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें मृत्युप्रजापतिसंवादविषयक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

षोडशराजकीयोपाख्यानका आरम्भ, नारदजीकी कृपासे राजा सृञ्जयको पुत्रकी प्राप्ति, दस्युओंद्वारा उसका वध तथा पुत्रशोकसंतप्त सृञ्जयको नारदजीका मरुत्तका चरित्र सुनाना

संजय उवाच

श्रुत्वा मृत्युसमुत्पत्तिं कर्माण्यनुपमानि च ।
धर्मराजः पुनर्वाक्यं प्रसाद्यैनमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! मृत्युकी उत्पत्ति और उसके अनुपम कर्म सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने पुनः व्यासजीको प्रसन्न करके उनसे यह बात कही ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

गुरवः पुण्यकर्माणः शक्रप्रतिमविक्रमाः ।
स्थाने राजर्षयो ब्रह्मन्ननघाः सत्यवादिनः ॥ २ ॥

युधिष्ठिर बोले—ब्रह्मन्! इन्द्रके समान पराक्रमी, श्रेष्ठ, पुण्यकर्मा, निष्पाप तथा सत्यवादी राजर्षिगण अपने योग्य उत्तम स्थान (लोक) में निवास करते हैं ॥ २ ॥

भूय एव तु मां तथ्यैर्वचोभिरभिबृंहय ।
राजर्षीणां पुराणानां समाश्वासय कर्मभिः ॥ ३ ॥

अतः आप पुनः उन प्राचीन राजर्षियोंके सत्कर्मोंका बोध करानेवाले अपने यथार्थ वचनोंद्वारा मेरा सौभाग्य बढ़ाइये और मुझे आश्वासन दीजिये ॥ ३ ॥

कियन्त्यो दक्षिणा दत्ताः कैश्च दत्ता महात्मभिः ।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिस्तद् भवान् प्रब्रवीतु मे ॥ ४ ॥

पूर्वकालके किन-किन महामनस्वी पुण्यात्मा राजर्षियोंने यज्ञोंमें कितनी-कितनी दक्षिणाएँ दी थीं। यह सब आप मुझे बताइये ॥ ४ ॥

व्यास उवाच

शैब्यस्य नृपतेः पुत्रः सृञ्जयो नाम नामतः ।
सखायौ तस्य चैवोभौ ऋषी पर्वतनारदौ ॥ ५ ॥

व्यासजीने कहा—राजन्! राजा शैब्यके सृंजय नामसे प्रसिद्ध एक पुत्र था। उसके पर्वत और नारद—ये दो ऋषि मित्र थे ॥ ५ ॥

तौ कदाचिद् गृहं तस्य प्रविष्टौ तद्दिदृक्षया ।
विधिवच्चार्चितौ तेन प्रीतौ तत्रोषतुः सुखम् ॥ ६ ॥

एक दिन वे दोनों महर्षि सृंजयसे मिलनेके लिये उसके घर पधारे। उसने विधिपूर्वक उनकी पूजा की और वे दोनों वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे ॥ ६ ॥

तं कदाचित् सुखासीनं ताभ्यां सह शुचिस्मिता ।
दुहिताभ्यागमत् कन्या सृञ्जयं वरवर्णिनी ॥ ७ ॥

एक समय उन दोनों ऋषियोंके साथ राजा सृंजय सुखपूर्वक बैठे थे। उसी समय पवित्र मुसकानवाली परम सुन्दरी सृंजयकी कुमारी पुत्री वहाँ आयी ॥ ७ ॥

तयाभिवादितः कन्यामभ्यनन्दद् यथाविधि ।
तत्सलिङ्गाभिराशीर्भिरिष्टाभिरभितः स्थिताम् ॥ ८ ॥

आकर उसने राजाको प्रणाम किया। राजाने उसके अनुरूप अभीष्ट आशीर्वाद देकर अपने पार्श्वभागमें खड़ी हुई उस कन्याका विधिपूर्वक अभिनन्दन किया ॥ ८ ॥

तां निरीक्ष्याब्रवीद् वाक्यं पर्वतः प्रहसन्निव ।
कस्येयं चञ्चलापाङ्गी सर्वलक्षणसम्मता ॥ ९ ॥

तब महर्षि पर्वतने उस कन्याकी ओर देखकर हँसते हुए-से कहा—'राजन्! यह समस्त शुभ लक्षणों से सम्मानित चञ्चल कटाक्षवाली कन्या किसकी पुत्री है?॥ ९ ॥

उताहो भाः स्विदर्कस्य ज्वलनस्य शिखा त्वियम् ।
श्रीर्ह्रीः कीर्तिर्धृतिः पुष्टिः सिद्धिश्चन्द्रमसः प्रभा ॥ १० ॥

'अहो! यह सूर्यकी प्रभा है या अग्निदेवकी शिखा है अथवा श्री, ह्री, कीर्ति, धृति, पुष्टि, सिद्धि या चन्द्रमाकी प्रभा है?' ॥ १० ॥

एवं ब्रुवाणं देवर्षिं नृपतिः सृञ्जयोऽब्रवीत् ।
ममेयं भगवन् कन्या मत्तो वरमभीप्सति ॥ ११ ॥

इस प्रकार पूछते हुए देवर्षि पर्वतसे राजा सृंजयने कहा—'भगवन्! यह मेरी कन्या है, जो मुझसे वर प्राप्त करना चाहती है' ॥ ११ ॥

नारदस्त्वब्रवीदेनं देहि मह्यमिमां नृप ।
भार्यार्थं सुमहच्छ्रेयः प्राप्तुं चेदिच्छसे नृप ॥ १२ ॥

इसी समय नारदजी राजासे बोले—'नरेश्वर! यदि तुम परम कल्याण प्राप्त करना चाहते हो तो अपनी इस कन्याको धर्मपत्नी बनानेके लिये मुझे दे दो' ॥ १२ ॥

ददानीत्येव संहृष्टः सृञ्जयः प्राह नारदम् ।
पर्वतस्तु सुसंक्रुद्धो नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥

तब सृंजयने अत्यन्त प्रसन्न होकर नारदजीसे कहा—'दे दूँगा'। यह सुनकर पर्वत अत्यन्त कुपित हो नारदजीसे बोले— ॥ १३ ॥

हृदयेन मया पूर्वं वृतां वै वृतवानसि ।
यस्माद् वृता त्वया विप्र मा गाः स्वर्गं यथेप्सया ॥ १४ ॥

'ब्रह्मन्! मैंने मन-ही-मन पहले ही जिसका वरण कर लिया था, उसीका तुमने वरण किया है। अतः तुमने मेरी मनोनीत पत्नीको वर लिया है, इसलिये अब तुम इच्छानुसार स्वर्गमें नहीं जा सकते' ॥ १४ ॥

एवमुक्तो नारदस्तं प्रत्युवाचोत्तरं वचः ।
मनोवाग्बुद्धिसम्भाषा दत्ता चोदकपूर्वकम् ॥ १५ ॥
पाणिग्रहणमन्त्राश्च प्रथितं वरलक्षणम् ।
न त्वेषा निश्चिता निष्ठा निष्ठा सप्तपदी स्मृता ॥ १६ ॥

उनके ऐसा कहनेपर नारदजीने उन्हें यह उत्तर दिया—'मनसे संकल्प करके, वाणीद्वारा प्रतिज्ञा करके, बुद्धिके द्वारा पूर्ण निश्चयके साथ, परस्पर सम्भाषणपूर्वक तथा संकल्पका जल हाथमें लेकर जो कन्यादान किया जाता है, वरके द्वारा जो कन्याका पाणिग्रहण होता है और वैदिक मन्त्रके पाठ किये जाते हैं, यही विधि-विधान कन्या-परिग्रहके साधकरूपसे प्रसिद्ध है; परंतु इतनेसे ही पाणिग्रहणकी पूर्णताका निश्चय नहीं होता है। उसकी पूर्ण निष्ठा तो सप्तपदी ही मानी गयी है ॥ १५-१६ ॥

अनुत्पन्ने च कार्यार्थे मां त्वं व्याहृतवानसि ।
तस्मात् त्वमपि न स्वर्गं गमिष्यसि मया विना ॥ १७ ॥

'अतः इस कन्याके ऊपर पतिरूपसे तुम्हारा अधिकार नहीं हुआ है—ऐसी अवस्थामें भी तुमने मुझे शाप दे दिया है, इसलिये तुम भी मेरे बिना स्वर्ग नहीं जा सकोगे' ॥ १७ ॥

अन्योन्यमेवं शप्त्वा वै तस्थतुस्तत्र तौ तदा ।
अथ सोऽपि नृपो विप्रान् पानाच्छादनभोजनैः ॥ १८ ॥
पुत्रकामः परं शक्त्या यत्नाच्चोपाचरच्छुचिः ।

इस प्रकार एक दूसरेको शाप देकर वे दोनों उस समय वहीं ठहर गये। इधर राजा सृंजयने पुत्रकी इच्छासे पवित्र हो पूरी शक्ति लगाकर बड़े यत्नसे भोजन, पीने योग्य पदार्थ तथा वस्त्र आदि देकर ब्राह्मणोंकी आराधना की ॥ १८½ ॥

तस्य प्रसन्ना विप्रेन्द्राः कदाचित् पुत्रमीप्सवः ॥ १९ ॥
तपःस्वाध्यायनिरता वेदवेदाङ्गपारगाः ।
सहिता नारदं प्राहुर्देह्यस्मै पुत्रमीप्सितम् ॥ २० ॥

एक दिन राजापर प्रसन्न होकर उन्हें पुत्र देनेकी इच्छावाले सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण, जो तपस्या और स्वाध्यायमें संलग्न रहनेवाले तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान् थे, एक साथ नारदजीसे बोले—'देवर्षे! आप इन राजा सृंजयको अभीष्ट पुत्र प्रदान कीजिये' ॥ १९-२० ॥

तथेत्युक्त्वा द्विजैरुक्तः सृञ्जयं नारदोऽब्रवीत् ।
तुभ्यं प्रसन्ना राजर्षे पुत्रमीप्सन्ति ब्राह्मणाः ॥ २१ ॥

ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर नारदजीने 'तथास्तु' कहकर उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया। फिर वे सृंजयसे इस प्रकार बोले—'राजर्षे! ये ब्राह्मणलोग प्रसन्न होकर तुम्हारे लिये अभीष्ट पुत्र प्राप्त करना चाहते हैं ॥ २१ ॥

वरं वृणीष्व भद्रं ते यादृशं पुत्रमीप्सितम् ।
तथोक्तः प्राञ्जली राजा पुत्रं वव्रे गुणान्वितम् ॥ २२ ॥
यशस्विनं कीर्तिमन्तं तेजस्विनमरिंदमम् ।

यस्य मूत्रं पुरीषं च क्लेदः स्वेदश्च काञ्चनम् ॥ २३ ॥
(सर्वं भवेत् प्रसादाद् वै तादृशं तनयं वृणे ।

'तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हें जैसा पुत्र अभीष्ट हो, उसके लिये वर माँगो' । नारदजीके ऐसा कहनेपर राजाने हाथ जोड़कर उनसे एक सद्गुणसम्पन्न, यशस्वी, कीर्तिमान्, तेजस्वी तथा शत्रुदमन पुत्र माँगा । वह बोला—'मुने ! मैं ऐसे पुत्रकी याचना करता हूँ, जिसका मल, मूत्र, थूक और पसीना सब कुछ आपके कृपाप्रसादसे सुवर्णमय हो जाय' ॥

व्यास उवाच

तथा भविष्यतीत्युक्ते जज्ञे तस्येप्सितः सुतः ॥
काञ्चनस्याकरः श्रीमान् प्रसादाच्च सुकाङ्क्षितः ।
अपतत् तस्य नेत्राभ्यां रुदतस्तस्य नेत्रजम् ॥)
सुवर्णष्ठीविरित्येवं तस्य नामाभवत् कृतम् ।
तस्मिन् वरप्रदानेन वर्धयत्यमितं धनम् ॥ २४ ॥

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! तब मुनिने कहा–'ऐसा ही होगा' । उनके ऐसा कहनेपर राजाको मनोवाञ्छित पुत्र प्राप्त हुआ । मुनिके प्रसादसे वह शोभाशाली पुत्र सुवर्णकी खान निकला । राजा वैसा ही पुत्र चाहते थे । रोते समय उसके नेत्रोंसे सुवर्णमय आँसू गिरता था । इसीलिये उस पुत्रका नाम सुवर्णष्ठीवी प्रसिद्ध हो गया । वरदानके प्रभावसे वह अनन्त धनराशिकी वृद्धि करने लगा ॥ २४ ॥

कारयामास नृपतिः सौवर्णं सर्वमीप्सितम् ।
गृहप्राकारदुर्गाणि ब्राह्मणावसथान्यपि ॥ २५ ॥
शय्यासनानि यानानि स्थालीं पिठरभाजनम् ।
तस्य राज्ञोऽपि यद् वेश्म बाह्याश्चोपस्कराश्च ये ॥ २६ ॥
सर्वं तत् काञ्चनमयं कालेन परिवर्धितम् ।

राजाने घर, परकोटे, दुर्ग एवं ब्राह्मणोंके निवासस्थान सारी अभीष्ट वस्तुएँ सोनेकी बनवा लीं । शय्या, आसन, सवारी, बटलोई, थाली, अन्य बर्तन, उस राजाका महल तथा बाह्य उपकरण—ये सब कुछ सुवर्णमय बन गये थे, जो समयके अनुसार बढ़ रहे थे ॥ २५–२६½ ॥

अथ दस्युगणाः श्रुत्वा दृष्ट्वा चैनं तथाविधम् ॥ २७ ॥
सम्भूय तस्य नृपतेः समारब्धाश्चिकीर्षितुम् ।

तदनन्तर लुटेरोंने राजाके वैभवकी बात सुनकर तथा उन्हें वैसा ही सम्पन्न देखकर संगठित हो उनके यहाँ लूट-पाट आरम्भ कर दी ॥ २७½ ॥

केचित् तत्राब्रुवन् राज्ञः पुत्रं गृह्णीम वै स्वयम् ॥ २८॥
सोऽस्याकरः काञ्चनस्य तस्य यत्नं चरामहे ।

उन डाकुओंमेंसे कोई-कोई इस प्रकार बोले–'हम सब लोग स्वयं इस राजाके पुत्रको अधिकारमें कर लें; क्योंकि वही इस सुवर्णकी खान है । अतः हम उसीको पकड़नेका यत्न करें' ॥ २८½ ॥

ततस्ते दस्यवो लुब्धाः प्रविश्य नृपतेर्गृहम् ॥ २९ ॥
राजपुत्रं तथा जह्रुः सुवर्णष्ठीविनं बलात् ।

तब उन लोभी लुटेरोंने राजमहलमें प्रवेश करके राजकुमार सुवर्णष्ठीवीको बलपूर्वक हर लिया ॥ २९½ ॥

गृहीत्वैनमनुपायज्ञा नीत्वारण्यमचेतसः ॥ ३० ॥
हत्वा विशस्य चापश्यन् लुब्धा वसु न किञ्चन ।
तस्य प्राणैर्विमुक्तस्य नष्टं तद् वरदं वसु ॥ ३१ ॥

योग्य उपायको न जाननेवाले उन विवेकशून्य डाकुओंने उसे वनमें ले जाकर मार डाला और उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े करके देखा, परंतु उन्हें थोड़ा-सा भी धन नहीं दिखायी दिया । उसके प्राणशून्य होते ही वह वरदायक वैभव नष्ट हो गया ॥ ३०–३१ ॥

दस्यवश्च तदान्योन्यं जघ्नुर्मूर्खा विचेतसः ।
हत्वा परस्परं नष्टाः कुमारं चाद्भुतं भुवि ॥ ३२ ॥
असम्भाव्यं गता घोरं नरकं दुष्टकारिणः ।

उस समय वे विचारशून्य मूर्ख एवं दुराचारी दस्यु भूमण्डलके उस अद्भुत और असम्भव कुमारका वध करके परस्पर एक दूसरेको मारने लगे । इस प्रकार मार-पीट करके वे भी नष्ट हो गये और भयंकर नरकमें पड़ गये ॥ ३२½ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं पुत्रं वरदत्तं महातपाः ॥ ३३ ॥
विललाप सुदुःखार्तो बहुधा करुणं नृपः ।

मुनिके वरसे प्राप्त हुए उस पुत्रको मारा गया देख वे महातपस्वी नरेश अत्यन्त दुःखसे आतुर हो नाना प्रकारसे करुणाजनक विलाप करने लगे ॥ ३३½ ॥

विलपन्तं निशम्याथ पुत्रशोकहतं नृपम् ॥ ३४ ॥
प्रत्यदृश्यत देवर्षिर्नारदस्तस्य संनिधौ ।

पुत्रशोकसे पीड़ित हुए राजा सृंजय विलाप कर रहे हैं—यह सुनकर देवर्षि नारद उनके समीप दिखायी दिये । ३४½ ।

उवाच चैनं दुःखार्तं विलपन्तमचेतसम् ॥ ३५ ॥
सृञ्जयं नारदोऽभ्येत्य तन्निबोध युधिष्ठिर ।

युधिष्ठिर ! दुःखसे पीड़ित हो अचेत होकर विलाप करते हुए राजा सृंजयके निकट आकर नारदजीने जो कुछ कहा था, वह सुनो ॥ ३५½ ॥

(नारद उवाच

त्यज शोकं महाराज वैक्लव्यं त्यज बुद्धिमन् ।
न मृतः शोचतो जीवेन्मुह्यतो वा जनाधिप ॥

नारदजी बोले—महाराज ! शोकका त्याग करो ! बुद्धिमान् नरेश ! व्याकुलता छोड़ो । जनेश्वर ! कोई कितना ही शोक क्यों न करे या दुःखसे मूर्छित क्यों न हो जाय, इससे मरा हुआ मनुष्य जीवित नहीं हो सकता ॥

त्यज मोहं नृपश्रेष्ठ न हि मुह्यन्ति त्वद्विधाः ।
धीरो भव महाराज ज्ञानवृद्धोऽसि मे मतः ॥)

नृपश्रेष्ठ ! मोह त्याग दो ! तुम्हारे-जैसे पुरुष मोहित नहीं होते हैं। महाराज ! धैर्य धारण करो ! मैं तुम्हें ज्ञानमें बढ़ा-चढ़ा मानता हूँ ॥

कामानामवितृप्तस्त्वं सृञ्जयेह मरिष्यसि ॥ ३६ ॥
यस्य चैते वयं गेहे उषिता ब्रह्मवादिनः ।

संजय ! जिसके घरमें ये हम-जैसे ब्रह्मवादी मुनि निवास करते हैं, वह तुम भी यहाँ एक दिन भोगोंसे अतृप्त रहकर ही मर जाओगे ॥ ३६½ ॥

आविक्षितं मरुत्तं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ॥ ३७ ॥
संवर्तो याजयामास स्पर्धया वै बृहस्पतेः ।
यस्मै राजर्षये प्रादाद् धनं स भगवान् प्रभुः ॥ ३८ ॥
हैमं हिमवतः पादं यियक्षोर्विविधैः स वै ।
यस्य सेन्द्राऽमरगणा बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ३९ ॥
देवा विश्वसृजः सर्वे यजनान्ते समासते ।
यज्ञवाटस्य सौवर्णाः सर्वे चासन् परिच्छदाः ॥ ४० ॥
यस्य सर्वं तदा ह्यन्नं मनोऽभिप्रायगं शुचि ।
कामतो बुभुजुर्विप्राः सर्वे चान्नार्थिनो द्विजाः ॥ ४१ ॥
पयो दधि घृतं क्षौद्रं भक्ष्यं भोज्यं च शोभनम् ।
यस्य यज्ञेषु सर्वेषु वासांस्याभरणानि च ॥ ४२ ॥
ईप्सितान्युपतिष्ठन्त प्रहृष्टान् वेदपारगान् ।
मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्याभवन् गृहे ॥ ४३ ॥
आविक्षितस्य राजर्षेर्विश्वेदेवाः सभासदः ।
यस्य वीर्यवतो राज्ञः सुवृष्ट्या सस्यसम्पदः ॥ ४४ ॥
हविर्भिस्तर्पिता येन सम्यक् क्लृप्तैर्दिवौकसः ।
ऋषीणां च पितृणां च देवानां सुखजीविनाम् ॥ ४५ ॥
ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः सर्वैर्दानैश्च सर्वदा ।
शयनासनयानानि स्वर्णराशीश्च दुस्त्यजाः ॥ ४६ ॥
तत् सर्वममितं वित्तं दत्तं विप्रेभ्य इच्छया ।
सोऽनुध्यातस्तु शक्रेण प्रजाः कृत्वा निरामयाः ॥ ४७ ॥
श्रद्दधानो जिताँल्लोकान् गतः पुण्यदुहोऽक्षयान् ।

संजय ! अविक्षितके पुत्र राजा मरुत्त भी मर गये, ऐसा हमने सुना है। बृहस्पतिजीके साथ स्पर्धा रखनेके कारण उनके भाई संवर्तने जिन राजर्षि मरुत्तका यज्ञ कराया था, भाँति-भाँतिके यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन करनेकी इच्छा होनेपर जिन्हें साक्षात् भगवान् शङ्करने प्रचुर धन-राशिके रूपमें हिमालयका एक सुवर्णमय शिखर प्रदान किया था तथा प्रतिदिन यज्ञकार्यके अन्तमें जिनकी सभामें इन्द्र आदि देवता और बृहस्पति आदि समस्त प्रजापतिगण सभासद्‌के रूपमें बैठा करते थे, जिनके यज्ञ-मण्डपकी सारी सामग्रियाँ सोनेकी बनी हुई थीं, जिनके यहाँ उन दिनों सब प्रकारका अन्न, मनकी इच्छाके अनुरूप और पवित्र रूपमें उपलब्ध होता था और सभी भोजनार्थी ब्राह्मण एवं द्विज जहाँ अपनी इच्छाके अनुसार दूध, दही, घी, मधु एवं सुन्दर भक्ष्य-भोज्य पदार्थ भोजन करते थे, जिनके सम्पूर्ण यज्ञोंमें प्रसन्नतासे भरे हुए वेदोंके पारंगत विद्वान् ब्राह्मणोंको अपनी रुचिके अनुसार वस्त्र एवं आभूषण प्राप्त होते थे, जिन अविक्षित-कुमार (राजर्षि मरुत्त) के घरमें मरुद्गण रसोई परोसनेका काम करते थे और विश्वेदेवगण सभासद् थे, जिन पराक्रमी नरेशके राज्यमें उत्तम वृष्टिके कारण खेतीकी उपज बहुत होती थी, जिन्होंने उत्तम विधिसे समर्पित किये हुए हविष्योंद्वारा देवताओंको तृप्त किया था, जो ब्रह्मचर्यपालन और वेदपाठ आदि सत्कर्मोंद्वारा तथा सब प्रकारके दानोंसे सदा ऋषियों, पितरों एवं सुखजीवी देवताओंको भी संतुष्ट करते थे तथा जिन्होंने इच्छानुसार ब्राह्मणोंको शय्या, आसन, सवारी और दुस्त्यज स्वर्णराशि आदि वह सारा अपरिमित धन दान कर दिया था, देवराज इन्द्र जिनका सदा शुभ चिन्तन करते थे, वे श्रद्धालु नरेश मरुत्त अपनी प्रजाको नीरोग करके अपने सत्कर्मोंद्वारा जीते हुए पुण्यफलदायक अक्षय लोकोंमें चले गये ॥ ३७—४७½ ॥

सप्रजः सनृपामात्यः सदारापत्यबान्धवः ॥ ४८ ॥
यौवनेन सहस्राब्दं मरुत्तो राज्यमन्वशात् ।

राजा मरुत्तने युवावस्थामें रहकर प्रजा, मन्त्री, धर्मपत्नी, पुत्र और भाइयोंके साथ एक हजार वर्षोंतक राज्य-शासन किया था ॥ ४८½ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ४९ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ ५० ॥

श्वैत्य संजय ! धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य—इन चारों बातोंमें राजा मरुत्त तुमसे बढ़कर थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे । तुम्हारे पुत्रने न तो कोई यज्ञ किया था और न उसमें कोई उदारता ही थी। अतः उसको लक्ष्य करके तुम चिन्ता न करो—नारदजीने राजा संजयसे यही बात कही ॥ ४९-५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४ श्लोक मिलाकर कुल ५४ श्लोक हैं)

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राजा सुहोत्रकी दानशीलता

नारद उवाच

सुहोत्रं नाम राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
एकवीरमशक्यं तममरैरभिवीक्षितुम्॥ १॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय! राजा सुहोत्रकी भी मृत्यु सुनी गयी है। वे अपने समयके अद्वितीय वीर थे। देवता भी उनकी ओर आँख उठाकर नहीं देख सकते थे॥

यः प्राप्य राज्यं धर्मेण ऋत्विग्ब्रह्मपुरोहितान्।
अपृच्छदात्मनः श्रेयः पृष्ट्वा तेषां मते स्थितः॥ २॥

उन्होंने धर्मके अनुसार राज्य पाकर ऋत्विजों, ब्राह्मणों तथा पुरोहितोंसे अपने कल्याणका उपाय पूछा और पूछकर वे उनकी सम्मतिके अनुसार चलते रहे॥ २॥

प्रजानां पालनं धर्मो दानमिज्या द्विषज्जयः।
एतत् सुहोत्रो विज्ञाय धर्मेणैच्छद् धनागमम्॥ ३॥

प्रजापालन, धर्म, दान, यज्ञ और शत्रुओंपर विजय पाना—इन सबको राजा सुहोत्रने अपने लिये श्रेयस्कर जानकर धर्मके द्वारा ही धन पानेकी अभिलाषा की॥ ३॥

धर्मेणाराधयन् देवान्
बाणैः शत्रूञ्जयंस्तथा।
सर्वाण्यपि च भूतानि
स्वगुणैरप्यरञ्जयत्॥ ४॥
यो भुक्त्वेमां वसुमतीं
म्लेच्छाटविकवर्जिताम्।
यस्मै ववर्ष पर्जन्यो
हिरण्यं परिवत्सरान्॥ ५॥

उन्होंने इस पृथ्वीको म्लेच्छों तथा तस्करोंसे रहित करके इसका उपभोग किया और धर्माचरणद्वारा देवताओंकी आराधना तथा बाणोंद्वारा शत्रुओंपर विजय करते हुए अपने गुणोंसे समस्त प्राणियोंका मनोरञ्जन किया था, उनके लिये मेघने अनेक वर्षोंतक सुवर्णकी वर्षा की थी॥४-५॥

हैरण्यास्तत्र वाहिन्यः स्वैरिण्यो व्यवहन् पुरा।
ग्राहान् कर्कटकांश्चैव मत्स्यांश्च विविधान् बहून्॥ ६॥

राजा सुहोत्रके राज्यमें पहले स्वच्छन्द गतिसे बहनेवाली स्वर्णरससे भरी हुई सरिताएँ सुवर्णमय ग्राहों, केकड़ों, मत्स्यों तथा नाना प्रकारके बहुसंख्यक जल-जन्तुओंको अपने भीतर बहाया करती थीं॥ ६॥

कामान् वर्षति पर्जन्यो रूप्याणि विविधानि च।
सौवर्णान्यप्रमेयाणि वाप्यश्च क्रोशसम्मिताः॥ ७॥

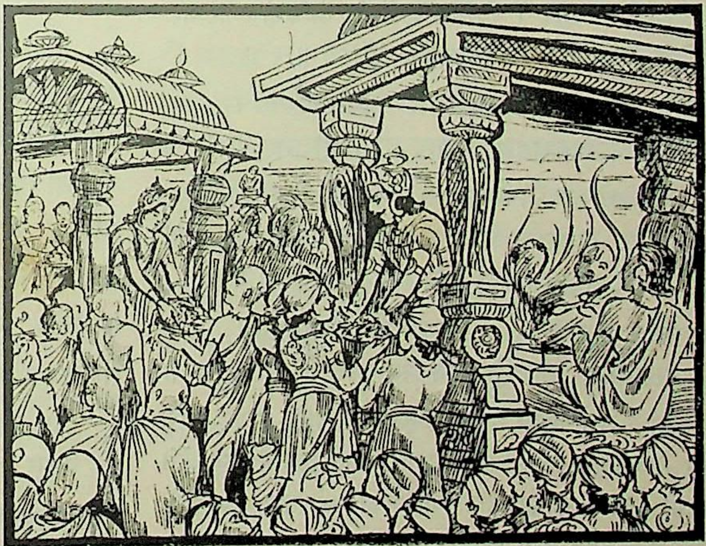
मेघ अभीष्ट वस्तुओंकी तथा नाना प्रकारके रजत और असंख्य सुवर्णकी वर्षा करते थे। उनके राज्यमें एक-एक कोसकी लंबी-चौड़ी बावलियाँ थीं॥ ७॥

सहस्रं वामनान् कुब्जान् नक्रान् मकरकच्छपान्।
सौवर्णान् विहितान् दृष्ट्वा ततोऽस्मयत वै तदा॥ ८॥

उनमें सहस्रों नाटे-कुबड़े ग्राह, मगर और कछुए रहते थे, जिनके शरीर सुवर्णके बने हुए थे। उन्हें देखकर राजाको उन दिनों बड़ा विस्मय होता था॥ ८॥

तत् सुवर्णमपर्यन्तं राजर्षिः कुरुजाङ्गले।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत॥ ९॥

राजर्षि सुहोत्रने कुरुजाङ्गल देशमें यज्ञ किया और उस विशाल यज्ञमें अपनी अनन्त सुवर्णराशि ब्राह्मणोंको बाँट दी॥ ९॥



सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च।
पुण्यैः क्षत्रिययज्ञैश्च प्रभूतवरदक्षिणैः॥ १०॥

उन्होंने एक हजार अश्वमेध, सौ राजसूय तथा बहुत-सी श्रेष्ठ दक्षिणावाले अनेक पुण्यमय क्षत्रिय-यज्ञोंका अनुष्ठान किया था॥ १०॥

काम्यनैमित्तिकाजस्रैरिष्टां गतिमवाप्तवान्।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया॥ ११॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।

अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १२ ॥

राजाने नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य यज्ञोंके निरन्तर अनुष्ठानसे मनोवाञ्छित गति प्राप्त कर ली। श्वैत्य सृंजय! वे भी तुमसे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य–इन चारों कल्याणकारी विषयोंमें बहुत बढ़े-चढ़े थे। तुम्हारे पुत्रसे भी वे अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब तुम्हें अपने पुत्रके लिये अनुताप नहीं करना चाहिये; क्योंकि तुम्हारे पुत्रने न तो कोई यज्ञ किया था और न उसमें दाक्षिण्य (उदारताका गुण) ही था। नारदजीने राजा सृञ्जयसे यही बात कही ॥ ११-१२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राजा पौरवके अद्भुत दानका वृत्तान्त

नारद उवाच

राजानं पौरवं वीरं मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
सहस्रं यः सहस्राणां श्वेतानश्वानवासृजत् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—संजय! हमने वीर राजा पौरवकी भी मृत्यु हुई सुनी है, जिन्होंने दस लाख श्वेत घोड़ोंका दान किया था ॥ १ ॥

तस्याश्वमेधे राजर्षेर्देशाद्देशात् समीयुषाम्।
शिक्षाक्षरविधिज्ञानां नासीत् संख्या विपश्चिताम् ॥ २ ॥

उन राजर्षिके अश्वमेध, यज्ञमें देश-देशसे आये हुए शिक्षाशास्त्र, अक्षर (विभिन्न देशोंकी लिपि) और यज्ञ-विधिके ज्ञाता विद्वानोंकी गिनती नहीं थी ॥ २ ॥

वेदविद्याव्रतस्नाता वदान्याः प्रियदर्शनाः।
सुभिक्षाच्छादनगृहाः सुशय्यासनभोजनाः ॥ ३ ॥

वेदविद्याके अध्ययनका व्रत पूर्ण करके स्नातक बने हुए उदार और प्रियदर्शन पण्डितजन राजासे उत्तम अन्न, वस्त्र, गृह, सुन्दर शय्या, आसन और भोजन पाते थे ॥ ३ ॥

नटनर्तकगन्धर्वैः पूर्णकैर्वर्धमानकैः।
नित्योद्योगैश्च क्रीडद्भिस्तत्र स्म परिहर्षिताः ॥ ४ ॥

नित्य उद्योगशील एवं खेल-कूद करनेवाले नट, नर्तक और गन्धर्वगण कुक्कुटकी-सी आकृतिवाले आरतीके प्यालोंसे अपनी कला दिखाकर उक्त विद्वानोंका मनोरञ्जन एवं हर्ष-वर्द्धन करते रहते थे ॥ ४ ॥

यज्ञे यज्ञे यथाकालं दक्षिणाः सोऽत्यकालयत्।
द्विपा दशसहस्राख्याः प्रमदाः काञ्चनप्रभाः ॥ ५ ॥
सध्वजाः सपताकाश्च रथा हेममयास्तथा।
यः सहस्रं सहस्राणि कन्या हेमविभूषिताः ॥ ६ ॥

राजा पौरव प्रत्येक यज्ञमें यथासमय प्रचुर दक्षिणा बाँटते थे। उन्होंने स्वर्णकी-सी कान्तिवाले दस हजार मतवाले हाथी, ध्वजा और पताकाओंसहित सुवर्णमय बहुत-से रथ तथा एक लाख स्वर्णभूषित कन्याओंका दान किया था ॥ ५-६ ॥

धूर्युजाश्वगजारूढाः सगृहक्षेत्रगोशताः।
शतं शतसहस्राणि स्वर्णमालिमहात्मनाम् ॥ ७ ॥
गवां सहस्रानुचरान् दक्षिणामत्यकालयत्।

वे कन्याएँ रथ, अश्व एवं हाथियोंपर आरूढ़ थीं। उनके साथ ही उन्होंने सौ-सौ घर, क्षेत्र और गौएँ प्रदान की थीं। राजाने सुवर्णमालामण्डित विशालकाय एक करोड़ गाय, बैलों और उनके सहस्रों अनुचरोंको दक्षिणारूपसे दान किया था ॥ ७½ ॥

हेमशृङ्‌ग्यो रौप्यखुराः सवत्साः कांस्यदोहनाः ॥ ८ ॥
दासीदासखरोष्ट्रांश्च प्रादादाजाविकं बहु।

सोनेके सींग, चाँदीके खुर और कांसेके दुग्धपात्रवाली बहुत-सी बछड़ेसहित गौएँ तथा दास, दासी, गदहे, ऊँट एवं बकरी और भेड़ आदि भारी संख्यामें दान किये ॥ ८½ ॥

रत्नानां विविधानां च विविधांश्चान्नपर्वतान् ॥ ९ ॥
तस्मिन् संविततते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत्।

उस विशाल यज्ञमें नाना प्रकारके रत्नों तथा भाँति-भाँतिके अन्नोंके पर्वत-समान ढेर उन्होंने दक्षिणारूपमें दिये ॥ ९½ ॥

तत्रास्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥ १० ॥

उस यज्ञके सम्बन्धमें प्राचीन बातोंको जाननेवाले लोग इस प्रकार गाथा गाते हैं—॥ १० ॥

अङ्गस्य यजमानस्य स्वधर्माधिगताः शुभाः।
गुणोत्तरास्तु क्रतवस्तस्यासन् सार्वकामिकाः ॥ ११ ॥

'यजमान अङ्गनरेशके सभी यज्ञ स्वधर्मके अनुसार प्राप्त और शुभ थे। वे उत्तरोत्तर गुणवान् और सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि करनेवाले थे' ॥ ११ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १२ ॥

संजय! राजा पौरव धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य—

इन चारों बातोंमें तुमसे बढ़कर थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। श्वैत्य सृंजय! जब वे भी मर गये, तब तुम यज्ञ और दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही॥ १२॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५७॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राजा शिविके यज्ञ और दानकी महत्ता

नारद उवाच

शिविमौशीनरं चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
य इमां पृथिवीं सर्वां चर्मवत् पर्यवेष्टयत्॥ १॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय! जिन्होंने इस सम्पूर्ण पृथ्वीको चमड़ेकी भाँति लपेट लिया था, (सर्वथा अपने अधीन कर लिया था) वे उशीनरपुत्र राजा शिवि भी मरे थे, यह हमने सुना है॥ १॥

साद्रिद्वीपार्णववनां रथघोषेण नादयन्।
स शिबिर्वै रिपून् नित्यं मुख्यान् निघ्नन् सपत्नजित्॥ २॥

राजा शिविने पर्वत, द्वीप, समुद्र और वनोंसहित इस पृथ्वीको अपने रथकी घरघराहटसे प्रतिध्वनित करते हुए प्रधान-प्रधान शत्रुओंको मारकर सदा ही अपने विपक्षियोंपर विजय प्राप्त की थी॥ २॥

तेन यज्ञैर्बहुविधैरिष्टं पर्याप्तदक्षिणैः।
स राजा वीर्यवान् धीमानवाप्य वसु पुष्कलम्॥ ३॥
सर्वमूर्धाभिषिक्तानां सम्मतः सोऽभवद् युधि।
अयजच्चाश्वमेधैर्यो विजित्य पृथिवीमिमाम्॥ ४॥

उन्होंने प्रचुर दक्षिणाओंसे युक्त नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। वे पराक्रमी और बुद्धिमान् नरेश पर्याप्त धन पाकर युद्धमें सम्पूर्ण मूर्धाभिषिक्त राजाओंकी दृष्टिमें सम्माननीय वीर हो गये थे। उन्होंने इस पृथ्वीको जीतकर अनेक अश्वमेध-यज्ञ किये थे॥ ३-४॥

निरर्गलैर्बहुफलैर्निष्ककोटिसहस्रदः।
हस्त्यश्वपशुभिर्धान्यैर्मृगैर्गोऽजाविभिस्तथा॥ ५॥
विविधां पृथिवीं पुण्यां शिबिर्ब्राह्मणसात्करोत्।

उनके वे यज्ञ प्रचुर फल देनेवाले थे और सदा निर्बाध-रूपसे चलते रहते थे। उन्होंने सहस्रकोटि स्वर्णमुद्राओंका दान किया था। राजा शिबिने हाथी, घोड़े, मृग, गौ, भेड़ और बकरी आदि पशुओं तथा धान्यसहित नाना प्रकारके पवित्र भूखण्ड ब्राह्मणोंके अधीन कर दिये थे॥ ५½॥

यावत्यो वर्षतो धारा यावत्यो दिवि तारकाः॥ ६॥
यावत्यः सिकता गाङ्ग्यो यावन्मेरोर्महोपलाः।
उदन्वति च यावन्ति रत्नानि प्राणिनोऽपि च॥ ७॥
तावतीरददद् गा वै शिबिरौशीनरोऽध्वरे।

बरसते हुए मेघसे जितनी धाराएँ गिरती हैं, आकाशमें जितने नक्षत्र दिखायी देते हैं, गङ्गाके किनारे जितने बालूके कण हैं, सुमेरु पर्वतमें जितने स्थूल प्रस्तरखण्ड हैं तथा महासागरमें जितने रत्न और प्राणी निवास करते हैं, उतनी गौएँ उशीनरपुत्र शिबिने यज्ञमें ब्राह्मणोंको दी थीं॥ ६-७½॥

नो यन्तारं धुरस्तस्य कञ्चिदन्यं प्रजापतिः॥ ८॥
भूतं भव्यं भवन्तं वा नाध्यगच्छन्नरोत्तमम्।

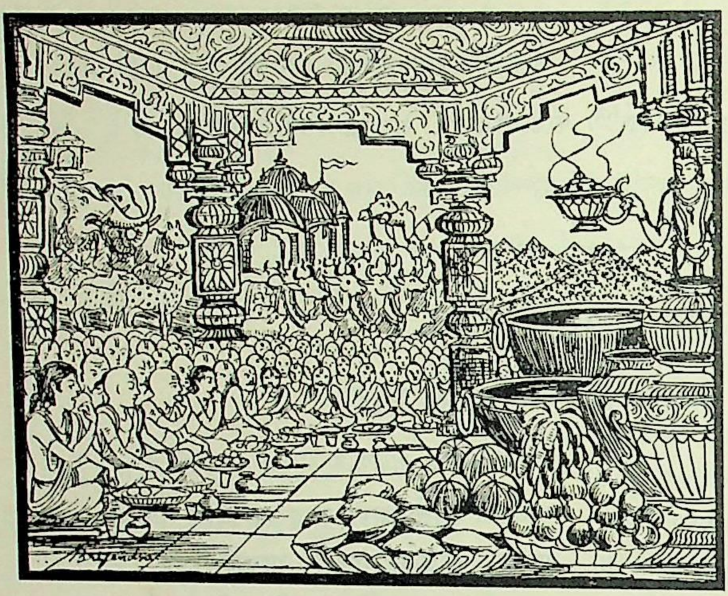
प्रजापतिने भी अपनी सृष्टिमें भूत, भविष्य और वर्तमान कालके किसी भी दूसरे नरश्रेष्ठ राजाको ऐसा नहीं पाया, जो शिबिके कार्यभारको सँभाल सकता हो॥ ८½॥

तस्यासन् विविधा यज्ञाः सर्वकामैः समन्विताः॥ ९॥
हेमयूपासनगृहा हेमप्राकारतोरणाः।

उन्होंने नाना प्रकारके बहुत-से यज्ञ किये, जिनमें प्रार्थियोंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण की जाती थीं। उन यज्ञोंमें यज्ञस्तम्भ, आसन, गृह, परकोटे और दरवाजे सुवर्णके बने हुए थे॥ ९½॥

शुचि स्वाद्वन्नपानं च ब्राह्मणाः प्रयुतायुताः॥ १०॥
नानाभक्ष्यैः प्रियकथाः पयोदधिमहाह्रदाः।
तस्यासन् यज्ञवाटेषु नद्यः शुभ्रान्नपर्वताः॥ ११॥

उन यज्ञोंमें खाने-पीनेकी वस्तुएँ पवित्र और स्वादिष्ट होती थीं। वहाँ दूध-दहीके बड़े-बड़े सरोवर बने हुए थे। वहाँ हजारों और लाखों ब्राह्मण भाँति-भाँतिके खाद्य पदार्थ पाकर प्रसन्नता प्रकट करनेवाली बातें कहते थे। उनकी यज्ञशालाओं-में पीने योग्य पदार्थोंकी नदियाँ बहती थीं और शुद्ध अन्नके पर्वतोंके समान ढेर लगे रहते थे॥ १०-११॥



पिबत स्नात खादध्वमिति यद् रोचते जनाः।
यस्मै प्रादाद् वरं रुद्रस्तुष्टः पुण्येन कर्मणा ॥ १२ ॥
अक्षयं ददतो वित्तं श्रद्धा कीर्तिस्तथा क्रियाः।
यथोक्तमेव भूतानां प्रियत्वं स्वर्गमुत्तमम् ॥ १३ ॥

वहाँ सबके लिये यह घोषणा की जाती थी कि 'सज्जनो! स्नान करो और जिसकी जैसी रुचि हो उसके अनुसार अन्न-पान लेकर खूब खाओ-पीओ'। भगवान् शिवने राजा शिबिके पुण्यकर्मसे प्रसन्न होकर उन्हें यह वर दिया था कि राजन्! सदा दान करते रहनेपर भी तुम्हारा धन क्षीण नहीं होगा, तुम्हारी श्रद्धा, कीर्ति और पुण्यकर्म भी अक्षय होंगे। तुम्हारे कहनेके अनुसार ही सब प्राणी तुमसे प्रेम करेंगे और अन्तमें तुम्हें उत्तम स्वर्गलोककी प्राप्ति होगी ॥ १२-१३ ॥

एताँल्लब्ध्वा वरानिष्टा-
ञ्छिबिः काले दिवं गतः।
स चेन्ममार सृञ्जय
चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १४ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं
मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्य-
मभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १५ ॥

इन अभीष्ट वरोंको पाकर राजा शिबि समय आनेपर स्वर्गलोकमें गये। सृंजय! वे तुम्हारी अपेक्षा पूर्वोक्त चारों बातोंमें बहुत बढ़े-चढ़े थे। तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। श्वित्यनन्दन! जब वे शिबि भी मर गये, तब तुम्हें यज्ञ और दानसे रहित अपने पुत्रके लिये इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिये। नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही ॥ १४-१५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीरामका चरित्र

नारद उवाच

रामं दाशरथिं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
यं प्रजा अन्वमोदन्त पिता पुत्रानिवौरसान् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय! दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम भी यहाँसे परमधामको चले गये थे, यह मेरे सुननेमें आया है। उनके राज्यमें सारी प्रजा निरन्तर आनन्दमग्न रहती थी। जैसे पिता अपने औरस पुत्रोंका पालन करता है, उसी प्रकार वे समस्त प्रजाका स्नेहपूर्वक संरक्षण करते थे॥

असंख्येया गुणा यस्मिन्नासन्नमिततेजसि।
यश्चतुर्दश वर्षाणि निदेशात् पितुरच्युतः ॥ २ ॥
वने वनितया सार्धमवसल्लक्ष्मणाग्रजः।

वे अत्यन्त तेजस्वी थे और उनमें असंख्य गुण विद्यमान थे। अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीरामने पिताकी आज्ञासे चौदह वर्षोंतक अपनी पत्नी सीता (और भाई लक्ष्मण) के साथ वनमें निवास किया था ॥ २½ ॥

जघान च जनस्थाने राक्षसान् मनुजर्षभः ॥ ३ ॥
तपस्विनां रक्षणार्थं सहस्राणि चतुर्दश।

नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने जनस्थानमें तपस्वी मुनियोंकी रक्षाके लिये चौदह हजार राक्षसोंका वध किया था ॥ ३½ ॥

तत्रैव वसतस्तस्य रावणो नाम राक्षसः ॥ ४ ॥
जहार भार्यां वैदेहीं सम्मोह्यैनं सहानुजम्।

वहीं रहते समय लक्ष्मणसहित श्रीरामको मोहमें डालकर रावण नामक राक्षसने उनकी पत्नी विदेहनन्दिनी सीताको हर लिया ॥ ४½ ॥

(रामां हृतां राक्षसेन भार्यां श्रुत्वा जटायुषः।
आतुरः शोकसंतप्तोऽगच्छद् रामो हरीश्वरम् ॥

अपनी मनोरमा पत्नीके राक्षसद्वारा हर लिये जानेका

समाचार जटायुके मुखसे सुनकर श्रीरामचन्द्रजी आतुर एवं शोकसंतप्त हो वानरराज सुग्रीवके पास गये ॥

तेन रामः ससङ्गम्य वानरैश्च महाबलैः ।
आजगामोदधेः पारं सेतुं कृत्वा महार्णवे ॥

सुग्रीवसे मिलकर श्रीरामने (उनके साथ मित्रता की और) महाबली वानरोंको साथ ले महासागरमें पुल बाँधकर समुद्रको पार किया ॥

तत्र हत्वा तु पौलस्त्यान् ससुहृद्गणबान्धवान् ।
मायाविनं महाघोरं रावणं लोककण्टकम् ॥)
तमागस्कारिणं रामः पौलस्त्यमजितं परैः ॥ ५ ॥
जघान समरे क्रुद्धः पुरेव त्र्यम्बकोऽन्धकम् ।

वहाँ पुलस्त्यवंशी राक्षसोंको उनके सुहृदों और बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर श्रीरामने अपने प्रधान अपराधी अत्यन्त घोर मायावी लोककंटक पुलस्त्यनन्दन रावणको, जो दूसरोंके द्वारा कभी जीता नहीं गया था, कुपित होकर समर-भूमिमें मार डाला । ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें भगवान् शङ्करने अन्धकासुरको मारा था ॥ ५½ ॥

सुरासुरैरवध्यं तं देवब्राह्मणकण्टकम् ॥ ६ ॥
जघान स महाबाहुः पौलस्त्यं सगणं रणे ।

जो देवताओं और असुरोंके लिये भी अवध्य था, देवताओं और ब्राह्मणोंके लिये कण्टकरूप उस पुलस्त्यवंशी रावणका रणक्षेत्रमें महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीने उसके दलबल-सहित संहार कर डाला ॥ ६½ ॥

(हत्वा तत्र रिपुं संख्ये भार्यया सह सङ्गतः ।
लङ्केश्वरं च चक्रे स धर्मात्मानं विभीषणम् ॥

इस प्रकार वहाँ युद्धस्थलमें अपने वैरी रावणका वध करके वे धर्मपत्नी सीतासे मिले । तत्पश्चात् धर्मात्मा विभीषण-को उन्होंने लङ्काका राजा बना दिया ॥

भार्यया सह संयुक्तस्ततो वानरसेनया ।
अयोध्यामागतो वीरः पुष्पकेण विराजता ॥

तदनन्तर वीर श्रीरामचन्द्रजी अपनी पत्नी तथा वानरसेनाके साथ शोभाशाली पुष्पकविमानके द्वारा अयोध्यामें आये ॥

तत्र राजन् प्रविष्टः स अयोध्यायां महायशाः ।
मातॄर्वयस्यान् सचिवानृत्विजः सपुरोहितान् ॥
शुश्रूषमाणः सततं मन्त्रिभिश्चाभिषेचितः ।

राजन् ! अयोध्यामें प्रवेश करके महायशस्वी श्रीराम वहाँ माताओं, मित्रों, मन्त्रियों, ऋत्विजों तथा पुरोहितोंकी सेवामें सदैव संलग्न रहने लगे । फिर मन्त्रियोंने उनका राज्याभिषेक कर दिया ॥

विसृज्य हरिराजानं हनुमन्तं सहाङ्गदम् ॥
भ्रातरं भरतं वीरं शत्रुघ्नं चैव लक्ष्मणम् ।
पूजयन् परया प्रीत्या वैदेह्या चाभिपूजितः ॥
चतुःसागरपर्यन्तां पृथिवीमन्वशासत ॥)
स प्रजानुग्रहं कृत्वा त्रिदशैरभिपूजितः ॥ ७ ॥

इसके बाद वानरराज सुग्रीव, हनुमान् और अङ्गदको विदा करके अपने वीर भ्राता भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मणका आदर करते हुए विदेहनन्दिनी सीताद्वारा परम प्रेमपूर्वक सम्मानित हो श्रीरामचन्द्रजीने चारों समुद्रोंतककी सारी पृथ्वीका शासन किया और समस्त प्रजाओंपर अनुग्रह करके वे देवताओंद्वारा सम्मानित हुए ॥ ७ ॥

व्याप्य कृत्स्नं जगत् कीर्त्या सुरर्षिगणसेवितः ।
स प्राप्य विधिवद् राज्यं सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ८ ॥
आजहार महायज्ञं प्रजा धर्मेण पालयन् ।
निरर्गलं राजसूयमश्वमेधं च तं विभुः ॥ ९ ॥
आजहार सुरेशस्य हविषा मुदमाहरत् ।
अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरीजे बहुगुणैर्नृपः ॥ १० ॥

देवर्षिगणोंसे सेवित श्रीरामने विधिपूर्वक राज्य पाकर अपनी कीर्तिसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर दिया और समस्त प्राणियोंपर अनुग्रह करते हुए वे धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे । भगवान् रामने निर्बाधरूपसे राजसूय और अश्व-मेध-यज्ञका अनुष्ठान किया और देवराज इन्द्रको हविष्यसे तृप्त करके उन्हें अत्यन्त आनन्द प्रदान किया । राजा रामने नाना प्रकारके दूसरे-दूसरे यज्ञ भी किये थे, जो अनेक गुणोंसे सम्पन्न थे ॥

क्षुत्पिपासेऽजयद् रामः सर्वरोगांश्च देहिनाम् ।
सततं गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ११ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने भूख और प्यासको जीत लिया था । सम्पूर्ण देहधारियोंके रोगोंको नष्ट कर दिया था । वे उत्तम गुणोंसे सम्पन्न हो सदैव अपने तेजसे प्रकाशित होते थे ॥ ११ ॥

अति सर्वाणि भूतानि रामो दाशरथिर्बभौ ।
ऋषीणां देवतानां च मानुषाणां च सर्वशः ॥ १२ ॥
पृथिव्यां सहवासोऽभूद् रामे राज्यं प्रशासति ।

दशरथनन्दन श्रीराम (अपने महान् तेजके कारण) सम्पूर्ण प्राणियोंसे बढ़कर शोभा पाते थे। श्रीरामके राज्यशासन करते समय ऋषि, देवता और मनुष्य सभी एक साथ इस पृथ्वीपर निवास करते थे ॥ १२½ ॥

नाहीयत तदा प्राणः प्राणिनां न तदन्यथा ॥ १३ ॥
प्राणोऽपानः समानश्च रामे राज्यं प्रशासति ।

उस समय उनके राज्य शासनकालमें प्राणियोंके प्राण, अपान और समान आदि प्राणवायुका क्षय नहीं होता था; इस नियममें कोई हेर-फेर नहीं था ॥ १३½ ॥

पर्यदीप्यन्त तेजांसि तदानर्थाश्च नाभवन् ॥ १४ ॥
दीर्घायुषः प्रजाः सर्वा युवा न म्रियते तदा ।

(यज्ञों अथवा अग्निहोत्र-गृहोंमें) सब ओर अग्निदेव प्रज्वलित होते रहते थे । उन दिनों किसी प्रकारका अनर्थ नहीं होता था । सारी प्रजा दीर्घायु होती थी । किसी युवककी मृत्यु नहीं हुआ करती थी ॥ १४½ ॥

वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः प्राप्नुवन्ति दिवौकसः ॥ १५ ॥
हव्यं कव्यं च विविधं निष्पूर्तं हुतमेव च ।

चारों वेदोंके स्वाध्यायसे प्रसन्न हुए देवता तथा पितृगण नाना प्रकारके हव्य और कव्य प्राप्त करते थे । सब ओर इष्ट (यज्ञयागादि) और पूर्त (वापी, कूप, तडाग और वृक्षारोपण आदि) का अनुष्ठान होता रहता था ॥ १५½ ॥

अदंशमशका देशा नष्टव्यालसरीसृपाः ॥ १६ ॥
नाप्सु प्राणभृतां मृत्युर्नाकाले ज्वलनोऽदहत् ।

श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें किसी भी देशमें डाँस और मच्छरोंका भय नहीं था । साँप और बिच्छू नष्ट हो गये थे । जलमें पड़नेपर भी किसी प्राणीकी मृत्यु नहीं होती थी । चिताकी अग्निने किसी भी मनुष्यको असमयमें नहीं जलाया था (किसीकी अकालमृत्यु नहीं हुई थी) ॥ १६½ ॥

अधर्मरुचयो लुब्धा मूर्खा वा नाभवंस्तदा ॥ १७ ॥
शिष्टेष्टयज्ञकर्माणः सर्वे वर्णास्तदाभवन् ।

उन दिनों लोग अधर्ममें रुचि रखनेवाले, लोभी और मूर्ख नहीं होते थे । उस समय सभी वर्णके लोग अपने लिये शास्त्रविहित यज्ञ-यागादि कर्मोंका अनुष्ठान करते थे ॥ १७½ ॥

स्वधां पूजां च रक्षोभिर्जनस्थाने प्रणाशिताम् ॥ १८ ॥
प्रादान्निहत्य रक्षांसि पितृदेवेभ्य ईश्वरः ।

जनस्थानमें राक्षसोंने जो पितरों और देवताओंकी पूजा-अर्चा नष्ट कर दी थी, उसे भगवान् श्रीरामने राक्षसोंको मारकर पुनः प्रचलित किया और पितरोंको श्राद्धका तथा देवताओंको यज्ञका भाग दिया ॥ १८½ ॥

सहस्रपुत्राः पुरुषा दशवर्षशतायुषः ॥ १९ ॥
न च ज्येष्ठाः कनिष्ठेभ्यस्तदा श्राद्धान्यकारयन् ।

श्रीरामके राज्यकालमें एक-एक मनुष्यके हजार-हजार पुत्र होते थे और उनकी आयु भी एक-एक सहस्र वर्षोंकी होती थी । बड़ोंको अपने छोटोंका श्राद्ध नहीं करना पड़ता था ॥ १९½ ॥

(न तस्करा वा व्याधिर्वा विविधोपद्रवाः क्वचित् ।
अनावृष्टिभयं चात्र दुर्भिक्षो व्याधयः क्वचित् ॥
सर्वं प्रसन्नमेवासीदत्यन्तसुखसंयुतम् ।
एवं लोकोऽभवत् सर्वो रामे राज्यं प्रशासति ॥)

श्रीरामके राज्यमें कहीं भी चोर, नाना प्रकारके रोग और भाँति-भाँतिके उपद्रव नहीं थे । दुर्भिक्ष, व्याधि और अनावृष्टिका भय भी कहीं नहीं था । सारा जगत् अत्यन्त सुखसे सम्पन्न और प्रसन्न ही दिखायी देता था । इस प्रकार श्रीरामके राज्य करते समय सब लोग बहुत सुखी थे ॥

श्यामो युवा लोहिताक्षो मत्तमातङ्गविक्रमः ॥ २० ॥
आजानुबाहुः सुभुजः सिंहस्कन्धो महाबलः ।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ २१ ॥
सर्वभूतमनःकान्तो रामो राज्यमकारयत् ।

भगवान् श्रीरामकी श्यामसुन्दर छवि, तरुण अवस्था और कुछ-कुछ अरुणाई लिये बड़ी-बड़ी आँखें थीं । उनकी चाल मतवाले हाथी-जैसी थी, भुजाएँ सुन्दर और घुटनोंतक लंबी थीं । कंधे सिंहके समान थे । उनमें महान् बल था । उनकी कान्ति समस्त प्राणियोंके मनको मोह लेनेवाली थी । उन्होंने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया था ॥ २०-२१½ ॥

रामो रामो राम इति प्रजानामभवत् कथा ॥ २२ ॥
रामाद् रामं जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति ।

श्रीरामचन्द्रजीके राज्य-शासन-कालमें समस्त प्रजाओंमें 'राम, राम, राम' यही चर्चा होती थी । श्रीरामके कारण सारा जगत् ही राममय हो रहा था ॥ २२½ ॥

चतुर्विधाः प्रजा रामः स्वर्गं नीत्वा दिवं गतः ॥ २३ ॥
आत्मानं सम्प्रतिष्ठाप्य राजवंशमिहाष्टधा ।

फिर समयानुसार अपने और भाइयोंके अंशभूत दो-दो पुत्रोंद्वारा आठ प्रकारके राजवंशकी स्थापना करके उन्होंने चारों वर्णोंकी प्रजाको अपने धाममें भेजकर स्वयं ही सदेह परम धामको गमन किया ॥ २३½ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ २४ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ २५ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे श्रीरामचन्द्रजी धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य चारों बातोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे



और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी यहाँ नहीं रह सके, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है ? अतः तुम यज्ञ एवं दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही ॥ २४-२५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १०½ श्लोक मिलाकर कुल ३५½ श्लोक हैं)

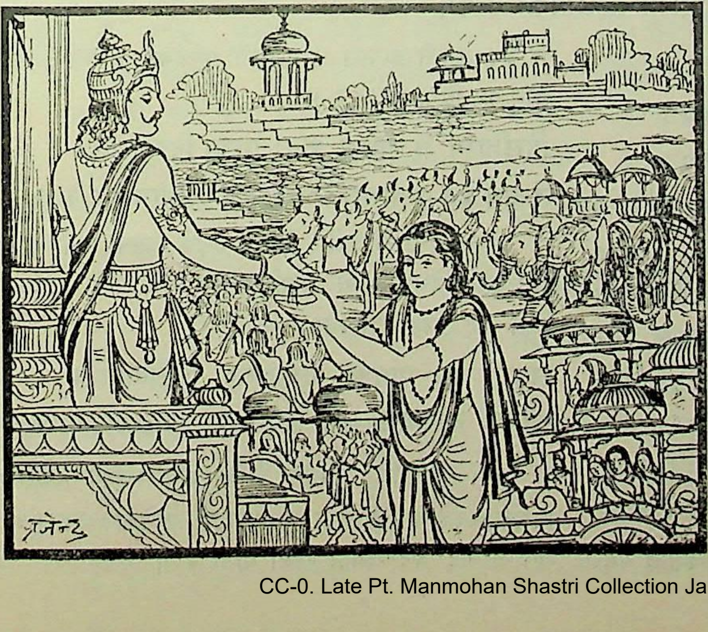
षष्टितमोऽध्यायः

राजा भगीरथका चरित्र

नारद उवाच

भगीरथं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
परित्राणाय पूर्वेषां येन गङ्गावतारिता।
यस्येन्द्रो बाहुवीर्येण प्रीतो राज्ञो महात्मनः॥
योऽश्वमेधशतैरीजे समाप्तवरदक्षिणैः।
हविर्मन्त्रान्नसम्पन्नैर्देवानामादधान्मुदम्॥
यस्येन्द्रो वितते यज्ञे सोमं पीत्वा मदोत्कटः।
असुराणां सहस्राणि बहूनि च सुरेश्वरः॥
अजयद् बाहुवीर्येण भगवाँल्लोकपूजितः।)
येन भागीरथी गङ्गा चयनैः काञ्चनैश्चिता ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! हमारे सुननेमें आया है कि राजा भगीरथ भी मर गये, जिन्होंने अपने पूर्वजोंका उद्धार करनेके लिये इस भूतलपर गङ्गाजीको उतारा था। जिन महामना नरेशके बाहुबलसे इन्द्र बहुत प्रसन्न थे, जिन्होंने प्रचुर एवं उत्तम दक्षिणासे युक्त हविष्य, मन्त्र और अन्नसे सम्पन्न सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया और देवताओंका आनन्द बढ़ाया, जिनके महान् यज्ञमें इन्द्र सोमरस पीकर मदोन्मत्त हो उठे थे तथा जिनके यहाँ रहकर लोकपूजित भगवान् देवेन्द्रने अपने बाहुबलसे अनेक सहस्र असुरोंको पराजित किया, उन्हीं राजा भगीरथने यज्ञ करते समय गङ्गाके दोनों किनारोंपर सोनेकी ईंटोंके घाट बनवाये थे ॥ १ ॥



यः सहस्रं सहस्राणां कन्या हेमविभूषिताः।
राज्ञश्च राजपुत्रांश्च ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २ ॥

इतना ही नहीं, उन्होंने कितने ही राजाओं तथा राजपुत्रोंको जीतकर उनके यहाँसे सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित दस लाख कन्याएँ लाकर उन्हें ब्राह्मणोंको दान किया था ॥ २ ॥

सर्वा रथगताः कन्या रथाः सर्वे चतुर्युजः।
रथे रथे शतं नागाः सर्वे वै हेममालिनः ॥ ३ ॥

वे सभी कन्याएँ रथोंमें बैठी थीं। उन सभी रथोंमें चार-चार घोड़े जुते थे। प्रत्येक रथके पीछे सोनेके हारोंसे अलंकृत सौ-सौ हाथी चलते थे ॥ ३ ॥

सहस्रमश्वाश्चैकैकं गजानां पृष्ठतोऽन्वयुः।
अश्वे अश्वे शतं गावो गवां पश्चादजाविकम् ॥ ४ ॥

एक-एक हाथीके पीछे हजार-हजार घोड़े जा रहे थे और एक-एक घोड़ेके साथ सौ-सौ गौएँ एवं गौओंके पीछे भेड़ और बकरियोंके झुंड चलते थे ॥ ४ ॥

तेनाक्रान्ता जलौघेन दक्षिणा भूयसीर्ददत्।
उपह्वरेऽतिव्यथिता तस्याङ्के निषसाद ह ॥ ५ ॥

राजा भगीरथ गङ्गाके तटपर भूयसी (प्रचुर) दक्षिणा देते हुए निवास करते थे। अतः उनके संकल्पकालिक जलप्रवाहसे आक्रान्त होकर गङ्गादेवी मानो अत्यन्त व्यथित हो उठीं और समीपवर्ती राजाके अङ्कमें आ बैठीं ॥ ५ ॥

तथा भागीरथी गङ्गा उर्वशी चाभवत् पुरा।
दुहितृत्वं गता राज्ञः पुत्रत्वमगमत् तदा ॥ ६ ॥

इस प्रकार भगीरथकी पुत्री होनेसे गङ्गाजी भागीरथी कहलायीं और उनके ऊरुपर बैठनेके कारण उर्वशी नामसे प्रसिद्ध हुईं। राजाके पुत्रीभावको प्राप्त होकर उनका नरकसे त्राण करनेके कारण वे उस समय पुत्रभावको भी प्राप्त हुईं ॥ ६ ॥

तां तु गाथां जगुः प्रीता गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः ।
पितृदेवमनुष्याणां शृण्वतां वल्गुवादिनः ॥ ७ ॥

सूर्यके समान तेजस्वी और मधुरभाषी गन्धर्वोंने प्रसन्न होकर देवताओं, पितरों और मनुष्योंके सुनते हुए यह गाथा गायी थी ॥ ७ ॥

भगीरथं यजमानमैक्ष्वाकुं भूरिदक्षिणम् ।
गङ्गा समुद्रगा देवी वव्रे पितरमीश्वरम् ॥ ८ ॥

यज्ञ करते समय भूयसी दक्षिणा देनेवाले इक्ष्वाकुवंशी ऐश्वर्यशाली राजा भगीरथको समुद्रगामिनी गङ्गादेवीने अपना पिता मान लिया था ॥ ८ ॥

तस्य सेन्द्रैः सुरगणैर्देवैर्यज्ञः स्वलङ्कृतः ।
सम्यक्परिगृहीतश्च शान्तविघ्नो निरामयः ॥ ९ ॥

इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंने उनके यज्ञको सुशोभित किया था । उसमें प्राप्त हुए हविष्यको भलीभाँति ग्रहण करके उसके विघ्नोंको शान्त करते हुए उसे निर्बाधरूपसे पूर्ण किया था ॥ ९ ॥

यो य इच्छेत विप्रो वै यत्र यत्रात्मनः प्रियम् ।
भगीरथस्तदा प्रीतस्तत्र तत्राददद् वशी ॥ १० ॥

जिस-जिस ब्राह्मणने जहाँ-जहाँ अपने मनको प्रिय लगनेवाली जिस-जिस वस्तुको पाना चाहा, जितेन्द्रिय राजाने वहीं-वहीं प्रसन्नतापूर्वक वह वस्तु उसे तत्काल समर्पित की ॥

नादेयं ब्राह्मणस्यासीद् यस्य यत्स्यात् प्रियं धनम् ।
सोऽपि विप्रप्रसादेन ब्रह्मलोकं गतो नृपः ॥ ११ ॥

उनके पास जो भी प्रिय धन था, वह ब्राह्मणके लिये अदेय नहीं था । राजा भगीरथ ब्राह्मणोंकी कृपासे ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए ॥ ११ ॥

येन यातौ मखमुखौ दिशाशाविह पादपाः ।
तेनावस्थातुमिच्छन्ति तं गत्वा राजमीश्वरम् ॥ १२ ॥

शत्रुओंकी दशा और आशाका हनन करनेवाले सृंजय ! राजा भगीरथने यज्ञोंमें प्रधान ज्ञानयज्ञ और ध्यानयज्ञको ग्रहण किया था । इसलिये किरणोंका पान करनेवाले महर्षिगण भी उस ब्रह्मलोकमें जितेन्द्रिय राजा भगीरथके निकट जाकर उसी स्थानपर रहनेकी इच्छा करते थे ॥ १२ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ १३ ॥
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ।

श्वैत्य सृंजय ! वे भगीरथ उपर्युक्त चारों बातोंमें तुमसे बहुत बढ़कर थे । तुम्हारे पुत्रकी अपेक्षा उनका पुण्य बहुत अधिक था । जब वे भी जीवित न रह सके, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है ? अतः तुम यज्ञानुष्ठान और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो । नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही ॥ १३½ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३½ श्लोक मिलाकर कुल १७ श्लोक हैं)

एकषष्टितमोऽध्यायः

राजा दिलीपका उत्कर्ष

नारद उवाच

दिलीपं चैलविलं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यस्य यज्ञशतेष्वासन् प्रयुतायुतशो द्विजाः ।
तन्त्रज्ञानार्थसम्पन्ना यज्वानः पुत्रपौत्रिणः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं--सृंजय ! इलविलाके पुत्र राजा दिलीपकी भी मृत्यु सुनी गयी है, जिनके सौ यज्ञोंमें लाखों ब्राह्मण नियुक्त थे । वे सभी ब्राह्मण वेदोंके कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्डके तात्पर्यको जाननेवाले, यज्ञकर्ता तथा पुत्र-पौत्रोंसे सम्पन्न थे ॥ १ ॥

य इमां वसुसम्पूर्णां वसुधां वसुधाधिपः ।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २ ॥

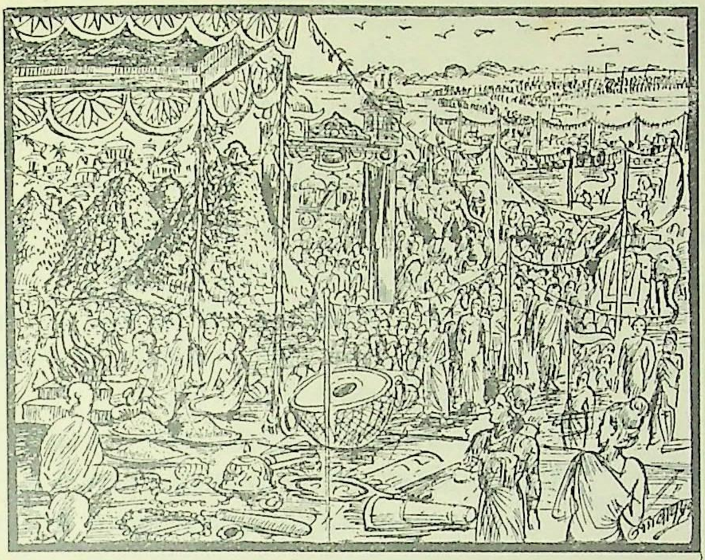
पृथ्वीपति दिलीपने यज्ञ करते समय अपने विशाल यज्ञमें धन-धान्यसे सम्पन्न इस सारी पृथ्वीको ब्राह्मणोंके लिये दान कर दिया था ॥ २ ॥

दिलीपस्य तु यज्ञेषु कृतः पन्था हिरण्मयः ।
तं धर्म इव कुर्वाणाः सेन्द्रा देवाः समागमन् ॥ ३ ॥

राजा दिलीपके यज्ञोंमें सोनेकी सड़कें बनायी गयी थीं । इन्द्र आदि देवता मानो धर्मकी प्राप्तिके लिये उन्हें अलंकृत करते हुए उनके यहाँ पधारते थे ॥ ३ ॥

सहस्रं यत्र मातङ्गा गच्छन्ति पर्वतोपमाः ।
सौवर्णं चाभवत् सर्वं सदः परमभास्वरम् ॥ ४ ॥

वहाँ पर्वतोंके समान विशालकाय सहस्रों गजराज विचरा करते थे । राजाका सभामण्डप सोनेका बना हुआ था, जो सदा देदीप्यमान रहता था ॥ ४ ॥



रसानां चाभवन् कुल्या भक्ष्याणां चापि पर्वताः ।
सहस्रव्यामा नृपते यूपाश्चासन् हिरण्मयाः ॥ ५ ॥

वहाँ रसकी नहरें बहती थीं और अन्नके पहाड़ों-जैसे ढेर लगे हुए थे। राजन्! उनके यज्ञमें सहस्र-व्याम-विस्तृत सुवर्णमय यूप सुशोभित होते थे ॥ ५ ॥

चषालं प्रचषालं च यस्य यूपे हिरण्मये ।
नृत्यन्तेऽप्सरसस्तस्य षट् सहस्राणि सप्त च ॥ ६ ॥

उनके यूपमें सुवर्णमय चषाल[1] और प्रचषाल लगे हुए थे। उनके यहाँ तेरह हजार अप्सराएँ नृत्य करती थीं ॥ ६ ॥

यत्र वीणां वादयति प्रीत्या विश्वावसुः स्वयम् ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त राजानं सत्यशीलिनम् ॥ ७ ॥

उस समय वहाँ साक्षात् गन्धर्वराज विश्वावसु प्रेमपूर्वक वीणा बजाते थे। समस्त प्राणी राजा दिलीपको सत्यवादी मानते थे ॥ ७ ॥

रागखाण्डवभोज्यैश्च मत्ताः पथिषु शेरते ।
तदेतदद्भुतं मन्ये अन्यैर्न सदृशं नृपैः ॥ ८ ॥
यदप्सु युध्यमानस्य चक्रे न परिपेततुः ।

उनके यहाँ आये हुए अतिथि 'रागखाण्डव' नामक मोदक और विविध भोज्यपदार्थ खाकर मतवाले हो सड़कोंपर लेट जाते थे। मेरे मतमें उनके यहाँ यह एक अद्भुत बात थी, जिसकी दूसरे राजाओंसे तुलना नहीं हो सकती थी। राजा दिलीप युद्ध करते समय जलमें भी चले जाते तो उनके रथके पहिये वहाँ डूबते नहीं थे ॥ ८½ ॥

राजानं दृढधन्वानं दिलीपं सत्यवादिनम् ॥ ९ ॥
येऽपश्यन् भूरिदाक्षिण्यं तेऽपि स्वर्गजितो नराः ।

सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले तथा प्रचुर दक्षिणा देनेवाले सत्यवादी राजा दिलीपका जो लोग दर्शन कर लेते थे, वे मनुष्य भी स्वर्गलोकके अधिकारी हो जाते थे ॥ ९½ ॥

पञ्च शब्दा न जीर्यन्ति खट्वाङ्गस्य निवेशने ॥ १० ॥
स्वाध्यायघोषो ज्याघोषः पिबताश्नीत खादत ।

खट्वाङ्ग (दिलीप) के भवनमें ये पाँच प्रकारके शब्द कभी बंद नहीं होते थे—वेद-शास्त्रोंके स्वाध्यायका शब्द, धनुषकी प्रत्यञ्चाकी ध्वनि तथा अतिथियोंके लिये कहे जानेवाले 'खाओ, पीओ और अन्न ग्रहण करो' ये तीन शब्द ॥ १०½ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ११ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १२ ॥

श्वैत्य संजय! वे दिलीप धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य—इन चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे, तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब औरोंकी क्या बात है? अतः जिसने अभी यज्ञ नहीं किया, दक्षिणाएँ नहीं बाँटीं, अपने उस पुत्रके लिये तुम शोक न करो—इस प्रकार नारदजीने कहा ॥ ११-१२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

राजा मान्धाताकी महत्ता

नारद उवाच

मान्धाता चेद्यौवनाश्वो मृतः सृञ्जय शुश्रुम ।
देवासुरमनुष्याणां त्रैलोक्यविजयी नृपः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—संजय! युवनाश्वके पुत्र राजा मान्धाता भी मरे थे, यह सुना गया है। वे देवता, असुर और मनुष्य—तीनों लोकोंमें विजयी थे ॥ १ ॥

यं देवावश्विनौ गर्भात् पितुः पूर्वं चकर्षतुः ।
मृगयां विचरन् राजा तृषितः क्लान्तवाहनः ॥ २ ॥

१. यज्ञीय यूप या स्तम्भके ऊपर लगाये जानेवाले काठके छल्लेको 'चषाल' कहते हैं, इसीका उत्कृष्ट रूप 'प्रचषाल' है।

पूर्वकालमें दोनों अश्विनीकुमार नामक देवताओंने उन्हें पिताके पेटसे निकाला था। एक समयकी बात है, राजा युवनाश्व वनमें शिकार खेलनेके लिये विचर रहे थे। वहाँ उनका घोड़ा थक गया और उन्हें भी प्यास लग गयी ॥ २ ॥

धूमं दृष्ट्वागमत् सत्रं पृषदाज्यमवाप सः।
तं दृष्ट्वा युवनाश्वस्य जठरे सूनुतां गतम् ॥ ३ ॥
गर्भाद्धि जहतुर्देवावश्विनौ भिषजां वरौ।

इतनेमें दूरसे उठता हुआ धूआँ देखकर वे उसी ओर चले और एक यज्ञमण्डपमें जा पहुँचे। वहाँ एक पात्रमें रक्खे हुए घृतमिश्रित अभिमन्त्रित जलको उन्होंने पी लिया। उस जलको युवनाश्वके पेटमें पुत्ररूपमें परिणत हुआ देख वैद्योंमें श्रेष्ठ अश्विनीकुमार नामक देवताओंने उसे पिताके गर्भसे बाहर निकाला ॥ ३½ ॥

तं दृष्ट्वा पितुरुत्सङ्गे शयानं देववर्चसम् ॥ ४ ॥
अन्योन्यमब्रुवन् देवाः कमयं धास्यतीति वै।
मामेवायं धयत्वग्रे इति ह स्माह वासवः ॥ ५ ॥

देवताके समान तेजस्वी उस शिशुको पिताकी गोदमें शयन करते देख देवता आपसमें कहने लगे, यह किसका दूध पीयेगा? यह सुनकर इन्द्रने कहा—यह पहले मेरा ही दूध पीये ॥ ४-५ ॥

ततोऽङ्गुलिभ्यो हीन्द्रस्य प्रादुरासीत् पयोऽमृतम्।
मां धास्यतीति कारुण्याद् यदिन्द्रो ह्यन्वकम्पयत् ॥ ६ ॥
तस्मात्तु मान्धातेत्येवं नाम तस्याद्भुतं कृतम्।

तदनन्तर इन्द्रकी अङ्गुलियोंसे अमृतमय दूध प्रकट हो गया; क्योंकि इन्द्रने करुणावश 'मां धास्यति' (मेरा दूध पीयेगा) ऐसा कहकर उसपर कृपा की थी, इसलिये उसका 'मान्धाता' यह अद्भुत नाम निश्चित कर दिया गया ॥ ६½ ॥

ततस्तु धारां पयसो घृतस्य च महात्मनः ॥ ७ ॥
तस्यास्ये यौवनाश्वस्य पाणिरिन्द्रस्य चास्रवत्।
अपिबत् पाणिमिन्द्रस्य स चाप्यह्नाभ्यवर्धत ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् महामना मान्धाताके मुखमें इन्द्रके हाथने दूध और घीकी धारा बहायी। वह बालक इन्द्रका हाथ पीने लगा और एक ही दिनमें बहुत बढ़ गया ॥ ७-८ ॥

सोऽभवद् द्वादशसमो द्वादशाहेन वीर्यवान्।
इमां च पृथिवीं कृत्स्नामेकाह्ना स व्यजीजयत् ॥ ९ ॥

वह पराक्रमी राजकुमार बारह दिनोंमें ही बारह वर्षोंकी अवस्थावाले बालकके समान हो गया। (राजा होनेपर) मान्धाताने एक ही दिनमें इस सारी पृथ्वीको जीत लिया ॥ ९ ॥

धर्मात्मा धृतिमान् वीरः सत्यसंधो जितेन्द्रियः।
जनमेजयं सुधन्वानं गयं पूरुं बृहद्रथम् ॥ १० ॥
असितं च नृगं चैव मान्धाता मनुजोऽजयत्।

वे धर्मात्मा, धैर्यवान्, शूरवीर, सत्यप्रतिज्ञ और जितेन्द्रिय थे। मानव मान्धाताने जनमेजय, सुधन्वा, गय, पूरु, बृहद्रथ, असित और नृगको भी जीत लिया ॥ १०½ ॥

उदेति च यतः सूर्यो यत्र च प्रतितिष्ठति ॥ ११ ॥
तत् सर्वं यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते।

सूर्य जहाँसे उदय होते थे और जहाँ जाकर अस्त होते थे, वह सारा-का-सारा प्रदेश युवनाश्वपुत्र मान्धाताका क्षेत्र (राज्य) कहलाता था ॥ ११½ ॥

सोऽश्वमेधशतैरिष्ट्वा राजसूयशतेन च ॥ १२ ॥
अदद् रोहितान् मत्स्यान् ब्राह्मणेभ्यो विशाम्पते।
हैरण्यान् यो जनोत्सेधानायतान्शतयोजनम् ॥ १३ ॥

राजन्! उन्होंने सौ अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञोंका अनुष्ठान करके सौ योजन विस्तृत रोहितक, मत्स्य तथा हिरण्यमय (सोनेकी खानोंसे युक्त) जनपदोंको, जो लोगोंमें ऊँची भूमिके रूपमें प्रसिद्ध थे, ब्राह्मणोंको दे दिया ॥ १२-१३ ॥

बहुप्रकारान् सुस्वादून् भक्ष्यभोज्यान्नपर्वतान्।
अतिरिक्तं ब्राह्मणेभ्यो भुञ्जानो हीयते जनः ॥ १४ ॥

अनेक प्रकारके सुस्वादु भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंके पर्वत भी उन्होंने ब्राह्मणोंको दे दिये। ब्राह्मणोंके भोजनसे भी जो अन्न बच गया, उसे दूसरे लोगोंको दिया गया। उस अन्नको खानेवाले लोगोंकी ही वहाँ कमी रहती थी। अन्न कभी नहीं घटता था ॥ १४ ॥

भक्ष्यान्नपाननिचयाः शुशुभुस्त्वन्नपर्वताः।
घृतह्रदाः सूपकूपाः दधिफेना गुडोदकाः ॥ १५ ॥
रुरुधुः पर्वतान् नद्यो मधुक्षीरवहाः शुभाः।

वहाँ भक्ष्य-भोज्य अन्न और पीने योग्य पदार्थोंकी अनेक राशियाँ संचित थीं। अन्नके तो पहाड़ों-जैसे ढेर सुशोभित होते थे। उन पर्वतोंको मधु और दूधकी सुन्दर नदियाँ घेरे हुए थीं। पर्वतोंके चारों ओर घीके कुण्ड और दालके कुएँ भरे थे। वहाँ कई नदियोंमें फेनकी जगह दही और जलके स्थानमें गुड़के रस बहते थे ॥ १५½ ॥

देवासुरा नरा यक्षा गन्धर्वोरगपक्षिणः ॥ १६ ॥
विप्रास्तत्रागताश्चासन् वेदवेदाङ्गपारगाः।
ब्राह्मणा ऋषयश्चापि नासंस्तत्राविपश्चितः ॥ १७ ॥

वहाँ देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, नाग, पक्षी तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मण एवं ऋषि भी पधारे थे; किंतु वहाँ कोई मनुष्य ऐसे नहीं थे, जो विद्वान् न हों ॥ १६-१७ ॥

समुद्रान्तां वसुमतीं वसुपूर्णां तु सर्वतः।
स तां ब्राह्मणसात्कृत्वा जगामास्तं तदा नृपः ॥ १८ ॥

उस समय राजा मान्धाता सब ओरसे धन-धान्यसे सम्पन्न समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको ब्राह्मणोंके अधीन करके सूर्यके समान अस्त हो गये ॥ १८ ॥

गतः पुण्यकृतां लोकान् व्याप्य स्वयशसा दिशः।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १९ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ २० ॥

उन्होंने अपने सुयशसे सम्पूर्ण दिशाओंको व्याप्त करके पुण्यात्माओंके लोकोंमें पदार्पण किया। श्वैत्य सृंजय ! वे पूर्वोक्त चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब औरोंकी क्या बात है। अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। ऐसा नारदजीने कहा ॥ १९-२० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

राजा ययातिका उपाख्यान

नारद उवाच

ययातिं नाहुषं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
राजसूयशतैरिष्ट्वा सोऽश्वमेधशतेन च ॥ १ ॥
पुण्डरीकसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा।
अतिरात्रसहस्रेण चातुर्मास्यैश्च कामतः।
अग्निष्टोमैश्च विविधैः सत्रैश्च प्राज्यदक्षिणैः ॥ २ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! नहुषनन्दन राजा ययातिकी भी मृत्यु हुई थी, यह मैंने सुना है। राजाने सौ राजसूय, सौ अश्वमेध, एक हजार पुण्डरीक याग, सौ वाजपेय यज्ञ, एक सहस्र अतिरात्र याग तथा अपनी इच्छाके अनुसार चातुर्मास्य और अग्निष्टोम आदि नाना प्रकारके प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञोंका अनुष्ठान किया ॥ १-२ ॥

अब्राह्मणानां यद् वित्तं पृथिव्यामस्ति किंचन।
तत् सर्वं परिसंख्याय ततो ब्राह्मणसात्करोत् ॥ ३ ॥

इस पृथ्वीपर ब्राह्मणद्रोहियोंके पास जो कुछ धन था, वह सब उनसे छीनकर उन्होंने ब्राह्मणोंके अधीन कर दिया ॥

सरस्वती पुण्यतमा नदीनां
तथा समुद्राः सरितः साद्रयश्च।
ईजानाय पुण्यतमाय राज्ञे
घृतं पयो दुदुहुर्नाहुषाय ॥ ४ ॥

नदियोंमें परम पवित्र सरस्वती नदी, समुद्रों, पर्वतों तथा अन्य सरिताओंने यज्ञमें लगे हुए परम पुण्यात्मा राजा ययातिको घी और दूध प्रदान किये ॥ ४ ॥

व्यूढे देवासुरे युद्धे कृत्वा देवसहायताम्।
चतुर्धा व्यभजत् सर्वां चतुर्भ्यः पृथिवीमिमाम् ॥ ५ ॥
यज्ञैर्नानाविधैरिष्ट्वा प्रजामुत्पाद्य चोत्तमाम्।
देवयान्यां चौशनस्यां शर्मिष्ठायां च धर्मतः ॥ ६ ॥
देवारण्येषु सर्वेषु विजहारामरोपमः।
आत्मनः कामचारेण द्वितीय इव वासवः ॥ ७ ॥

देवासुरसंग्राम छिड़ जानेपर उन्होंने देवताओंकी सहायता करके नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा परमात्माका यजन किया और इस सारी पृथ्वीको चार भागोंमें विभक्त करके उसे ऋत्विज, अध्वर्यु, होता तथा उद्गाता—इन चार प्रकारके ब्राह्मणोंको बाँट दिया। फिर शुक्रकन्या देवयानी और दानवराजकी पुत्री शर्मिष्ठाके गर्भसे धर्मतः उत्तम संतान उत्पन्न करके वे देवोपम नरेश दूसरे इन्द्रकी भाँति समस्त देवकाननोंमें अपनी इच्छाके अनुसार विहार करते रहे ॥ ५—७ ॥

यदा नाभ्यगमच्छान्तिं कामानां सर्ववेदवित्।
ततो गाथामिमां गीत्वा सदारः प्राविशद् वनम् ॥ ८ ॥

जब भोगोंके उपभोगसे उन्हें शान्ति नहीं मिली, तब सम्पूर्ण वेदोंके ज्ञाता राजा ययाति निम्नाङ्कित गाथाका गान करके अपनी पत्नियोंके साथ वनमें चले गये ॥ ८ ॥

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् ॥ ९ ॥

वह गाथा इस प्रकार है—इस पृथ्वीपर जितने भी धान, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्री आदि भोग्य पदार्थ हैं, वे सब एक मनुष्यको भी संतोष करानेके लिये पर्याप्त नहीं हैं; ऐसा समझकर मनको शान्त करना चाहिये ॥ ९ ॥

एवं कामान् परित्यज्य ययातिर्धृतिमेत्य च।
पूरुं राज्ये प्रतिष्ठाप्य प्रयातो वनमीश्वरः ॥ १० ॥

इस प्रकार ऐश्वर्यशाली राजा ययातिने धैर्यका आश्रय ले कामनाओंका परित्याग करके अपने पुत्र पूरुको राज्य-सिंहासनपर बिठाकर वनको प्रस्थान किया ॥ १० ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ ११ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य—इन चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी जीवित न रह सके, तब औरोंकी तो बात ही क्या है? अतः तुम अपने उस पुत्रके लिये शोक न करो, जिसने न तो यज्ञ किया था और न दक्षिणा ही दी थी। ऐसा नारदजीने कहा ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

राजा अम्बरीषका चरित्र

नारद उवाच

नाभागमम्बरीषं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
यः सहस्रं सहस्राणां राज्ञां चैकस्त्वयोधयत् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! मैंने सुना है कि नाभागके पुत्र राजा अम्बरीष भी मृत्युको प्राप्त हुए थे, जिन्होंने अकेले ही दस लाख राजाओंसे युद्ध किया था ॥ १ ॥

जिगीषमाणाः संग्रामे समन्ताद् वैरिणोऽभ्ययुः।
अस्त्रयुद्धविदो घोराः सृजन्तश्चाशिवा गिरः ॥ २ ॥

राजाके शत्रुओंने उन्हें युद्धमें जीतनेकी इच्छासे चारों ओरसे उनपर आक्रमण किया था। वे सब अस्त्रयुद्धकी कलामें निपुण और भयंकर थे तथा राजाके प्रति अभद्र वचनोंका प्रयोग कर रहे थे ॥ २ ॥

बललाघवशिक्षाभिस्तेषां सोऽस्त्रबलेन च।
छत्रायुधध्वजरथांश्छित्त्वा प्रासान् गतव्यथः ॥ ३ ॥

परंतु राजा अम्बरीषको इससे तनिक भी व्यथा नहीं हुई। उन्होंने शारीरिक बल, अस्त्र-बल, हाथोंकी फुर्ती और युद्धसम्बन्धी शिक्षाके द्वारा शत्रुओंके छत्र, आयुध, ध्वजा, रथ और प्रासोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ३ ॥

त एनं मुक्तसंनाहाः प्रार्थयन् जीवितैषिणः।
शरण्यमीयुः शरणं तवास्म इति वादिनः ॥ ४ ॥

तब वे शत्रु अपने प्राण बचानेके लिये कवच खोलकर उनसे प्रार्थना करने लगे और हम सब प्रकारसे आपके हैं; ऐसा कहते हुए उन शरणदाता नरेशकी शरणमें चले गये ॥ ४ ॥

स तु तान् वशगान् कृत्वा जित्वा चेमां वसुन्धराम्।
ईजे यज्ञशतैरिष्टैर्यथाशास्त्रं तथानघ ॥ ५ ॥

अनघ ! इस प्रकार उन शत्रुओंको वशीभूत करके इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर विजय पाकर उन्होंने शास्त्रविधिके अनुसार सौ अभीष्ट यज्ञोंका अनुष्ठान किया ॥ ५ ॥

बुभुजुः सर्वसम्पन्नमन्नमन्ये जनाः सदा।
तस्मिन् यज्ञे तु विप्रेन्द्राः संतृप्ताः परमार्चिताः ॥ ६ ॥

उन यज्ञोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा अन्य लोग भी सदा सर्वगुणसम्पन्न अन्न भोजन करते और अत्यन्त आदर-सत्कार पाकर अत्यन्त संतुष्ट होते थे ॥ ६ ॥



मोदकान् पूरिकापूपान् स्वादपूर्णाश्च शष्कुलीः।
करम्भान् पृथुमृद्वीका अन्नानि सुकृतानि च ॥ ७ ॥
सूपान् मैरेयकापूपान् रागखाण्डवपानकान्।
मृष्टान्नानि सुयुक्तानि मृदूनि सुरभीणि च ॥ ८ ॥
घृतं मधु पयस्तोयं दधीनि रसवन्ति च।
फलं मूलं च सुस्वादु द्विजास्तत्रोपभुञ्जते ॥ ९ ॥

लड्डू, पूरी, पुए, स्वादिष्ट कचौड़ी, करम्भ, मोटे मुनक्के, तैयार अन्न, मैरेयक, अपूप, रागखाण्डव, पानक, शुद्ध एवं सुन्दर ढंगसे बने हुए मधुर और सुगन्धित भोज्य पदार्थ, घी, मधु, दूध, जल, दही, सरस वस्तुएँ तथा सुस्वादु फल, मूल वहाँ ब्राह्मणलोग भोजन करते थे ॥ ७–९ ॥

मादनीयानि पापानि विदित्वा चात्मनः सुखम्।
अपिवन्त यथाकामं पानपा गीतवादितैः ॥ १० ॥

मादक वस्तुएँ पापजनक होती हैं, यह जानकर भी पीनेवाले लोग अपने सुखके लिये गीत और वाद्योंके साथ इच्छानुसार उनका पान करते थे ॥ १० ॥

तत्र स्म गाथा गायन्ति क्षीवा हृष्टाः पठन्ति च ।
नाभागस्तुतिसंयुक्ता ननृतुश्च सहस्रशः ॥ ११ ॥

पीकर मतवाले बने हुए सहस्रों मनुष्य वहाँ हर्षमें भरकर गाथा गाते, अम्बरीषकी स्तुतिसे युक्त कविताएँ पढ़ते और नृत्य करते थे ॥ ११ ॥

तेषु यज्ञेष्वम्बरीषो दक्षिणामत्यकालयत् ।
राज्ञां शतसहस्राणि दश प्रयुतयाजिनाम् ॥ १२ ॥

उन यज्ञोंमें राजा अम्बरीषने दस लाख यज्ञकर्ता ब्राह्मणोंको दक्षिणाके रूपमें दस लाख राजाओंको ही दे दिया था ॥ १२ ॥

हिरण्यकवचान् सर्वाञ्श्वेतच्छत्रप्रकीर्णकान् ।
हिरण्यस्यन्दनारूढान् सानुयात्रपरिच्छदान् ॥ १३ ॥

वे सब राजा सोनेके कवच धारण किये, श्वेत छत्र लगाये, सुवर्णमय रथपर आरूढ़ हुए तथा अपने अनुगामी सेवकों और आवश्यक सामग्रियोंसे सम्पन्न थे ॥ १३ ॥

ईजानो वितते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ।
मूर्धाभिषिक्तांश्च नृपान् राजपुत्रशतानि च ॥ १४ ॥
सदण्डकोशनिचयान् ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।

उस विस्तृत यज्ञमें यजमान अम्बरीषने उन मूर्धाभिषिक्त नरेशों और सैकड़ों राजकुमारोंको दण्ड और खजानोंसहित ब्राह्मणोंके अधीन कर दिया ॥ १४½ ॥

नैवं पूर्वे जनाश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे ॥ १५ ॥
यदम्बरीषो नृपतिः करोत्यमितदक्षिणः ।
इत्येवमनुमोदन्ते प्रीता यस्य महर्षयः ॥ १६ ॥

महर्षिलोग उनके ऊपर प्रसन्न होकर उनके कार्योंका अनुमोदन करते हुए कहते थे कि असंख्य दक्षिणा देनेवाले राजा अम्बरीष जैसा यज्ञ कर रहे हैं, वैसा न तो पहलेके राजाओंने किया और न आगे कोई करेंगे ॥ १५–१६ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १७ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे पूर्वोक्त चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बढ़-चढ़कर थे और तुम्हारे पुत्रकी अपेक्षा भी अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी जीवित न रह सके, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है ? अतः तुम यज्ञ और दानदक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो । ऐसा नारदजीने कहा ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥६४॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

राजा शशबिन्दुका चरित्र

नारद उवाच

शशबिन्दुं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
ईजे स विविधैर्यज्ञैः श्रीमान् सत्यपराक्रमः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं--सृंजय ! मेरे सुननेमें आया है कि राजा शशबिन्दुकी भी मृत्यु हो गयी थी । उन सत्यपराक्रमी श्रीमान् नरेशने नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया था ॥ १ ॥

तस्य भार्यासहस्राणां शतमासीन्महात्मनः ।
एकैकस्यां च भार्यायां सहस्रं तनयाऽभवन् ॥ २ ॥

महामना शशबिन्दुके एक लाख स्त्रियाँ थीं और प्रत्येक स्त्रीके गर्भसे एक-एक हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ २ ॥

ते कुमाराः पराक्रान्ताः सर्वे नियुतयाजिनः ।
राजानः क्रतुभिर्मुख्यैरीजाना वेदपारगाः ॥ ३ ॥

वे सभी राजकुमार अत्यन्त पराक्रमी और वेदोंके पारङ्गत विद्वान् थे । वे राजा होनेपर दस लाख यज्ञ करनेका संकल्प ले प्रधान-प्रधान यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुके थे ॥ ३ ॥

हिरण्यकवचाः सर्वे सर्वे चोत्तमधन्विनः ।
सर्वेऽश्वमेधैरीजानाः कुमाराः शशबिन्दवः ॥ ४ ॥

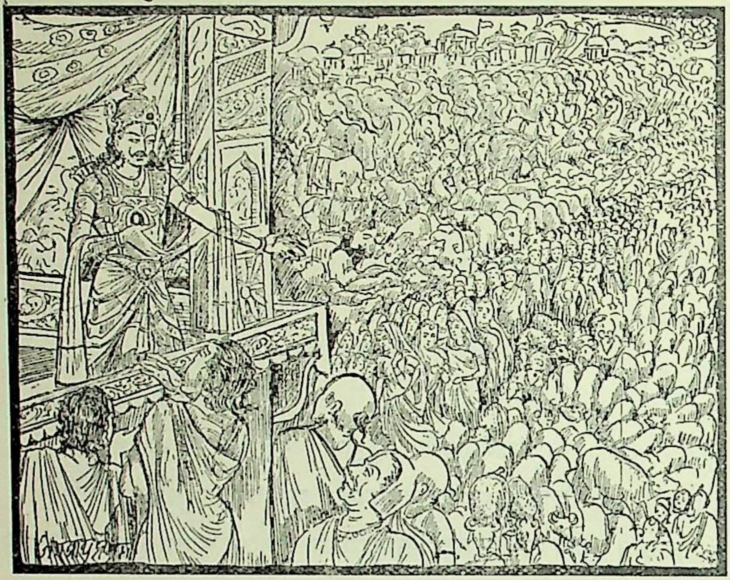
शशबिन्दुके उन सभी पुत्रोंने सोनेके कवच धारण कर रक्खे थे । वे सब उत्तम धनुर्धर थे और अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुके थे ॥ ४ ॥

तानश्वमेधे राजेन्द्रो ब्राह्मणेभ्योऽददत् पिता ।
शतं शतं रथगजा एकैकं पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ५ ॥

पिता महाराज शशबिन्दुने अश्वमेध-यज्ञ करके उसमें अपने वे सभी पुत्र ब्राह्मणोंको दे डाले । एक-एक राजकुमारके पीछे सौ-सौ रथ और हाथी गये थे ॥ ५ ॥

राजपुत्रं तदा कन्यास्तपनीयस्वलंकृताः ।
कन्यां कन्यां शतं नागा नागे नागे शतं रथाः ॥ ६ ॥

उस समय प्रत्येक राजकुमारके साथ सुवर्णभूषित सौ-सौ कन्याएँ थीं । एक-एक कन्याके पीछे सौ-सौ हाथी



उनके महायज्ञ अश्वमेधमें जितने काष्ठके यूप थे, वे तो ज्यों-के-त्यों थे ही, फिर उतने ही और सुवर्णमय यूप बनाये गये थे ॥ ९ ॥

भक्ष्यान्नपाननिचयाः पर्वताः क्रोशमुच्छ्रिताः।
तस्याश्वमेधे निर्वृत्ते राज्ञः शिष्टास्त्रयोदश ॥ १० ॥

उस यज्ञमें भक्ष्य-भोज्य अन्न-पानके पर्वतोंके समान एक कोस ऊँचे ढेर लगे हुए थे । राजाका अश्वमेध-यज्ञ पूरा हो जानेपर अन्नके तेरह पर्वत बच गये थे ॥ १० ॥

तुष्टपुष्टजनाकीर्णां शान्तविघ्नामनामयाम्।
शशबिन्दुरिमां भूमिं चिरं भुक्त्वा दिवं गतः ॥ ११ ॥

शशबिन्दुके राज्यकालमें यह पृथ्वी हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी थी । यहाँ कोई विघ्न-बाधा और रोग-व्याधि नहीं थी । शशबिन्दु इस वसुधाका दीर्घकालतक उपभोग करके अन्तमें स्वर्गलोकको चले गये ॥ ११ ॥

और प्रत्येक हाथीके पीछे सौ-सौ रथ थे ॥ ६ ॥

रथे रथे शतं चाश्वा बलिनो हेममालिनः।
अश्वे अश्वे गोसहस्रं गवां पञ्चाशदाविकाः ॥ ७ ॥

हर एक रथके साथ सोनेके हारोंसे विभूषित सौ-सौ बलवान् अश्व थे । प्रत्येक अश्वके पीछे हजार-हजार गौएँ तथा एक-एक गायके पीछे पचास-पचास भेंड़ें थीं ॥ ७ ॥

एतद् धनमपर्याप्तमश्वमेधे महामखे।
शशबिन्दुर्महाभागो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ ८ ॥

यह अपार धन महाभाग शशबिन्दुने अपने अश्वमेध नामक महायज्ञमें ब्राह्मणोंके लिये दान किया था ॥ ८ ॥

वार्क्षाश्च यूपा यावन्त अश्वमेधे महामखे।
ते तथैव पुनश्चान्ये तावन्तः काञ्चनाऽभवन् ॥ ९ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १२ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रोंसे तो बहुत अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी मर गये, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है ? अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो । ऐसा नारदजीने कहा ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

राजा गयका चरित्र

नारद उवाच

गयं चामूर्तरयसं मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
यो वै वर्षशतं राजा हुतशिष्टाशनोऽभवत् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! राजा अमूर्तरयके पुत्र गयकी भी मृत्यु सुनी गयी है । राजा गयने सौ वर्षोंतक नियमपूर्वक अग्निहोत्र करके होमावशिष्ट अन्नका ही भोजन किया ॥ १ ॥

तस्मै ह्यग्निर्वरं प्रादात् ततो वव्रे वरं गयः।
तपसा ब्रह्मचर्येण व्रतेन नियमेन च ॥ २ ॥
गुरूणां च प्रसादेन वेदानिच्छामि वेदितुम्।
स्वधर्मेणाविहिंस्यान्यान् धनमिच्छामि चाक्षयम् ॥ ३ ॥
विप्रेषु ददतश्चैव श्रद्धा भवतु नित्यशः।
अनन्यासु सवर्णासु पुत्रजन्म च मे भवेत् ॥ ४ ॥
अन्नं मे ददतः श्रद्धा धर्मे मे रमतां मनः।
अविघ्नं चास्तु मे नित्यं धर्मकार्येषु पावक ॥ ५ ॥

इससे प्रसन्न होकर अग्निदेवने उन्हें वर देनेकी इच्छा प्रकट की । (अग्निदेवकी आज्ञासे) गयने उनसे यह वर माँगा—'मैं तप, ब्रह्मचर्य, व्रत, नियम और गुरुजनोंकी कृपासे वेदोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ । दूसरोंको कष्ट पहुँचाये बिना अपने धर्मके अनुसार चलकर अक्षय

पाना चाहता हूँ। ब्राह्मणोंको दान देता रहूँ और इस कार्यमें प्रतिदिन मेरी अधिकाधिक श्रद्धा बढ़ती रहे। अपने ही वर्णकी पतिव्रता कन्याओंसे मेरा विवाह हो और उन्हींके गर्भसे मेरे पुत्र उत्पन्न हों। अन्नदानमें मेरी श्रद्धा बढ़े तथा धर्ममें ही मेरा मन लगा रहे। अग्निदेव! मेरे धर्मसम्बन्धी कार्योंमें कभी कोई विघ्न न आवे' ॥ २-५ ॥

तथा भविष्यतीत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।
गयो ह्यवाप्य तत् सर्वं धर्मेणारीनजीजयत् ॥ ६ ॥

'ऐसा ही होगा' यों कहकर अग्निदेव वहीं अन्तर्धान हो गये। राजा गयने वह सब कुछ पाकर धर्मसे ही शत्रुओंपर विजय पायी ॥ ६ ॥

स दर्शपौर्णमासाभ्यां कालेष्वाग्रयणेन च ।
चातुर्मास्यैश्च विविधैर्यज्ञैश्चावाप्तदक्षिणैः ॥ ७ ॥
अयजच्छ्रद्धया राजा परिसंवत्सरान् शतम् ।

राजाने यथासमय सौ वर्षोंतक बड़ी श्रद्धाके साथ दर्श, पौर्णमास, आग्रयण और चातुर्मास्य आदि नाना प्रकारके यज्ञ किये तथा उनमें प्रचुर दक्षिणा दी ॥ ७½ ॥

गवां शतसहस्राणि शतमश्वशतानि च ॥ ८ ॥
शतं निष्कसहस्राणि गवां चाप्ययुतानि षट् ।
उत्थायोत्थाय स प्रादात् परिसंवत्सरान् शतम् ॥ ९ ॥

वे सौ वर्षोंतक प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर एक लाख साठ हजार गौ, दस हजार अश्व तथा एक लाख स्वर्णमुद्रा दान करते थे ॥ ८-९ ॥

नक्षत्रेषु च सर्वेषु ददन्नक्षत्रदक्षिणाः ।
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्यथा सोमोऽङ्गिरा यथा ॥ १० ॥

वे सोम और अङ्गिराकी भाँति सम्पूर्ण नक्षत्रोंमें नक्षत्र-दक्षिणा देते हुए नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन करते थे ॥ १० ॥

सौवर्णां पृथिवीं कृत्वा य इमां मणिशर्कराम् ।
विप्रेभ्यः प्राददद् राजा सोऽश्वमेधे महामखे ॥ ११ ॥

राजा गयने अश्वमेध नामक महायज्ञमें मणिमय रेतवाली सोनेकी पृथ्वी बनवाकर ब्राह्मणोंको दान की थी ॥ ११ ॥

जाम्बूनदमया यूपाः सर्वे रत्नपरिच्छदाः ।
गयस्यासन् समृद्धास्तु सर्वभूतमनोहराः ॥ १२ ॥

गयके यज्ञमें सम्पूर्ण यूप जाम्बूनद नामक सुवर्णके बने हुए थे। उन्हें रत्नोंसे विभूषित किया गया था। वे समृद्धि-शाली यूप सम्पूर्ण प्राणियोंके मनको हर लेते थे ॥ १२ ॥

सर्वकामसमृद्धं च प्रादादन्नं गयस्तदा ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रहृष्टेभ्यः सर्वभूतेभ्य एव च ॥ १३ ॥

राजा गयने यज्ञ करते समय हर्षसे उल्लसित हुए ब्राह्मणों तथा अन्य समस्त प्राणियोंको सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न उत्तम अन्न दिया था ॥ १३ ॥

स समुद्रवनद्वीपनदीनदवनेषु च ।
नगरेषु च राष्ट्रेषु दिवि व्योम्नि च येऽवसन् ॥ १४ ॥
भूतग्रामाश्च विविधाः संतृप्ता यज्ञसम्पदा ।
गयस्य सदृशो यज्ञो नास्त्यन्य इति तेऽब्रुवन् ॥ १५ ॥

समुद्र, वन, द्वीप, नदी, नद, कानन, नगर, राष्ट्र, आकाश तथा स्वर्गमें जो नाना प्रकारके प्राणिसमुदाय रहते थे, वे उस यज्ञकी सम्पत्तिसे तृप्त होकर कहने लगे, राजा गयके समान दूसरे किसीका यज्ञ नहीं हुआ है ॥ १४-१५ ॥

षट्त्रिंशद् योजनायामा त्रिंशद् योजनमायता ।
पश्चात् पुरश्चतुर्विंशद् वेदी ह्यासीद्धिरण्मयी ॥ १६ ॥
गयस्य यजमानस्य मुक्तावज्रमणिस्तृता ।
प्रादात् स ब्राह्मणेभ्योऽथ वासांस्याभरणानि च ॥ १७ ॥
यथोक्ता दक्षिणाश्चान्या विप्रेभ्यो भूरिदक्षिणः ।

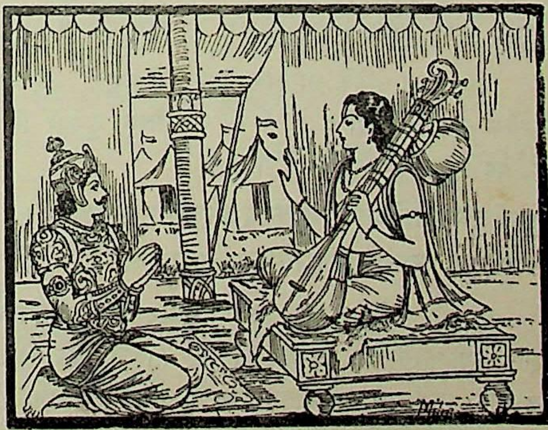
यजमान गयके यज्ञमें छत्तीस योजन लम्बी, तीस योजन चौड़ी और आगे-पीछे (अर्थात् नीचेसे ऊपरको) चौबीस योजन ऊँची सुवर्णमयी वेदी बनवायी गयी थी*। उसके ऊपर हीरे-मोती एवं मणिरत्न बिछाये गये थे। प्रचुर दक्षिणा देनेवाले गयने ब्राह्मणोंको वस्त्र, आभूषण तथा अन्य शास्त्रोक्त दक्षिणाएँ दी थीं ॥ १६-१७½ ॥

यत्र भोजनशिष्टस्य पर्वताः पञ्चविंशतिः ॥ १८ ॥
कुल्याः कुशलवाहिन्यो रसानामभवंस्तदा ।
वस्त्राभरणगन्धानां राशयश्च पृथग्विधाः ॥ १९ ॥

उस यज्ञमें खाने-पीनेसे बचे हुए अन्नके पचीस पर्वत शेष थे। रसोंको कौशलपूर्वक प्रवाहित करनेवाली कितनी ही छोटी-छोटी नदियाँ तथा वस्त्र, आभूषण और सुगन्धित पदार्थोंकी विभिन्न राशियाँ भी उस समय शेष रह गयी थीं ॥ १८-१९ ॥

यस्य प्रभावाच्च गयस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
वटश्चाक्षय्यकरणः पुण्यं ब्रह्मसरश्च तत् ॥ २० ॥

उस यज्ञके प्रभावसे राजा गय तीनों लोकोंमें विख्यात हो गये। साथ ही पुण्यको अक्षय्य करनेवाला अक्षयवट तथा पवित्र तीर्थ ब्रह्मसरोवर भी उनके कारण प्रसिद्ध हो गये ॥



* एक विद्वान् व्याख्याकारने ऐसे स्थलोंमें योजनका अर्थ 'बित्ता' माना है। इसके अनुसार वह वेदी १८ हाथ लंबी १५ हाथ चौड़ी और १२ हाथ ऊँची थी।

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ २१ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे धर्म-ज्ञानादि चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अ पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब दूसरोंके लिये कहना है ? अतः तुम यज्ञानुष्ठान और दान-दक्षिणासे र अपने पुत्रके लिये अनुताप न करो। ऐसा नारदजीने कह

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥६६॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

राजा रन्तिदेवकी महत्ता

नारद उवाच

सांकृतिं रन्तिदेवं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यस्य द्विशतसाहस्रा आसन् सूदा महात्मनः ॥ १ ॥
गृहानभ्यागतान् विप्रानतिथीन् परिवेषकाः ।
पक्कापक्कं दिवारात्रं वरान्नममृतोपमम् ॥ २ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! सुना है कि संकृतिके पुत्र रन्तिदेव भी जीवित नहीं रह सके। उन महामना नरेशके यहाँ दो लाख रसोइये थे, जो घरपर आये हुए ब्राह्मण अतिथियोंको अमृतके समान मधुर कच्चा-पक्का उत्तम अन्न दिन-रात परोसते रहते थे ॥ १-२ ॥

न्यायेनाधिगतं वित्तं ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
वेदानधीत्य धर्मेण यश्चक्रे द्विषतो वशे ॥ ३ ॥

उन्होंने ब्राह्मणोंको न्यायपूर्वक प्राप्त हुए धनका दान किया और चारों वेदोंका अध्ययन करके धर्मके द्वारा समस्त शत्रुओंको अपने वशमें कर लिया ॥ ३ ॥

ब्राह्मणेभ्यो ददन्निष्कान् सौवर्णान् स प्रभावतः।
तुभ्यं निष्कं तुभ्यं निष्कमिति ह स्म प्रभाषते ॥ ४ ॥

ब्राह्मणोंको सोनेके चमकीले निष्क देते हुए वे बार-बार प्रत्येक ब्राह्मणसे यही कहते थे कि यह निष्क तुम्हारे लिये है, यह निष्क तुम्हारे लिये है ॥ ४ ॥

तुभ्यं तुभ्यमिति प्रादान्निष्कान् निष्कान् सहस्रशः।
ततः पुनः समाश्वास्य निष्कानेव प्रयच्छति ॥ ५ ॥

'तुम्हारे लिये, तुम्हारे लिये' कहकर वे हजारों निष्क दान किया करते थे। इतनेपर भी जो ब्राह्मण पाये बिना रह जाते, उन्हें पुनः आश्वासन देकर वे बहुत-से निष्क ही देते थे ॥ ५ ॥

अल्पं दत्तं मयाद्येति निष्ककोटिं सहस्रशः ।
एकाह्ना दास्यति पुनः कोऽन्यस्तत् सम्प्रदास्यति ॥ ६ ॥

राजा रन्तिदेव एक दिनमें सहस्रों कोटि निष्क करके भी यह खेद प्रकट किया करते थे कि आज मैंने कम दान किया; ऐसा सोचकर वे पुनः दान देते थे। दूसरा कौन इतना दान दे सकता है ? ॥ ६ ॥

द्विजपाणिवियोगेन दुःखं मे शाश्वतं महत्।
भविष्यति न संदेह एवं राजाददद् वसु ॥ ७

ब्राह्मणोंके हाथका वियोग होनेपर मुझे सदा महान् दु होगा, इसमें संदेह नहीं है। यह विचारकर राजा रन्ति बहुत धन दान करते थे ॥ ७ ॥

सहस्रशश्च सौवर्णान् वृषभान् गोशतानुगान् ।
साष्टं शतं सुवर्णानां निष्कमाहुर्धनं तथा ॥ ८

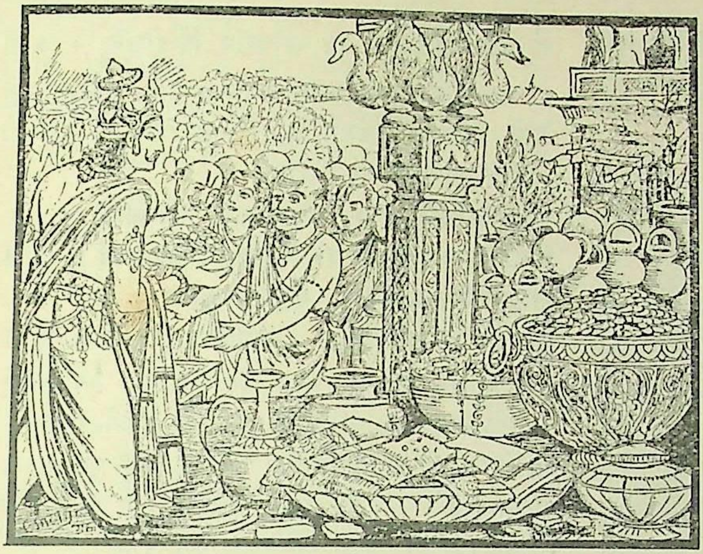
सृंजय ! एक हजार सुवर्णके बैल, प्रत्येकके पीछे सौ गायें और एक सौ आठ स्वर्णमुद्राएँ—इतने धनको नि कहते हैं ॥ ८ ॥

अध्यर्धमासमददद् ब्राह्मणेभ्यः शतं समाः ।
अग्निहोत्रोपकरणं यज्ञोपकरणं च यत् ॥ ९

राजा रन्तिदेव प्रत्येक पक्षमें ब्राह्मणोंको (करोड़ों) नि दिया करते थे। इसके साथ अग्निहोत्रके उपकरण और यज्ञ सामग्री भी होती थी। उनका यह नियम सौ वर्षों चलता रहा ॥ ९ ॥

ऋषिभ्यः करकान् कुम्भान् स्थालीः पिठरमेव च।
शयनासनयानानि प्रासादांश्च गृहाणि च ॥ १०
वृक्षांश्च विविधान् दद्यादन्नानि च धनानि च।
सर्वं सौवर्णमेवासीद् रन्तिदेवस्य धीमतः ॥ ११

वे ऋषियोंको करवे, घड़े, बटलोई, पिठर, शय्या आसन, सवारी, महल और घर, भाँति-भाँतिके वृक्ष तथा अन्न-धन दिया करते थे। बुद्धिमान् रन्तिदेवकी सारी वस्तुएँ सुवर्णमय ही होती थीं ॥ १०-११ ॥



समुदाय निवास करता था, उस समय वहाँ इक्कीस हजार गौएँ छूकर दान की जाती थीं ॥ १४½ ॥

तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ १५ ॥
सूपं भूयिष्ठमश्नीध्वं नाद्य मासं यथा पुरा ।

वहाँ विशुद्ध मणिमय कुण्डल धारण किये रसोइये पुकार-पुकारकर कहते थे, आपलोग खूब दाल और कढ़ी खाइये । यह आज जैसी स्वादिष्ट बनी है, वैसी पहले एक महीनेतक नहीं बनी थी ॥ १५½ ॥

रन्तिदेवस्य यत् किंचित् सौवर्णमभवत् तदा ॥ १६ ॥

तत्रास्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ।
रन्तिदेवस्य तां दृष्ट्वा समृद्धिमतिमानुषीम् ॥ १२ ॥

राजा रन्तिदेवकी वह अलौकिक समृद्धि देखकर पुराणवेत्ता पुरुष वहाँ इस प्रकार उनकी यशोगाथा गाया करते थे ॥ १२ ॥

नैतादृशं दृष्टपूर्वं कुबेरसदनेष्वपि ।
धनं च पूर्यमाणं नः किं पुनर्मनुजेष्विति ॥ १३ ॥

हमने कुबेरके भवनमें भी पहले कभी ऐसा (रन्तिदेवके समान) भरा-पूरा धनका भंडार नहीं देखा है; फिर मनुष्यों-के यहाँ तो हो ही कैसे सकता है ? ॥ १३ ॥

व्यक्तं वस्वोकसारेयमित्यूचुस्तत्र विस्मिताः ।

वास्तवमें रन्तिदेवकी समृद्धिका सारतत्त्व उनका सुवर्णमय राजभवन और स्वर्णराशि ही है । इस प्रकार विस्मित होकर लोग उस गाथाका गान करने लगे ॥ १३½ ॥

सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमतिथिर्वसेत् ॥ १४ ॥
आलभ्यन्त तदा गावः सहस्राण्येकविंशतिः ।

संकृतिपुत्र रन्तिदेवके यहाँ जिस रातमें अतिथियोंका

तत् सर्वं वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।

उन दिनों राजा रन्तिदेवके पास जो कुछ भी सुवर्णमयी सामग्री थी, वह सब उन्होंने उस विस्तृत यज्ञमें ब्राह्मणोंको बाँट दी ॥ १६½ ॥

प्रत्यक्षं तस्य हव्यानि प्रतिगृह्णन्ति देवताः ॥ १७ ॥
कव्यानि पितरः काले सर्वकामान् द्विजोत्तमाः ।

उनके यज्ञमें देवता और पितर प्रत्यक्ष दर्शन देकर यथा-समय हव्य और कव्य ग्रहण करते थे तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण वहाँ सम्पूर्ण मनोवाञ्छित पदार्थोंको पाते थे ॥ १७½ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १८ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १९ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे रन्तिदेव चारों कल्याणमय गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रकी अपेक्षा बहुत अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी मर गये, तब दूसरोंकी क्या बात है । अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो । ऐसा नारदजीने कहा ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक सरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥६७॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

राजा भरतका चरित्र

नारद उवाच

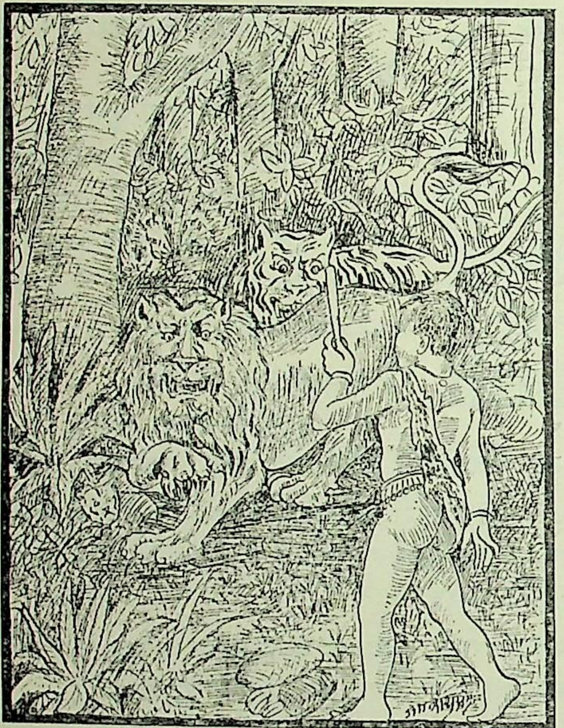
दौष्यन्तिं भरतं चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
कर्माण्यसुकराण्यन्यैः कृतवान् यः शिशुर्वने ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! दुष्यन्तपुत्र राजा भरतकी भी मृत्यु हुई सुनी गयी है, जिन्होंने शैशवावस्थामें ही वनमें ऐसे-ऐसे कर्म किये थे, जो दूसरोंके लिये सर्वथा दुष्कर है ॥ १ ॥

हिमावदातान् यः सिंहान् नखदंष्ट्रायुधान् बली ।
निर्वीर्यांस्तरसा कृत्वा विचकर्ष बबन्ध च ॥ २ ॥

बलवान् भरत बाल्यावस्थामें ही नखों और दाढ़ोंसे

प्रहार करनेवाले बरफके समान सफेद रंगके सिंहोंको अपने बाहुबलके वेगसे पराजित एवं निर्बल करके उन्हें खींच लाते और बाँध देते थे ॥ २ ॥



क्रूरांश्चोग्रतरान् व्याघ्रान् दमित्वा चाकरोद् वशे।
मनःशिला इव शिलाः संयुक्ता जतुराशिभिः ॥ ३ ॥

वे अत्यन्त भयंकर और क्रूर स्वभाववाले व्याघ्रोंका दमन करके उन्हें अपने वशमें कर लेते थे। मैनसिलके समान पीली और लाक्षाराशिसे संयुक्त लाल रंगकी बड़ी-बड़ी शिलाओंको वे सुगमतापूर्वक हाथसे उठा लेते थे ॥ ३ ॥

व्यालादींश्चातिबलवान् सुप्रतीकान् गजानपि।
दंष्ट्रासु गृह्य विमुखाञ्शुष्कास्यानकरोद् वशे ॥ ४ ॥

अत्यन्त बलवान् भरत सर्प आदि जन्तुओंको और सुप्रतीक जातिके गजराजोंके भी दाँत पकड़ लेते और उनके मुख सुखाकर उन्हें विमुख करके अपने अधीन कर लेते थे ॥

महिषानप्यतिबलो बलिनो विचकर्ष ह।
सिंहानां च सुदृप्तानां शतान्याकर्षयद् बलात् ॥ ५ ॥

भरतका बल असीम था। वे बलवान् भैंसों और सौ-सौ गर्वीले सिंहोंको भी बलपूर्वक घसीट लाते थे ॥ ५ ॥

बलिनः सृमरान् खड्गान् नानासत्त्वानि चाप्युत।
कृच्छ्रप्राणं वने बद्ध्वा दमयित्वाप्यवासृजत् ॥ ६ ॥

बलवान् सामरों, गैंड़ों तथा अन्य नाना प्रकारके हिंसक जन्तुओंको वे वनमें बाँध लेते और उनका दमन करते-करते उन्हें अधमरा करके छोड़ते थे ॥ ६ ॥

तं सर्वदमनेत्याहुर्द्विजास्तेनास्य कर्मणा।
तं प्रत्यषेधज्जननी मा सत्त्वानि विजीजहि ॥ ७ ॥

उनके इस कर्मसे ब्राह्मणोंने उनका नाम सर्वदमन रख दिया। माता शकुन्तलाने भरतको मना किया कि तू जंगली जीवोंको सताया न कर ॥ ७ ॥

सोऽश्वमेधशतेनेष्ट्वा यमुनामनु वीर्यवान्।
त्रिशताश्वान् सरस्वत्यां गङ्गामनु चतुःशतान् ॥ ८ ॥
सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च।
पुनरीजे महायज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ ९ ॥

पराक्रमी महाराज भरत जब बड़े हुए, तब उन्होंने यमुनाके तटपर सौ, सरस्वतीके तटपर तीन सौ और गङ्गाजीके किनारे चार सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करके पुनः उत्तम दक्षिणाओंसे सम्पन्न एक हजार अश्वमेध और सौ राजसूय महायज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन किया ॥ ८-९ ॥

अग्निष्टोमातिरात्राभ्यामिष्ट्वा विश्वजिता अपि।
वाजपेयसहस्राणां सहस्रैश्च सुसंवृतैः ॥ १० ॥
इष्ट्वा शाकुन्तलो राजा तर्पयित्वा द्विजान् धनैः।
सहस्रं यत्र पद्मानां कण्वाय भरतो ददौ ॥ ११ ॥
जाम्बूनदस्य शुद्धस्य कनकस्य महायशाः।

इसके बाद भरतने अग्निष्टोम और अतिरात्र याग करके विश्वजित् नामक यज्ञ किया। तत्पश्चात् सर्वथा सुरक्षित दस लाख वाजपेय यज्ञोंद्वारा भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना करके महायशस्वी शकुन्तलाकुमार राजा भरतने धनद्वारा ब्राह्मणोंको तृप्त करते हुए आचार्य कण्वको विशुद्ध जाम्बूनद सुवर्णके बने हुए एक हजार कमल भेंट किये ॥ १०-११½ ॥

यस्य यूपः शतव्यामः परिणाहेन काञ्चनः ॥ १२ ॥
समागम्य द्विजैः सार्धं सेन्द्रैर्देवैः समुच्छ्रितः।

इन्द्र आदि देवताओंने वहाँ ब्राह्मणोंके साथ मिलकर राजा भरतके यज्ञमें सोनेके बने हुए सौ व्याम (चार सौ हाथ) लंबे सुवर्णमय यूपका आरोपण किया ॥ १२½ ॥

अलंकृतान् राजमानान् सर्वरत्नैर्मनोहरैः ॥ १३ ॥
हैरण्यानश्वान् द्विरदान् रथानुष्ट्रानजाविकम्।
दासीदासं धनं धान्यं गाः सवत्साः पयस्विनीः ॥ १४ ॥
ग्रामान् गृहांश्च क्षेत्राणि विविधांश्च परिच्छदान्।
कोटीशतायुतांश्चैव ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ १५ ॥
चक्रवर्ती ह्यदीनात्मा जितारिर्ह्यजितः परैः।

शत्रुविजयी, दूसरोंसे पराजित न होनेवाले अदीनचित्त चक्रवर्ती सम्राट् भरतने ब्राह्मणोंको सम्पूर्ण मनोहर रत्नोंसे विभूषित, कान्तिमान् एवं सुवर्णशोभित घोड़े, हाथी, रथ, ऊँट, बकरी, भेड़, दास, दासी, धन-धान्य, दूध देनेवाली सवत्सा गायें, गाँव, घर, खेत तथा वस्त्राभूषण आदि नाना प्रकारकी सामग्री एवं दस लाख कोटि स्वर्णमुद्राएँ दी थीं ॥ १२—१५½ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १६ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १७ ॥

श्वैत्य संजय ! चारों कल्याणकारी गुणोंमें वे तुमसे बढ़-चढ़कर थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मृत्युसे बच न सके, तब दूसरे कैसे बच सकते हैं ? अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। ऐसा नारदजीने कहा ॥ १६-१७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

राजा पृथुका चरित्र

नारद उवाच

पृथुं वैन्यं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यमभ्यषिञ्चन् साम्राज्ये राजसूये महर्षयः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—संजय ! वेनके पुत्र राजा पृथु भी जीवित नहीं रह सके; यह हमने सुना है। महर्षियोंने राजसूय-यज्ञमें उन्हें सम्राट्के पदपर अभिषिक्त किया था ॥ १ ॥

यत्नतः प्रथितेत्यूचुः सर्वानभिभवन् पृथुः ।
क्षतान्नस्त्रास्यते सर्वानित्येवं क्षत्रियोऽभवत् ॥ २ ॥

'ये समस्त शत्रुओंको पराजित करके अपने प्रयत्नसे प्रथित (विख्यात) होंगे'—ऐसा महर्षियोंने कहा था। इसलिये वे 'पृथु' कहलाये। ऋषियोंने यह भी कहा कि 'ये क्षतसे हमारा त्राण करेंगे', इसलिये वे 'क्षत्रिय' इस सार्थक नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ २ ॥

पृथुं वैन्यं प्रजा दृष्ट्वा रक्ताः स्मेति यदब्रुवन् ।
ततो राजेति नामास्य अनुरागादजायत ॥ ३ ॥

वेनकुमार पृथुको देखकर प्रजाने कहा, हम इनमें अनुरक्त हैं। इसलिये उस प्रजारञ्जनजनित अनुरागके कारण उनका नाम 'राजा' हुआ ॥ ३ ॥

अकृष्टपच्या पृथिवी आसीद् वैन्यस्य कामधुक् ।
सर्वाः कामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥ ४ ॥

वेननन्दन पृथुके लिये यह पृथ्वी कामधेनु हो गयी थी। उनके राज्यमें बिना जोते ही पृथ्वीसे अनाज पैदा होता था। उस समय सभी गौएँ कामधेनुके समान थीं। पत्ते-पत्तेमें मधु भरा रहता था ॥ ४ ॥

आसन् हिरण्मया दर्भाः सुखस्पर्शाः सुखावहाः ।
तेषां चीराणि संवीताः प्रजास्तेष्वेव शेरते ॥ ५ ॥

कुश सुवर्णमय होते थे। उनका स्पर्श कोमल था और वे सुखद जान पड़ते थे। उन्हींके चीर बनाकर प्रजा उनसे अपना शरीर ढकती थी तथा उन कुशोंकी ही चटाइयोंपर सोती थी ॥ ५ ॥

फलान्यमृतकल्पानि स्वादूनि च मधूनि च ।
तेषामासीत् तदाहारो निराहाराश्च नाभवन् ॥ ६ ॥

वृक्षोंके फल अमृतके समान मधुर और स्वादिष्ट होते थे। उन दिनों उन फलोंका ही आहार किया जाता था। कोई भी भूखा नहीं रहता था ॥ ६ ॥

अरोगाः सर्वसिद्धार्था मनुष्या ह्यकुतोभयाः ।
न्यवसन्त यथाकामं वृक्षेषु च गुहासु च ॥ ७ ॥

सभी मनुष्य नीरोग थे। सबकी सारी इच्छाएँ पूर्ण होती थीं और उन्हें कहींसे भी कोई भय नहीं था। वे अपनी इच्छाके अनुसार वृक्षोंके नीचे और पर्वतोंकी गुफाओंमें निवास करते थे ॥ ७ ॥

प्रविभागो न राष्ट्राणां पुराणां चाभवत् तदा ।
यथासुखं यथाकामं तथैता मुदिताः प्रजाः ॥ ८ ॥

उस समय राष्ट्रों और नगरोंका विभाग नहीं था। सबको इच्छानुसार सुख और भोग प्राप्त थे। इससे यह सारी प्रजा प्रसन्न थी ॥ ८ ॥

तस्य संस्तम्भिता ह्यापः समुद्रमभियास्यतः ।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥ ९ ॥

राजा पृथु जब समुद्रमें यात्रा करते थे, तब पानी थम जाता था और पर्वत उन्हें जानेके लिये मार्ग दे देते थे। उनके रथकी ध्वजा कभी खण्डित नहीं हुई थी ॥ ९ ॥

तं वनस्पतयः शैला देवासुरनरोरगाः ।
सप्तर्षयः पुण्यजना गन्धर्वाप्सरसोऽपि च ॥ १० ॥
पितरश्च सुखासीनमभिगम्येदमब्रुवन् ।
सम्राडसि क्षत्रियोऽसि राजा गोप्ता पितासि नः ॥ ११ ॥
देह्यस्मभ्यं महाराज प्रभुः सन्नीप्सितान् वरान् ।
यैर्वयं शाश्वतीस्तृप्तीर्वर्तयिष्यामहे सुखम् ॥ १२ ॥

एक दिन सुखपूर्वक बैठे हुए राजा पृथुके पास वनस्पति, पर्वत, देवता, असुर, मनुष्य, सर्प, सप्तर्षि, पुण्यजन (यक्ष), गन्धर्व, अप्सरा तथा पितरोंने आकर इस प्रकार कहा—'महाराज ! तुम हमारे सम्राट् हो, क्षत्रिय हो तथा राजा, रक्षक और पिता हो। तुम हमें अभीष्ट वर दो, जिससे हमलोग अनन्त कालतक तृप्ति और सुखका अनुभव करें। तुम ऐसा करनेमें समर्थ हो' ॥ १०—१२ ॥

तथेत्युक्त्वा पृथुर्वैन्यो गृहीत्वाऽऽजगवं धनुः।
शरांश्चाप्रतिमान् घोरांश्चिन्तयित्वाब्रवीन्महीम् ॥ १३ ॥

'बहुत अच्छा' ऐसा ही होगा, यह कहकर वेनकुमार पृथुने अपना आजगव नामक धनुष और जिनकी कहीं तुलना नहीं थी, ऐसे भयंकर बाण हाथमें ले लिये और कुछ सोचकर पृथ्वीसे कहा—॥ १३ ॥

एह्येहि वसुधे क्षिप्रं क्षरैभ्यः काङ्क्षितं पयः।
ततो दास्यामि भद्रं ते अन्नं यस्य यथेप्सितम् ॥ १४ ॥

'वसुधे ! तुम्हारा कल्याण हो। आओ-आओ, इन प्रजाजनोंके लिये शीघ्र ही मनोवाञ्छित दूधकी धारा बहाओ। तब मैं जिसका जैसा अभीष्ट अन्न है, उसे वैसा दे सकूँगा'॥ १४ ॥

वसुधोवाच

दुहितृत्वेन मां वीर संकल्पयितुमर्हसि।
तथेत्युक्त्वा पृथुः सर्वं विधानमकरोद् वशी ॥ १५ ॥

वसुधा बोली—वीर ! तुम मुझे अपनी पुत्री मान लो, तब जितेन्द्रिय राजा पृथुने 'तथास्तु' कहकर वहाँ सारी आवश्यक व्यवस्था की ॥ १५ ॥

ततो भूतनिकायास्तां वसुधां दुदुहुस्तदा।
तां वनस्पतयः पूर्वं समुत्तस्थुर्दुधुक्षवः ॥ १६ ॥

तदनन्तर प्राणियोंके समुदायने उस समय वसुधाको दुहना आरम्भ किया। सबसे पहले दूधकी इच्छावाले वनस्पति उठे ॥ १६ ॥

सातिष्ठद् वत्सला वत्सं दोग्धृपात्राणि चेच्छती।
वत्सोऽभूत् पुष्पितः शालः प्लक्षो दोग्धाभवत् तदा १७
छिन्नप्ररोहणं दुग्धं पात्रमौदुम्बरं शुभम्।

उस समय गोरूपधारिणी पृथ्वी वात्सल्य-स्नेहसे परिपूर्ण हो बछड़े, दुहनेवाले और दुग्धपात्रकी इच्छा करती हुई खड़ी हो गयी। वनस्पतियोंमेंसे खिला हुआ शालवृक्ष बछड़ा हो गया। पाकरका पेड़ दुहनेवाला बन गया। गूलर सुन्दर दुग्धपात्रका काम देने लगा। कटनेपर पुनः पनप जाना यही दूध था ॥ १७½ ॥

उदयः पर्वतो वत्सो मेरुर्दोग्धा महागिरिः ॥ १८ ॥
रत्नान्योषधयो दुग्धं पात्रमश्ममयं तथा।

पर्वतोंमें उदयाचल बछड़ा, महागिरि मेरु दुहनेवाला, रत्न और ओषधि दूध तथा प्रस्तर ही दुग्धपात्र था ॥ १८½ ॥

दोग्धा चासीत् तदा देवो दुग्धमूर्जस्करं प्रियम् ॥ १९ ॥

देवताओंमें भी उस समय कोई दुहनेवाला और कोई बछड़ा बन गया। उन्होंने पुष्टिकारक अमृतमय प्रिय दूध दुह लिया १९

असुरा दुदुहुर्मायामामपात्रे तु ते तदा।
दोग्धा द्विमूर्धा तत्रासीद् वत्सश्चासीद् विरोचनः॥२०॥

असुरोंने कच्चे बर्तनमें मायामय दूधका ही दोहन किया। उस समय द्विमूर्धा दुहनेवाला और विरोचन बछड़ा बना था ॥

कृषिं च सस्यं च नरा दुदुहुः पृथिवीतले।
स्वायम्भुवो मनुर्वत्सस्तेषां दोग्धाभवत् पृथुः ॥ २१ ॥

भूतलके मनुष्योंने कृषिकर्म और खेतीकी उपजको ही दूधके रूपमें दुहा। उनके बछड़ेके स्थानपर स्वायम्भू मनु थे और दुहनेका कार्य पृथुने किया ॥ २१ ॥

अलाबुपात्रे च तथा विषं दुग्धा वसुंधरा।
धृतराष्ट्रोऽभवद् दोग्धा तेषां वत्सस्तु तक्षकः ॥ २२ ॥

सर्पोंने तुम्बीके बर्तनमें पृथ्वीसे विषका दोहन किया उनकी ओरसे दुहनेवाला धृतराष्ट्र और बछड़ा तक्षक था॥२२॥

सप्तर्षिभिर्ब्रह्म दुग्धा तथा चाक्लिष्टकर्मभिः।
दोग्धा बृहस्पतिः पात्रं छन्दो वत्सश्च सोमराट् ॥ २३ ॥

अक्लिष्टकर्मा सप्तर्षियोंने ब्रह्म (वेद एवं तप) का दोहन किया। उनके दोग्धा बृहस्पति, पात्र छन्द और बछड़ा राजा सोम थे ॥ २३ ॥

अन्तर्धानं चामपात्रे दुग्धा पुण्यजनैर्विराट्।
दोग्धा वैश्रवणस्तेषां वत्सश्चासीद् वृषध्वजः ॥ २४ ॥

यक्षोंने कच्चे बर्तनमें पृथ्वीसे अन्तर्धान विद्याका दोहन किया। उनके दोग्धा कुबेर और बछड़ा महादेवजी थे ॥२४॥

पुण्यगन्धान् पद्मपात्रे गन्धर्वाप्सरसोऽदुहन्।
वत्सश्चित्ररथस्तेषां दोग्धा विश्वरुचिः प्रभुः ॥ २५ ॥

गन्धर्वों और अप्सराओंने कमलके पात्रमें पवित्र गन्धको ही दूधके रूपमें दुहा। उनका बछड़ा चित्ररथ और दुहनेवाले गन्धर्वराज विश्वरुचि थे ॥ २५ ॥

स्वधां रजतपात्रेषु दुदुहुः पितरश्च ताम्।
वत्सो वैवस्वतस्तेषां यमो दोग्धान्तकस्तदा ॥ २६ ॥

पितरोंने पृथ्वीसे चाँदीके पात्रमें स्वधारूपी दूधका दोहन किया। उस समय उनकी ओरसे वैवस्वत यम बछड़ा और अन्तक दुहनेवाले थे ॥ २६ ॥

एवं निकायैस्तैर्दुग्धा पयोऽभीष्टं हि सा विराट्।
यैर्वर्तयन्ति ते ह्यद्य पात्रैर्वत्सैश्च नित्यशः ॥ २७ ॥

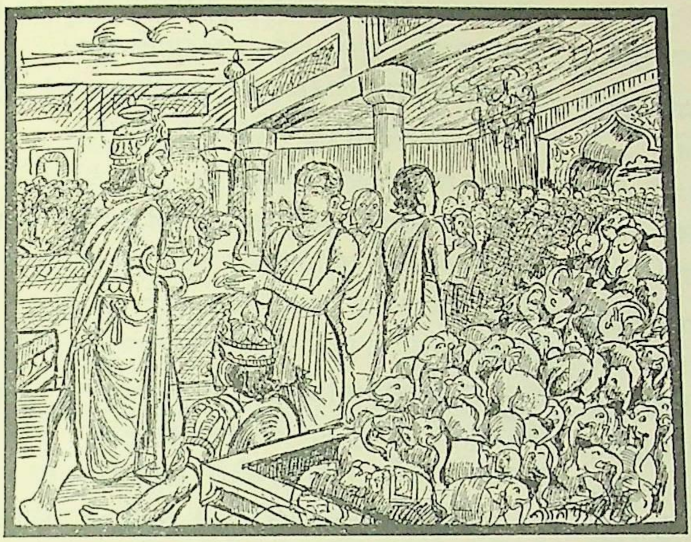
संजय ! इस प्रकार सभी प्राणियोंने बछड़ों और पात्रोंकी कल्पना करके पृथ्वीसे अपने अभीष्ट दूधका दोहन किया था, जिससे वे आजतक निरन्तर जीवन-निर्वाह करते हैं ॥ २७ ॥

यज्ञैश्च विविधैरिष्ट्वा पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्।
संतर्पयित्वा भूतानि सर्वैः कामैर्मनःप्रियैः ॥ २८ ॥

तदनन्तर प्रतापी वेनकुमार पृथुने नाना प्रकारके यज्ञों द्वारा यजन करके मनको प्रिय लगनेवाले सम्पूर्ण भोगोंकी प्राप्ति कराकर सब प्राणियोंको तृप्त किया ॥ २८ ॥

हैरण्यानकरोद् राजा ये केचित् पार्थिवा भुवि।
तान् ब्राह्मणेभ्यः प्रायच्छदश्वमेधे महामखे ॥ २९ ॥

भूतलपर जो कोई भी पार्थिव पदार्थ हैं, उनकी सोनेकी आकृति बनवाकर राजा पृथुने महायज्ञ अश्वमेधमें उन्हें ब्राह्मणोंको दान किया ॥ २९ ॥



षष्टिनागसहस्राणि षष्टिनागशतानि च ।
सौवर्णानकरोद् राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तान् ददौ ॥ ३० ॥

राजाने छाछठ हजार सोनेके हाथी बनवाये और उन्हें ब्राह्मणोंको दे दिया ॥ ३० ॥

इमां च पृथिवीं सर्वां
मणिरत्नविभूषिताम् ।
सौवर्णीमकरोद् राजा
ब्राह्मणेभ्यश्च तां ददौ ॥ ३१ ॥

राजा पृथुने इस सारी पृथ्वीकी भी मणि तथा रत्नोंसे विभूषित सुवर्णमयी प्रतिमा बनवायी और उसे ब्राह्मणोंको दे दिया ॥ ३१ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय
चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं
मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्य-
मभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ ३२ ॥

श्वैत्य संजय ! चारों कल्याणकारी गुणोंमें व तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब दूसरोंकी क्या गिनती है ! अतः तुम यज्ञानुष्ठान और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। ऐसा नारदजीने कहा ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

परशुरामजीका चरित्र

नारद उवाच

रामो महातपाः शूरो वीरलोकनमस्कृतः ।
जामदग्न्योऽप्यतियशा अवितृप्तो मरिष्यति ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—संजय ! महातपस्वी शूरवीर, वीरजनवन्दित महायशस्वी जमदग्निनन्दन परशुरामजी भी अतृप्त अवस्थामें ही मौतके मुखमें चले जायँगे ॥ १ ॥

यः स्वाद्यमनुपर्येति भूमिं कुर्वन्निमां सुखाम् ।
न चासीद् विक्रिया यस्य प्राप्य श्रियमनुत्तमाम् ॥ २ ॥

जिन्होंने इस पृथ्वीको सुखमय बनाते हुए आदि युगके धर्मका जहाँ निरन्तर प्रचार किया था तथा परम उत्तम सम्पत्तिको पाकर भी जिनके मनमें किसी प्रकारका विकार नहीं आया ॥ २ ॥

यः क्षत्रियैः परामृष्टे वत्से पितरि चाब्रुवन् ।
ततोऽवधीत् कार्तवीर्यमजितं समरे परैः ॥ ३ ॥

जब क्षत्रियोंने गायके बछड़ेको पकड़ लिया और पिता जमदग्निको मार डाला, तब जिन्होंने मौन रहकर ही समर-भूमिमें दूसरोंसे कभी पराजित न होनेवाले कृतवीर्यकुमार अर्जुनका वध किया था ॥ ३ ॥

क्षत्रियाणां चतुःषष्टिमयुतानि सहस्रशः ।
तदा मृत्योः समेतानि एकेन धनुषाजयत् ॥ ४ ॥

उस समय मरने-मारनेका निश्चय करके एकत्र हुए चौसठ करोड़ क्षत्रियोंको उन्होंने एकमात्र धनुषके द्वारा जीत लिया ॥ ४ ॥

ब्रह्मद्विषां चाथ तस्मिन् सहस्राणि चतुर्दश ।
पुनरन्यानि जग्राह दन्तक्रूरं जघान ह ॥ ५ ॥

उसी युद्धके सिलसिलेमें परशुरामजीने चौदह हजार दूसरे ब्रह्मद्रोहियोंका दमन किया और दन्तक्रूर नामक राजाको भी मार डाला ॥ ५ ॥

सहस्रं मुसलेनाहन् सहस्रमसिनावधीत् ।
उद्बन्धनात् सहस्रं च सहस्रमुदके धृतम् ॥ ६ ॥

उन्होंने एक सहस्र क्षत्रियोंको मूसलसे मार गिराया, एक सहस्र राजपूतोंको तलवारसे काट डाला, फिर एक सहस्र क्षत्रियोंको वृक्षोंकी शाखाओंमें फाँसीपर लटकाकर मार डाला और पुनः एक सहस्रको पानीमें डुबो दिया ॥ ६ ॥

दन्तान् भङ्क्त्वा सहस्रस्य कर्णान् नासा न्यकृन्तत ।
ततः सप्तसहस्राणां कटुधूपमपाययत् ॥ ७ ॥

एक सहस्र राजपूतोंके दाँत तोड़कर नाक और कान काट डाले तथा सात हजार राजाओंको कड़ुवा धूप पिला दिया ॥

शिष्टान् बद्ध्वा च हत्वा वै तेषां मूर्ध्नि विभिद्य च ।
गुणावतीमुत्तरेण खाण्डवाद् दक्षिणेन च ।
गिर्यन्ते शतसाहस्रा हैहयाः समरे हताः ॥ ८ ॥
सरथाश्वगजा वीरा निहतास्तत्र शेरते ।
पितुर्वधामर्षितेन जामदग्न्येन धीमता ॥ ९ ॥

शेष क्षत्रियोंको बाँधकर उनका वध कर डाला । उनमेंसे कितनोंके ही मस्तक विदीर्ण कर डाले । गुणावतीसे उत्तर और खाण्डव वनसे दक्षिण पर्वतके निकटवर्ती प्रदेशमें लाखों हैहयवंशी क्षत्रिय वीर पिताके वधसे कुपित हुए बुद्धिमान् परशुरामजीके द्वारा समरभूमिमें मारे गये । वे अपने रथ, घोड़े और हाथियोंसहित मारे जाकर वहाँ धराशायी हो गये ॥

निजघ्ने दशसाहस्रान् रामः परशुना तदा ।
न ह्यमृष्यत ता वाचो यास्तैर्भृशमुदीरिताः ॥ १० ॥
भृगो रामाभिधावेति यदाक्रन्दन् द्विजोत्तमाः ।

परशुरामजीने उस समय अपने फरसेसे दस हजार क्षत्रियों-को काट डाला । आश्रमवासियोंने आर्तभावसे जो बातें कही थीं, वहाँके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने 'भृगुवंशी परशुराम ! दौड़ो, बचाओ' इस प्रकार कहकर जो करुण क्रन्दन किया था, उनकी वह कातर पुकार परशुरामजीसे नहीं सही गयी ॥ १०½ ॥

ततः काश्मीरदरदान् कुन्तिक्षुद्रकमालवान् ॥ ११ ॥
अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च विदेहांस्ताम्रलिप्तकान् ।
रक्षोवाहान् वीतिहोत्रांस्त्रिगर्तान् मार्तिकावतान् ॥ १२ ॥
शिबीनन्यांश्च राजन्यान् देशान् देशान् सहस्रशः ।
निजघान शितैर्बाणैर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥ १३ ॥

तदनन्तर प्रतापी परशुरामने काश्मीर, दरद, कुन्ति, क्षुद्रक, मालव, अंग, वंग, कलिंग, विदेह, ताम्रलिप्त, रक्षोवाह, वीतिहोत्र, त्रिगर्त, मार्तिकावत, शिबि तथा अन्य सहस्रों देशोंके क्षत्रियोंका अपने तीखे बाणोंद्वारा संहार किया ॥

कोटीशतसहस्राणि क्षत्रियाणां सहस्रशः ।
इन्द्रगोपकवर्णस्य बन्धुजीवनिभस्य च ॥ १४ ॥
रुधिरस्य परीवाहैः पूरयित्वा सरांसि च ।
सर्वानष्टादश द्वीपान् वशमानीय भार्गवः ॥ १५ ॥
ईजे क्रतुशतैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ।

सहस्रों और लाखों कोटि क्षत्रियोंके इन्द्रगोप (वीर-बहूटी) नामक कीट तथा बन्धुजीव (दुपहरिया)-पुष्पके समान रंगवाले रक्तकी धाराओंसे भृगुनन्दन परशुरामने कितने ही तालाब भर दिये और समस्त अठारह द्वीपोंको अपने वशमें करके उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त सौ पवित्र यज्ञोंका अनुष्ठान किया ॥ १४-१५½ ॥

वेदीमष्टनलोत्सेधां सौवर्णां विधिनिर्मिताम् ॥ १६
सर्वरत्नशतैः पूर्णां पताकाशतमालिनीम् ।
ग्राम्यारण्यैः पशुगणैः सम्पूर्णां च महीमिमाम् ॥ १७
रामस्य जामदग्न्यस्य प्रतिजग्राह कश्यपः ।

उस यज्ञमें विधिपूर्वक बत्तीस हाथ ऊँची सोनेकी वे बनायी गयी थी, जो सब प्रकारके सैकड़ों रत्नोंसे परि और सौ पताकाओंसे सुशोभित थी । जमदग्निनन्दन परशुरा की उस वेदीको तथा ग्रामीण और जंगली पशुओंसे भ पूरी इस पृथ्वीको भी महर्षि कश्यपने दक्षिणारूपसे ग्रहण कि

ततः शतसहस्राणि द्विपेन्द्रान् हेमभूषणान् ॥ १८
निर्दस्युं पृथिवीं कृत्वा शिष्टेष्टजनसंकुलाम् ।
कश्यपाय ददौ रामो हयमेधे महामखे ॥ १९

उस समय परशुरामजीने लाखों गजराजोंको सोने आभूषणोंसे विभूषित करके तथा पृथ्वीको चोर डाकुओंसे सूनी और साधु पुरुषोंसे-भरी पूरी करके महाय अश्वमेधमें कश्यपजीको दे दिया ॥ १८-१९ ॥

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ।
इष्ट्वा क्रतुशतैर्वीरो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २०

वीर एवं शक्तिशाली परशुरामजीने इक्कीस बार इ पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य करके सैकड़ों यज्ञोंद्वारा भगवान् यजन किया और इस वसुधाको ब्राह्मणोंके अधिकारमें दे दिय

सप्तद्वीपां वसुमतीं मारीचोऽगृह्णत द्विजः ।
रामं प्रोवाच निर्गच्छ वसुधातो ममाज्ञया ॥ २१ ॥

ब्रह्मर्षि कश्यपने जब सातों द्वीपोंसे युक्त यह पृथ्वी दान में ले ली, तब उन्होंने परशुरामजीसे कहा—'अब तू मेरी आज्ञासे इस पृथ्वीसे निकल जाओ' (और कहीं अन्यत्र जाकर रहो) ॥ २१ ॥

स कश्यपस्य वचनात् प्रोत्सार्य सरितां पतिम् ।
इषुपाते युधां श्रेष्ठः कुर्वन् ब्राह्मणशासनम् ॥ २२ ॥
अध्यावसद् गिरिश्रेष्ठं महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ।

कश्यपके इस आदेशसे योद्धाओंमें श्रेष्ठ परशुरामने जितनी दूर बाण फेंका जा सकता है, समुद्रको उतनी ही दूर पीछे हटाकर ब्राह्मणकी आज्ञाका पालन करते हुए उत्तम पर्वत गिरिश्रेष्ठ महेन्द्रपर निवास किया ॥ २२½ ॥

एवं गुणशतैर्युक्तो भृगूणां कीर्तिवर्धनः ॥ २३ ॥
जामदग्न्यो ह्यतियशा मरिष्यति महाद्युतिः ।

इस प्रकार भृगुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले महायशस्वी, महातेजस्वी और सैकड़ों गुणोंसे सम्पन्न जमदग्निनन्दन परशुराम भी एक-न-एक दिन मरेंगे ही ॥ २३½ ॥

त्वया चतुर्भद्रतरः पुत्रात् पुण्यतरस्तव ॥ २४ ॥
अयज्वानमदाक्षिण्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।

संजय ! चारों कल्याणकारी गुणोंमें वे तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा हैं। अतः तुम यज्ञानुष्ठान और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो ॥

एते चतुर्भद्रतरास्त्वया भद्रशताधिकाः।
मृता नरवरश्रेष्ठ मरिष्यन्ति च सृञ्जय ॥ २५ ॥

नरश्रेष्ठ संजय ! अबतक जिन लोगोंका वर्णन किया गया है, ये चतुर्विध कल्याणकारी गुणोंमें तो तुमसे बढ़कर थे ही, तुम्हारी अपेक्षा उनमें सैकड़ों मङ्गलकारी गुण अधिक भी थे; तथापि वे मर गये और जो विद्यमान हैं, वे भी मरेंगे ही ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

नारदजीका संजयके पुत्रको जीवित करना और व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाकर अन्तर्धान होना

व्यास उवाच

पुण्यमाख्यानमायुष्यं श्रुत्वा षोडशराजकम्।
अव्याहरन्नरपतिस्तूष्णीमासीत् स सृञ्जयः ॥ १ ॥

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! इन सोलह राजाओंका पवित्र एवं आयुकी वृद्धि करनेवाला उपाख्यान सुनकर राजा संजय कुछ भी नहीं बोलते हुए मौन रह गये ॥ १ ॥

तमब्रवीत् तथाऽऽसीनं नारदो भगवानृषिः।
श्रुतं कीर्तयतो मह्यं गृहीतं ते महाद्युते ॥ २ ॥

उन्हें इस प्रकार चुपचाप बैठे देख भगवान् नारद-मुनिने उनसे पूछा—'महातेजस्वी नरेश ! मैंने जो कुछ कहा है, उसे तुमने सुना और समझा है न ? ॥ २ ॥

आहोस्विदन्ततो नष्टं श्राद्धं शूद्रीपताविव।
स एवमुक्तः प्रत्याह प्राञ्जलिः सृञ्जयस्तदा ॥ ३ ॥

'अथवा ऐसा तो नहीं हुआ कि जैसे शूद्रजातिकी स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मणको दिया हुआ श्राद्धका दान नष्ट (निष्फल) हो जाता है, उसी प्रकार मेरा यह सारा कहना अन्ततोगत्वा व्यर्थ हो गया हो।' उनके इस प्रकार पूछनेपर उस समय संजयने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—॥ ३ ॥

एतच्छ्रुत्वा महाबाहो धन्यमाख्यानमुत्तमम्।
राजर्षीणां पुराणानां यज्वनां दक्षिणावताम् ॥ ४ ॥
विस्मयेन हृते शोके तमसीवार्कतेजसा।
विपाप्मास्म्यव्यथोपेतो ब्रूहि किं करवाण्यहम् ॥ ५ ॥

'महाबाहु महर्षे ! यज्ञ करने और दक्षिणा देनेवाले प्राचीन राजर्षियोंका यह परम उत्तम सराहनीय उपाख्यान सुनकर मुझे ऐसा विस्मय हुआ है कि उसने मेरा सारा शोक हर लिया है। ठीक उसी तरह, जैसे सूर्यका तेज सारा अन्धकार हर लेता है। अब मैं पाप (दुःख) और व्यथासे शून्य हो गया हूँ। बताइये, आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ' ॥

नारद उवाच

दिष्ट्यापहृतशोकस्त्वं वृणीष्वेह यदिच्छसि।
तत् तत् प्रपत्स्यसे सर्वं न मृषावादिनो वयम् ॥ ६ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारा शोक दूर हो गया। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, यहाँ मुझसे माँग लो। तुम्हारी वह सारी अभिलषित वस्तु तुम्हें प्राप्त हो जायगी। हमलोग झूठ नहीं बोलते हैं ॥ ६ ॥

सृंजय उवाच

एतेनैव प्रतीतोऽहं प्रसन्नो यद्भवान् मम।
प्रसन्नो यस्य भगवान् न तस्यास्तीह दुर्लभम् ॥ ७ ॥

संजयने कहा—मुने ! आप मुझपर प्रसन्न हैं, इतनेसे ही मैं पूर्ण संतुष्ट हूँ। जिसपर आप प्रसन्न हों, उसे इस जगत्में कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ ७ ॥

नारद उवाच

मृतं ददानि ते पुत्रं दस्युभिर्निहतं वृथा।
उद्धृत्य नरकात् कष्टात् पशुवत् प्रोक्षितं यथा ॥ ८ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! लुटेरोंने तुम्हारे पुत्रको प्रोक्षित पशुकी भाँति व्यर्थ ही मार डाला है। तुम्हारे उस मरे हुए पुत्रको मैं कष्टप्रद नरकसे निकालकर तुम्हें पुनः वापस दे रहा हूँ ॥ ८ ॥

व्यास उवाच

प्रादुरासीत् ततः पुत्रः सृञ्जयस्याद्भुतप्रभः।
प्रसन्नेनर्षिणा दत्तः कुबेरतनयोपमः ॥ ९ ॥

व्यासजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! नारदजीके इतना कहते ही संजयका अद्भुत कान्तिमान् पुत्र वहाँ प्रकट हो गया। उसे ऋषिने प्रसन्न होकर राजाको दिया था। वह देखनेमें कुबेरके पुत्रके समान जान पड़ता था ॥ ९ ॥

ततः संगम्य पुत्रेण प्रीतिमानभवन्नृपः।
ईजे च क्रतुभिः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ १० ॥

अपने उस पुत्रसे मिलकर राजा संजयको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त पुण्यमय यज्ञोंद्वारा भगवान्का यजन किया ॥ १० ॥

अकृतार्थश्च भीतश्च न च सान्नाहिको हतः।
अयज्वा त्वनपत्यश्च ततोऽसौ जीवितः पुनः ॥ ११ ॥

संजयका पुत्र कवच बाँधकर युद्धमें लड़ता हुआ नहीं

मारा गया था। उसे अकृतार्थ और भयभीत अवस्थामें अपने प्राणोंका त्याग करना पड़ा था। वह यज्ञकर्मसे रहित और संतानहीन भी था। इसलिये नारदजीने पुनः उसे जीवित कर दिया था ॥ ११ ॥

शूरो वीरः कृतार्थश्च प्रताप्यारीन् सहस्रशः।
अभिमन्युर्गतो वीरः पृतनाभिमुखो हतः ॥ १२ ॥

परंतु शूरवीर अभिमन्यु तो कृतार्थ हो चुका है। वह वीर शत्रुसेनाके सम्मुख युद्धतत्पर हो सहस्रों वैरियोंको संतप्त करके मारा गया और स्वर्गलोकमें जा पहुँचा है ॥१२॥

ब्रह्मचर्येण यान् कांश्चित् प्रज्ञया च श्रुतेन च।
इष्टैश्च क्रतुभिर्यान्ति तांस्ते पुत्रोऽक्षयान् गतः ॥ १३ ॥

पुण्यात्मा पुरुष ब्रह्मचर्यपालन, उत्तम ज्ञान, वेद-शास्त्रोंके स्वाध्याय तथा यज्ञोंके अनुष्ठानसे जिन किन्हीं लोकोंमें जाते हैं, उन्हीं अक्षय लोकोंमें तुम्हारा पुत्र अभिमन्यु भी गया है ॥ १३ ॥

विद्वांसः कर्मभिः पुण्यैः स्वर्गमीहन्ति नित्यशः।
न तु स्वर्गादयं लोकः काम्यते स्वर्गवासिभिः ॥ १४ ॥

विद्वान् पुरुष पुण्यकर्मोंद्वारा सदा स्वर्गलोकमें जानेकी इच्छा करते हैं; परंतु स्वर्गवासी पुरुष स्वर्गसे इस लोकमें आनेकी कामना नहीं करते हैं ॥ १४ ॥

तस्मात् स्वर्गगतं पुत्रमर्जुनस्य हतं रणे।
न चेहानयितुं शक्यं किंचिदप्राप्यमीहितम् ॥ १५ ॥

अर्जुनका पुत्र युद्धमें मारे जानेके कारण स्वर्गलोकमें गया हुआ है। अतः उसे यहाँ नहीं लाया जा सकता। कोई अप्राप्य वस्तु केवल इच्छा करनेमात्रसे नहीं सुलभ हो सकती ॥ १५ ॥

यां योगिनो ध्यानविविक्तदर्शनाः
प्रयान्ति यां चोत्तमयज्विनो जनाः।
तपोभिरिद्धैरनुयान्ति यां तथा
तामक्षयां ते तनयो गतो गतिम् ॥ १६ ॥

जिन्होंने ध्यानके द्वारा पवित्र ज्ञानमयी दृष्टि प्राप्त कर ली है, वे योगी निष्कामभावसे उत्तम यज्ञ करनेवाले पुरुष तथा अपनी उज्ज्वल तपस्याओंद्वारा तपस्वी मुनि जिस अक्षय गतिको पाते हैं, तुम्हारे पुत्रने भी वही गति प्राप्त की है॥

अन्तात् पुनर्भावगतो विराजते
राजेव वीरो ह्यमृतात्मरश्मिभिः।
तामैन्दवीमात्मतनुं द्विजोचितां
गतोऽभिमन्युर्न स शोकमर्हति ॥ १७ ॥

वीर अभिमन्यु मृत्युके पश्चात् पुनः पूर्वभावको प्राप्त होकर चन्द्रमासे उत्पन्न अपने द्विजोचित शरीरमें प्रतिष्ठित हो अपनी अमृतमयी किरणोंसे राजा सोमके समान प्रकाशित हो रहा है। अतः उसके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये॥

एवं ज्ञात्वा स्थिरो भूत्वा जह्यरीन् धैर्यमाप्नुहि।
जीवन्त एव नः शोच्या न तु स्वर्गगतोऽनघ ॥ १८

राजन्! ऐसा जानकर सुस्थिर हो धैर्यका आश्रय और उत्साहपूर्वक शत्रुओंका वध करो। अनघ! हमें संसारमें जीवित पुरुषोंके लिये ही शोक करना चाहिये। स्वर्गमें चला गया है, उसके लिये शोक करना उचित नहीं है

शोचतो हि महाराज अघमेवाभिवर्धते।
तस्माच्छोकं परित्यज्य श्रेयसे प्रयतेद् बुधः ॥ १९
प्रहर्षमभिमानं च सुखप्राप्तिं च चिन्तयन्।

महाराज! शोक करनेसे केवल दुःख ही बढ़ता है। अतः विद्वान् पुरुष उत्कृष्ट हर्ष, अतिशय सम्मान और सु प्राप्तिका चिन्तन करते हुए शोकका परित्याग करके अ कल्याणके लिये ही प्रयत्न करे ॥ १९½ ॥

एतद् बुद्ध्वा बुधाः शोकं न शोकः शोक उच्यते ॥२०

यही सब सोच-समझकर ज्ञानवान् पुरुष शोक न करते हैं। शोकको शोक नहीं कहते हैं (उसका अनु करनेवाला मन ही शोकरूप होता है) ॥ २० ॥

एवं विद्वान् समुत्तिष्ठ प्रयतो भव मा शुचः।
श्रुतस्ते सम्भवो मृत्योस्तपांस्यनुपमानि च ॥ २१

राजन्! ऐसा जानकर तुम युद्धके लिये उठो। म और इन्द्रियोंको संयममें रक्खो तथा शोक न करो। तुम मृत्युकी उत्पत्ति और उसकी अनुपम तपस्याका वृत्ता सुन लिया है ॥ २१ ॥

सर्वभूतसमत्वं च चञ्चलाश्च विभूतयः।
सृञ्जयस्य तु तं पुत्रं मृतं संजीवितं पुनः ॥ २२

मृत्यु सम्पूर्ण प्राणियोंको समभावसे प्राप्त होती है औ धन-ऐश्वर्य चञ्चल है—यह बात भी जान ली है। सृंजय पुत्र मरा और पुनः जीवित हुआ, यह कथा भी तुमने सु ही ली है ॥ २२ ॥

एवं विद्वान् महाराज मा शुचः साधयाम्यहम्।
एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ २३

महाराज! यह सब तुम जानते हो। अतः शोक न करो। अब मैं अपनी साधनामें लग रहा हूँ। ऐसा कहकर भगवान् व्यास वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ २३ ॥

वागीशाने भगवति व्यासे व्यभ्रनभःप्रभे।
गते मतिमतां श्रेष्ठे समाश्वास्य युधिष्ठिरम् ॥ २४
पूर्वेषां पार्थिवेन्द्राणां महेन्द्रप्रतिमौजसाम्।
न्यायाधिगतवित्तानां तां श्रुत्वा यज्ञसम्पदम् ॥ २५
सम्पूज्य मनसा विद्वान् विशोकोऽभूद् युधिष्ठिरः।
पुनश्चाचिन्तयद् दीनः किंस्विद् वक्ष्ये धनंजयम् ॥ २६

बिना बादलके आकाशकी-सी कान्तिवाले, बुद्धिमानोंमें

श्रेष्ठ वागीश्वर भगवान् व्यास जब युधिष्ठिरको आश्वासन देकर चले गये, तब देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी और न्यायसे धन प्राप्त करनेवाले प्राचीन राजाओंके उस यज्ञ-वैभवकी कथा सुनकर विद्वान् युधिष्ठिर मन-ही-मन उनके प्रति आदरकी भावना करते हुए शोकसे रहित हो गये। तदनन्तर फिर दीनभावसे यह सोचने लगे कि अर्जुनसे मैं क्या कहूँगा॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७१॥

(प्रतिज्ञापर्व)

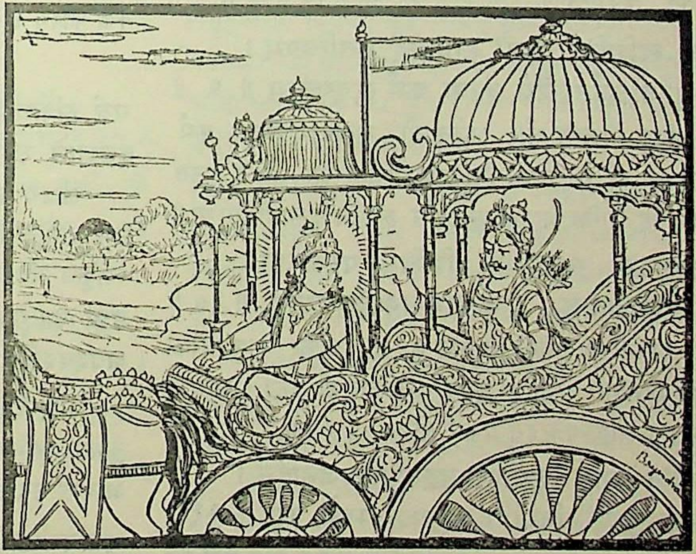
द्विसप्ततितमोऽध्यायः

अभिमन्युकी मृत्युके कारण अर्जुनका विषाद और क्रोध

(धृतराष्ट्र उवाच

अथ संशप्तकैः सार्धं युध्यमाने धनंजये।
अभिमन्यौ हते चापि बाले बलवतां वरे॥
महर्षिसत्तमे याते युधिष्ठिरपुरोगमाः।
पाण्डवाः किमथाकार्षुः शोकेन हतचेतसः॥
कथं संशप्तकेभ्यो वा निवृत्तो वानरध्वजः।
केन वा कथितस्तस्य प्रशान्तः सुतपावकः॥
एतन्मे शंस तत्त्वेन सर्वमेवेह संजय।)

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! जब अर्जुन संशप्तकोंके साथ युद्ध कर रहे थे, जब बलवानोंमें श्रेष्ठ बालक अभिमन्यु मारा गया और जब महर्षियोंमें श्रेष्ठ व्यास (युधिष्ठिरको सान्त्वना देकर) चले गये, तब शोकसे व्याकुल चित्तवाले युधिष्ठिर और अन्य पाण्डवोंने क्या किया? कपिध्वज अर्जुन संशप्तकोंकी ओरसे कैसे लौटे तथा किसने उनसे कहा कि तुम्हारा अग्निके समान तेजस्वी पुत्र सदाके लिये शान्त हो गया। इन सब बातोंको तुम यथार्थरूपसे मुझे बताओ॥



संजय उवाच

तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते घोरे प्राणभृतां क्षये।
आदित्येऽस्तं गते श्रीमान् संध्याकाल उपस्थिते॥ १॥
व्यपयातेषु वासाय सर्वेषु भरतर्षभ।
हत्वा संशप्तकव्रातान् दिव्यैरस्त्रैः कपिध्वजः॥ २॥
प्रायात् स शिबिरं जिष्णुर्जैत्रमास्थाय तं रथम्।
गच्छन्नेव च गोविन्दं साश्रुकण्ठोऽभ्यभाषत॥ ३॥

संजय बोले—भरतश्रेष्ठ! प्राणधारियोंका संहार करनेवाले उस भयङ्कर दिनके बीत जानेपर जब सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये और संध्याकाल उपस्थित हुआ, उस समय समस्त सैनिक जब शिबिरमें विश्रामके लिये चल दिये, तब विजयशील श्रीमान् कपिध्वज अर्जुन अपने दिव्यास्त्रोंद्वारा संशप्तकसमूहोंका वध करके अपने उस विजयी रथपर बैठे हुए शिबिरकी ओर चले। चलते-चलते ही वे अश्रुगद्गदकण्ठ हो भगवान् गोविन्दसे इस प्रकार बोले—॥ १–३॥

किं नु मे हृदयं त्रस्तं वाक् च सज्जति केशव।
स्पन्दन्ति चाप्यनिष्टानि गात्रं सीदति चाच्युत॥ ४॥

'केशव! न जाने क्यों आज मेरा हृदय धड़क रहा है, वाणी लड़खड़ा रही है, अनिष्टसूचक बायें अङ्ग फड़क रहे हैं और शरीर शिथिल होता जा रहा है॥ ४॥

अनिष्टं चैव मे श्लिष्टं हृदयान्नापसर्पति।
भुवि ये दिक्षु चात्युग्रा उत्पातास्त्रासयन्ति माम्॥ ५॥

'मेरे हृदयमें अनिष्टकी चिन्ता घुसी हुई है, जो किसी प्रकार वहाँसे निकलती ही नहीं है। पृथ्वीपर तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें होनेवाले भयंकर उत्पात मुझे डरा रहे हैं॥ ५॥

बहुप्रकारा दृश्यन्ते सर्वं एवाघशंसिनः ।
अपि स्वस्ति भवेद् राज्ञः सामात्यस्य गुरोर्मम ॥ ६ ॥

'ये उत्पात अनेक प्रकारके दिखायी देते हैं और सब-के-सब भारी अमङ्गलकी सूचना दे रहे हैं। क्या मेरे पूज्य भ्राता राजा युधिष्ठिर अपने मन्त्रियोंसहित सकुशल होंगे ?' ॥ ६ ॥

वासुदेव उवाच

व्यक्तं शिवं तव भ्रातुः सामात्यस्य भविष्यति ।
मा शुचः किञ्चिदेवान्यत् तत्रानिष्टं भविष्यति ॥ ७ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन ! शोक न करो । मुझे स्पष्ट जान पड़ता है कि मन्त्रियोंसहित तुम्हारे भाईका कल्याण ही होगा। इस अपशकुनके अनुसार कोई दूसरा ही अनिष्ट हुआ होगा ॥ ७ ॥

संजय उवाच

ततः संध्यामुपास्यैव वीरौ वीरावसादने ।
कथयन्तौ रणे वृत्तं प्रयातौ रथमास्थितौ ॥ ८ ॥

संजय कहते हैं--राजन् ! तदनन्तर वे दोनों वीर उस वीरसंहारक रणभूमिमें संध्या-वन्दन करके पुनः रथपर बैठकर युद्धसम्बन्धी बातें करते हुए आगे बढ़े ॥ ८ ॥

ततः स्वशिबिरं प्राप्तौ हतानन्दं हतत्विषम् ।
वासुदेवोऽर्जुनश्चैव कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ९ ॥

फिर श्रीकृष्ण और अर्जुन जो अत्यन्त दुष्कर कर्म करके आ रहे थे, अपने शिविरके निकट आ पहुँचे। उस समय वह शिविर आनन्दशून्य और श्रीहीन दिखायी देता था ॥

ध्वस्ताकारं समालक्ष्य शिबिरं परवीरहा ।
बीभत्सुरब्रवीत् कृष्णमस्वस्थहृदयस्ततः ॥ १० ॥

अपनी छावनीको विध्वस्त हुई-सी देखकर शत्रुवीरोंका संहारकरनेवाले अर्जुनका हृदय चिन्तित हो उठा। अतः वे भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले—॥ १० ॥

नदन्ति नाद्य तूर्याणि मङ्गल्यानि जनार्दन ।
मिश्रा दुन्दुभिनिर्घोषैः शङ्खाश्चाडम्बरैः सह ॥ ११ ॥

'जनार्दन ! आज इस शिविरमें माङ्गलिक बाजे नहीं बज रहे हैं। दुन्दुभि-नाद तथा तुरहीके शब्दोंके साथ मिली हुई शङ्खध्वनि भी नहीं सुनायी देती है ॥ ११ ॥

वीणा नैवाद्य वाद्यन्ते शम्यातालस्वनैः सह ।
मङ्गल्यानि च गीतानि न गायन्ति पठन्ति च ॥ १२ ॥
स्तुतियुक्तानि रम्याणि ममानीकेषु बन्दिनः ।

'ढाक और करतारकी ध्वनिके साथ आज वीणा भी नहीं बज रही है। मेरी सेनाओंमें वन्दीजन न तो मङ्गलगीत गा रहे हैं और न स्तुतियुक्त मनोहर श्लोकोंका ही पाठ करते हैं ॥ १२½ ॥

योधाश्चापि हि मां दृष्ट्वा निवर्तन्ते ह्यधोमुखाः ॥ १३ ॥
कर्माणि च यथापूर्वं कृत्वा नाभिवदन्ति माम् ।
अपि स्वस्ति भवेदद्य भ्रातृभ्यो मम माधव ॥ १४ ॥

'मेरे सैनिक मुझे देखकर नीचे मुख किये लौट जाते हैं। पहलेकी भाँति अभिवादन करके मुझसे युद्धका समाचार नहीं बता रहे हैं। माधव ! क्या आज मेरे भाई सकुशल होंगे ? ॥ १३-१४ ॥

न हि शुद्ध्यति मे भावो दृष्ट्वा स्वजनमाकुलम् ।
अपि पाञ्चालराजस्य विराटस्य च मानद ॥ १५ ॥
सर्वेषां चैव योधानां सामग्र्यं स्यान्ममाच्युत ।

'आज इन स्वजनोंको व्याकुल देखकर मेरे हृदयकी आशंका नहीं दूर होती है। दूसरोंको मान देनेवाले अच्युत श्रीकृष्ण ! राजा द्रुपद, विराट तथा मेरे अन्य सब योद्धाओंका समुदाय तो सकुशल होगा न ? ॥ १५½ ॥

न च मामद्य सौभद्रः प्रहृष्टो भ्रातृभिः सह ।
रणादायान्तमुचितं प्रत्युद्याति हसन्निव ॥ १६ ॥

'आज प्रतिदिनकी भाँति सुभद्राकुमार अभिमन्यु अपने भाइयोंके साथ हर्षमें भरकर हँसता हुआ-सा युद्धसे लौटे हुए मेरी उचित अगवानी करने नहीं आ रहा है (इसका क्या कारण है ?)' ॥ १६ ॥

संजय उवाच

एवं संकथयन्तौ तौ प्रविष्टौ शिबिरं स्वकम् ।
ददृशाते भृशास्वस्थान् पाण्डवान् नष्टचेतसः ॥ १७ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार बातें करते हुए उन दोनोंने शिविरमें पहुँचकर देखा कि पाण्डव अत्यन्त व्याकुल और हतोत्साह हो रहे हैं ॥ १७ ॥

दृष्ट्वा भ्रातॄंश्च पुत्रांश्च विमना वानरध्वजः ।
अपश्यंश्चैव सौभद्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १८ ॥

भाइयों तथा पुत्रोंको इस अवस्थामें देख और सुभद्राकुमार अभिमन्युको वहाँ न पाकर कपिध्वज अर्जुनका मन अत्यन्त उदास हो गया तथा वे इस प्रकार बोले—॥ १८ ॥

मुखवर्णोऽप्रसन्नो वः सर्वेषामेव लक्ष्यते ।
न चाभिमन्युं पश्यामि न च मां प्रतिनन्दथ ॥ १९ ॥

'आज आप सभी लोगोंके मुखकी कान्ति अप्रसन्न दिखायी दे रही है, इधर मैं अभिमन्युको नहीं देख पाता हूँ और आपलोग भी मुझसे प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप नहीं कर रहे हैं ॥ १९ ॥

मया श्रुतश्च द्रोणेन चक्रव्यूहो विनिर्मितः ।
न च वस्तस्य भेत्तास्ति विना सौभद्रमर्भकम् ॥ २० ॥

'मैंने सुना है कि आचार्य द्रोणने चक्रव्यूहकी रचना की थी। आपलोगोंमेंसे बालक अभिमन्युके सिवा दूसरा कोई उस व्यूहका भेदन नहीं कर सकता था ॥ २० ॥

न चोपदिष्टस्तस्यासीन्मयानीकाद् विनिर्गमः ।
कच्चिन्न बालो युष्माभिः परानीकं प्रवेशितः ॥ २१ ॥

'परंतु मैंने उसे उस व्यूहसे निकलनेका ढंग अभी नहीं बताया था । कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि आपलोगोंने उस बालकको शत्रुके व्यूहमें भेज दिया हो ? ॥ २१ ॥

भित्त्वानीकं महेष्वासः परेषां बहुशो युधि ।
कच्चिन्न निहतः संख्ये सौभद्रः परवीरहा ॥ २२ ॥

'शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला महाधनुर्धर सुभद्राकुमार अभिमन्यु युद्धमें शत्रुओंके उस व्यूहका अनेकों बार भेदन करके अन्तमें वहीं मारा तो नहीं गया ? ॥ २२ ॥

लोहिताक्षं महाबाहुं जातं सिंहमिवाद्रिषु ।
उपेन्द्रसदृशं ब्रूत कथमायोधने हतः ॥ २३ ॥

'पर्वतोंमें उत्पन्न हुए सिंहके समान लाल नेत्रोंवाले, श्रीकृष्णतुल्य पराक्रमी महाबाहु अभिमन्युके विषयमें आप लोग बतावें । वह युद्धमें किस प्रकार मारा गया ? ॥ २३ ॥

सुकुमारं महेष्वासं वासवस्यात्मजात्मजम् ।
सदा मम प्रियं ब्रूत कथमायोधने हतः ॥ २४ ॥

'इन्द्रके पौत्र तथा मुझे सदा प्रिय लगनेवाले सुकुमार शरीर महाधनुर्धर अभिमन्युके विषयमें बताइये । वह युद्धमें कैसे मारा गया ? ॥ २४ ॥

सुभद्रायाः प्रियं पुत्रं द्रौपद्याः केशवस्य च ।
अम्बायाश्च प्रियं नित्यं कोऽवधीत् कालमोहितः ॥ २५ ॥

'सुभद्रा और द्रौपदीके प्यारे पुत्र अभिमन्युको, जो श्रीकृष्ण और माता कुन्तीका सदा दुलारा रहा है, किसने कालसे मोहित होकर मारा है ? ॥ २५ ॥

सदृशो वृष्णिवीरस्य केशवस्य महात्मनः ।
विक्रमश्रुतमाहात्म्यैः कथमायोधने हतः ॥ २६ ॥

'वृष्णिकुलके वीर महात्मा केशवके समान पराक्रमी, शास्त्रज्ञ और महत्त्वशाली अभिमन्यु युद्धमें किस प्रकार मारा गया है ? ॥ २६ ॥

वार्ष्णेयीदयितं शूरं मया सततलालितम् ।
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ॥ २७ ॥

'सुभद्राके प्राणप्यारे शूरवीर पुत्रको, जिसको मैंने सदा लाड़-प्यार किया है, यदि नहीं देखूँगा तो मैं भी यमलोक चला जाऊँगा ॥ २७ ॥

मृदुकुञ्चितकेशान्तं बालं बालमृगेक्षणम् ।
मत्तद्विरदविक्रान्तं शालपोतमिवोद्गतम् ॥ २८ ॥
स्मिताभिभाषिणं शान्तं गुरुवाक्यकरं सदा ।
बाल्येऽप्यतुलकर्माणं प्रियवाक्यममत्सरम् ॥ २९ ॥
महोत्साहं महाबाहुं दीर्घराजीवलोचनम् ।
भक्तानुकम्पिनं दान्तं न च नीचानुसारिणम् ॥ ३० ॥
कृतज्ञं ज्ञानसम्पन्नं कृतास्त्रमनिवर्तिनम् ।
युद्धाभिनन्दिनं नित्यं द्विषतां भयवर्धनम् ॥ ३१ ॥
स्वेषां प्रियहिते युक्तं पितॄणां जयगृद्धिनम् ।
न च पूर्वं प्रहर्तारं संग्रामे नष्टसम्भ्रमम् ॥ ३२ ॥
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ।

'जिसके केशप्रान्त कोमल और घुँघराले थे, दोनों नेत्र मृगछौनेके समान चञ्चल थे, जिसका पराक्रम मतवाले हाथीके समान और शरीर नूतन शालवृक्षके समान ऊँचा था, जो मुसकराकर बातें करता था, जिसका मन शान्त था, जो सदा गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन करता था, बाल्यावस्थामें भी जिसके पराक्रमकी कोई तुलना नहीं थी, जो सदा प्रिय वचन बोलता और किसीसे ईर्ष्या-द्वेष नहीं रखता था, जिसमें महान् उत्साह भरा था, जिसकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी और दोनों नेत्र विकसित कमलके समान सुन्दर एवं विशाल थे, जो भक्त-जनोंपर दया करता, इन्द्रियोंको वशमें रखता और नीच पुरुषोंका साथ कभी नहीं करता था, जो कृतज्ञ, ज्ञानवान्, अस्त्र-विद्यामें पारङ्गत, युद्धसे मुँह न मोड़नेवाला, युद्धका अभिनन्दन करनेवाला तथा सदा शत्रुओंका भय बढ़ानेवाला था, जो स्वजनोंके प्रिय और हितमें तत्पर तथा अपने पितृकुलकी विजय चाहनेवाला था, संग्राममें जिसे कभी घबराहट नहीं होती थी और जो शत्रुपर पहले प्रहार नहीं करता था, अपने उस पुत्र बालक अभिमन्युको यदि नहीं देखूँगा तो मैं भी यमलोककी राह लूँगा ॥ २८–३२½ ॥

रथेषु गण्यमानेषु गणितं तं महारथम् ॥ ३३ ॥
मयाध्यर्धगुणं संख्ये तरुणं बाहुशालिनम् ।
प्रद्युम्नस्य प्रियं नित्यं केशवस्य ममैव च ॥ ३४ ॥
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ।

'रथियोंकी गणना होते समय जो महारथी गिना गया था, जिसे युद्धमें मेरी अपेक्षा ड्योढ़ा समझा जाता था तथा अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाला जो तरुण वीर प्रद्युम्नको, श्रीकृष्णको और मुझे भी सदैव प्रिय था, उस पुत्रको यदि मैं नहीं देखूँगा तो यमराजके लोकमें चला जाऊँगा ॥

सुनसं सुललाटान्तं स्वक्षिभ्रूदशनच्छदम् ॥ ३५ ॥
अपश्यतस्तद्वदनं का शान्तिर्हृदयस्य मे ।

'जिसकी नासिका, ललाटप्रान्त, नेत्र, भौंह तथा ओष्ठ—ये सभी परम सुन्दर थे, अभिमन्युके उस मुखको न देखनेपर मेरे हृदयमें क्या शान्ति होगी ? ॥ ३५½ ॥

तन्त्रीस्वनसुखं रम्यं पुंस्कोकिलसमध्वनिम् ॥ ३६ ॥
अशृण्वतः स्वनं तस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे ।

'अभिमन्युका स्वर वीणाकी ध्वनिके समान सुखद, मनोहर तथा कोयलकी काकलीके तुल्य मधुर था । उसे न सुननेपर मेरे हृदयको क्या शान्ति मिलेगी ? ॥ ३६½ ॥

रूपं चाप्रतिमं तस्य त्रिदशैश्चापि दुर्लभम् ॥ ३७ ॥
अपश्यतो हि वीरस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे ।

'उसके रूपकी कहीं तुलना नहीं थी। देवताओंके लिये भी वैसा रूप दुर्लभ है। यदि वीर अभिमन्युके उस रूपको नहीं देख पाता हूँ तो मेरे हृदयको क्या शान्ति मिलेगी ? ३७½ ॥

अभिवादनदक्षं तं पितॄणां वचने रतम् ॥ ३८ ॥
नाद्याहं यदि पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ।

'प्रणाम करनेमें कुशल और पितृवर्गकी आज्ञाका पालन करनेमें तत्पर अभिमन्युको यदि आज मैं नहीं देखता हूँ तो मेरे हृदयको क्या शान्ति मिलेगी ? ॥ ३८½ ॥

सुकुमारः सदा वीरो महार्हशयनोचितः ॥ ३९ ॥
भूमावनाथवच्छेते नूनं नाथवतां वरः ।

'जो सदा बहुमूल्य शय्यापर सोनेके योग्य और सुकुमार था, वह सनाथशिरोमणि वीर अभिमन्यु आज निश्चय ही अनाथकी भाँति पृथ्वीपर सो रहा है ॥ ३९½ ॥

शयानं समुपासन्ति यं पुरा परमस्त्रियः ॥ ४० ॥
तमद्य विप्रविद्धाङ्गमुपासन्त्यशिवाः शिवाः ।

'आजसे पहले सोते समय परम सुन्दरी स्त्रियाँ जिसकी उपासना करती थीं, अपने क्षत-विक्षत अङ्गोंसे पृथ्वीपर पड़े हुए उस अभिमन्युके पास आज अमङ्गलजनक शब्द करनेवाली सियारिनें बैठी होंगी ॥ ४०½ ॥

यः पुरा बोध्यते सुप्तः सूतमागधवन्दिभिः ॥ ४१ ॥
बोधयन्त्यद्य तं नूनं श्वापदा विकृतैः स्वनैः ।

'जिसे पहले सो जानेपर सूत, मागध और बन्दीजन जगाया करते थे, उसी अभिमन्युको आज निश्चय ही हिंसक जन्तु अपने भयंकर शब्दोंद्वारा जगाते होंगे ॥ ४१½ ॥

छत्रच्छायासमुचितं तस्य तद् वदनं शुभम् ॥ ४२ ॥
नूनमद्य रजोध्वस्तं रणरेणुः करिष्यति ।

'उसका वह सुन्दर मुख सदा छत्रकी छायामें रहने योग्य था; परंतु आज युद्धभूमिमें उड़ती हुई धूल उसे आच्छादित कर देगी ॥ ४२½ ॥

हा पुत्रकावितृप्तस्य सततं पुत्रदर्शने ॥ ४३ ॥
भाग्यहीनस्य कालेन यथा मे नीयसे बलात् ।

'हा पुत्र ! मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ। निरन्तर तुम्हें देखते रहनेपर भी मुझे तृप्ति नहीं होती थी, तो भी काल आज बलपूर्वक तुम्हें मुझसे छीनकर लिये जा रहा है ॥ ४३½ ॥

सा च संयमनी नूनं सदा सुकृतिनां गतिः ॥ ४४ ॥
स्वभाभिर्भासिता रम्या त्वयात्यर्थं विराजते ।

'निश्चय ही वह संयमनी पुरी सदा पुण्यवानोंका आश्रय है; जो आज अपनी प्रभासे प्रकाशित और मनोहारिणी होती हुई भी तुम्हारे द्वारा अत्यन्त उद्भासित हो उठी होगी ॥ ४४½ ॥

नूनं वैवस्वतश्च त्वां वरुणश्च प्रियातिथिम् ॥ ४५ ॥
शतक्रतुर्धनेशश्च प्राप्तमर्चन्त्यभीरुकम् ।

'अवश्य ही आज वैवस्वत यम, वरुण, इन्द्र और कुबेर वहाँ तुम-जैसे निर्भय वीरको अपने प्रिय अतिथिके रूपमें पाकर तुम्हारा बड़ा आदर-सत्कार करते होंगे' ॥ ४५½ ॥

एवं विलप्य बहुधा भिन्नपोतो वणिग् यथा ॥ ४६ ॥
दुःखेन महताऽऽविष्टो युधिष्ठिरमपृच्छत ।

इस प्रकार बारंबार विलाप करके टूटे हुए जहाजवाले व्यापारीकी भाँति महान् दुःखसे व्याप्त हो अर्जुनने युधिष्ठिरसे इस प्रकार पूछा— ॥ ४६½ ॥

कच्चित्स कदनं कृत्वा परेषां कुरुनन्दन ॥ ४७ ॥
स्वर्गतोऽभिमुखः संख्ये युध्यमानो नरर्षभैः ।

'कुरुनन्दन ! क्या उन श्रेष्ठ वीरोंके साथ युद्ध करता हुआ अभिमन्यु रणभूमिमें शत्रुओंका संहार करके सम्मुख मारा जाकर स्वर्गलोकमें गया है ? ॥ ४७½ ॥

स नूनं बहुभिर्यत्तैर्युध्यमानो नरर्षभैः ॥ ४८ ॥
असहायः सहायार्थी मामनुध्यातवान् ध्रुवम् ।

'अवश्य ही बहुत-से श्रेष्ठ एवं सावधानीके साथ प्रयत्नपूर्वक युद्ध करनेवाले योद्धाओंके साथ अकेले लड़ते हुए अभिमन्युने सहायताकी इच्छासे मेरा बारंबार स्मरण किया होगा

पीड्यमानः शरैस्तीक्ष्णैः कर्णद्रोणकृपादिभिः ॥ ४९ ॥
नानालिङ्गैः सुधौताग्रैर्मम पुत्रोऽल्पचेतनः ।
इह मे स्यात् परित्राणं पितेति स पुनः पुनः ॥ ५० ॥
इत्येवं विलपन् मन्ये नृशंसैर्भुवि पातितः ।

'जब कर्ण, द्रोण और कृपाचार्य आदिने चमकते हुए अग्रभागवाले नाना प्रकारके तीखे बाणोंद्वारा मेरे पुत्रको पीड़ित किया होगा और उसकी चेतना मन्द होने लगी होगी, उस समय अभिमन्युने बारंबार विलाप करते हुए यह कहा होगा कि यदि यहाँ मेरे पिताजी होते तो मेरे प्राणोंकी रक्षा हो जाती। मैं समझता हूँ, उसी अवस्थामें उन निर्दयी शत्रुओंने उसे पृथ्वीपर मार गिराया होगा ॥ ४९-५०½ ॥

अथवा मत्प्रसूतः स स्वस्रीयो माधवस्य च ॥ ५१ ॥
सुभद्रायां च सम्भूतो न चैवं वक्तुमर्हति ।

'अथवा वह मेरा पुत्र, श्रीकृष्णका भानजा था, सुभद्राकी कोखसे उत्पन्न हुआ था; इसलिये ऐसी दीनतापूर्ण बात नहीं कह सकता था ॥ ५१½ ॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ॥ ५२ ॥
अपश्यतो दीर्घबाहुं रक्ताक्षं यन्न दीर्यते ।

'निश्चय ही मेरा यह हृदय अत्यन्त सुदृढ एवं वज्रसारका बना हुआ है, तभी तो लाल नेत्रोंवाले महाबाहु अभिमन्युको न देखनेपर भी यह फट नहीं जाता है ॥ ५२½ ॥

कथं बाले महेष्वासा नृशंसा मर्मभेदिनः ॥ ५३ ॥
स्वस्त्रीये वासुदेवस्य मम पुत्रेऽक्षिपञ्शरान् ।

'उन क्रूरकर्मा महान् धनुर्धरोंने श्रीकृष्णके भानजे और मेरे बालक पुत्रपर मर्मभेदी बाणोंका प्रहार कैसे किया ? ॥

यो मां नित्यमदीनात्मा प्रत्युद्गम्याभिनन्दति ॥ ५४ ॥
उपायान्तं रिपून् हत्वा सोऽद्य मां किं न पश्यति ।

'जब मैं शत्रुओंको मारकर शिबिरको लौटता था, उस समय जो प्रतिदिन प्रसन्नचित्त हो आगे बढ़कर मेरा अभिनन्दन करता था, वह अभिमन्यु आज मुझे क्यों नहीं देख रहा है ? ॥

नूनं स पातितः शेते धरण्यां रुधिरोक्षितः ॥ ५५ ॥
शोभयन् मेदिनीं गात्रैरादित्य इव पातितः ।

'निश्चय ही शत्रुओंने उसे मार गिराया है और वह खूनसे लथपथ होकर धरतीपर पड़ा सो रहा है एवं आकाशसे नीचे गिराये हुए सूर्यकी भाँति वह अपने अङ्गोंसे इस भूमिकी शोभा बढ़ा रहा है ॥ ५५½ ॥

सुभद्रामनुशोचामि या पुत्रमपलायिनम् ॥ ५६ ॥
रणे विनिहतं श्रुत्वा शोकार्ता वै विनङ्क्ष्यति ।

'मुझे बारंबार सुभद्राके लिये शोक हो रहा है, जो युद्धसे मुँह न मोड़नेवाले अपने वीर पुत्रको रणभूमिमें मारा गया सुनकर शोकसे आतुर हो प्राण त्याग देगी ॥ ५६½ ॥

सुभद्रा वक्ष्यते किं मामभिमन्युमपश्यती ॥ ५७ ॥
द्रौपदी चैव दुःखार्ते ते च वक्ष्यामि किं न्वहम् ।

'अभिमन्युको न देखकर सुभद्रा मुझे क्या कहेगी ? द्रौपदी भी मुझसे किस प्रकार वार्तालाप करेगी ? इन दोनों दुःखकातर देवियोंको मैं क्या जवाब दूँगा ? ॥ ५७½ ॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं यन्न यास्यति ॥ ५८ ॥
सहस्रधा वधूं दृष्ट्वा रुदतीं शोककर्शिताम् ।

'निश्चय ही मेरा हृदय वज्रसारका बना हुआ है, जो शोकसे कातर हुई बहू उत्तराको रोती देखकर सहस्रों टुकड़ोंमें विदीर्ण नहीं हो जाता ? ॥ ५८½ ॥

दृप्तानां धार्तराष्ट्राणां सिंहनादो मया श्रुतः ॥ ५९ ॥
युयुत्सुश्चापि कृष्णेन श्रुतो वीरानुपालभन् ।

'मैंने घमंडमें भरे हुए धृतराष्ट्रपुत्रोंका सिंहनाद सुना है और श्रीकृष्णने यह भी सुना है कि युयुत्सु उन कौरववीरोंको इस प्रकार उपालम्भ दे रहा था ॥ ५९½ ॥

अशक्नुवन्तो बीभत्सुं बालं हत्वा महारथाः ॥ ६० ॥
किं मोदध्वमधर्मज्ञाः पाण्डवं दृश्यतां बलम् ।

'युयुत्सु कह रहा था, धर्मको न जाननेवाले महारथी कौरवो ! अर्जुनपर जब तुम्हारा वश न चला, तब तुम एक बालककी हत्या करके क्यों आनन्द मना रहे हो ? कल पाण्डवोंका बल देखना ॥ ६०½ ॥

किं तयोर्विप्रियं कृत्वा केशवार्जुनयोर्मृधे ॥ ६१ ॥
सिंहवन्नदथ प्रीताः शोककाल उपस्थिते ।

'रणक्षेत्रमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका अपराध करके तुम्हारे लिये शोकका अवसर उपस्थित है, ऐसे समयमें तुमलोग प्रसन्न होकर सिंहनाद कैसे कर रहे हो ? ॥ ६१½ ॥

आगमिष्यति वः क्षिप्रं फलं पापस्य कर्मणः ॥ ६२ ॥
अधर्मो हि कृतस्तीव्रः कथं स्यादफलश्चिरम् ।

'तुम्हारे पापकर्मका फल तुम्हें शीघ्र ही प्राप्त होगा । तुमलोगोंने घोर पाप किया है । उसका फल मिलनेमें अधिक विलम्ब कैसे हो सकता है ? ॥ ६२½ ॥

इति तान् परिभाषन् वै वैश्यापुत्रो महामतिः॥ ६३ ॥
अपायाच्छस्त्रमुत्सृज्य कोपदुःखसमन्वितः ।

'राजा धृतराष्ट्रकी वैश्यजातीय पत्नीका परम बुद्धिमान् पुत्र युयुत्सु कोप और दुःखसे युक्त हो कौरवोंसे उपर्युक्त बातें कहकर शस्त्र त्यागकर चला आया है ॥ ६३½ ॥

किमर्थमेतन्नाख्यातं त्वया कृष्ण रणे मम ॥ ६४ ॥
अधक्ष्यं तानहं क्रूरांस्तदा सर्वान् महारथान् ।

'श्रीकृष्ण ! आपने रणक्षेत्रमें ही यह बात मुझसे क्यों नहीं बता दी ? मैं उसी समय उन समस्त क्रूर महारथियोंको जलाकर भस्म कर डालता' ॥ ६४½ ॥

संजय उवाच

पुत्रशोकार्दितं पार्थं ध्यायन्तं साश्रुलोचनम् ॥ ६५ ॥
निगृह्य वासुदेवस्तं पुत्राधिभिरभिप्लुतम् ।
मैवमित्यब्रवीत् कृष्णस्तीव्रशोकसमन्वितम् ॥ ६६ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! इस प्रकार अर्जुनको पुत्रशोकसे पीड़ित और उसीका चिन्तन करते हुए नेत्रोंसे आँसू बहाते देख भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें पकड़कर सँभाला । वे पुत्रवियोगके कारण होनेवाली गहरी मनोव्यथामें डूबे हुए थे और तीव्र शोक उन्हें संतप्त कर रहा था । भगवान् बोले—'मित्र ! ऐसे व्याकुल न होओ ॥ ६५-६६ ॥

सर्वेषामेष वै पन्थाः शूराणामनिवर्तिनाम् ।
क्षत्रियाणां विशेषेण येषां युद्धेन जीविका ॥ ६७ ॥

'युद्धमें पीठ न दिखानेवाले सभी शूरवीरोंका यही मार्ग है । विशेषतः उन क्षत्रियोंको, जिनकी युद्धसे जीविका चलती है, इस मार्गसे जाना ही पड़ता है ॥ ६७ ॥

एषा वै युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
विहिता सर्वशास्त्रज्ञैर्गतिर्मतिमतां वर ॥ ६८ ॥

'बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ वीर ! जो युद्धसे कभी पीछे नहीं हटते हैं, उन युद्धपरायण शूरवीरोंके लिये सम्पूर्ण शास्त्रज्ञोंने यही गति निश्चित की है ॥ ६८ ॥

ध्रुवं हि युद्धे मरणं शूराणामनिवर्तिनाम् ।

गतः पुण्यकृतां लोकानभिमन्युर्न संशयः ॥ ६९ ॥

'पीछे पैर न हटानेवाले शूरवीरोंका युद्धमें मरण अवश्यम्भावी है। अभिमन्यु पुण्यात्मा पुरुषोंके लोकमें गया है, इसमें संशय नहीं है ॥ ६९ ॥

एतच्च सर्ववीराणां काङ्क्षितं भरतर्षभ।
संग्रामेऽभिमुखो मृत्युं प्राप्नुयादिति मानद ॥ ७० ॥

'दूसरोंको मान देनेवाले भरतश्रेष्ठ ! संग्राममें सम्मुख युद्ध करते हुए वीरको मृत्युकी प्राप्ति हो, यही सम्पूर्ण शूरवीरोंका अभीष्ट मनोरथ हुआ करता है ॥ ७० ॥

स च वीरान् रणे हत्वा राजपुत्रान् महाबलान्।
वीरैराकाङ्क्षितं मृत्युं सम्प्राप्तोऽभिमुखं रणे ॥ ७१ ॥

'अभिमन्युने रणक्षेत्रमें महाबली वीर राजकुमारोंका वध करके वीर पुरुषोंद्वारा अभिलषित संग्राममें सम्मुख मृत्यु प्राप्त की है ॥ ७१ ॥

मा शुचः पुरुषव्याघ्र पूर्वैरेष सनातनः।
धर्मकृद्भिः कृतो धर्मः क्षत्रियाणां रणे क्षयः ॥ ७२ ॥

'पुरुषसिंह ! शोक न करो । प्राचीन धर्मशास्त्रकारोंने संग्राममें वध होना क्षत्रियोंका सनातन धर्म नियत किया है ॥ ७२ ॥

इमे ते भ्रातरः सर्वे दीना भरतसत्तम।
त्वयि शोकसमाविष्टे नृपाश्च सुहृदस्तव ॥ ७३ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे शोकाकुल हो जानेसे ये तुम्हारे सभी भाई, नरेशगण तथा सुहृद् दीन हो रहे हैं ॥ ७३ ॥

एतांश्च वचसा साम्ना समाश्वासय मानद।
विदितं वेदितव्यं ते न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ ७४ ॥

'मानद ! इन सबको अपने शान्तिपूर्ण वचनसे आश्वासन दो। तुम्हें जाननेयोग्य तत्त्वका ज्ञान हो चुका है। अतः तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये' ॥ ७४ ॥

एवमाश्वासितः पार्थः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा।
ततोऽब्रवीत् तदा भ्रातॄन् सर्वान् पार्थः सगद्गदान् ॥ ७५ ॥

अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीकृष्णके इस प्रकार समझाने-बुझानेपर अर्जुन उस समय वहाँ गद्गद कण्ठवाले अपने सब भाइयोंसे बोले—॥ ७५ ॥

स दीर्घबाहुः पृथ्वंसो दीर्घराजीवलोचनः।
अभिमन्युर्यथावृत्तः श्रोतुमिच्छाम्यहं तथा ॥ ७६ ॥

'मोटे कंधों, बड़ी भुजाओं तथा कमलसदृश विशाल नेत्रोंवाला अभिमन्यु संग्राममें जिस प्रकार लड़ा था, वह सब वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ७६ ॥

सनागस्यन्दनहयान् द्रक्ष्यध्वं निहतान् मया।
संग्रामे सानुबन्धांस्तान् मम पुत्रस्य वैरिणः ॥ ७७ ॥

'कल आपलोग देखेंगे कि मेरे पुत्रके वैरी अपने हाथी, रथ, घोड़े और सगे-सम्बन्धियोंसहित युद्धमें मेरेद्वारा मार डाले गये ॥ ७७ ॥

कथं च वः कृतास्त्राणां सर्वेषां शस्त्रपाणिनाम्।
सौभद्रो निधनं गच्छेद् वज्रिणापि समागतः ॥ ७८ ॥

'आप सब लोग अस्त्रविद्याके पण्डित और हाथमें हथियार लिये हुए थे। सुभद्राकुमार अभिमन्यु साक्षात् वज्रधारी इन्द्रसे भी युद्ध करता हो तो भी आपके सामने कैसे मारा जा सकता था ? ॥ ७८ ॥

यद्येवमहमज्ञास्यमशक्तान् रक्षणे मम।
पुत्रस्य पाण्डुपञ्चालान् मया गुप्तो भवेत् ततः ॥ ७९ ॥

'यदि मैं ऐसा जानता कि पाण्डव और पाञ्चाल मेरे पुत्रकी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं तो मैं स्वयं उसकी रक्षा करता ॥ ७९ ॥

कथं च वो रथस्थानां शरवर्षाणि मुञ्चताम्।
नीतोऽभिमन्युर्निधनं कदर्थीकृत्य वः परैः ॥ ८० ॥

'आपलोग रथपर बैठे हुए बाणोंकी वर्षा कर रहे थे, तो भी शत्रुओंने आपकी अवहेलना करके कैसे अभिमन्युको मार डाला ? ॥ ८० ॥

अहो वः पौरुषं नास्ति न च वोऽस्ति पराक्रमः।
यत्राभिमन्युः समरे पश्यतां वो निपातितः ॥ ८१ ॥

'अहो ! आपलोगोंमें पुरुषार्थ नहीं है और पराक्रम भी नहीं है; क्योंकि समरभूमिमें आपलोगोंके देखते-देखते अभिमन्यु मार डाला गया ॥ ८१ ॥

आत्मानमेव गर्हेयं यदहं वै सुदुर्बलान्।
युष्मानाज्ञाय निर्यातो भीरूनकृतनिश्चयान् ॥ ८२ ॥

'मैं अपनी ही निन्दा करूँगा; क्योंकि आपलोगोंको अत्यन्त दुर्बल, डरपोक और सुदृढ़ निश्चयसे रहित जानकर भी मैं (अभिमन्युको आपलोगोंके भरोसे छोड़कर) अन्यत्र चला गया ॥ ८२ ॥

आहोस्विद् भूषणार्थाय वर्म शस्त्रायुधानि वः।
वाचस्तु वक्तुं संसत्सु मम पुत्रमरक्षताम् ॥ ८३ ॥

'अथवा आपलोगोंके ये कवच और अस्त्र-शस्त्र क्या शरीरका आभूषण बनानेके लिये हैं ? मेरे पुत्रकी रक्षा न करके वीरोंकी सभामें केवल बातें बनानेके लिये हैं ?' ॥ ८३ ॥

एवमुक्त्वा ततो वाक्यं तिष्ठंश्चापवरासिमान्।
न स्माशक्यत बीभत्सुः केनचित्प्रसमीक्षितुम् ॥ ८४ ॥

ऐसा कहकर फिर अर्जुन धनुष और श्रेष्ठ तलवार लेकर खड़े हो गये। उस समय कोई उनकी ओर आँख उठाकर देख भी न सका ॥ ८४ ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः।
पुत्रशोकाभिसंतप्तमश्रुपूर्णमुखं तदा ॥ ८५ ॥

वे यमराजके समान कुपित हो बारंबार लंबी साँसें ले रहे थे। उस समय पुत्रशोकसे संतप्त हुए अर्जुनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी ॥ ८५ ॥

न भाषितुं शक्नुवन्ति द्रष्टुं वा सुहृदोऽर्जुनम्।
अन्यत्र वासुदेवाद् वा ज्येष्ठाद् वा पाण्डुनन्दनात्॥ ८६॥

उस अवस्थामें वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण अथवा ज्येष्ठ पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको छोड़कर दूसरे सगे-सम्बन्धी न तो उनसे कुछ बोल सकते थे और न तो देखनेका ही साहस करते थे॥ ८६॥

सर्वास्ववस्थासु हितावर्जुनस्य मनोनुगौ।
बहुमानात् प्रियत्वाच्च तावेनं वक्तुमर्हतः॥ ८७॥

श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर सभी अवस्थाओंमें अर्जुनके हितैषी और उनके मनके अनुकूल चलनेवाले थे; क्योंकि अर्जुनके प्रति उनका बड़ा आदर और प्रेम था। अतः वे ही दोनों इनसे उस समय कुछ कहनेका अधिकार रखते थे॥ ८७॥

ततस्तं पुत्रशोकेन भृशं पीडितमानसम्।
राजीवलोचनं क्रुद्धं राजा वचनमब्रवीत्॥ ८८॥

तदनन्तर मन-ही-मन पुत्रशोकसे अत्यन्त पीड़ित हुए क्रोधभरे कमलनयन अर्जुनसे राजा युधिष्ठिरने इस प्रकार कहा॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनकोपे द्विसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनकोपविषयक बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७२॥
(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३½ श्लोक मिलाकर कुल ९१½ श्लोक हैं)

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरके मुखसे अभिमन्युवधका वृत्तान्त सुनकर अर्जुनकी जयद्रथको मारनेके लिये शपथपूर्ण प्रतिज्ञा

युधिष्ठिर उवाच

त्वयि याते महाबाहो संशप्तकबलं प्रति।
प्रयत्नमकरोत् तीव्रमाचार्यो ग्रहणे मम॥ १॥

युधिष्ठिर बोले—महाबाहो! जब तुम संशप्तक सेनाके साथ युद्धके लिये चले गये, उस समय आचार्य द्रोणने मुझे पकड़नेके लिये घोर प्रयत्न किया॥ १॥

व्यूढानीका वयं द्रोणं वारयामः स्म सर्वशः।
प्रतिव्यूह्य रथानीकं यतमानं तथा रणे॥ २॥

वे रथोंकी सेनाका व्यूह बनाकर बारंबार उद्योग करते थे और हमलोग रणक्षेत्रमें अपनी सेनाको व्यूहाकारमें संघटित करके सब प्रकारसे द्रोणाचार्यको आगे बढ़नेसे रोक देते थे॥ २॥

स वार्यमाणो रथिभिर्मयि चापि सुरक्षिते।
अस्मानभिजगामाशु पीडयन् निशितैः शरैः॥ ३॥

जब रथियोंके द्वारा आचार्य रोक दिये गये और मैं सर्वथा सुरक्षित रह गया, तब उन्होंने अपने तीखे बाणोंद्वारा हमें पीड़ा देते हुए हमलोगोंपर तीव्र वेगसे आक्रमण किया॥

ते पीड्यमाना द्रोणेन द्रोणानीकं न शक्नुमः।
प्रतिवीक्षितुमप्याजौ भेत्तुं तत् कुत एव तु॥ ४॥

द्रोणाचार्यसे पीड़ित होनेके कारण हमलोग उनके सैन्य-व्यूहकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते थे; फिर युद्धभूमिमें उसका भेदन तो कर ही कैसे सकते थे?॥ ४॥

वयं त्वप्रतिमं वीर्ये सर्वे सौभद्रमात्मजम्।
उक्तवन्तः स्म तं तात भिन्ध्यनीकमिति प्रभो॥ ५॥

तब हम सब लोग अनुपम पराक्रमी अपने पुत्र सुभद्रानन्दन अभिमन्युसे बोले—'तात! तुम इस व्यूहका भेदन करो; क्योंकि तुम ऐसा करनेमें समर्थ हो'॥ ५॥

स तथा नोदितोऽस्माभिः सदश्व इव वीर्यवान्।
असह्यमपि तं भारं वोढुमेवोपचक्रमे॥ ६॥

हमारे इस प्रकार आज्ञा देनेपर उस पराक्रमी वीरने अच्छे घोड़ेकी भाँति उस असह्य भारको भी वहन करनेका ही प्रयत्न किया॥ ६॥

स तवास्त्रोपदेशेन वीर्येण च समन्वितः।
प्राविशत् तद्बलं बालः सुपर्ण इव सागरम्॥ ७॥

तुम्हारे दिये हुए अस्त्र-विद्याके उपदेश और पराक्रमसे सम्पन्न बालक अभिमन्युने उस सेनामें उसी प्रकार प्रवेश किया, जैसे गरुड़ समुद्रमें घुस जाते हैं॥ ७॥

तेऽनुयाता वयं वीरं सात्वतीपुत्रमाहवे।
प्रवेष्टुकामास्तेनैव येन स प्राविशच्चमूम्॥ ८॥

तत्पश्चात् हमलोग रणक्षेत्रमें वीर सुभद्राकुमार अभिमन्युके पीछे उस व्यूहमें प्रवेश करनेकी इच्छासे चले। हम भी उसी मार्गसे उसमें घुसना चाहते थे, जिसके द्वारा उसने शत्रुसेनामें प्रवेश किया था॥ ८॥

ततः सैन्धवको राजा क्षुद्रस्तात जयद्रथः।
वरदानेन रुद्रस्य सर्वान् नः समवारयत्॥ ९॥

तात! ठीक इसी समय नीच सिंधुनरेश राजा जयद्रथने सामने आकर भगवान् शंकरके दिये हुए वरदानके प्रभावसे हम सब लोगोंको रोक दिया॥ ९॥

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिः कौसल्य एव च।
कृतवर्मा च सौभद्रं षड् रथाः पर्यवारयन्॥ १०॥

तदनन्तर द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल और कृतवर्मा—इन छः महारथियोंने सुभद्राकुमारको चारों ओरसे घेर लिया॥ १०॥

परिवार्य तु तैः सर्वैर्युधि बालो महारथैः।

यतमानः परं शक्त्या बहुभिर्विरथीकृतः ॥ ११ ॥

घिरा होनेपर भी वह बालक पूरी शक्ति लगाकर उन सबको जीतनेका प्रयत्न करता रहा; तथापि वे संख्यामें अधिक थे, अतः उन समस्त महारथियोंने उसे घेरकर रथहीन कर दिया ॥ ११ ॥

ततो दौःशासनिः क्षिप्रं तथा तैर्विरथीकृतम् ।
संशयं परमं प्राप्य दिष्टान्तेनाभ्ययोजयत् ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् दुःशासनपुत्रने अभिमन्युके प्रहारसे भारी प्राणसंकटमें पड़कर पूर्वोक्त महारथियोंद्वारा रथहीन किये हुए अभिमन्युको शीघ्र ही (गदाके आघातसे) मार डाला ॥ १२ ॥

स तु हत्वा सहस्राणि नराश्वरथदन्तिनाम् ।
अष्टौ रथसहस्राणि नव दन्तिशतानि च ॥ १३ ॥
राजपुत्रसहस्रे द्वे वीरांश्चालक्षितान् बहून् ।
बृहद्बलं च राजानं स्वर्गेणाजौ प्रयोज्य ह ॥ १४ ॥
ततः परमधर्मात्मा दिष्टान्तमुपजग्मिवान् ।

इसके पहले उसने हजारों हाथी, रथ, घोड़े और मनुष्योंको मार डाला था । आठ हजार रथों और नौ सौ हाथियोंका संहार किया था । दो हजार राजकुमारों तथा और भी बहुत-से अलक्षित वीरोंका वध करके राजा बृहद्बलको भी युद्धस्थलमें स्वर्गलोकका अतिथि बनाया । इसके बाद परम धर्मात्मा अभिमन्यु स्वयं मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ १३-१४½ ॥

(गतः सुकृतिनां लोकान् ये च स्वर्गजितां शुभाः ।
अदीनस्त्रासयञ्छत्रून् नन्दयित्वा च बान्धवान् ॥
असकृन्नाम विश्राव्य पितॄणां मातुलस्य च ।
वीरो दिष्टान्तमापन्नः शोचयन् बान्धवान् बहून् ॥
ततः स शोकसंतप्ता भवताद्य समेयुषः ।)

वह पुण्यात्माओंके लोकोंमें गया है । अपने पुण्यके बलसे स्वर्गलोकपर विजय पानेवाले धर्मात्मा पुरुषोंको जो शुभ लोक सुलभ होते हैं, वे ही उसे भी प्राप्त हुए हैं । उसने कभी युद्धमें दीनता नहीं दिखायी । वह वीर शत्रुओंको त्रास और बान्धवोंको आनन्द प्रदान करता हुआ अपने पितरों और मामाके नामको बारंबार विख्यात करके अपने बहुसंख्यक बन्धुओंको शोकमें डालकर मृत्युको प्राप्त हुआ है । तभीसे हमलोग शोकसे संतप्त हैं और इस समय तुमसे हमारी भेंट हुई है ॥

एतावदेव निर्वृत्तमस्माकं शोकवर्धनम् ॥ १५ ॥
स चैवं पुरुषव्याघ्रः स्वर्गलोकमवाप्तवान् ।

यही हमलोगोंके लिये शोक बढ़ानेवाली घटना घटित हुई है। पुरुषसिंह अभिमन्यु इस प्रकार स्वर्गलोकमें गया है ॥

ततोऽर्जुनो वचः श्रुत्वा धर्मराजेन भाषितम् ॥ १६ ॥
हा पुत्र इति निःश्वस्य व्यथितो न्यपतद् भुवि ।

धर्मराज युधिष्ठिरकी कही हुई यह बात सुनकर अर्जुन व्यथासे पीड़ित हो लंबी साँस खींचते हुए 'हा पुत्र' कहकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १६½ ॥

विषण्णवदनाः सर्वे परिवार्य धनंजयम् ॥ १७
नेत्रैरनिमिषैर्दीनाः प्रत्यवैक्षन् परस्परम् ।

उस समय सबके मुखपर विषाद छा गया । सब लोग अर्जुनको घेरकर दुखी हो एकटक नेत्रोंसे एक दूसरेकी ओर देखने लगे ॥ १७½ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां वासविः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १८
कम्पमानो ज्वरेणेव निःश्वसंश्च मुहुर्मुहुः ।
पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य श्वसमानोऽश्रुनेत्रवान् ॥ १९
उन्मत्त इव विप्रेक्षन्निदं वचनमब्रवीत् ।

तदनन्तर इन्द्रपुत्र अर्जुन होशमें आकर क्रोधसे व्याकुल हो मानो ज्वरसे काँप रहे हों—इस प्रकार बारंबार साँस खींचते और हाथपर हाथ मलते हुए नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे और उन्मत्तके समान देखते हुए इस तरह बोले।

अर्जुन उवाच

सत्यं वः प्रतिजानामि श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ।
न चेद् वधभयाद् भीतो धार्तराष्ट्रान् प्रहास्यति ॥ २०
न चास्मांश्शरणं गच्छेत् कृष्णं वा पुरुषोत्तमम् ।
भवन्तं वा महाराज श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥ २१

अर्जुनने कहा—मैं आपलोगोंके सामने सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, कल जयद्रथको अवश्य मार डालूँगा महाराज ! यदि वह मारे जानेके भयसे डरकर धृतराष्ट्रपुत्रोंको छोड़ नहीं देगा, मेरी, पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी अथवा आपकी शरणमें नहीं आ जायगा तो कल उसे अवश्य मार डालूँगा।

धार्तराष्ट्रप्रियकरं मयि विस्मृतसौहृदम् ।
पापं बालवधे हेतुं श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥ २२

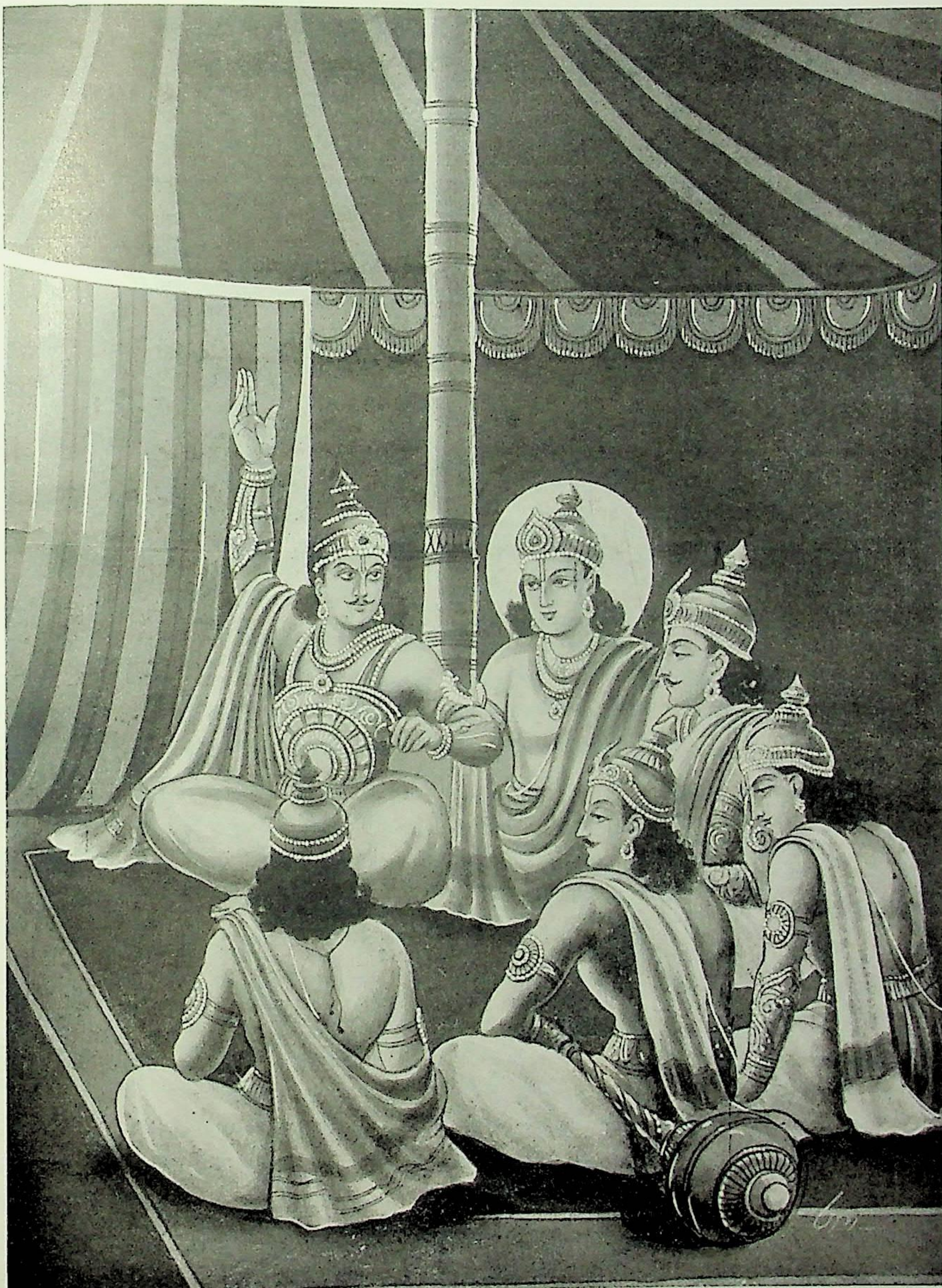
जो धृतराष्ट्रके पुत्रोंका प्रिय कर रहा है, जिसने मेरे प्रति अपना सौहार्द भुला दिया है तथा जो बालक अभिमन्यु के वधमें कारण बना है, उस पापी जयद्रथको कल अवश्य मार डालूँगा ॥ २२ ॥

रक्षमाणाश्च तं संख्ये ये मां योत्स्यन्ति केचन ।
अपि द्रोणकृपौ राजन् छादयिष्यामि ताञ्छरैः ॥ २३

राजन् ! युद्धमें जयद्रथकी रक्षा करते हुए जो कोई मेरे साथ युद्ध करेंगे, वे द्रोणाचार्य और कृपाचार्य ही क्यों न हों उन्हें अपने बाणोंके समूहसे आच्छादित कर दूँगा ॥ २३

यद्येतदेवं संग्रामे न कुर्यां पुरुषर्षभाः ।
मा स्म पुण्यकृतां लोकान् प्राप्नुयां शूरसम्मतान् ॥ २४

पुरुषश्रेष्ठ वीरो ! यदि संग्रामभूमिमें मैं ऐसा न कर सकूँ तो पुण्यात्मा पुरुषोंके उन लोकोंको, जो शूरवीरोंको प्रिय हैं, न प्राप्त करूँ ॥ २४ ॥



अर्जुनका जयद्रथवधके लिये प्रतिज्ञा करना

ये लोका मातृहन्तॄणां ये चापि पितृघातिनाम्।
गुरुदारगतानां ये पिशुनानां च ये सदा ॥ २५ ॥
साधूनसूयतां ये च ये चापि परिवादिनाम्।
ये च निक्षेपहर्तॄणां ये च विश्वासघातिनाम् ॥ २६ ॥
भुक्तपूर्वां स्त्रियं ये च विन्दतामघशंसिनाम्।
ब्रह्मघ्नानां च ये लोका ये च गोघातिनामपि ॥ २७ ॥
पायसं वा यवान्नं वा शाकं कृसरमेव वा।
संयावापूपमांसानि ये च लोका वृथाश्नताम् ॥ २८ ॥
तानह्नायाधिगच्छेयं न चेद्धन्यां जयद्रथम्।

माता-पिताकी हत्या करनेवालोंको जो लोक प्राप्त होते हैं, गुरु-पत्नीगामी और चुगलखोरोंको जिन लोकोंकी प्राप्ति होती है, साधुपुरुषोंकी निन्दा करनेवालों और दूसरोंको कलंक लगानेवालोंको जो लोक प्राप्त होते हैं, धरोहर हड़पने और विश्वासघात करनेवालोंको जिन लोकोंकी प्राप्ति होती है, दूसरेके उपभोगमें आयी हुई स्त्रीको ग्रहण करनेवाले, पापकी बातें करनेवाले, ब्रह्महत्यारे और गोघातियोंको जो लोक प्राप्त होते हैं, खीर, यवान्न, साग, खिचड़ी, हलुआ, पूआ आदिको बलिवैश्वदेव किये बिना ही खानेवाले मनुष्योंको जो लोक प्राप्त होते हैं, यदि मैं कल जयद्रथका वध न कर डालूँ तो मुझे भी तत्काल उन्हीं लोकोंको जाना पड़े ॥ २५—२८½ ॥

वेदाध्यायिनमत्यर्थं संशितं वा द्विजोत्तमम् ॥ २९ ॥
अवमन्यमानो यान् याति वृद्धान् साधून् गुरूंस्तथा।
स्पृशतो ब्राह्मणं गां च पादेनाग्निं च या भवेत् ॥ ३० ॥
याप्सु श्लेष्म पुरीषं च मूत्रं वा मुञ्चतां गतिः।
तां गच्छेयं गतिं कष्टां न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३१ ॥

वेदोंका स्वाध्याय अथवा अत्यन्त कठोर व्रतका पालन करनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणकी तथा बड़े-बूढ़ों, साधु पुरुषों और गुरुजनोंकी अवहेलना करनेवाला पुरुष जिन नरकोंमें पड़ता है, ब्राह्मण, गौ और अग्निको पैरसे छूनेवाले पुरुषकी जो गति होती है तथा जलमें थूक अथवा मल-मूत्र छोड़नेवालोंकी जो दुर्गति होती है, यदि मैं कल जयद्रथको न मारूँ तो उसी कष्टदायिनी गतिको मैं भी प्राप्त करूँ ॥ २९—३१ ॥

नग्नस्य स्नायमानस्य या च वन्ध्यातिथेर्गतिः।
उत्कोचिनां मृषोक्तीनां वञ्चकानां च या गतिः ॥ ३२ ॥
आत्मापहारिणां या च या च मिथ्याभिशंसिनाम्।
भृत्यैः संदिश्यमानानां पुत्रदाराश्रितैस्तथा ॥ ३३ ॥
असंविभज्य क्षुद्राणां या गतिर्मिष्टमश्नताम्।
तां गच्छेयं गतिं घोरां न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३४ ॥

नंगे नहानेवाले तथा अतिथिको भोजन दिये बिना ही उसे असफल लौटा देनेवाले पुरुषकी जो गति होती है; घूसखोर, असत्यवादी तथा दूसरोंके साथ वञ्चना (ठगी) करनेवालोंकी जो दुर्गति होती है; आत्माका हनन करनेवाले, दूसरोंपर झूठे दोषारोपण करनेवाले, भृत्योंकी आज्ञाके अधीन रहनेवाले तथा स्त्री, पुत्र एवं आश्रित जनोंके साथ यथायोग्य बँटवारा किये बिना ही अकेले मिष्टान्न उड़ानेवाले क्षुद्र पुरुषोंको जिस घोर नारकी गतिकी प्राप्ति होती है, यदि मैं कल जयद्रथको न मारूँ तो मुझे भी वही दुर्गति प्राप्त हो । ३२—३४ ।

संश्रितं चापि यस्त्यक्त्वा साधुं तद्वचने रतम्।
न बिभर्ति नृशंसात्मा निन्दते चोपकारिणम् ॥ ३५ ॥
अर्हते प्रातिवेश्याय श्राद्धं यो न ददाति च।
अनर्हेभ्यश्च यो दद्याद् वृषलीपतये तथा ॥ ३६ ॥
मद्यपो भिन्नमर्यादः कृतघ्नो भर्तृनिन्दकः।
तेषां गतिमियां क्षिप्रं न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३७ ॥

जो नृशंस स्वभावका मनुष्य शरणागत, साधुपुरुष तथा आज्ञापालनमें तत्पर रहनेवाले पुरुषको त्यागकर उसका भरण-पोषण नहीं करता, जो उपकारीकी निन्दा करता है, पड़ोसमें रहनेवाले योग्य व्यक्तिको श्राद्धका दान नहीं देता और अयोग्य व्यक्तियोंको तथा शूद्राके स्वामी ब्राह्मणको देता है, जो मद्य पीनेवाला, धर्म-मर्यादाको तोड़नेवाला, कृतघ्न और स्वामीकी निन्दा करनेवाला है—इन सभी लोगोंको जो दुर्गति प्राप्त होती है, उसीको मैं भी शीघ्र ही प्राप्त करूँ; यदि कल जयद्रथका वध न कर डालूँ ॥ ३५—३७ ॥

भुञ्जानानां तु सव्येन उत्सङ्गे चापि खादताम्।
पालाशमासनं चैव तिन्दुकैर्दन्तधावनम् ॥ ३८ ॥
ये चावर्जयतां लोकाः स्वपतां च तथोषसि।

जो बायें हाथसे भोजन करते हैं, गोदमें रखकर खाते हैं, जो पलासके आसनका और तेंदूकी दातुनका त्याग नहीं करते तथा उषःकालमें सोते हैं, उनको जो नरक-लोक प्राप्त होते हैं (वे ही मुझे भी मिलें; यदि मैं जयद्रथको न मार डालूँ) ॥ ३८½ ॥

शीतभीताश्च ये विप्रा रणभीताश्च क्षत्रियाः ॥ ३९ ॥
एककूपोदकग्रामे वेदध्वनिविवर्जिते।
षण्मासं तत्र वसतां तथा शास्त्रं विनिन्दताम् ॥ ४० ॥
दिवामैथुनिनां चापि दिवसेषु च शेरते।
अगारदाहिनां चैव गरदानां च ये मताः ॥ ४१ ॥
अग्न्यातिथ्यविहीनाश्च गोपानेषु च विघ्नदाः।
रजस्वलां सेवयन्तः कन्यां शुल्केन दायिनः ॥ ४२ ॥
या च वै बहुयाजिनां ब्राह्मणानां श्ववृत्तिनाम्।
आस्यमैथुनिकानां च ये दिवा मैथुने रताः ॥ ४३ ॥
ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यो वै लोभाद् ददाति न।
तेषां गतिं गमिष्यामि श्वो न हन्यां जयद्रथम् ॥ ४४ ॥

जो ब्राह्मण होकर सर्दीसे और क्षत्रिय होकर युद्धसे डरते हैं, जिस गाँवमें एक ही कुएँका जल पीया जाता हो और जहाँ कभी वेदमन्त्रोंकी ध्वनि न हुई हो, ऐसे स्थानोंमें

जो छः महीनोंतक निवास करते हैं, जो शास्त्रकी निन्दामें तत्पर रहते, दिनमें मैथुन करते और सोते हैं, जो दूसरोंके घरोंमें आग लगाते और दूसरोंको जहर दे देते हैं, जो कभी अग्निहोत्र और अतिथि-सत्कार नहीं करते तथा गायोंके पानी पीनेमें विघ्न डालते हैं, जो रजस्वला स्त्रीका सेवन करते और शुल्क लेकर कन्या देते हैं, जो बहुतोंकी पुरोहिती करते, ब्राह्मण होकर सेवा-वृत्तिसे जीविका चलाते, मुँहमें मैथुन करते अथवा दिनमें स्त्री-सहवास करते हैं, जो ब्राह्मणको कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर लोभवश नहीं देते हैं, उन सबको जिन लोकों अथवा दुर्गतिकी प्राप्ति होती है, उन्हींको मैं भी प्राप्त होऊँ; यदि कलतक जयद्रथको न मार डालूँ ॥ ३९–४४ ॥

धर्मादपेता ये चान्ये मया नात्रानुकीर्तिताः ।
ये चानुकीर्तितास्तेषां गतिं क्षिप्रमवाप्नुयाम् ॥ ४५ ॥
यदि व्युष्टामिमां रात्रिं श्वो न हन्यां जयद्रथम् ।

ऊपर जिन पापियोंका नाम मैंने गिनाया है तथा जिन दूसरे पापियोंका नाम नहीं गिनाया है, उनको जो दुर्गति प्राप्त होती है, उसीको शीघ्र ही मैं भी प्राप्त करूँ; यदि यह रात बीतनेपर कल जयद्रथको न मार डालूँ ॥ ४५½ ॥

इमां चाप्यपरां भूयः प्रतिज्ञां मे निबोधत ॥ ४६ ॥
यद्यस्मिन्नहते पापे सूर्योऽस्तमुपयास्यति ।
इहैव सम्प्रवेष्टाहं ज्वलितं जातवेदसम् ॥ ४७ ॥

अब आपलोग पुनः मेरी यह दूसरी प्रतिज्ञा भी सुन लें। यदि इस पापी जयद्रथके मारे जानेसे पहले ही सूर्यदेव अस्ताचलको पहुँच जायँगे तो मैं यहीं प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा ॥ ४६–४७ ॥

असुरसुरमनुष्याः पक्षिणो वोरगा वा
पितृरजनिचरा वा ब्रह्मदेवर्षयो वा ।
चरमचरमपीदं यत्परं चापि तस्मात्
तदपि मम रिपुं तं रक्षितुं नैव शक्ताः ॥ ४८ ॥

देवता, असुर, मनुष्य, पक्षी, नाग, पितर, निशाचर, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, यह चराचर जगत् तथा इसके परे जो कुछ है, वह—ये सब मिलकर भी मेरे शत्रु जयद्रथकी रक्षा नहीं कर सकते ॥ ४८ ॥

यदि विशति रसातलं तदग्र्यं
वियदपि देवपुरं दितेः पुरं वा ।
तदपि शरशतैरहं प्रभाते
भृशमभिमन्युरिपोः शिरोऽभिहर्ता ॥ ४९ ॥

यदि जयद्रथ पातालमें घुस जाय या उससे भी आगे बढ़ जाय अथवा आकाश, देवलोक या दैत्योंके नगरमें जाकर छिप जाय तो भी मैं कल अपने सैकड़ों बाणोंसे अभिमन्युके उस घोर शत्रुका सिर अवश्य काट लूँगा ॥ ४९ ॥

एवमुक्त्वा विचिक्षेप गाण्डीवं सव्यदक्षिणम् ।
तस्य शब्दमतिक्रम्य धनुःशब्दोऽस्पृशद् दिवम् ॥ ५० ॥

ऐसा कहकर अर्जुनने दाहिने और बायें हाथसे गाण्डीव धनुषकी टङ्कार की। उसकी ध्वनि दूसरे शब्दोंको दबाकर सम्पूर्ण आकाशमें गूँज उठी ॥ ५० ॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञाते पाञ्चजन्यं जनार्दनः ।
प्रदध्मौ तत्र संक्रुद्धो देवदत्तं च फाल्गुनः ॥ ५१ ॥

अर्जुनके इस प्रकार प्रतिज्ञा कर लेनेपर भगवान् श्रीकृष्णने भी अत्यन्त कुपित होकर पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। इधर अर्जुनने भी देवदत्त नामक शङ्खको फूँका ॥ ५१ ॥

स पाञ्चजन्योऽच्युतवक्त्रवायुना
भृशं सुपूर्णोदरनिःसृतध्वनिः ।
जगत् सपातालवियद्दिगीश्वरं
प्रकम्पयामास युगात्यये यथा ॥ ५२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके मुखकी वायुसे भीतरी भाग भर जानेके कारण अत्यन्त भयंकर ध्वनि प्रकट करनेवाले पाञ्चजन्यने आकाश, पाताल, दिशा और दिक्पालोंसहित सम्पूर्ण जगत्को कम्पित कर दिया, मानो प्रलयकाल आ गया हो ॥ ५२ ॥

ततो वादित्रघोषाश्च प्रादुरासन् सहस्रशः ।
सिंहनादश्च पाण्डूनां प्रतिज्ञाते महात्मना ॥ ५३ ॥

महामना अर्जुनने जब उक्त प्रतिज्ञा कर ली, उस समय पाण्डवोंके शिबिरमें अनेक बाजोंके हजारों शब्द और पाण्डव वीरोंका सिंहनाद भी सब ओर गूँजने लगा ॥ ५३ ॥

(*भीम उवाच*

प्रतिज्ञोद्भवशब्देन कृष्णशङ्खस्वनेन च ।
निहतो धार्तराष्ट्रोऽयं सानुबन्धः सुयोधनः ॥

भीमसेनने कहा—अर्जुन ! तुम्हारी प्रतिज्ञाके शब्दसे और भगवान् श्रीकृष्णके इस शङ्खनादसे मुझे विश्वास हो गया कि यह धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन अपने सगे-सम्बन्धियोंसहित अवश्य मारा जायगा ॥

अथ मृदिततमाग्र्यदाममाल्यं
तव सुतशोकमयं च रोषजातम् ।
व्यपनुदति महाप्रभावमेत-
न्नरवर वाक्यमिदं महार्थमिष्टम् ॥)

नरश्रेष्ठ ! तुम्हारा यह वचन महान् अर्थसे युक्त और मुझे अत्यन्त प्रिय है। यह अत्यन्त प्रभावशाली वाक्य तुम्हारे पुत्रशोकमय उस रोष-समूहका निवारण कर रहा है, जिसने तुम्हारे गलेके सुन्दर पुष्पहारको मसल डाला था ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनप्रतिज्ञायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनप्रतिज्ञाविषयक तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ५७½ श्लोक हैं)

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

जयद्रथका भय तथा दुर्योधन और द्रोणाचार्यका उसे आश्वासन देना

संजय उवाच

श्रुत्वा तु तं महाशब्दं पाण्डूनां जयगृद्धिनाम्।
चारैः प्रवेदिते तत्र समुत्थाय जयद्रथः॥ १॥
शोकसम्मूढहृदयो दुःखेनाभिपरिप्लुतः।
मज्जमान इवागाधे विपुले शोकसागरे॥ २॥
जगाम समितिं राज्ञां सैन्धवो विमृशन् बहु।
स तेषां नरदेवानां सकाशे पर्यदेवयत्॥ ३॥

संजय कहते हैं—राजन्! सिंधुराज जयद्रथने जब विजयाभिलाषी पाण्डवोंका वह महान् शब्द सुना और गुप्तचरोंने आकर जब अर्जुनकी प्रतिज्ञाका समाचार निवेदन किया, तब वह सहसा उठकर खड़ा हो गया, उसका हृदय शोकसे व्याकुल हो गया। वह दुःखसे व्याप्त हो शोकके विशाल एवं अगाध महासागरमें डूबता हुआ-सा बहुत सोच-विचारकर राजाओंकी सभामें गया और उन नरदेवोंके समीप रोने-बिलखने लगा॥ १—३॥

अभिमन्योः पितुर्भीतः सव्रीडो वाक्यमब्रवीत्।
योऽसौ पाण्डोः किल क्षेत्रे जातः शक्रेण कामिना॥ ४॥
स निनीषति दुर्बुद्धिर्मां किलैकं यमक्षयम्।
तत् स्वस्ति वोऽस्तु यास्यामि स्वगृहं जीवितेप्सया॥ ५॥

जयद्रथ अभिमन्युके पितासे बहुत डर गया था, इसलिये लज्जित होकर बोला—'राजाओ! कामी इन्द्रने पाण्डुकी पत्नीके गर्भसे जिसको जन्म दिया है, वह दुर्बुद्धि अर्जुन केवल मुझको ही यमलोक भेजना चाहता है; यह बात सुननेमें आयी है। अतः आपलोगोंका कल्याण हो। अब मैं अपने प्राण बचानेकी इच्छासे अपनी राजधानीको चला जाऊँगा॥ ४-५॥

अथवास्त्रप्रतिबलास्त्रात मां क्षत्रियर्षभाः।
पार्थेन प्रार्थितं वीरास्ते संदत्त ममाभयम्॥ ६॥

'अथवा क्षत्रियशिरोमणि वीरो! आपलोग अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञानमें अर्जुनके समान ही शक्तिशाली हैं। उधर अर्जुनने मेरे प्राण लेनेकी प्रतिज्ञा की है। इस अवस्थामें आप मेरी रक्षा करें और मुझे अभयदान दें॥ ६॥

द्रोणदुर्योधनकृपाः कर्णमद्रेशबाह्लिकाः।
दुःशासनादयः शक्तास्त्रातुं मामन्तकार्दितम्॥ ७॥
किमङ्ग पुनरेकेन फाल्गुनेन जिघांसता।
न त्रायेयुर्भवन्तो मां समस्ताः पतयः क्षितेः॥ ८॥

'द्रोणाचार्य, दुर्योधन, कृपाचार्य, कर्ण, मद्रराज शल्य, बाह्लिक तथा दुःशासन आदि वीर मुझे यमराजके संकटसे भी बचानेमें समर्थ हैं। प्रिय नरेशगण! फिर जब अकेला अर्जुन ही मुझे मारनेकी इच्छा रखता है तो उसके हाथसे आप समस्त भूपतिगण मेरी रक्षा क्यों नहीं कर सकते हैं॥ ७-८॥

प्रहर्षं पाण्डवेयानां श्रुत्वा मम महद् भयम्।
सीदन्ति मम गात्राणि मुमूर्षोरिव पार्थिवाः॥ ९॥

'राजाओ! पाण्डवोंका हर्षनाद सुनकर मुझे महान् भय हो रहा है। मरणासन्न मनुष्यकी भाँति मेरे सारे अङ्ग शिथिल होते जा रहे हैं॥ ९॥

वधो नूनं प्रतिज्ञातो मम गाण्डीवधन्वना।
तथा हि हृष्टाः क्रोशन्ति शोककाले स्म पाण्डवाः॥ १०॥

'निश्चय ही गाण्डीवधारी अर्जुनने मेरे वधकी प्रतिज्ञा कर ली है, तभी शोकके समय भी पाण्डव योद्धा बड़े हर्षके साथ गर्जना करते हैं॥ १०॥

तन्न देवा न गन्धर्वा नासुरोरगराक्षसाः।
उत्सहन्तेऽन्यथाकर्तुं कुत एव नराधिपाः॥ ११॥

'उस प्रतिज्ञाको देवता, गन्धर्व, असुर, नाग तथा राक्षस भी पलट नहीं सकते हैं। फिर ये नरेश उसे भङ्ग करनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं?॥ ११॥

तस्मान्मामनुजानीत भद्रं वोऽस्तु नरर्षभाः।
अदर्शनं गमिष्यामि न मां द्रक्ष्यन्ति पाण्डवाः॥ १२॥

'अतः नरश्रेष्ठ वीरो! आपका कल्याण हो। आपलोग मुझे जानेकी आज्ञा दें। मैं अदृश्य हो जाऊँगा। पाण्डव मुझे नहीं देख सकेंगे'॥ १२॥

एवं विलपमानं तं भयाद् व्याकुलचेतसम्।
आत्मकार्यगरीयस्त्वाद् राजा दुर्योधनोऽब्रवीत्॥ १३॥

भयसे व्याकुलचित्त होकर विलाप करते हुए जयद्रथसे राजा दुर्योधनने अपने कार्यकी गुरुताका विचार करके इस प्रकार कहा—॥ १३॥



न भेतव्यं नरव्याघ्र को हि त्वां पुरुषर्षभ।
मध्ये क्षत्रियवीराणां तिष्ठन्तं प्रार्थयेद् युधि॥ १४॥

'पुरुषसिंह! नरश्रेष्ठ! तुम्हें भय नहीं करना चाहिये।

युद्धस्थलमें इन क्षत्रिय वीरोंके बीचमें खड़े रहनेपर कौन तुम्हें मारनेकी इच्छा कर सकता है ? ॥ १४ ॥

अहं वैकर्तनः कर्णश्चित्रसेनो विविंशतिः ।
भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृषसेनो दुरासदः ॥ १५ ॥
पुरुमित्रो जयो भोजः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
सत्यव्रतो महाबाहुर्विकर्णो दुर्मुखश्च ह ॥ १६ ॥
दुःशासनः सुबाहुश्च कालिङ्गश्चाप्युदायुधः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ द्रोणो द्रौणिश्च सौबलः॥१७॥
एते चान्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः ।
ससैन्यास्त्वाभियास्यन्ति व्येतु ते मानसो ज्वरः॥१८॥

'मैं, सूर्यपुत्र कर्ण, चित्रसेन, विविंशति, भूरिश्रवा, शल, शल्य, दुर्धर्ष वीर वृषसेन, पुरुमित्र, जय, भोज, काम्बोजराज सुदक्षिण, सत्यव्रत, महाबाहु विकर्ण, दुर्मुख, दुःशासन, सुबाहु, अस्त्र-शस्त्रधारी कलिंगराज, अवन्तीके दोनों राजकुमार विन्द और अनुविन्द, द्रोण, अश्वत्थामा और शकुनि—ये तथा और भी बहुत-से नरेश जो विभिन्न देशोंके अधिपति हैं, अपनी सेनाके साथ तुम्हारी रक्षाके लिये चलेंगे । अतः तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये ॥ १५–१८ ॥

त्वं चापि रथिनां श्रेष्ठः स्वयं शूरोऽमितद्युते ।
स कथं पाण्डवेयेभ्यो भयं पश्यसि सैन्धव ॥ १९ ॥

'अमित तेजस्वी सिंधुराज ! तुम स्वयं भी तो रथियोंमें श्रेष्ठ शूरवीर हो, फिर पाण्डुके पुत्रोंसे अपने लिये भय क्यों देख रहे हो ? ॥ १९ ॥

अक्षौहिण्यो दशैका च मदीयास्तव रक्षणे ।
यत्ता योत्स्यन्ति मा भैस्त्वं सैन्धव व्येतु ते भयम्॥२०॥

'मेरी ग्यारह[1] अक्षौहिणी सेनाएँ तुम्हारी रक्षाके लिये उद्यत होकर युद्ध करेंगी; अतः सिंधुराज ! तुम भय मत मानो । तुम्हारा भय निकल जाना चाहिये' ॥ २० ॥

संजय उवाच

एवमाश्वासितो राजन् पुत्रेण तव सैन्धवः ।
दुर्योधनेन सहितो द्रोणं रात्रावुपागमत् ॥ २१ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार आपके पुत्र दुर्योधनके आश्वासन देनेपर जयद्रथ उसके साथ रात्रिके समय द्रोणाचार्यके पास गया ॥ २१ ॥

उपसंग्रहणं कृत्वा द्रोणाय स विशाम्पते ।
उपोपविश्य प्रणतः पर्यपृच्छदिदं तदा ॥ २२ ॥

महाराज ! उस समय उसने द्रोणाचार्यके चरण छूकर विधिपूर्वक प्रणाम किया और पास बैठकर प्रणतभावसे इस प्रकार पूछा—॥ २२ ॥

निमित्ते दूरपातित्वे लघुत्वे दृढवेधने ।
मम ब्रवीतु भगवान् विशेषं फाल्गुनस्य च ॥ २३ ॥

'दूरतक बाण चलानेमें, लक्ष्य वेधनेमें, हाथकी फुर्ती तथा अचूक निशाना मारनेमें मुझमें और अर्जुनमें कितना अन्तर है, यह पूज्य गुरुदेव मुझे बतावें ॥ २३ ॥

विद्याविशेषमिच्छामि ज्ञातुमाचार्य तत्त्वतः ।
अर्जुनस्यात्मनश्चैव याथातथ्यं प्रचक्ष्व मे ॥ २४ ॥

'आचार्य ! मैं अर्जुनकी और अपनी विद्याविषयक विशेषताको ठीक-ठीक जानना चाहता हूँ । आप मुझे यथार्थ बात बताइये' ॥ २४ ॥

द्रोण उवाच

सममाचार्यकं तात तव चैवार्जुनस्य च ।
योगाद् दुःखोषितत्वाच्च तस्मात् त्वत्तोऽधिकोऽर्जुनः॥२५॥

द्रोणाचार्यने कहा—तात ! यद्यपि तुम्हारा और अर्जुनका आचार्यत्व मैंने समानरूपसे ही किया है, तथापि सम्पूर्ण दिव्यास्त्रोंकी प्राप्ति एवं अभ्यास और क्लेशसहनकी दृष्टिसे अर्जुन तुमसे बढ़े-चढ़े हैं ॥ २५ ॥

न तु ते युधि संत्रासः कार्यः पार्थात् कथञ्चन ।
अहं हि रक्षिता तात भयात् त्वां नात्र संशयः ॥ २६ ॥
न हि मद्बाहुगुप्तस्य प्रभवन्त्यमरा अपि ।
व्यूहयिष्यामि तं व्यूहं यं पार्थो न तरिष्यति ॥ २७ ॥

वत्स ! तो भी तुम्हें युद्धमें किसी प्रकार भी अर्जुनसे डरना नहीं चाहिये; क्योंकि मैं उनके भयसे तुम्हारी रक्षा करनेवाला हूँ—इसमें संशय नहीं है । मेरी भुजाएँ जिसकी रक्षा करती हों, उसपर देवताओंका भी जोर नहीं चल सकता । मैं ऐसा व्यूह बनाऊँगा, जिसे अर्जुन पार नहीं कर सकेंगे ॥ २६-२७ ॥

तस्माद् युद्ध्यस्व मा भैस्त्वं स्वधर्ममनुपालय ।
पितृपैतामहं मार्गमनुयाहि महारथ ॥ २८ ॥

इसलिये तुम डरो मत । उत्साहपूर्वक युद्ध करो और अपने क्षत्रिय-धर्मका पालन करो । महारथी वीर ! अपने बाप-दादोंके मार्गपर चलो ॥ २८ ॥

अधीत्य विधिवद् वेदानग्नयः सुहुतास्त्वया ।
इष्टं च बहुभिर्यज्ञैर्न ते मृत्युर्भयङ्करः ॥ २९ ॥

तुमने वेदोंका विधिपूर्वक अध्ययन करके भलीभाँति अग्निहोत्र किया है । बहुत-से यज्ञोंका अनुष्ठान भी कर लिया है । तुम्हें तो मृत्युका भय करना ही नहीं चाहिये ॥ २९ ॥

दुर्लभं मानुषैर्मन्दैर्महाभाग्यमवाप्य तु ।
भुजवीर्यार्जिताँल्लोकान् दिव्यान् प्राप्स्यस्यनुत्तमान् ॥

जो मन्दभागी मनुष्योंके लिये दुर्लभ है, रणक्षेत्रमें मृत्युरूप उस परम सौभाग्यको पाकर तुम अपने बाहुबलसे

१. यद्यपि अब दुर्योधनके पास पूरी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ नहीं रह गयी थीं; तथापि ग्यारह भागोंमें विभक्त उन सेनाओंमेंसे जो लोग शेष बचे थे, उन्हींको लेकर यहाँ 'ग्यारह अक्षौहिणी' का उल्लेख किया गया है ।

जीते हुए परम उत्तम दिव्य लोकोंमें पहुँच जाओगे ॥ ३० ॥

कुरवः पाण्डवाश्चैव वृष्णयोऽन्ये च मानवाः ।
अहं च सह पुत्रेण अध्रुवा इति चिन्त्यताम् ॥ ३१ ॥

कौरव-पाण्डव, वृष्णिवंशी योद्धा, अन्य मनुष्य तथा पुत्रसहित मैं—ये सभी अस्थिर (नाशवान्) हैं—ऐसा चिन्तन करो ॥ ३१ ॥

पर्यायेण वयं सर्वे कालेन बलिना हताः ।
परलोकं गमिष्यामः स्वैः स्वैः कर्मभिरन्विताः ॥ ३२ ॥

बारी-बारीसे हम सभी लोग बलवान् कालके हाथों मारे जाकर अपने-अपने शुभाशुभ कर्मोंके साथ परलोकमें चले जायँगे ॥ ३२ ॥

तपस्तप्त्वा तु याँल्लोकान् प्राप्नुवन्ति तपस्विनः ।
क्षत्रधर्माश्रिता वीराः क्षत्रियाः प्राप्नुवन्ति तान् ॥ ३३ ॥

तपस्वीलोग तपस्या करके जिन लोकोंको पाते हैं, क्षत्रिय-धर्मका आश्रय लेनेवाले वीर क्षत्रिय उन्हें अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३३ ॥

एवमाश्वासितो राजा भारद्वाजेन सैन्धवः ।
अपानुदद् भयं पार्थाद् युद्धाय च मनो दधे ॥ ३४ ॥

द्रोणाचार्यके इस प्रकार आश्वासन देनेपर राजा जयद्रथने अर्जुनका भय छोड़ दिया और युद्ध करनेका विचार किया ॥

ततः प्रहर्षः सैन्यानां तवाप्यासीद् विशाम्पते ।
वादित्राणां ध्वनिश्चोग्रः सिंहनादरवैः सह ॥ ३५ ॥

महाराज ! तदनन्तर आपकी सेनामें भी हर्षध्वनि होने लगी, सिंहनादके साथ-साथ रणवाद्योंकी भयंकर ध्वनि गूँज उठी ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि जयद्रथाश्वासे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें जयद्रथको आश्वासनविषयक चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अर्जुनको कौरवोंके जयद्रथकी रक्षाविषयक उद्योगका समाचार बताना

संजय उवाच

प्रतिज्ञाते तु पार्थेन सिन्धुराजवधे तदा ।
वासुदेवो महाबाहुर्धनंजयमभाषत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब अर्जुनने सिंधुराज जयद्रथके वधकी प्रतिज्ञा कर ली, उस समय महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—॥ १ ॥

भ्रातॄणां मतमज्ञाय त्वया वाचा प्रतिश्रुतम् ।
सैन्धवं चास्मि हन्तेति तत्साहसमिदं कृतम् ॥ २ ॥

'धनंजय ! तुमने अपने भाइयोंका मत जाने बिना ही जो वाणीद्वारा यह प्रतिज्ञा कर ली कि मैं सिंधुराज जयद्रथको मार डालूँगा, यह तुमने दुःसाहसपूर्ण कार्य किया है ॥ २ ॥

असम्मन्त्र्य मया सार्धमतिभारोऽयमुद्यतः ।
कथं तु सर्वलोकस्य नावहास्या भवेमहि ॥ ३ ॥

'मेरे साथ सलाह किये बिना ही तुमने यह बड़ा भारी भार उठा लिया । ऐसी दशामें हम सम्पूर्ण लोकोंके उपहास-पात्र कैसे नहीं बनेंगे ! ॥ ३ ॥

धार्तराष्ट्रस्य शिबिरे मया प्रणिहिताश्चराः ।
त इमे शीघ्रमागम्य प्रवृत्तिं वेदयन्ति नः ॥ ४ ॥

'मैंने दुर्योधनके शिविरमें अपने गुप्तचर भेजे थे । वे शीघ्र ही वहाँसे लौटकर अभी-अभी वहाँका समाचार मुझे बता गये हैं ॥ ४ ॥

त्वया वै सम्प्रतिज्ञाते सिन्धुराजवधे प्रभो ।
सिंहनादः सवादित्रः सुमहानिह तैः श्रुतः ॥ ५ ॥

'शक्तिशाली अर्जुन ! जब तुमने सिंधुराजके वधकी प्रतिज्ञा की थी, उस समय यहाँ रणवाद्योंके साथ-साथ महान् सिंहनाद किया गया था, जिसे कौरवोंने सुना था ॥ ५ ॥

तेन शब्देन वित्रस्ता धार्तराष्ट्राः ससैन्धवाः ।
नाकस्मात् सिंहनादोऽयमिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥ ६ ॥

'उस शब्दसे जयद्रथसहित सभी धृतराष्ट्रपुत्र संत्रस्त हो उठे । वे यह सोचकर कि यह सिंहनाद अकारण नहीं हुआ है, सावधान हो गये ॥ ६ ॥

सुमहाञ्शब्दसम्पातः कौरवाणां महाभुज ।
आसीन्नागाश्वपत्तीनां रथघोषश्च भैरवः ॥ ७ ॥

'महाबाहो ! फिर तो कौरवोंके दलमें भी बड़े जोरका कोलाहल मच गया । हाथी, घोड़े, पैदल तथा रथ-सेनाओं-का भयंकर घोष सब ओर गूँजने लगा ॥ ७ ॥

अभिमन्योर्वधं श्रुत्वा ध्रुवमार्तो धनंजयः ।
रात्रौ निर्यास्यति क्रोधादिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥ ८ ॥

'वे यह समझकर युद्धके लिये उद्यत हो गये कि अभिमन्यु-के वधका वृत्तान्त सुनकर अर्जुनको अवश्य ही महान् कष्ट हुआ होगा; अतः वे क्रोध करके रातमें ही युद्धके लिये निकल पड़ेंगे ॥ ८ ॥

तैर्यतद्भिरियं सत्या श्रुता सत्यवतस्तव ।
प्रतिज्ञा सिन्धुराजस्य वधे राजीवलोचन ॥ ९ ॥

'कमलनयन ! युद्धके लिये तैयार होते-होते उन कौरवोंने सदा सत्य बोलनेवाले तुम्हारी जयद्रथ-वधविषयक वह सच्ची प्रतिज्ञा सुनी ॥ ९ ॥

ततो विमनसः सर्वे त्रस्ताः क्षुद्रमृगा इव ।
आसन् सुयोधनामात्याः स च राजा जयद्रथः ॥ १० ॥

'फिर तो दुर्योधनके मन्त्री और स्वयं राजा जयद्रथ—ये सब-के-सब (सिंहसे डरे हुए) क्षुद्र मृगोंके समान भयभीत और उदास हो गये ॥ १० ॥

अथोत्थाय सहामात्यैर्दीनः शिबिरमात्मनः ।
आयात् सौवीरसिन्धूनामीश्वरो भृशदुःखितः ॥ ११ ॥

'तदनन्तर सिंधुसौवीरदेशका स्वामी जयद्रथ अत्यन्त दुखी और दीन हो मन्त्रियोंसहित उठकर अपने शिविर-में आया ॥ ११ ॥

स मन्त्रकाले सम्मन्त्र्य सर्वां नैःश्रेयसीं क्रियाम् ।
सुयोधनमिदं वाक्यमब्रवीद् राजसंसदि ॥ १२ ॥

'उसने मन्त्रणाके समय अपने लिये श्रेयस्कर सिद्ध होनेवाले समस्त कार्योंके सम्बन्धमें मन्त्रियोंसे परामर्श करके राजसभामें आकर दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥ १२ ॥

मामसौ पुत्रहन्तेति श्वोऽभियाता धनंजयः ।
प्रतिज्ञातो हि सेनाया मध्ये तेन वधो मम ॥ १३ ॥

'राजन् ! मुझे अपने पुत्रका घातक समझकर अर्जुन कल सबेरे मुझपर आक्रमण करनेवाला है; क्योंकि उसने अपनी सेनाके बीचमें मेरे वधकी प्रतिज्ञा की है ॥ १३ ॥

तां न देवा न गन्धर्वा नासुरोरगराक्षसाः ।
उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुं प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ १४ ॥

'सव्यसाची अर्जुनकी उस प्रतिज्ञाको देवता, गन्धर्व, असुर, नाग और राक्षस भी अन्यथा नहीं कर सकते ॥ १४ ॥

ते मां रक्षत संग्रामे मा वो मूर्ध्नि धनंजयः ।
पदं कृत्वाऽऽप्नुयाल्लक्ष्यं तस्मादत्र विधीयताम् ॥ १५ ॥

'अतः आपलोग संग्राममें मेरी रक्षा करें । कहीं ऐसा न हो कि अर्जुन आपलोगोंके सिरपर पैर रखकर अपने लक्ष्यतक पहुँच जाय; अतः इसके लिये आप आवश्यक व्यवस्था करें ॥ १५ ॥

अथ रक्षा न मे संख्ये क्रियते कुरुनन्दन ।
अनुजानीहि मां राजन् गमिष्यामि गृहान् प्रति ॥ १६ ॥

'कुरुनन्दन ! यदि आप युद्धमें मेरी रक्षा न कर सकें तो मुझे आज्ञा दें; राजन् ! मैं अपने घर चला जाऊँगा' ॥१६॥

एवमुक्तस्त्ववाक्शीर्षो विमनाः स सुयोधनः ।
श्रुत्वा तं समयं तस्य ध्यानमेवान्वपद्यत ॥ १७ ॥

'जयद्रथके ऐसा कहनेपर दुर्योधन अपना सिर नीचे किये मन-ही-मन बहुत दुखी हो गया और तुम्हारी उस प्रतिज्ञाको सुनकर उसे बड़ी भारी चिन्ता हो गयी ॥ १७ ॥

तमार्तमभिसंप्रेक्ष्य राजा किल स सैन्धवः ।
मृदु चाव्यहितं चैव साक्षेपमिदमुक्तवान् ॥ १८ ॥

'दुर्योधनको उद्विग्नचित्त देखकर सिन्धुराज जयद्र[थ]
व्यंग्य करते हुए कोमल वाणीमें अपने हितकी बात
प्रकार कही—॥ १८ ॥

नेह पश्यामि भवतां तथावीर्यं धनुर्धरम् ।
योऽर्जुनस्यास्त्रमस्त्रेण प्रतिहन्यान्महाहवे ॥ १९

'राजन् ! आपकी सेनामें किसी भी ऐसे पराक्रमी धनु[र्धर]को नहीं देखता, जो उस महायुद्धमें अपने अस्त्रद्वारा अर्जुनके अस्त्रका निवारण कर सके ॥ १९ ॥

वासुदेवसहायस्य गाण्डीवं धुन्वतो धनुः ।
कोऽर्जुनस्याग्रतस्तिष्ठेत् साक्षादपि शतक्रतुः ॥ २०

'श्रीकृष्णके साथ आकर गाण्डीव धनुषका संचालन करते हुए अर्जुनके सामने कौन खड़ा हो सकता है ? साक्षात् इन्द्र भी तो उसका सामना नहीं कर सकते ॥ २० ॥

महेश्वरोऽपि पार्थेन श्रूयते योधितः पुरा ।
पदातिना महावीर्यो गिरौ हिमवति प्रभुः ॥ २

'मैंने सुना है कि पूर्वकालमें हिमालयपर्वतपर अर्जुनने महापराक्रमी भगवान् महेश्वरके साथ भी युद्ध किया

दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ।
जघानैकरथेनैव देवराजप्रचोदितः ॥ २

'देवराज इन्द्रकी आज्ञा पाकर उसने एकमात्र र[थकी] सहायतासे हिरण्यपुरवासी सहस्रों दानवोंका संहार कर डाला

समायुक्तो हि कौन्तेयो वासुदेवेन धीमता ।
सामरानपि लोकांस्त्रीन् हन्यादिति मतिर्मम ॥ २३

'मेरा तो ऐसा विश्वास है कि परम बुद्धिमान् वसु[देव]नन्दन श्रीकृष्णके साथ रहकर कुन्तीकुमार अर्जुन देवता[ओं]सहित तीनों लोकोंको नष्ट कर सकता है ॥ २३ ॥

सोऽहमिच्छाम्यनुज्ञातं रक्षितुं वा महात्मना ।
द्रोणेन सहपुत्रेण वीरेण यदि मन्यसे ॥ २४

'इसलिये मैं यहाँसे चले जानेकी अनुमति चाहता हूँ अथवा यदि आप ठीक समझें तो पुत्रसहित वीर महा[त्मा] द्रोणाचार्यके द्वारा मैं अपनी रक्षाका आश्वासन चाहता हूँ' ॥ २

स राज्ञा स्वयमाचार्यो भृशमत्रार्थितोऽर्जुन ।
संविधानं च विहितं रथाश्च किल सज्जिताः ॥ २५

'अर्जुन ! तब राजा दुर्योधनने स्वयं ही आचार्य द्रो[ण]से जयद्रथकी रक्षाके लिये बड़ी प्रार्थना की है । अतः उ[सकी] रक्षाका पूरा प्रबन्ध कर लिया गया है तथा रथ भी [सजा] दिये गये हैं ॥ २५ ॥

कर्णो भूरिश्रवा द्रौणिर्वृषसेनश्च दुर्जयः ।
कृपश्च मद्रराजश्च षडेतेऽस्य पुरोगमाः ॥ २६

'कलके युद्धमें कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, दुर्जय वृषसेन, कृपाचार्य और मद्रराज शल्य ये—छः महा[रथी] उसके आगे रहेंगे ॥ २६ ॥

शकटः पद्मकश्चार्धो व्यूहो द्रोणेन निर्मितः।
पद्मकर्णिकमध्यस्थः सूचीपार्श्वे जयद्रथः ॥ २७ ॥
स्थास्यते रक्षितो वीरैः सिंधुराट् स सुदुर्मदः।

'द्रोणाचार्यने ऐसा व्यूह बनाया है, जिसका अगला आधा भाग शकटके आकारका है और पिछला कमलके समान। कमलव्यूहके मध्यकी कर्णिकाके बीच सूचीव्यूहके पार्श्व भागमें युद्धदुर्मद सिन्धुराज जयद्रथ खड़ा होगा और अन्यान्य वीर उसकी रक्षा करते रहेंगे ॥ २७½ ॥

धनुष्यस्त्रे च वीर्ये च प्राणे चैव तथौरसे ॥ २८ ॥
अविषह्यतमा ह्येते निश्चिताः पार्थ षड् रथाः।
एतानजित्वा षड् रथान् नैव प्राप्यो जयद्रथः ॥२९ ॥

'पार्थ ! ये पूर्व निश्चित छः महारथी धनुष, बाण, पराक्रम, प्राणशक्ति तथा मनोबलमें अत्यन्त असह्य माने गये हैं। इन छः महारथियोंको जीते बिना जयद्रथको प्राप्त करना असम्भव है ॥ २८-२९ ॥

तेषामेकैकशो वीर्यं षण्णां त्वमनुचिन्तय।
सहिता हि नरव्याघ्र न शक्या जेतुमञ्जसा ॥ ३० ॥

'पुरुषसिंह ! पहले तुम इन छः महारथियोंमें एक-एकके बल-पराक्रमका विचार करो। फिर जब ये छः एक साथ होंगे, उस समय इन्हें सुगमतासे नहीं जीता जा सकता।३०।

भूयस्तु मन्त्रयिष्यामि नीतिमात्महिताय वै।
मन्त्रज्ञैः सचिवैः सार्धं सुहृद्भिः कार्यसिद्धये ॥ ३१ ॥

'अब मैं पुनः अपने हितका ध्यान रखते हुए कार्यकी सिद्धिके लिये मन्त्रज्ञ मन्त्रियों और हितैषी सुहृदोंके साथ सलाह करूँगा'॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णवाक्ये पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

अर्जुनके वीरोचित वचन

अर्जुन उवाच

षड् रथान् धार्तराष्ट्रस्य मन्यसे यान् बलाधिकान्।
तेषां वीर्यं ममार्धेन न तुल्यमिति मे मतिः ॥ १ ॥
अस्त्रमस्त्रेण सर्वेषामेतेषां मधुसूदन।
मया द्रक्ष्यसि निर्भिन्नं जयद्रथवधैषिणा ॥ २ ॥

अर्जुन बोले—मधुसूदन ! दुर्योधनके जिन छः महारथियोंको आप बलमें अधिक मानते हैं, उनका पराक्रम मेरे आधेके बराबर भी नहीं है, ऐसा मेरा विश्वास है। जयद्रथके वधकी इच्छासे मेरे युद्ध करते समय आप देखेंगे कि मैंने इन सबके अस्त्रोंको अपने अस्त्रसे काट गिराया है ॥ १-२ ॥

द्रोणस्य मिषतश्चाहं सगणस्य विलप्यतः।
मूर्धानं सिन्धुराजस्य पातयिष्यामि भूतले ॥ ३ ॥

मैं द्रोणाचार्यके देखते-देखते अपने सैनिकोंसहित विलाप करते हुए सिन्धुराज जयद्रथका मस्तक पृथ्वीपर गिरा दूँगा॥३॥

यदि साध्याश्च रुद्राश्च वसवश्च सहाश्विनः।
मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वेदेवाः सहेश्वराः ॥ ४ ॥
पितरः सहगन्धर्वाः सुपर्णाः सागराद्रयः।
द्यौर्वियत् पृथिवी चेयं दिशश्च सदिगीश्वराः ॥ ५ ॥
ग्रामारण्यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
त्रातारः सिन्धुराजस्य भवन्ति मधुसूदन ॥ ६ ॥
तथापि बाणैर्निहतं श्वो द्रष्टासि रणे मया।
सत्येन च शपे कृष्ण तथैवायुधमालभे ॥ ७ ॥

मधुसूदन श्रीकृष्ण ! यदि साध्य, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार, इन्द्रसहित मरुद्गण, विश्वेदेव, देवेश्वरगण, पितर, गन्धर्व, गरुड़, समुद्र, पर्वत, स्वर्ग, आकाश, यह पृथ्वी, दिशाएँ, दिक्पाल, गाँवों तथा जंगलोंमें निवास करनेवाले प्राणी और सम्पूर्ण चराचर जीव भी सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षाके लिये उद्यत हो जायँ तो भी मैं सत्यकी शपथ खाकर और अपना धनुष छूकर कहता हूँ कि कल युद्धमें आप मेरे बाणोंद्वारा जयद्रथको मारा गया देखेंगे ॥ ४–७ ॥

यस्तु गोप्ता महेष्वासस्तस्य पापस्य दुर्मतेः।
तमेव प्रथमं द्रोणमभियास्यामि केशव ॥ ८ ॥

केशव ! उस दुर्बुद्धि पापी जयद्रथकी रक्षाका बीड़ा उठाये हुए जो महाधनुर्धर आचार्य द्रोण हैं, पहले उन्हींपर आक्रमण करूँगा ॥ ८ ॥

तस्मिन् द्यूतमिदं बद्धं मन्यते स सुयोधनः।
तस्मात् तस्यैव सेनाग्रं भित्त्वा यास्यामि सैन्धवम् ॥९॥

दुर्योधन आचार्यपर ही इस युद्धरूपी द्यूतको आबद्ध (अवलम्बित) मानता है; अतः उसीकी सेनाके अग्रभागका भेदन करके मैं सिन्धुराजके पास जाऊँगा ॥ ९ ॥

द्रष्टासि श्वो महेष्वासान् नाराचैस्तिग्मतेजितैः।
शृङ्गाणीव गिरेर्वज्रैर्दार्यमाणान् मया युधि ॥ १० ॥

जैसे इन्द्र अपने वज्रद्वारा पर्वतोंके शिखरोंको विदीर्ण कर देते हैं, उसी प्रकार कल युद्धमें मैं अच्छी तरह तेज किये हुए नाराचोंद्वारा बड़े-बड़े धनुर्धरोंको चीर डालूँगा; यह आप देखेंगे ॥ १० ॥

नरनागाश्वदेहेभ्यो विस्रविष्यति शोणितम्।

पतद्भ्यः पतितेभ्यश्च विभिन्नेभ्यः शितैः शरैः ॥ ११ ॥

मेरे तीखे बाणोंद्वारा विदीर्ण होकर गिरते और गिरे हुए मनुष्य, हाथी और घोड़ोंके शरीरोंसे खूनकी धारा बह चलेगी ॥ ११ ॥

गाण्डीवप्रेषिता बाणा मनोऽनिलसमा जवे।
नृनागाश्वान् विदेहासून् कर्तारश्च सहस्रशः ॥ १२ ॥

गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाण मन और वायुके समान वेगशाली होते हैं। वे शत्रुओंके सहस्रों हाथी-घोड़े और मनुष्योंको शरीर और प्राणोंसे शून्य कर देंगे ॥ १२ ॥

यमात् कुबेराद् वरुणादिन्द्राद् रुद्राच्च यन्मया।
उपात्तमस्त्रं घोरं तद् द्रष्टारोऽत्र नरा युधि ॥ १३ ॥

यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र तथा रुद्रसे मैंने जो भयंकर अस्त्र प्राप्त किये हैं, उन्हें कलके युद्धमें सब लोग देखेंगे ॥ १३ ॥

ब्राह्मेणास्त्रेण चास्त्राणि हन्यमानानि संयुगे।
मया द्रष्टासि सर्वेषां सैन्धवस्याभिरक्षिणाम् ॥ १४ ॥

जयद्रथके समस्त रक्षकोंद्वारा छोड़े हुए अस्त्रोंको मैं युद्धमें ब्रह्मास्त्रद्वारा काट डालूँगा, यह आप देखेंगे ॥ १४ ॥

शरवेगसमुत्कृत्तै राज्ञां केशव मूर्धभिः।
आस्तीर्यमाणां पृथिवीं द्रष्टासि श्वो मया युधि ॥ १५ ॥

केशव! कलके युद्धमें आप देखेंगे कि इस पृथ्वीपर मेरे बाणोंके वेगसे कटे हुए राजाओंके मस्तक बिछ गये हैं। १५।

क्रव्यादांस्तर्पयिष्यामि द्रावयिष्यामि शात्रवान्।
सुहृदो नन्दयिष्यामि प्रमथिष्यामि सैन्धवम् ॥ १६ ॥

कल मैं मांसभोजी प्राणियोंको तृप्त कर दूँगा, शत्रुसैनिकोंको मार भगाऊँगा, सुहृदोंको आनन्द प्रदान करूँगा और सिन्धुराज जयद्रथको मथ डालूँगा ॥ १६ ॥

बह्वागस्कृत् कुसम्बन्धी पापदेशसमुद्भवः।
मया सैन्धवको राजा हतः स्वान् शोचयिष्यति ॥ १७ ॥

सिन्धुराज जयद्रथ पापपूर्ण प्रदेशमें उत्पन्न हुआ है। उसने बहुत-से अपराध किये हैं। वह एक दुष्ट सम्बन्धी है। अतः कल मेरेद्वारा मारा जाकर अपने सुजनोंको शोकमें निमग्न कर देगा ॥ १७ ॥

सर्वक्षीरान्नभोक्तारं पापाचारं रणाजिरे।
मया सराजकं बाणैर्भिन्नं द्रक्ष्यसि सैन्धवम् ॥ १८ ॥

सदा सब प्रकारसे दूध-भात खानेवाले पापाचारी जयद्रथको रणाङ्गणमें आप राजाओंसहित मेरे बाणोंद्वारा विदीर्ण हुआ देखेंगे ॥ १८ ॥

तथा प्रभाते कर्तास्मि यथा कृष्ण सुयोधनः।
नान्यं धनुर्धरं लोके मंस्यते मत्समं युधि ॥ १९ ॥

श्रीकृष्ण! मैं कल सबेरे ऐसा युद्ध करूँगा, जिससे दुर्योधन रणक्षेत्रके भीतर संसारके दूसरे किसी धनुर्धरको समान नहीं मानेगा ॥ १९ ॥

गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं योद्धा चाहं नरर्षभ।
त्वं च यन्ता हृषीकेश किं नु स्यादजितं मया ॥ २०

नरश्रेष्ठ हृषीकेश! जहाँ गाण्डीव-जैसा दिव्य धनुष है, मैं योद्धा हूँ और आप सारथि हैं, वहाँ मैं किसको न जीत सकता? ॥ २० ॥

तव प्रसादाद् भगवन् किमिवास्ति रणे मम।
अविषह्यं हृषीकेश किं जानन् मां विगर्हसे ॥ २१

भगवन्! आपकी कृपासे इस युद्धस्थलमें कौन सी शक्ति है, जो मेरे लिये असह्य हो। हृषीकेश! आप जानते हुए भी क्यों मेरी निन्दा करते हैं? ॥ २१ ॥

यथा लक्ष्म स्थिरं चन्द्रे समुद्रे च यथा जलम्।
एवमेतां प्रतिज्ञां मे सत्यां विद्धि जनार्दन ॥ २२

जनार्दन! जैसे चन्द्रमामें काला चिह्न स्थिर है, समुद्रमें जलकी सत्ता सुनिश्चित है, उसी प्रकार आप इस प्रतिज्ञाको भी सत्य समझें ॥ २२ ॥

मावमंस्था ममास्त्राणि मावमंस्था धनुर्दृढम्।
मावमंस्था बलं बाह्वोर्मावमंस्था धनंजयम् ॥ २३

प्रभो! आप मेरे अस्त्रोंका अनादर न करें। मेरे सुदृढ़ धनुषकी अवहेलना न करें। इन दोनों भुजाओंके बलका तिरस्कार न करें और अपने इस सखा धनंजयका अपमान न करें ॥ २३ ॥

तथाभियामि संग्रामं न जीयेयं जयामि च।
तेन सत्येन संग्रामे हतं विद्धि जयद्रथम् ॥ २४

मैं संग्राममें इस प्रकार चलूँगा, जिससे कोई मुझे जीत न सके, वरं मैं ही विजयी होऊँ। इस सत्यके प्रभावसे आप रणक्षेत्रमें जयद्रथको मारा गया ही समझें ॥ २४ ॥

ध्रुवं वै ब्राह्मणे सत्यं ध्रुवा साधुषु संनतिः।
श्रीर्ध्रुवापि च यज्ञेषु ध्रुवो नारायणे जयः ॥ २५

जैसे ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणमें सत्य, साधुपुरुषोंमें नम्रता और यज्ञोंमें लक्ष्मीका होना ध्रुव सत्य है, उसी प्रकार जहाँ आप नारायण विद्यमान हैं, वहाँ विजय भी अटल है ॥ २५ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं स्वयमात्मानमात्मना।
संदिदेशार्जुनो नर्दन् वासविः केशवं प्रभुम् ॥ २६

संजय कहते हैं—राजन्! इन्द्रकुमार अर्जुनने गर्जना करते हुए इस प्रकार उपर्युक्त बातें कहकर सम्पूर्ण इन्द्रियोंके नियन्ता तथा सब कुछ करनेमें समर्थ अपने आत्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको स्वयं ही मनसे सोचकर इस प्रकार आदेश दिया— ॥ २६ ॥

यथा प्रभातां रजनीं कल्पितः स्याद् रथो मम।

तथा कार्यं त्वया कृष्ण कार्यं हि महदुद्यतम् ॥ २७ ॥

'श्रीकृष्ण ! आप ऐसा प्रबन्ध कर लें कि कल सवेरा होते ही मेरा रथ तैयार हो जाय; क्योंकि हमलोगोंपर महान् कार्यभार आ पड़ा है' ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वण्यर्जुनवाक्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनवाक्यविषयक छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

नाना प्रकारके अशुभसूचक उत्पात, कौरवसेनामें भय और श्रीकृष्णका अपनी बहिन सुभद्राको आश्वासन देना

संजय उवाच

तां निशां दुःखशोकार्तौ निःश्वसन्ताविवोरगौ।
निद्रां नैवोपलेभाते वासुदेवधनंजयौ ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुःख और शोकसे पीड़ित हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन सर्पोंके समान लंबी साँस खींच रहे थे । उन दोनोंको उस रातमें नींद नहीं आयी ॥ १ ॥

नरनारायणौ क्रुद्धौ ज्ञात्वा देवाः सवासवाः ।
व्यथिताश्चिन्तयामासुः किंस्विदेतद् भविष्यति॥ २ ॥

नर और नारायणको कुपित जान इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता व्यथित हो चिन्ता करने लगे; यह क्या होनेवाला है ?।२।

ववुश्च दारुणा वाता रूक्षा घोराभिशंसिनः ।
सकबन्धस्तथाऽऽदित्ये परिधिः समदृश्यत ॥ ३ ॥

रूक्ष, भयसूचक एवं दारुण वायु बहने लगी।(दूसरे दिन सूर्योदय होनेपर)सूर्यमण्डलमें कबन्धयुक्त घेरा देखा गया॥३॥

शुष्काशन्यश्च निष्पेतुः सनिर्घाताः सविद्युतः ।
चचाल चापि पृथिवी सशैलवनकानना ॥ ४ ॥

बिना वर्षाके ही वज्र गिरने लगे । आकाशमें बिजलीकी चमकके साथ भयंकर गर्जना होने लगी । पर्वत, वन और काननोंसहित पृथ्वी काँपने लगी ॥ ४ ॥

चुक्षुभुश्च महाराज सागरा मकरालयाः ।
प्रतिस्रोतः प्रवृत्ताश्च तथा गन्तुं समुद्रगाः ॥ ५ ॥

महाराज ! ग्राहोंके निवासस्थान समुद्रोंमें ज्वार आ गया । समुद्रगामिनी नदियाँ उल्टी धारामें बहकर अपने उद्गमकी ओर जाने लगीं ॥ ५ ॥

रथाश्वनरनागानां प्रवृत्तमधरोत्तरम् ।
क्रव्यादानां प्रमोदार्थं यमराष्ट्रविवृद्धये ॥ ६ ॥

मांसभक्षी प्राणियोंके आनन्द और यमराजके राज्यकी वृद्धिके लिये रथ, घोड़े, मनुष्य और हाथियोंके नीचे-ऊपरके ओष्ठ फड़कने लगे ॥ ६ ॥

वाहनानि शकृन्मूत्रे मुमुचू रुरुदुश्च ह ।
तान् दृष्ट्वा दारुणान् सर्वानुत्पाताँल्लोमहर्षणान्॥ ७ ॥
सर्वे ते व्यथिताः सैन्यास्त्वदीया भरतर्षभ ।
श्रुत्वा महाबलस्योग्रां प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ ८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! हाथी, घोड़े आदि वाहन मल-मूत्र करने और रोने लगे । उन सब भयंकर एवं रोमाञ्चकारी उत्पातोंको देखकर और महाबली सव्यसाची अर्जुनकी उस भयंकर प्रतिज्ञाको सुनकर आपके सभी सैनिक व्यथित हो उठे ॥

अथ कृष्णं महाबाहुरब्रवीत् पाकशासनिः ।
आश्वासय सुभद्रां त्वं भगिनीं स्नुषया सह ॥ ९ ॥
स्नुषां चास्या वयस्याश्च विशोकाः कुरु माधव ।
साम्ना सत्येन युक्तेन वचसाऽऽश्वासय प्रभो ॥ १० ॥

इधर इन्द्रकुमार महाबाहु अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'माधव ! आप पुत्रवधू उत्तरासहित अपनी बहिन सुभद्राको धीरज बँधाइये । उत्तरा और उसकी सखियोंका शोक दूर कीजिये । प्रभो ! शान्तिपूर्ण, सत्य और युक्तियुक्त वचनोंद्वारा इन सबको आश्वासन दीजिये' ॥ ९-१० ॥

ततोऽर्जुनगृहं गत्वा वासुदेवः सुदुर्मनाः ।
भगिनीं पुत्रशोकार्तामाश्वासयत दुःखिताम् ॥ ११ ॥

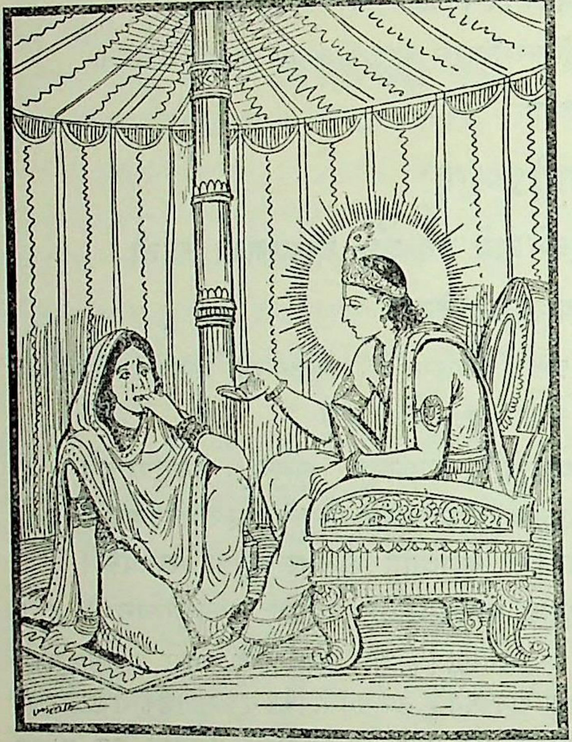
तब भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त उदास मनसे अर्जुनके शिविरमें गये और पुत्रशोकसे पीड़ित हुई अपनी दुखिया बहिनको आश्वासन देने लगे ॥ ११ ॥

वासुदेव उवाच

मा शोकं कुरु वार्ष्णेयि कुमारं प्रति सस्नुषा ।
सर्वेषां प्राणिनां भीरु निष्ठैषा कालनिर्मिता ॥ १२ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—वृष्णिनन्दिनी ! तुम और पुत्रवधू उत्तरा कुमार अभिमन्युके लिये शोक न करो ।

भीरु ! काल एक दिन सभी प्राणियोंकी ऐसी ही अवस्था कर देता है ॥ १२ ॥



कुले जातस्य धीरस्य क्षत्रियस्य विशेषतः ।
सदृशं मरणं ह्येतत् तव पुत्रस्य मा शुचः ॥ १३ ॥

तुम्हारा पुत्र उत्तम कुलमें उत्पन्न धीर-वीर और विशेषतः क्षत्रिय था । यह मृत्यु उसके योग्य ही हुई है; इसलिये शोक न करो ॥ १३ ॥

दिष्ट्या महारथो धीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।
क्षात्रेण विधिना प्राप्तो वीराभिलषितां गतिम् ॥ १४ ॥

यह सौभाग्यकी बात है कि पिताके तुल्य पराक्रमी धीर महारथी अभिमन्यु क्षत्रियोचित कर्तव्यका पालन करके उस उत्तम गतिको प्राप्त हुआ है, जिसकी वीर पुरुष अभिलाषा करते हैं ॥ १४ ॥

जित्वा सुबहुशः शत्रून् प्रेषयित्वा च मृत्यवे ।
गतः पुण्यकृतां लोकान् सर्वकामदुहोऽक्षयान् ॥ १५ ॥

वह बहुत-से शत्रुओंको जीतकर और बहुतोंको मृत्युके लोकमें भेजकर पुण्यात्माओंको प्राप्त होनेवाले उन अक्षय लोकोंमें गया है, जो सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं ॥

तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन प्रज्ञयापि च ।
सन्तो यां गतिमिच्छन्ति तां प्राप्तस्तव पुत्रकः ॥ १६ ॥

तपस्या, ब्रह्मचर्य, शास्त्रज्ञान और सद्बुद्धिके द्वारा साधुपुरुष जिस गतिको पाना चाहते हैं, वही गति तुम्हारे पुत्रको भी प्राप्त हुई है ॥ १६ ॥

वीरसूर्वीरपत्नी त्वं वीरजा वीरबान्धवा ।
मा शुचस्तनयं भद्रे गतः स परमां गतिम् ॥ १७ ॥

सुभद्रे ! तुम वीरमाता, वीरपत्नी, वीरकन्या और वी भाइयोंकी बहिन हो । तुम पुत्रके लिये शोक न करो । उत्तम गतिको प्राप्त हुआ है ॥ १७ ॥

प्राप्स्यते चाप्यसौ पापः सैन्धवो बालघातकः ।
अस्यावलेपस्य फलं ससुहृद्गणबान्धवः ॥ १८ ॥
व्युष्टायां तु वरारोहे रजन्यां पापकर्मकृत् ।
न हि मोक्ष्यति पार्थात् स प्रविष्टोऽप्यमरावतीम् ॥ १९ ॥

वरारोहे ! बालककी हत्या करानेवाला वह पापक पापी सिंधुराज जयद्रथ रात बीतनेपर प्रातःकाल होते अपने सुहृदों और बन्धु-बान्धवोंसहित इस अपराधका फ पायेगा । वह अमरावतीपुरीमें जाकर छिप जाय तो अर्जुनके हाथसे उसका छुटकारा नहीं होगा ॥ १८-१९ ॥

श्वः शिरः श्रोष्यसे तस्य सैन्धवस्य रणे हृतम् ।
समन्तपञ्चकाद् बाह्यं विशोका भव मा रुदः ॥ २० ॥

तुम कल ही सुनोगी कि रणक्षेत्रमें जयद्रथका मस्तक लिया गया है और वह समन्तपञ्चक क्षेत्रसे बाहर जा गि है । अतः शोक त्याग दो और रोना बंद करो ॥ २० ॥

क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गतः शूरः सतां गतिम् ।
यां गतिं प्राप्नुयामेह ये चान्ये शस्त्रजीविनः ॥ २१ ॥

शूरवीर अभिमन्युने क्षत्रिय-धर्मको आगे रखक सत्पुरुषोंकी गति पायी है, जिसे हमलोग और इस संसारके दूसरे शस्त्रधारी क्षत्रिय भी पाना चाहते हैं ॥ २१ ॥

व्यूढोरस्को महाबाहुरनिवर्ती रथप्रणुत् ।
गतस्तव वरारोहे पुत्रः स्वर्गं ज्वरं जहि ॥ २२ ॥

सुन्दरी ! चौड़ी छाती और विशाल भुजाओंसे सुशोभि युद्धसे पीछे न हटनेवाला तथा शत्रुपक्षके रथियोंपर विजय पानेवाला तुम्हारा पुत्र स्वर्गलोकमें गया है । तुम चिन्ता छोड़ो ॥

अनुयातश्च पितरं मातृपक्षं च वीर्यवान् ।
सहस्रशो रिपून् हत्वा हतः शूरो महारथः ॥ २३ ॥

बलवान् शूरवीर और महारथी अभिमन्यु पितृकुल तथा मातृकुलकी मर्यादाका अनुसरण करते हुए सहस्रों शत्रुओंको मारकर मरा है ॥ २३ ॥

आश्वासय स्नुषां राज्ञि मा शुचः क्षत्रिये भृशम् ।
श्वः प्रियं सुमहच्छ्रुत्वा विशोका भव नन्दिनि ॥ २४ ॥

रानी बहिन ! अधिक चिन्ता छोड़ो और बहूको धीरज बँधाओ । अपने कुलको आनन्दित करनेवाली क्षत्रियकन्ये ! कल अत्यन्त प्रिय समाचार सुनकर शोकरहित हो जाओ ॥ २४ ॥

यत् पार्थेन प्रतिज्ञातं तत् तथा न तदन्यथा ।
चिकीर्षितं हि ते भर्तुर्न भवेज्जातु निष्फलम् ॥ २५ ॥

अर्जुनने जिस बातके लिये प्रतिज्ञा कर ली है, वह उसी रूपमें पूर्ण होगी। उसे कोई पलट नहीं सकता। तुम्हारे स्वामी जो कुछ करना चाहते हैं, वह कभी निष्फल नहीं होता॥

यदि च मनुजपन्नगाः पिशाचा
रजनिचराः पतगाः सुरासुराश्च।
रणगतमभियान्ति सिन्धुराजं
न स भविता सह तैरपि प्रभाते॥ २६॥

यदि मनुष्य, नाग, पिशाच, निशाचर, पक्षी, देवता और असुर भी रणक्षेत्रमें आये हुए सिंधुराज जयद्रथकी सहायताके लिये आ जायँ तो भी वह कल उन सहायकोंके साथ ही जीवनसे हाथ धो बैठेगा॥ २६॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्राश्वासने सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें सुभद्राको श्रीकृष्णका आश्वासनविषयक सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७७॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

सुभद्राका विलाप और श्रीकृष्णका सबको आश्वासन

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः।
सुभद्रा पुत्रशोकार्ता विललाप सुदुःखिता॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! महात्मा केशवका यह कथन सुनकर पुत्रशोकसे व्याकुल और अत्यन्त दुःखित हुई सुभद्रा इस प्रकार विलाप करने लगी—॥ १॥

हा पुत्र मम मन्दायाः कथमेत्यासि संयुगे।
निधनं प्राप्तवांस्तात पितुस्तुल्यपराक्रमः॥ २॥

'हा पुत्र! हा बेटा अभिमन्यु! तुम मुझ अभागिनीके गर्भमें आकर क्रमशः पिताके तुल्य पराक्रमी होकर युद्धमें मारे कैसे गये?॥ २॥

कथमिन्दीवरश्यामं सुदंष्ट्रं चारुलोचनम्।
मुखं ते दृश्यते वत्स गुण्ठितं रणरेणुना॥ ३॥

'वत्स! नील कमलके समान श्याम, सुन्दर दन्तपङ्क्तियोंसे सुशोभित, मनोहर नेत्रोंवाला तुम्हारा मुख आज युद्धकी धूलसे आच्छादित होकर कैसा दिखायी देता होगा?॥ ३॥

नूनं शूरं निपतितं त्वां पश्यन्त्यनिवर्तिनम्।
सुशिरोग्रीवबाह्वंसं व्यूढोरस्कं नतोदरम्॥ ४॥
चारूपचितसर्वाङ्गं स्वक्षं शस्त्रक्षताचितम्।
भूतानि त्वां निरीक्षन्ते नूनं चन्द्रमिवोदितम्॥ ५॥

'बेटा! तुम शूरवीर थे। युद्धसे कभी पीछे पैर नहीं हटाते थे। मस्तक, ग्रीवा, बाहु और कंधे आदि तुम्हारे सभी अङ्ग सुन्दर थे, छाती चौड़ी थी, उदर एवं नाभिदेश नीचा था, समस्त अङ्ग मनोहर और हृष्ट-पुष्ट थे। सम्पूर्ण इन्द्रियाँ विशेषतः नेत्र बड़े सुन्दर थे तथा तुम्हारे सारे अङ्ग शस्त्रजनित आघातसे व्याप्त थे। इस दशामें तुम धरतीपर पड़े होगे और निश्चय ही समस्त प्राणी उदय होते हुए चन्द्रमाके समान तुम्हें देख रहे होंगे॥ ४-५॥

शयनीयं पुरा यस्य स्पर्ध्यास्तरणसंवृतम्।
भूमावद्य कथं शेषे विप्रविद्धः सुखोचितः॥ ६॥

'हाय! पहले जिसके शयन करनेके लिये बहुमूल्य बिछौनेसे ढकी हुई शय्या बिछायी जाती थी, वही बेटा अभिमन्यु सुख भोगनेके योग्य होकर भी आज बाणविद्ध शरीरसे भूतलपर कैसे सो रहा होगा?॥ ६॥

योऽन्वास्यत पुरा वीरो वरस्त्रीभिर्महाभुजः।
कथमन्वास्यते सोऽद्य शिवाभिः पतितो मृधे॥ ७॥

'जिस महाबाहु वीरके पास पहले सुन्दरी स्त्रियाँ बैठा करती थीं, वही आज युद्धभूमिमें पड़ा होगा और उसके आस-पास सियारिनें बैठी होंगी; यह सब कैसे सम्भव हुआ?॥

योऽस्तूयत पुरा हृष्टैः सूतमागधवन्दिभिः।
सोऽद्य क्रव्याद्गणैर्घोरैर्विनदद्भिरुपास्यते॥ ८॥

'पहले हर्षमें भरे हुए सूत, मागध और वन्दीजन जिसकी स्तुति किया करते थे, उसीकी आज विकट गर्जना करते हुए भयंकर मांसभक्षी जन्तुओंके समुदाय उपासना करते होंगे॥

पाण्डवेषु च नाथेषु वृष्णिवीरेषु वा विभो।
पञ्चालेषु च वीरेषु हतः केनास्यनाथवत्॥ ९॥

'शक्तिशाली पुत्र! तुम्हारे रक्षक पाण्डवों, वृष्णिवीरों तथा पाञ्चालवीरोंके होते हुए भी तुम्हें अनाथकी भाँति किसने मारा?॥ ९॥

अतृप्तदर्शना पुत्र दर्शनस्य तवानघ।
मन्दभाग्या गमिष्यामि व्यक्तमद्य यमक्षयम्॥ १०॥

'बेटा! तुम्हें देखनेके लिये मेरी आँखें तरस रही हैं, इनकी प्यास नहीं बुझी। अनघ! कितनी मन्दभागिनी हूँ। निश्चय ही आज मैं यमलोकको चली जाऊँगी॥ १०॥

विशालाक्षं सुकेशान्तं चारुवाक्यं सुगन्धि च।
तव पुत्र कदा भूयो मुखं द्रक्ष्यामि निर्व्रणम्॥ ११॥

'वत्स ! बड़े-बड़े नेत्र, सुन्दर केशप्रान्त, मनोहर वाक्य और उत्तम सुगंधसे युक्त तुम्हारा घावरहित सुन्दर मुख मैं फिर कब देख पाऊँगी ? ॥ ११ ॥

धिग् बलं भीमसेनस्य धिक् पार्थस्य धनुष्मताम् ।
धिग् वीर्यं वृष्णिवीराणां पञ्चालानां च धिग् बलम् ॥ १२ ॥

'भीमसेनके बलको धिक्कार है, अर्जुनके धनुषधारणको धिक्कार है, वृष्णिवंशी वीरोंके पराक्रमको धिक्कार है तथा पाञ्चालोंके बलको भी धिक्कार है ! ॥ १२ ॥

धिक्केकयांस्तथा चेदीन् मत्स्यांश्चैवाथ सृञ्जयान् ।
ये त्वां रणगतं वीरं न शेकुरभिरक्षितुम् ॥ १३ ॥

'केकय, चेदि तथा मत्स्यदेशके वीरों और सृंजयवंशी क्षत्रियोंको भी धिक्कार है, जो युद्धमें गये हुए तुम-जैसे वीरकी रक्षा न कर सके ॥ १३ ॥

अद्य पश्यामि पृथिवीं शून्यामिव हतत्विषम् ।
अभिमन्युमपश्यन्ती शोकव्याकुललोचना ॥ १४ ॥

'अभिमन्युको न देखनेके कारण मेरे नेत्र शोकसे व्याकुल हो रहे हैं । आज मुझे सारी पृथ्वी सूनी एवं कान्तिहीन-सी दिखायी देती है ॥ १४ ॥

स्वस्रीयं वासुदेवस्य पुत्रं गाण्डीवधन्वनः ।
कथं त्वातिरथं वीरं द्रक्ष्याम्यद्य निपातितम् ॥ १५ ॥

'वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके भानजे और गाण्डीवधारी अर्जुनके अतिरथी वीर पुत्र अभिमन्युको आज मैं धरतीपर पड़ा हुआ कैसे देख सकूँगी ? ॥ १५ ॥

पह्येहि तृषितो वत्स स्तनौ पूर्णौ पिबाशु मे ।
अङ्कमारुह्य मन्दाया ह्यतृप्तायाश्च दर्शने ॥ १६ ॥

'बेटा ! आओ, आओ । तुम्हें प्यास लगी होगी । तुम्हें देखनेके लिये प्यासी हुई मुझ अभागिनी माताकी गोदमें बैठकर मेरे दूधसे भरे हुए इन स्तनोंको शीघ्र पी लो ॥ १६ ॥

हा वीर दृष्टो नष्टश्च धनं स्वप्न इवासि मे ।
अहो ह्यनित्यं मानुष्यं जलबुद्बुदचञ्चलम् ॥ १७ ॥

'हा वीर ! तुम सपनेमें मिले हुए धनकी भाँति मुझे दिखायी दिये और नष्ट हो गये । अहो ! यह मनुष्य-जीवन पानीके बुलबुलेके समान चञ्चल एवं अनित्य है ॥ १७ ॥

इमां ते तरुणीं भार्यां तवाधिभिरभिप्लुताम् ।
कथं संधारयिष्यामि विवत्सामिव धेनुकाम् ॥ १८ ॥

'बेटा ! तुम्हारी यह तरुणी पत्नी तुम्हारे विरहशोकमें डूबी हुई है । जिसका बछड़ा खो गया हो, उस गायकी भाँति व्याकुल है । मैं इसे कैसे धीरज बँधाऊँगी ? ॥ १८ ॥

(उत्तरामुत्तमां जात्या सुशीलां प्रियभाषिणीम् ।
शनकैः परिरभ्यैनां स्नुषां मम यशस्विनीम् ।
सुकुमारीं विशालाक्षीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
बालपल्लवतन्वङ्गीं मत्तमातङ्गगामिनीम् ॥
बिम्बाधरोष्ठीमबलामभिमन्यो प्रहर्षय ।)

'यह उत्तरा जातिसे उत्तम, सुशीला, प्रियभाषिणी, यशस्विनी तथा मेरी प्यारी बहू है । यह सुकुमारी है । इसके नेत्र बड़े-बड़े और मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति परम मनोहर है । इसके अङ्ग नूतन पल्लवोंके समान कृश हैं । यह मतवाले हाथीके समान मन्दगतिसे चलनेवाली है । इसके ओठ बिम्बफलके समान लाल हैं । बेटा अभिमन्यु ! तुम मेरी इस बहूको धीरे-धीरे हृदयसे लगाकर आनन्दित करो ।

अहो ह्यकाले प्रस्थानं कृतवानसि पुत्रक ।
विहाय फलकाले मां सुगृद्धां तव दर्शने ॥ १९ ॥

'अहो वत्स ! जब पुत्रके होनेका फल मिलनेका समय आया है, तब तुम मुझे अपने दर्शनोंके लिये भी तरसती हुई छोड़कर असमयमें ही चल बसे ॥ १९ ॥

नूनं गतिः कृतान्तस्य प्राज्ञैरपि सुदुर्विदा ।
यत्र त्वं केशवे नाथे संग्रामेऽनाथवद्धतः ॥ २० ॥

'निश्चय ही कालकी गति बड़े-बड़े विद्वानोंके लिये भी अत्यन्त दुर्बोध है, जिसके अधीन होकर तुम श्रीकृष्ण-जैसे संरक्षकके रहते हुए संग्राम-भूमिमें अनाथकी भाँति मारे गये ।

यज्वनां दानशीलानां ब्राह्मणानां कृतात्मनाम् ।
चरितब्रह्मचर्याणां पुण्यतीर्थावगाहिनाम् ॥ २१ ॥
कृतज्ञानां वदान्यानां गुरुशुश्रूषिणामपि ।
सहस्रदक्षिणानां च या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ २२ ॥

'वत्स ! यज्ञकर्ता, दानी, जितेन्द्रिय, ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, पुण्यतीर्थोंमें नहानेवाले, कृतज्ञ, उदार, गुरुसेवा-परायण और सहस्रोंकी संख्यामें दक्षिणा देनेवाले धर्मात्मा पुरुषोंको जो गति प्राप्त होती है, वही तुम्हें भी मिले ॥ २१-२२ ॥

या गतिर्युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
हत्वारीन् निहतानां च संग्रामे तां गतिं व्रज ॥ २३ ॥

'संग्राममें युद्धतत्पर हो कभी पीछे पैर न हटानेवाले और शत्रुओंको मारकर मरनेवाले शूरवीरोंको जो गति प्राप्त होती है, वही तुम्हें भी मिले ॥ २३ ॥

गोसहस्रप्रदातॄणां क्रतुदानां च या गतिः ।
नैवेशिकं चाभिमतं ददतां या गतिः शुभा ॥ २४ ॥

'सहस्र गोदान करनेवाले, यज्ञके लिये दान देनेवाले तथा मनके अनुरूप सब सामग्रियोंसहित निवासस्थान प्रदान करनेवाले पुरुषोंको जो शुभ गति प्राप्त होती है, वही तुम्हें भी मिले ।

ब्राह्मणेभ्यः शरण्येभ्यो निधिं निदधतां च या ।
या चापि न्यस्तदण्डानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २५ ॥

'जो शरणागत वत्सल ब्राह्मणोंके लिये निधि स्थापित करते

हैं तथा किसी भी प्राणीको दण्ड नहीं देते, उन्हें जिस गतिकी प्राप्ति होती है, बेटा ! वही गति तुम्हें भी प्राप्त हो ॥ २५ ॥

ब्रह्मचर्येण यां यान्ति मुनयः संशितव्रताः।
एकपत्न्यश्च यां यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २६ ॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनि ब्रह्मचर्यके द्वारा जिस गतिको पाते हैं और पतिव्रता स्त्रियोंको जिस गतिकी प्राप्ति होती है, बेटा ! वही गति तुम्हें भी सुलभ हो ॥२६॥

राज्ञां सुचरितैर्या च गतिर्भवति शाश्वती।
चतुराश्रमिणां पुण्यैः पावितानां सुरक्षितैः ॥ २७ ॥
दीनानुकम्पिनां या च सततं संविभागिनाम्।
पैशुन्याच्च निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २८ ॥

'पुत्र ! सदाचारके पालनसे राजाओंको तथा सुरक्षित पुण्यके प्रभावसे पवित्र हुए चारों आश्रमोंके लोगोंको जो सनातन गति प्राप्त होती है; दीनोंपर दया करनेवाले, उत्तम वस्तुओंको घरमें बाँटकर उपयोगमें लेनेवाले तथा चुगलीसे दूर रहनेवाले लोगोंको जो गति प्राप्त होती है, वही गति तुम्हें भी मिले ॥ २७-२८ ॥

व्रतिनां धर्मशीलानां गुरुशुश्रूषिणामपि।
अमोघातिथिनां या च तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २९ ॥

'वत्स ! व्रतपरायण, धर्मशील, गुरुसेवक एवं अतिथिको निराश न लौटानेवाले लोगोंको जिस गतिकी प्राप्ति होती है, वह तुम्हें भी प्राप्त हो ॥ २९ ॥

कृच्छ्रेषु या धारयतामात्मानं व्यसनेषु च।
गतिः शोकाग्निदग्धानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३० ॥

'बेटा ! जो लोग भारी-से-भारी कठिनाइयोंमें और संकटोंमें पड़नेपर तथा शोकाग्निसे दग्ध होनेपर भी धैर्य धारण करके अपने आपको स्थिर रखते हैं, उन्हें मिलनेवाली गतिको तुम भी प्राप्त करो ॥ ३० ॥

मातापित्रोश्च शुश्रूषां कल्पयन्तीह ये सदा।
स्वदारनिरतानां च या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ ३१ ॥

'जो सदा इस जगत्‌में माता-पिताकी सेवा करते हैं और अपनी ही स्त्रीमें अनुराग रखते हैं, उनकी जैसी गति होती है, वही तुम्हें भी प्राप्त हो ॥ ३१ ॥

ऋतुकाले स्वकां भार्यां गच्छतां या मनीषिणाम्।
परस्त्रीभ्यो निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३२ ॥

'पुत्र ! ऋतुकालमें अपनी स्त्रीसे सहवास करते हुए परायी स्त्रियोंसे सदा दूर रहनेवाले मनीषी पुरुषोंको जो गति प्राप्त होती है, वही तुम्हें भी मिले ॥ ३२ ॥

साम्ना ये सर्वभूतानि पश्यन्ति गतमत्सराः।
नारुंतुदानां क्षमिणां या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ ३३ ॥

'जो ईर्ष्या-द्वेषसे दूर रहकर समस्त प्राणियोंको समभावसे देखते हैं तथा जो किसीके मर्मस्थानको वाणीद्वारा चोट नहीं पहुँचाते एवं सबके प्रति क्षमाभाव रखते हैं, उनकी जो गति होती है, उसीको तुम भी प्राप्त करो ॥ ३३ ॥

मधुमांसनिवृत्तानां मदाद् दम्भात् तथानृतात्।
परोपतापत्यक्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३४ ॥

'पुत्र ! जो मद्य और मांसका सेवन नहीं करते, मद, दम्भ और असत्यसे अलग रहते और दूसरोंको संताप नहीं देते हैं, उन्हें मिलनेवाली सद्गति तुम्हें भी प्राप्त हो ॥ ३४ ॥

ह्रीमन्तः सर्वशास्त्रज्ञा ज्ञानतृप्ता जितेन्द्रियाः।
यां गतिं साधवो यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३५ ॥

'बेटा ! सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता, लज्जाशील, ज्ञानसे परितृप्त, जितेन्द्रिय श्रेष्ठपुरुष जिस गतिको पाते हैं, उसीको तुम भी प्राप्त करो'॥ ३५ ॥

एवं विलपतीं दीनां सुभद्रां शोककर्शिताम्।
अन्वपद्यत पाञ्चाली वैराटीसहितां तदा ॥ ३६ ॥

इस प्रकार उत्तरासहित विलाप करती हुई दीन-दुखी एवं शोकसे दुर्बल सुभद्राके पास उस समय द्रौपदी भी आ पहुँची ॥ ३६ ॥

ताः प्रकामं रुदित्वा च विलप्य च सुदुःखिताः।
उन्मत्तवत् तदा राजन् विसंज्ञा न्यपतन् क्षितौ ॥ ३७ ॥

राजन् ! वे सब-की-सब अत्यन्त दुखी हो इच्छानुसार रोती और विलाप करती हुई पगली-सी हो गयीं और मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ ३७ ॥

सोपचारस्तु कृष्णश्च दुःखितां भृशदुःखितः।
सिक्त्वाम्भसा समाश्वास्य तत्तदुक्त्वा हितं वचः ३८
विसंज्ञकल्पां रुदतीं मर्मविद्धां प्रवेपतीम्।
भगिनीं पुण्डरीकाक्ष इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥

तब कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त दुखी हो उन सबको होशमें लानेके लिये उपचार करने लगे। उन्होंने अपनी दुःखिनी बहिन सुभद्रापर जल छिड़ककर नाना प्रकारके हितकर वचन कहते हुए उसे आश्वासन दिया। पुत्र-शोकसे मर्माहत हो वह रोती हुई काँप रही थी और अचेत-सी हो गयी थी। उस अवस्थामें भगवान्‌ने उससे कहा—॥ ३८-३९॥

सुभद्रे मा शुचः पुत्रं पाञ्चाल्याश्वासयोत्तराम्।
गतोऽभिमन्युः प्रथितां गतिं क्षत्रियपुङ्गवः ॥ ४० ॥

'सुभद्रे ! तुम पुत्रके लिये शोक न करो। द्रुपदकुमारी ! तुम उत्तराको धीरज बँधाओ। वह क्षत्रियशिरोमणि सर्वश्रेष्ठ गतिको प्राप्त हुआ है ॥ ४० ॥

ये चान्येऽपि कुले सन्ति पुरुषा नो वरानने।
सर्वे ते तां गतिं यान्तु ह्यभिमन्योर्यशस्विनः ॥ ४१ ॥

'सुमुखि ! हमारी इच्छा तो यह है कि हमारे कुलमें और भी जितने पुरुष हैं, वे सब यशस्वी अभिमन्युकी ही गति प्राप्त करें ॥ ४१ ॥

कुर्याम तद् वयं कर्म क्रियास्तु सुहृदश्च नः ।
कृतवान् यादृगद्यैकस्तव पुत्रो महारथः ॥ ४२ ॥

'तुम्हारे महारथी पुत्रने अकेले ही आज जैसा पराक्रम किया है, उसे हम और हमारे सुहृद् भी कार्यरूपमें परिणत करें'॥

एवमाश्वास्य भगिनीं द्रौपदीमपि चोत्तराम् ।
पार्थस्यैव महाबाहुः पार्श्वमागादरिंदमः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार अपनी बहिन सुभद्रा, उत्तरा तथा द्रौप... आश्वासन देकर शत्रुदमन महाबाहु श्रीकृष्ण पुनः अ... ही पास चले आये ॥ ४३ ॥

ततोऽभ्यनुज्ञाय नृपान् कृष्णो बन्धूंस्तथार्जुनम् ।
विवेशान्तःपुरे राजंस्ते च जग्मुर्यथालयम् ॥ ४...

राजन् ! तदनन्तर श्रीकृष्ण राजाओं, बन्धुजनों ... अर्जुनसे अनुमति ले अन्तःपुरमें गये और वे राजालो... अपने-अपने शिविरमें चले गये ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्राप्रविलापे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें सुभद्रा-विलापविषयक अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २½ श्लोक मिलाकर कुल ४६½ श्लोक हैं)

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अर्जुनकी विजयके लिये रात्रिमें भगवान् शिवका पूजन करवाना, जागते हुए पाण्डव सैनिकोंकी अर्जुनके लिये शुभाशंसा तथा अर्जुनकी सफलताके लिये श्रीकृष्णके दारुकके प्रति उत्साहभरे वचन

संजय उवाच

ततोऽर्जुनस्य भवनं प्रविश्याप्रतिमं विभुः ।
स्पृष्ट्वाम्भः पुण्डरीकाक्षः स्थण्डिले शुभलक्षणे ॥ १ ॥
संतस्तार शुभां शय्यां दर्भैर्वैदूर्यसंनिभैः ।
ततो माल्येन विधिवल्लाजैर्गन्धैः सुमङ्गलैः ॥ २ ॥
अलंचकार तां शय्यां परिवार्यायुधोत्तमैः ।
ततः स्पृष्टोदके पार्थे विनीताः परिचारकाः ॥ ३ ॥
दर्शयन्तोऽन्तिके चक्रुर्नैशं त्रैयम्बकं बलिम् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके अनुपम भवनमें प्रवेश करके जलका स्पर्श किया और शुभ लक्षणोंसे युक्त वेदीपर वैदूर्यमणिके सदृश कुशोंकी सुन्दर शय्या बिछायी। तत्पश्चात् विधिपूर्वक परम मङ्गलकारी अक्षत, गन्ध एवं पुष्पमाला आदिसे उस शय्याको सजाया। उसके चारों ओर उत्तम आयुध रख दिये। इसके बाद जब अर्जुन आचमन कर चुके, तब विनीत (सुशिक्षित) परिचारकोंने उन्हें दिखाते हुए उनके निकट ही भगवान् शंकरका निशीथ-पूजन किया ॥ १-३½ ॥

ततः प्रीतमनाः पार्थो गन्धमाल्यैश्च माधवम् ॥ ४ ॥
अलंकृत्योपहारं तं नैशं तस्मै न्यवेदयत् ।
स्मयमानस्तु गोविन्दः फाल्गुनं प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने प्रसन्नचित्त होकर श्रीकृष्णको गन्ध और मालाओंसे अलंकृत करके रात्रिका वह सारा उपहार उन्हींको समर्पित किया। तब मुसकराते हुए भगवान् गोविन्द अर्जुनसे बोले—॥ ४-५ ॥

सुप्यतां पार्थ भद्रं ते कल्याणाय व्रजाम्यहम् ।
स्थापयित्वा ततो द्वाःस्थान् गोप्तृंश्चात्तायुधान् नरा...
दारुकानुगतः श्रीमान् विवेश शिबिरं स्वकम् ।

'कुन्तीकुमार ! तुम्हारा कल्याण हो। अब शयन क... मैं तुम्हारे कल्याण-साधनके लिये ही जा रहा हूँ' ऐसा क... वहाँ अस्त्र-शस्त्र लिये हुए मनुष्योंको द्वारपाल एवं रक्षक नि... करके भगवान् श्रीकृष्ण दारुकके साथ अपने शिविरमें चले...

शिश्ये च शयने शुभ्रे बहुकृत्यं विचिन्तयन् ॥ ७...
पार्थाय सर्वं भगवान् शोकदुःखापहं विधिम् ।
व्यदधात् पुण्डरीकाक्षस्तेजोद्युतिविवर्धनम् ॥ ८...
योगमास्थाय युक्तात्मा सर्वेषामीश्वरेश्वरः ।
श्रेयस्कामः पृथुयशा विष्णुर्जिष्णुप्रियंकरः ॥ ९...

वहाँ बहुत से कार्योंका चिन्तन करते हुए उ... शुभ्र शय्यापर शयन किया। कमलनयन भगवान् श्री... सबके ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। उनका यश महान् है... विष्णुरूप गोविन्द अर्जुनका प्रिय करनेवाले हैं और ... उनके कल्याणकी कामना रखते हैं। उन युक्तात्मा श्री... उत्तम योगका आश्रय ले अर्जुनके लिये वह सारा वि... विधान सम्पन्न किया, जो उनके शोक और दुःखको... करनेवाला तथा तेज और कान्तिको बढ़ानेवाला था ॥ ७...

न पाण्डवानां शिबिरे कश्चित् सुष्वाप तां निशाम् ।
प्रजागरः सर्वजनं ह्याविवेश विशाम्पते ॥ १...

राजन् ! उस रातमें पाण्डवोंके शिबिरमें कोई ... सोया। सब लोगोंमें जागरणका आवेश हो गया था ॥ १...

पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञातो महात्मना ।
सहसा सिन्धुराजस्य वधो गाण्डीवधन्वना ॥ ११ ॥
तत् कथं नु महाबाहुर्वासविः परवीरहा ।
प्रतिज्ञां सफलां कुर्यादिति ते समचिन्तयन् ॥ १२ ॥

सब लोग इसी चिन्तामें पड़े थे कि पुत्रशोकसे संतप्त हुए गाण्डीवधारी महामना अर्जुनने सहसा सिंधुराज जयद्रथके वधकी प्रतिज्ञा कर ली है। शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले वे महाबाहु इन्द्रकुमार अपनी उस प्रतिज्ञाको कैसे सफल करेंगे?

कष्टं हीदं व्यवसितं पाण्डवेन महात्मना ।
पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञा महती कृता ॥ १३ ॥
स च राजा महावीर्यः पारयत्वर्जुनः स ताम् ।
भ्रातरश्चापि विक्रान्ता बहुलानि बलानि च ॥ १४ ॥

महामना पाण्डवने यह बड़ा कष्टप्रद निश्चय किया है। उन्होंने पुत्रशोकसे संतप्त होकर बड़ी भारी प्रतिज्ञा कर ली है। उधर राजा जयद्रथका पराक्रम भी महान् है, तथापि अर्जुन अपनी उस प्रतिज्ञाको पूरी कर लेंगे; क्योंकि उनके भाई भी बड़े पराक्रमी हैं और उनके पास सेनाएँ भी बहुत हैं ॥ १३-१४ ॥

धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सर्वं तस्मै निवेदितम् ।
स हत्वा सैन्धवं संख्ये पुनरेतु धनंजयः ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने जयद्रथको सब बातें बता दी होंगी। अर्जुन युद्धमें सिंधुराज जयद्रथको मारकर पुनः सकुशल लौट आवें (यही हमारी शुभ कामना है) ॥ १५ ॥

जित्वा रिपुगणांश्चैव पारयत्वर्जुनो व्रतम् ।
श्वोऽहत्वा सिन्धुराजं वै धूमकेतुं प्रवेक्ष्यति ॥ १६ ॥
न ह्यसावनृतं कर्तुमलं पार्थो धनंजयः ।
धर्मपुत्रः कथं राजा भविष्यति मृतेऽर्जुने ॥ १७ ॥

अर्जुन शत्रुओंको जीतकर अपना व्रत पूरा करें। यदि वे कल सिंधुराजको न मार सके तो अग्निमें प्रवेश कर जायँगे। कुन्तीकुमार धनंजय अपनी बात झूठी नहीं कर सकते। यदि अर्जुन मर गये तो धर्मपुत्र युधिष्ठिर कैसे राजा होंगे? ॥ १६-१७ ॥

तस्मिन् हि विजयः कृत्स्नः पाण्डवेन समाहितः ।
यदि नोऽस्ति कृतं किञ्चिद् यदि दत्तं हुतं यदि ॥ १८ ॥
फलेन तस्य सर्वस्य सव्यसाची जयत्वरीन् ।

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने अर्जुनपर ही सारा विजयका भार रख दिया। यदि हमलोगोंका किया हुआ कुछ भी सत्कर्म शेष हो, यदि हमने दान और होम किये हों तो हमारे उन सभी शुभकर्मोंके फलसे सव्यसाची अर्जुन अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त करें ॥ १८½ ॥

एवं कथयतां तेषां जयमाशंसतां प्रभो ॥ १९ ॥
कृच्छ्रेण महता राजन् रजनी व्यत्यवर्तत ।

राजन्! प्रभो! इस प्रकार बातें करते और अर्जुनकी विजय चाहते हुए उन सभी सैनिकोंकी वह रात्रि महान् कष्टसे बीती थी ॥ १९½ ॥

तस्यां रजन्यां मध्ये तु प्रतिबुद्धो जनार्दनः ॥ २० ॥
स्मृत्वा प्रतिज्ञां पार्थस्य दारुकं प्रत्यभाषत ।

भगवान् श्रीकृष्ण उस रात्रिके मध्यकालमें जाग उठे और अर्जुनकी प्रतिज्ञाको स्मरण करके दारुकसे बोले—॥ २०½ ॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञातमार्तेन हतबन्धुना ॥ २१ ॥
जयद्रथं वधिष्यामि श्वोभूत इति दारुक ।

'दारुक! अपने पुत्र अभिमन्युके मारे जानेसे शोकार्त होकर अर्जुनने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि मैं कल जयद्रथका वध कर डालूँगा' ॥ २१½ ॥

तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा मन्त्रिभिर्मन्त्रयिष्यति ॥ २२ ॥
यथा जयद्रथं पार्थो न हन्यादिति संयुगे ।

'यह सब सुनकर दुर्योधन अपने मन्त्रियोंके साथ ऐसी मन्त्रणा करेगा' जिससे अर्जुन समरभूमिमें जयद्रथको मार न सकें॥

अक्षौहिण्यो हि ताः सर्वा रक्षिष्यन्ति जयद्रथम् ॥ २३ ॥
द्रोणश्च सह पुत्रेण सर्वास्त्रविधिपारगः ।

'वे सारी अक्षौहिणी सेनाएँ जयद्रथकी रक्षा करेंगी तथा सम्पूर्ण अस्त्र-विधिके पारंगत विद्वान् द्रोणाचार्य भी अपने पुत्र अश्वत्थामाके साथ उसकी रक्षामें रहेंगे ॥ २३½ ॥

एको वीरः सहस्राक्षो दैत्यदानवदर्पहा ॥ २४ ॥
सोऽपि तं नोत्सहेताजौ हन्तुं द्रोणेन रक्षितम् ।

'त्रिलोकीके एकमात्र वीर हैं सहस्रनेत्रधारी इन्द्र, जो दैत्यों और दानवोंके भी दर्पका दलन करनेवाले हैं; परंतु वे भी द्रोणाचार्यसे सुरक्षित जयद्रथको युद्धमें मार नहीं सकते ॥

सोऽहं श्वस्तत् करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः ॥ २५ ॥
अप्राप्तेऽस्तं दिनकरे हनिष्यति जयद्रथम् ।

'अतः मैं कल वह उद्योग करूँगा, जिससे कुन्तीपुत्र अर्जुन सूर्यदेवके अस्त होनेसे पहले जयद्रथको मार डालेंगे ॥

न हि दारा न मित्राणि ज्ञातयो न च बान्धवाः ॥ २६ ॥
कश्चिदन्यः प्रियतरः कुन्तीपुत्रान्ममार्जुनात् ।

'मुझे स्त्री, मित्र, कुटुम्बीजन, भाई-बन्धु तथा दूसरा कोई भी कुन्तीपुत्र अर्जुनसे अधिक प्रिय नहीं है ॥ २६½ ॥

अनर्जुनमिमं लोकं मुहूर्तमपि दारुक ॥ २७ ॥
उदीक्षितुं न शक्तोऽहं भविता न च तत् तथा ।

'दारुक! मैं अर्जुनसे रहित इस संसारको दो घड़ी भी नहीं देख सकता। ऐसा हो ही नहीं सकता (कि मेरे रहते अर्जुनका कोई अनिष्ट हो) ॥ २७½ ॥

अहं विजित्य तान् सर्वान् सहसा सहयद्विपान् ॥ २८ ॥
अर्जुनार्थे हनिष्यामि सकर्णान् ससुयोधनान् ।

'मैं अर्जुनके लिये हाथी, घोड़े, कर्ण और दुर्योधन-

सहित उन समस्त शत्रुओंको जीतकर सहसा उनका संहार कर डालूँगा ॥ २८½ ॥

श्वो निरीक्षन्तु मे वीर्यं त्रयो लोका महाहवे ॥ २९ ॥
धनंजयार्थे समरे पराक्रान्तस्य दारुक ।

'दारुक ! कलके महासमरमें तीनों लोक धनंजयके लिये युद्धमें पराक्रम प्रकट करते हुए मेरे बल और प्रभावको देखें ॥

श्वो नरेन्द्रसहस्राणि राजपुत्रशतानि च ॥ ३० ॥
साश्वद्विपरथान्याजौ विद्रविष्यामि दारुक ।

'दारुक ! कल युद्धमें मैं सहस्रों राजाओं तथा सैकड़ों राजकुमारोंको उनके घोड़े, हाथी एवं रथोंसहित मार भगाऊँगा ॥

श्वस्तां चक्रप्रमथितां द्रक्ष्यसे नृपवाहिनीम् ॥ ३१ ॥
मया क्रुद्धेन समरे पाण्डवार्थे निपातिताम् ।

'तुम कल देखोगे कि मैंने समराङ्गणमें कुपित होकर पाण्डुपुत्र अर्जुनके लिये सारी राजसेनाको चक्रसे चूर-चूर करके धरतीपर मार गिराया है ॥ ३१½ ॥

श्वः सदेवाः सगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ ३२ ॥
ज्ञास्यन्ति लोकाः सर्वे मां सुहृदं सव्यसाचिनः ।

'कल देवता, गन्धर्व, पिशाच, नाग तथा राक्षस आदि समस्त लोक यह अच्छी तरह जान लेंगे कि मैं सव्यसाची अर्जुनका हितैषी मित्र हूँ ॥ ३२½ ॥

यस्तं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्तं चानु स मामनु ॥ ३३ ॥
इति संकल्प्यतां बुद्ध्या शरीरार्द्धं ममार्जुनः ।

'जो अर्जुनसे द्वेष करता है, वह मुझसे द्वेष करता है और जो अर्जुनका अनुगामी है, वह मेरा अनुगामी है, तुम अपनी बुद्धिसे यह निश्चय कर लो कि अर्जुन मेरा आधा शरीर है ॥ ३३½ ॥

यथा त्वं मे प्रभातायामस्यां निशि रथोत्तमम् ॥ ३४ ॥
कल्पयित्वा यथाशास्त्रमादाय व्रज संयतः ।

'कल प्रातःकाल तुम शास्त्रविधिके अनुसार मेरे उत्तम रथको सुसज्जित करके सावधानीके साथ लेकर युद्धस्थलमें चलना ॥ ३४½ ॥

गदां कौमोदकीं दिव्यां शक्तिं चक्रं धनुः शरान् ॥ ३५ ॥
आरोप्य वै रथे सूत सर्वोपकरणानि च ।
स्थानं च कल्पयित्वाथ रथोपस्थे ध्वजस्य मे ॥ ३६ ॥
वैनतेयस्य वीरस्य समरे रथशोभिनः ।

'सूत ! कौमोदकी गदा, दिव्य शक्ति, चक्र, धनुष, बाण तथा अन्य सब आवश्यक सामग्रियोंको रथपर रखकर उसके पिछले भागमें समराङ्गणमें रथपर शोभा पानेवाले वीर विनतानन्दन गरुड़के चिह्नवाले ध्वजके लिये भी स[...] बना लेना ॥ ३५–३६½ ॥

छत्रं जाम्बूनदैर्जालैरर्कज्वलनसप्रभैः ॥ ३७ ॥
विश्वकर्मकृतैर्दिव्यैरश्वानपि विभूषितान् ।
बलाहकं मेघपुष्पं शैब्यं सुग्रीवमेव च ॥ ३८ ॥
युक्तान् वाजिवरान् यत्तः कवची तिष्ठ दारुक ।

'दारुक ! साथ ही उसमें छत्र लगाकर अग्नि और सू[र्य] के समान प्रकाशित होनेवाले तथा विश्वकर्माके बनाये हु[ए] दिव्य सुवर्णमय जालोंसे विभूषित मेरे चारों श्रेष्ठ घोड़ों—[बला]हक, मेघपुष्प, शैब्य तथा सुग्रीवको जोत लेना और [तु]म भी कवच धारण करके तैयार रहना ॥ ३७–३८½ ॥

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषमार्षभेणैव पूरितम् ॥ ३९ ॥
श्रुत्वा च भैरवं नादमुपेयास्त्वं जवेन माम् ।

'पाञ्चजन्य शङ्खका ऋषभ स्वरसे बजाया हुआ [...] और भयंकर कोलाहल सुनते ही तुम बड़े वेगसे [...] पास पहुँच जाना ॥ ३९½ ॥

एकाह्नाहममर्षं च सर्वदुःखानि चैव ह ॥ ४० ॥
भ्रातुः पैतृष्वसेयस्य व्यपनेष्यामि दारुक ।

'दारुक ! मैं अपनी बुआजीके पुत्र भाई अर्जुनके [...] दुःख और अमर्षको एक ही दिनमें दूर कर दूँगा ॥ ४०½ ॥

सर्वोपायैर्यतिष्यामि यथा बीभत्सुराहवे ॥ ४१ ॥
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां हनिष्यति जयद्रथम् ।

'सभी उपायोंसे ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे अर्जुन यु[द्धमें] धृतराष्ट्रपुत्रोंके देखते-देखते जयद्रथको मार डालें ॥ ४१½ ॥

यस्य यस्य च बीभत्सुर्वधे यत्नं करिष्यति ।
आशंसे सारथे तत्र भवितास्य ध्रुवो जयः ॥ ४२ ॥

'सारथे ! कल अर्जुन जिस-जिस वीरके वधका प्र[यत्न] करेंगे, मैं आशा करता हूँ, वहाँ-वहाँ उनकी निश्चय [ही] विजय होगी' ॥ ४२ ॥

दारुक उवाच

जय एव ध्रुवस्तस्य कुत एव पराजयः ।
यस्य त्वं पुरुषव्याघ्र सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥ ४३ ॥

दारुक बोला—पुरुषसिंह ! आप जिनके सारथि [ब]ने हुए हैं, उनकी विजय तो निश्चित है ही । उनकी परा[जय] कैसे हो सकती है ? ॥ ४३ ॥

एवं चैतत् करिष्यामि यथा मामनुशाससि ।
सुप्रभातामिमां रात्रिं जयाय विजयस्य हि ॥ ४४ ॥

अर्जुनकी विजयके लिये कल सबेरे जो कुछ करनेके लिये आप मुझे आज्ञा देते हैं, उसे उसी रूपमें मैं अवश्य पूर्ण करूँगा ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णदारुकसम्भाषणे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें श्रीकृष्ण और दारुककी बातचीतविषयक उन्नासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७९ ॥

अशीतितमोऽध्यायः

अर्जुनका स्वप्नमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ शिवजीके समीप जाना और उनकी स्तुति करना

संजय उवाच

कुन्तीपुत्रस्तु तं मन्त्रं स्मरन्नेव धनंजयः।
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन् मुमोहाचिन्त्यविक्रमः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! इधर अचिन्त्य पराक्रमशाली कुन्तीपुत्र अर्जुन अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये (वनवासकालमें व्यासजीके बताये हुए शिवसम्बन्धी) मन्त्रका चिन्तन करते-करते नींदसे मोहित हो गये ॥ १ ॥

तं तु शोकेन संतप्तं स्वप्ने कपिवरध्वजम्।
आससाद महातेजा ध्यायन्तं गरुडध्वजः ॥ २ ॥

उस समय स्वप्नमें महातेजस्वी गरुड़ध्वज भगवान् श्रीकृष्ण शोकसंतप्त हो चिन्तामें पड़े हुए कपिध्वज अर्जुनके पास आये ॥ २ ॥

प्रत्युत्थानं च कृष्णस्य सर्वावस्थो धनंजयः।
न लोपयति धर्मात्मा भक्त्या प्रेम्णा च सर्वदा॥ ३ ॥

धर्मात्मा धनंजय किसी भी अवस्थामें क्यों न हों, सदा प्रेम और भक्तिके साथ खड़े होकर श्रीकृष्णका स्वागत करते थे। अपने इस नियमका वे कभी लोप नहीं होने देते थे ॥ ३ ॥

प्रत्युत्थाय च गोविन्दं स तस्मा आसनं ददौ।
न चासने स्वयं बुद्धिं बीभत्सुर्व्यदधात् तदा ॥ ४ ॥

अर्जुनने खड़े होकर गोविन्दको बैठनेके लिये आसन दिया और स्वयं उस समय किसी आसनपर बैठनेका विचार उन्होंने नहीं किया ॥ ४ ॥

ततः कृष्णो महातेजा जानन् पार्थस्य निश्चयम्।
कुन्तीपुत्रमिदं वाक्यमासीनः स्थितमब्रवीत् ॥ ५ ॥

तब महातेजस्वी श्रीकृष्ण पार्थके इस निश्चयको जानकर अकेले ही आसनपर बैठ गये और खड़े हुए कुन्तीकुमारसे इस प्रकार बोले—॥ ५ ॥

मा विषादे मनः पार्थ कृथाः कालो हि दुर्जयः।
कालः सर्वाणि भूतानि नियच्छति परे विधौ ॥ ६ ॥

'कुन्तीनन्दन! तुम अपने मनको विषादमें न डालो; क्योंकि कालपर विजय पाना अत्यन्त कठिन है। काल ही समस्त प्राणियोंको विधाताके अवश्यम्भावी विधानमें प्रवृत्त कर देता है ॥ ६ ॥

किमर्थं च विषादस्ते तद् ब्रूहि द्विपदां वर।
न शोच्यं विदुषां श्रेष्ठ शोकः कार्यविनाशनः॥ ७ ॥

'मनुष्योंमें श्रेष्ठ अर्जुन! बताओ तो सही, तुम्हें किस लिये विषाद हो रहा है? विद्वद्वर! तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि शोक समस्त कर्मोंका विनाश करनेवाला है ॥

यत् तु कार्यं भवेत् कार्यं कर्मणा तत् समाचर।
हीनचेष्टस्य यः शोकः स हि शत्रुर्धनंजय ॥ ८ ॥

'जो कार्य करना हो, उसे प्रयत्नपूर्वक करो। धनंजय! उद्योगहीन मनुष्यका जो शोक है, वह उसके लिये शत्रुके समान है ॥ ८ ॥

शोचन् नन्दयते शत्रून् कर्शयत्यपि बान्धवान्।
क्षीयते च नरस्तस्मान्न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ९ ॥

'शोक करनेवाला पुरुष अपने शत्रुओंको आनन्दित करता और बन्धु-बान्धवोंको दुःखसे दुर्बल बनाता है। इसके सिवा वह स्वयं भी शोकके कारण क्षीण होता जाता है। अतः तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये' ॥ ९ ॥

इत्युक्तो वासुदेवेन बीभत्सुरपराजितः।
आबभाषे तदा विद्वानिदं वचनमर्थवत् ॥ १० ॥

वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर किसीसे पराजित न होनेवाले विद्वान् अर्जुनने यह अर्थयुक्त वचन उस समय कहा—॥ १० ॥

मया प्रतिज्ञा महती जयद्रथवधे कृता।
श्वोऽस्मि हन्ता दुरात्मानं पुत्रघ्नमिति केशव ॥ ११ ॥

'केशव! मैंने जयद्रथ-वधके लिये यह भारी प्रतिज्ञा कर ली है कि कल मैं अपने पुत्रके घातक दुरात्मा सिंधुराजको अवश्य मार डालूँगा ॥ ११ ॥

मत्प्रतिज्ञाविघातार्थं धार्तराष्ट्रैः किलाच्युत।
पृष्ठतः सैन्धवः कार्यः सर्वैर्गुप्तो महारथैः ॥ १२ ॥

'परंतु अच्युत! धृतराष्ट्र-पक्षके सभी महारथी मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग करनेके लिये सिंधुराजको निश्चय ही सबसे पीछे खड़े करेंगे और वह उन सबके द्वारा सुरक्षित होगा ॥ १२ ॥

दश चैका च ताः कृष्ण अक्षौहिण्यः सुदुर्जयाः।
हतावशेषास्तत्रेमा हन्त माधव संख्यया ॥ १३ ॥
ताभिः परिवृतः संख्ये सर्वैश्चैव महारथैः।
कथं शक्येत संद्रष्टुं दुरात्मा कृष्ण सैन्धवः ॥ १४ ॥

'माधव! श्रीकृष्ण! कौरवोंकी वे ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ, जो अत्यन्त दुर्जय हैं और उनमें मरनेसे बचे हुए जितने सैनिक विद्यमान हैं, उनसे तथा पूर्वोक्त सभी महारथियोंसे युद्धस्थलमें घिरे होनेपर दुरात्मा सिंधुराजको कैसे देखा जा सकता है? ॥ १३-१४ ॥

प्रतिज्ञापारणं चापि न भविष्यति केशव।
प्रतिज्ञायां च हीनायां कथं जीवेत मद्विधः ॥ १५ ॥

'केशव! ऐसी अवस्थामें प्रतिज्ञाकी पूर्ति नहीं हो

सकेगी और प्रतिज्ञा भङ्ग होनेपर मेरे-जैसा पुरुष कैसे जीवन धारण कर सकता है ? ॥ १५ ॥

दुःखोपायस्य मे वीर विकाङ्क्षा परिवर्तते ।
द्रुतं च याति सविता तत एतद् ब्रवीम्यहम् ॥ १६ ॥

'वीर ! अब इस कष्टसाध्य (जयद्रथवधरूपी कार्य) की ओरसे मेरी अभिलाषा परिवर्तित हो रही है । इसके सिवा इन दिनों सूर्य जल्दी अस्त हो जाते हैं; इसलिये मैं ऐसा कह रहा हूँ' ॥ १६ ॥

शोकस्थानं तु तच्छ्रुत्वा पार्थस्य द्विजकेतनः ।
संस्पृश्याम्भस्ततः कृष्णः प्राङ्मुखः समवस्थितः ॥१७॥
इदं वाक्यं महातेजा बभाषे पुष्करेक्षणः ।
हितार्थं पाण्डुपुत्रस्य सैन्धवस्य वधे कृती ॥ १८ ॥

अर्जुनके शोकका आधार क्या है, यह सुनकर महातेजस्वी विद्वान् गरुड़ध्वज कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण आचमन करके पूर्वाभिमुख होकर बैठे और पाण्डुपुत्र अर्जुनके हित तथा सिंधुराज जयद्रथके वधके लिये इस प्रकार बोले—१७-१८

पार्थ पाशुपतं नाम परमास्त्रं सनातनम् ।
येन सर्वान् मृधे दैत्याञ्जघ्ने देवो महेश्वरः ॥ १९ ॥

'पार्थ ! पाशुपत नामक एक परम उत्तम सनातन अस्त्र है, जिससे युद्धमें भगवान् महेश्वरने समस्त दैत्योंका वध किया था ॥ १९ ॥

यदि तद् विदितं तेऽद्य श्वो हन्तासि जयद्रथम् ।
अथाज्ञातं प्रपद्यस्व मनसा वृषभध्वजम् ॥ २० ॥
तं देवं मनसा ध्यात्वा जोषमास्व धनंजय ।
ततस्तस्य प्रसादात् त्वं भक्तः प्राप्स्यसि तन्महत् ॥२१॥

'यदि वह अस्त्र आज तुम्हें विदित हो तो तुम अवश्य कल जयद्रथको मार सकते हो और यदि तुम्हें उसका ज्ञान न हो तो मन-ही-मन भगवान् वृषभध्वज (शिव) की शरण लो । धनंजय ! तुम मनमें उन महादेवजीका ध्यान करते हुए चुपचाप बैठ जाओ । तब उनके दया-प्रसादसे तुम उनके भक्त होनेके कारण उस महान् अस्त्रको प्राप्त कर लोगे' ॥

ततः कृष्णवचः श्रुत्वा संस्पृश्याम्भो धनंजयः ।
भूमावासीन एकाग्रो जगाम मनसा भवम् ॥ २२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर अर्जुन जलका आचमन करके धरतीपर एकाग्र होकर बैठ गये और मनसे महादेवजीका चिन्तन करने लगे ॥ २२ ॥

ततः प्रणिहितो ब्राह्मे मुहूर्ते शुभलक्षणे ।
आत्मानमर्जुनोऽपश्यद् गगने सहकेशवम् ॥ २३ ॥

तब शुभ लक्षणोंसे युक्त ब्राह्म मुहूर्तमें ध्यानस्थ होनेपर अर्जुनने अपने आपको भगवान् श्रीकृष्णके साथ आकाशमें जाते देखा ॥ २३ ॥

पुण्यं हिमवतः पादं मणिमन्तं च पर्वतम् ।
ज्योतिर्भिश्च समाकीर्णं सिद्धचारणसेवितम् ॥ २४

पवित्र हिमालयके शिखर तथा तेजःपुञ्जसे व्याप्त ए सिद्धों और चारणोंसे सेवित मणिमान् पर्वतको भी देखा ॥२४

वायुवेगगतिः पार्थः खं भेजे सहकेशवः ।
केशवेन गृहीतः स दक्षिणे विभुना भुजे ॥ २५

उस समय अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णके साथ वायुवे समान तीव्रगतिसे आकाशमें बहुत ऊँचे उठ गये । भगव केशवने उनकी दाहिनी बाँह पकड़ रक्खी थी ॥ २५

प्रेक्षमाणो बहून् भावाञ्जगामाद्भुतदर्शनान् ।
उदीच्यां दिशि धर्मात्मा सोऽपश्यच्छ्वेतपर्वतम् ॥२६

तत्पश्चात् धर्मात्मा अर्जुनने अद्भुत दिखायी देने बहुत-से पदार्थोंको देखते हुए क्रमशः उत्तर दिशामें जा श्वेत पर्वतका दर्शन किया ॥ २६ ॥

कुबेरस्य विहारे च नलिनीं पद्मभूषिताम् ।
सरिच्छ्रेष्ठां च तां गङ्गां वीक्षमाणो बहूदकाम् ॥ २७

इसके बाद उन्होंने कुबेरके उद्यानमें कमलोंसे विभू सरोवर तथा अगाध जलराशिसे भरी हुई सरिताओंमें गङ्गाका अवलोकन किया ॥ २७ ॥

सदा पुष्पफलैर्वृक्षैरुपेतां स्फटिकोपलाम् ।
सिंहव्याघ्रसमाकीर्णां नानामृगसमाकुलाम् ॥ २८

गङ्गाके तटपर स्फटिकमणिमय पत्थर सुशोभित हो थे । सदा फूल और फलोंसे भरे हुए वृक्षसमूह वहाँकी शो बढ़ा रहे थे । गङ्गाके उस तटप्रान्तमें बहुत-से सिंह व्याघ्र विचरण करते थे । नाना प्रकारके मृग वहाँ ओर भरे हुए थे ॥ २८ ॥

पुण्याश्रमवतीं रम्यां मनोज्ञाण्डजसेविताम् ।
मन्दरस्य प्रदेशांश्च किन्नरोद्गीतनादितान् ॥ २९

अनेक पवित्र आश्रमोंसे युक्त और मनोहर पक्षि सेवित रमणीय गङ्गानदीका दर्शन करते हुए आगे बढ़ने उन्हें मन्दराचलके प्रदेश दिखायी दिये, जो किन्न उच्चस्वरसे गाये हुए मधुर गीतोंसे मुखरित हो रहे थे ॥२

हेमरूप्यमयैः शृङ्गैर्नानौषधिविदीपितान् ।
तथा मन्दारवृक्षैश्च पुष्पितैरुपशोभितान् ॥ ३०

सोने और चाँदीके शिखर तथा फूलोंसे भरे हु पारिजातके वृक्ष उन पर्वतीय प्रान्तोंकी शोभा बढ़ा रहे तथा भाँति-भाँतिकी तेजोमयी ओषधियाँ वहाँ अपना प्रक फैला रही थीं ॥ ३० ॥

स्निग्धाञ्जनचयाकारं सम्प्राप्तः कालपर्वतम् ।
ब्रह्मतुङ्गं नदीश्चान्यास्तथा जनपदानपि ॥ ३१

वे क्रमशः आगे बढ़ते हुए स्निग्ध कज्जलराशिके स आकारवाले काल पर्वतके समीप जा पहुँचे ।



अर्जुनका स्वप्नदर्शन

ब्रह्मतुंग पर्वत, अन्यान्य नदियों तथा बहुत-से जनपदोंको भी उन्होंने देखा ॥ ३१ ॥

स तुङ्गं शतशृङ्गं च शर्यातिवनमेव च ।
पुण्यमश्वशिरःस्थानं स्थानमाथर्वणस्य च ॥ ३२ ॥
वृषदंशं च शैलेन्द्रं महामन्दरमेव च ।
अप्सरोभिः समाकीर्णं किन्नरैश्चोपशोभितम् ॥ ३३ ॥

तदनन्तर क्रमशः उच्चतम शतशृङ्ग, शर्यातिवन, पवित्र अश्वशिरःस्थान, आथर्वण मुनिका स्थान और गिरिराज वृषदंशका अवलोकन करते हुए वे महा-मन्दराचलपर जा पहुँचे, जो अप्सराओंसे व्याप्त और किन्नरोंसे सुशोभित था ॥ ३२–३३ ॥

तस्मिञ्शैले व्रजन् पार्थः सकृष्णः समवैक्षत ।
शुभैः प्रस्रवणैर्जुष्टां हेमधातुविभूषिताम् ॥ ३४ ॥
चन्द्ररश्मिप्रकाशाङ्गीं पृथिवीं पुरमालिनीम् ।

उस पर्वतके ऊपरसे जाते हुए श्रीकृष्णसहित अर्जुनने नीचे देखा कि नगरों एवं गाँवोंके समुदायसे सुशोभित, सुवर्णमय धातुओंसे विभूषित तथा सुन्दर झरनोंसे युक्त पृथ्वीके सम्पूर्ण अङ्ग चन्द्रमाकी किरणोंसे प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ३४½ ॥

समुद्रांश्चाद्भुताकारानपश्यद् बहुलाकरान् ॥ ३५ ॥
वियद् द्यां पृथिवीं चैव तथा विष्णुपदं व्रजन् ।
विस्मितः सह कृष्णेन क्षिप्तो बाण इवाभ्यगात् ॥ ३६ ॥

बहुत-से रत्नोंकी खानोंसे युक्त समुद्र भी अद्भुत आकारमें दृष्टिगोचर हो रहे थे। इस प्रकार पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाशका एक साथ दर्शन करके आश्चर्यचकित हुए अर्जुन श्रीकृष्णके साथ विष्णुपद (उच्चतम आकाश) में यात्रा करने लगे। वे धनुषसे चलाये हुए बाणके समान आगे बढ़ रहे थे ॥ ३५-३६ ॥

ग्रहनक्षत्रसोमानां सूर्याग्न्योश्च समत्विषम् ।
अपश्यत तदा पार्थो ज्वलन्तमिव पर्वतम् ॥ ३७ ॥

तदनन्तर कुन्तीकुमार अर्जुनने एक पर्वतको देखा, जो अपने तेजसे प्रज्वलित-सा हो रहा था। ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य और अग्निके समान उसकी प्रभा सब ओर फैल रही थी ॥ ३७ ॥

समासाद्य तु तं शैलं शैलाग्रे समवस्थितम् ।
तपोनित्यं महात्मानमपश्यद् वृषभध्वजम् ॥ ३८ ॥

उस पर्वतपर पहुँचकर अर्जुनने उसके एक शिखरपर खड़े हुए नित्य तपस्यापरायण परमात्मा भगवान् वृषभध्वजका दर्शन किया ॥ ३८ ॥

सहस्रमिव सूर्याणां दीप्यमानं स्वतेजसा ।
शूलिनं जटिलं गौरं वल्कलाजिनवाससम् ॥ ३९ ॥

वे अपने तेजसे सहस्रों सूर्योंके समान प्रकाशित हो रहे थे। उनके हाथमें त्रिशूल, मस्तकपर जटा और श्रीअङ्गोंपर वल्कल एवं मृगचर्मके वस्त्र शोभा पा रहे थे। उनकी कान्ति गौरवर्णकी थी ॥ ३९ ॥

नयनानां सहस्रैश्च विचित्राङ्गं महौजसम् ।
पार्वत्या सहितं देवं भूतसंघैश्च भास्वरैः ॥ ४० ॥

सहस्रों नेत्रोंसे युक्त उनके श्रीविग्रहकी विचित्र शोभा हो रही थी। वे तेजस्वी महादेव अपनी धर्मपत्नी पार्वतीजीके साथ विराजमान थे और तेजोमय शरीरवाले भूतोंके समुदाय उनकी सेवामें उपस्थित थे ॥ ४० ॥

गीतवादित्रसंनादैर्हास्यलास्यसमन्वितम् ।
वल्गितास्फोटितोत्कुष्टैः पुण्यैर्गन्धैश्च सेवितम् ॥ ४१ ॥

उनके सम्मुख गीतों और वाद्योंकी मधुर ध्वनि हो रही थी। हास्य-लास्य (नृत्य) का प्रदर्शन किया जा रहा था। प्रमथगण उछल-कूदकर बाहें फैलाकर और उच्चस्वरसे बोल-बोलकर अपनी कलाओंसे भगवान्‌का मनोरंजन करते थे। उनकी सेवामें पवित्र, सुगन्धित पदार्थ प्रस्तुत किये गये थे ॥

स्तूयमानं स्तवैर्दिव्यैर्ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः ।
गोप्तारं सर्वभूतानामिष्वासधरमच्युतम् ॥ ४२ ॥

ब्रह्मवादी महर्षिगण दिव्य स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति कर रहे थे। अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले वे समस्त प्राणियोंके रक्षक भगवान् शिव धनुष धारण किये हुए (अद्भुत शोभा पा रहे) थे ॥ ४२ ॥

वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा जगाम शिरसा क्षितिम् ।
पार्थेन सह धर्मात्मा गृणन् ब्रह्म सनातनम् ॥ ४३ ॥

अर्जुनसहित धर्मात्मा वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने उन्हें देखते ही वहाँकी पृथ्वीपर माथा टेककर प्रणाम किया और उन सनातन ब्रह्मस्वरूप भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे ॥

लोकादिं विश्वकर्माणमजमीशानमव्ययम् ।
मनसः परमं योनिं खं वायुं ज्योतिषां निधिम् ॥ ४४ ॥
स्रष्टारं वारिधाराणां भुवश्च प्रकृतिं पराम् ।
देवदानवयक्षाणां मानवानां च साधनम् ॥ ४५ ॥
योगानां च परं धाम दृष्टं ब्रह्मविदां निधिम् ।
चराचरस्य स्रष्टारं प्रतिहर्तारमेव च ॥ ४६ ॥
कालकोपं महात्मानं शक्रसूर्यगुणोदयम् ।
ववन्दे तं तदा कृष्णो वाङ्मनोबुद्धिकर्मभिः ॥ ४७ ॥

वे जगत्‌के आदि कारण, लोकस्रष्टा, अजन्मा, ईश्वर, अविनाशी, मनकी उत्पत्तिके प्रधान कारण, आकाश एवं वायुस्वरूप, तेजके आश्रय, जलकी सृष्टि करनेवाले, पृथ्वीके भी परम कारण, देवताओं, दानवों, यक्षों तथा मनुष्योंके भी प्रधान कारण, सम्पूर्ण योगोंके परम आश्रय, ब्रह्मवेत्ताओंकी

प्रत्यक्ष निधि, चराचर जगत्की सृष्टि और संहार करनेवाले तथा इन्द्रके ऐश्वर्य आदि और सूर्यदेवके प्रताप आदि गुणोंको प्रकट करनेवाले परमात्मा थे। उनके क्रोधमें कालका निवास था। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने मन, वाणी, बुद्धि और क्रियाओंद्वारा उनकी वन्दना की ॥ ४४–४७ ॥

यं प्रपद्यन्ति विद्वांसः सूक्ष्माध्यात्मपदैषिणः ।
तमजं कारणात्मानं जग्मतुः शरणं भवम् ॥ ४८ ॥

सूक्ष्म अध्यात्मपदकी अभिलाषा रखनेवाले विद्वान् जिनकी शरण लेते हैं, उन्हीं कारणस्वरूप अजन्मा भगवान् शिवकी शरणमें श्रीकृष्ण और अर्जुन भी गये ॥ ४८ ॥

अर्जुनश्चापि तं देवं भूयो भूयोऽभ्यवन्दत ।
ज्ञात्वा तं सर्वभूतादिं भूतभव्यभवोद्भवम् ॥ ४९ ॥

अर्जुनने भी उन्हें समस्त भूतोंका आदि कारण और भूत, भविष्य एवं वर्तमान जगत्का उत्पादक जानकर बारंबार उन महादेवजीके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ४९ ॥

ततस्तावागतौ दृष्ट्वा नरनारायणावुभौ ।
सुप्रसन्नमनाः शर्वः प्रोवाच प्रहसन्निव ॥ ५० ॥

उन दोनों नर और नारायणको वहाँ आया देख भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर हँसते हुए-से बोले—॥

स्वागतं वो नरश्रेष्ठावुत्तिष्ठेतां गतक्लमौ ।
किं च वामीप्सितं वीरौ मनसः क्षिप्रमुच्यताम् ॥ ५१ ॥

'नरश्रेष्ठो ! तुम दोनोंका स्वागत है। उठो। तुम्हारा श्रम दूर हो। वीरो ! तुम दोनोंके मनकी अभीष्ट वस्तु क्या है ? यह शीघ्र बताओ ॥ ५१ ॥

येन कार्येण सम्प्राप्तौ युवां तत् साधयामि किम् ।
व्रियतामात्मनः श्रेयस्तत् सर्वं प्रददानि वाम् ॥ ५२ ॥

'तुम दोनों जिस कार्यसे यहाँ आये हो, वह क्या है ? मैं उसे सिद्ध कर दूँगा। अपने लिये कल्याणकारी वस्तुको माँगो। मैं तुम दोनोंको सब कुछ दे सकता हूँ' ॥ ५२ ॥

ततस्तद् वचनं श्रुत्वा प्रत्युत्थाय कृताञ्जली ।
वासुदेवार्जुनौ शर्वं तुष्टुवाते महामती ॥ ५३ ॥
भक्त्या स्तवेन दिव्येन महात्मानावनिन्दितौ ॥ ५४ ॥

भगवान् शंकरकी यह बात सुनकर अनिन्दित महात्मा परम बुद्धिमान् श्रीकृष्ण और अर्जुन हाथ जोड़कर खड़े हो गये और दिव्य स्तोत्रद्वारा भक्तिभावसे उन भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे ॥ ५३-५४ ॥

कृष्णार्जुनावूचतुः

नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च ।
पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने ॥ ५५ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन बोले—भव (सबकी उत्पत्ति करनेवाले), शर्व (संहारकारी), रुद्र[1] (दुःख दूर करनेवाले), वरदाता, पशुपति (जीवोंके पालक), सदा उग्ररूपमें रहनेवाले और जटाजूटधारी भगवान् शिवको नमस्कार है ॥ ५५ ॥

महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय च शान्तये ।
ईशानाय मखघ्नाय नमोऽस्त्वन्धकघातिने ॥ ५६ ॥

महान् देवता, भयंकर रूपधारी, तीन नेत्र धारण करनेवाले, शान्तिस्वरूप, सबका शासन करनेवाले, दक्ष-यज्ञनाशक तथा अन्धकासुरका विनाश करनेवाले भगवान् शंकरको प्रणाम है ॥ ५६ ॥

कुमारगुरवे तुभ्यं नीलग्रीवाय वेधसे ।
पिनाकिने हविष्याय सत्याय विभवे सदा ॥ ५७ ॥

प्रभो ! आप कुमार कार्तिकेयके पिता, कण्ठमें नील चिह्न धारण करनेवाले, लोकस्रष्टा, पिनाकधारी, हविष्यके अधिकारी, सत्यस्वरूप और सर्वत्र व्यापक हैं, आपको सदैव नमस्कार है ॥ ५७ ॥

विलोहिताय धूम्राय व्याधायानपराजिते ।
नित्यनीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यचक्षुषे ॥ ५८ ॥
हन्त्रे गोप्त्रे त्रिनेत्राय व्याधाय वसुरेतसे ।
अचिन्त्यायाम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च ॥ ५९ ॥
वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे ।
तप्यमानाय सलिले ब्रह्मण्यायाजिताय च ॥ ६० ॥
विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते ।
नमो नमस्ते सेव्याय भूतानां प्रभवे सदा ॥ ६१ ॥

विशेष लोहित एवं धूम्रवर्णवाले, मृगव्याधस्वरूप, समस्त प्राणियोंको पराजित करनेवाले, सर्वदा नीलकेश धारण करनेवाले, त्रिशूलधारी, दिव्यलोचन, संहारक, पालक, त्रिनेत्रधारी, पापरूपी मृगोंके बधिक, हिरण्यरेता (अग्नि), अचिन्त्य, अम्बिकापति, सम्पूर्ण देवताओंद्वारा प्रशंसित, वृषभ-चिह्नसे युक्त ध्वजा धारण करनेवाले, मुण्डित मस्तक, जटाधारी, ब्रह्मचारी, जलमें तप करनेवाले, ब्राह्मणभक्त, अपराजित, विश्वात्मा, विश्वस्रष्टा, विश्वको व्याप्त करके स्थित, सबके सेवन करनेयोग्य तथा सदा समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिके कारणभूत आप भगवान् शिवको बारंबार नमस्कार है। ५८-६१ ॥

ब्रह्मवक्त्राय सर्वाय शङ्कराय शिवाय च ।
नमोऽस्तु वाचस्पतये प्रजानां पतये नमः ॥ ६२ ॥

ब्राह्मण जिनके मुख हैं, उन सर्वस्वरूप कल्याणकारी भगवान् शिवको नमस्कार है। वाणीके अधीश्वर और प्रजाओंके पालक आपको नमस्कार है ॥ ६२ ॥

नमो विश्वस्य पतये महतां पतये नमः ।
नमः सहस्रशिरसे सहस्रभुजमृत्यवे ॥ ६३ ॥
सहस्रनेत्रपादाय नमोऽसंख्येयकर्मणे ।

[1] १. रुदुःखं तद् द्रावयति इति रुद्रः ।

विश्वके स्वामी और महापुरुषोंके पालक भगवान् शिवको नमस्कार है, जिनके सहस्रों सिर और सहस्रों भुजाएँ हैं, जो मृत्यु-स्वरूप हैं, जिनके नेत्र और पैर भी सहस्रोंकी संख्यामें हैं तथा जिनके कर्म असंख्य हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है ६३½

नमो हिरण्यवर्णाय हिरण्यकवचाय च।
भक्तानुकम्पिने नित्यं सिध्यतां नो वरः प्रभो ॥ ६४ ॥

सुवर्णके समान जिनका रंग है, जो सुवर्णमय कवच धारण करते हैं, उन आप भक्तवत्सल भगवान्को मेरा नित्य नमस्कार है। प्रभो ! हमारा अभीष्ट वर सिद्ध हो ॥ ६४ ॥

संजय उवाच

एवं स्तुत्वा महादेवं वासुदेवः सहार्जुनः।
प्रसादयामास भवं तदा ह्यस्त्रोपलब्धये ॥ ६५ ॥

संजय कहते हैं—इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके उस समय अर्जुनसहित भगवान् श्रीकृष्णने पाशुपतास्त्र-की प्राप्तिके लिये भगवान् शङ्करको प्रसन्न किया ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनस्वप्ने अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनस्वप्नविषयक अस्सीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८० ॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

अर्जुनको स्वप्नमें ही पुनः पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति

संजय उवाच

ततः पार्थः प्रसन्नात्मा प्राञ्जलिर्वृषभध्वजम्।
ददर्शोत्फुल्लनयनः समस्तं तेजसां निधिम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर कुन्तीकुमार अर्जुनने प्रसन्नचित्त हो हाथ जोड़कर समस्त तेजोंके भण्डार भगवान् वृषभध्वजका हर्षोत्फुल्ल नेत्रोंसे दर्शन किया ॥ १ ॥

तं चोपहारं सुकृतं नैशं नैत्यकमात्मना।
ददर्श त्र्यम्बकाभ्याशे वासुदेवनिवेदितम् ॥ २ ॥

उन्होंने अपनेद्वारा समर्पित किये हुए रात्रिकालके उस नैत्यिक उपहारको, जिसे श्रीकृष्णको निवेदित किया था, भगवान् त्रिनेत्रधारी शिवके समीप रक्खा हुआ देखा ॥ २ ॥

ततोऽभिपूज्य मनसा कृष्णं शर्वं च पाण्डवः।
इच्छाम्यहं दिव्यमस्त्रमित्यभाषत शङ्करम् ॥ ३ ॥

तब पाण्डुपुत्र अर्जुनने मन-ही-मन भगवान् श्रीकृष्ण और शिवकी पूजा करके भगवान् शङ्करसे कहा—'प्रभो ! मैं आपसे दिव्य अस्त्र प्राप्त करना चाहता हूँ' ॥ ३ ॥

ततः पार्थस्य विज्ञाय वरार्थे वचनं तदा।
वासुदेवार्जुनौ देवः स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ४ ॥

उस समय अर्जुनका वर-प्राप्तिके लिये वह वचन सुनकर महादेवजी मुसकराने लगे और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनसे बोले—॥

स्वागतं वां नरश्रेष्ठौ विज्ञातं मनसेप्सितम्।
येन कामेन सम्प्राप्तौ भवद्भ्यां तं ददाम्यहम् ॥ ५ ॥

'नरश्रेष्ठ ! तुम दोनोंका स्वागत है। तुम्हारा मनोरथ मुझे विदित है। तुम दोनों जिस कामनासे यहाँ आये हो, उसे मैं तुम्हें दे रहा हूँ ॥ ५ ॥

सरोऽमृतमयं दिव्यमभ्याशे शत्रुसूदनौ।
तत्र मे तद् धनुर्दिव्यं शरश्च निहितः पुरा ॥ ६ ॥
येन देवारयः सर्वे मया युधि निपातिताः।
तत आनीयतां कृष्णौ सशरं धनुरुत्तमम् ॥ ७ ॥

'शत्रुसूदन वीरो ! यहाँ पास ही दिव्य अमृतमय सरोवर है, वहीं पूर्वकालमें मेरा वह दिव्य धनुष और बाण रक्खा गया था, जिसके द्वारा मैंने युद्धमें सम्पूर्ण देव-शत्रुओंको मार गिराया था। कृष्ण ! तुम दोनों उस सरोवरसे बाणसहित वह उत्तम धनुष ले आओ' ॥ ६-७ ॥

तथेत्युक्त्वा तु तौ वीरौ सर्वपारिषदैः सह।
प्रस्थितौ तत्सरो दिव्यं दिव्यैश्वर्यशतैर्युतम् ॥ ८ ॥
निर्दिष्टं यद् वृषाङ्केण पुण्यं सर्वार्थसाधकम्।
तौ जग्मतुरसम्भ्रान्तौ नरनारायणावृषी ॥ ९ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर वे दोनों वीर भगवान् शङ्कर-के पार्षदगणोंके साथ सैकड़ों दिव्य ऐश्वर्योंसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाले उस पुण्यमय दिव्य सरोवरकी ओर प्रस्थित हुए, जिसकी ओर जानेके लिये महादेवजीने स्वयं ही संकेत किया था। वे दोनों नर-नारायण ऋषि बिना किसी घबराहटके वहाँ जा पहुँचे ॥ ८-९ ॥

ततस्तौ तत् सरो गत्वा सूर्यमण्डलसंनिभम्।
नागमन्तर्जले घोरं ददृशातेऽर्जुनाच्युतौ ॥ १० ॥

उस सरोवरके तटपर पहुँचकर अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनोंने जलके भीतर एक भयंकर नाग देखा, जो सूर्यमण्डलके समान प्रकाशित हो रहा था ॥ १० ॥

द्वितीयं चापरं नागं सहस्रशिरसं वरम्।
वमन्तं विपुला ज्वाला ददृशातेऽग्निवर्चसम् ॥ ११ ॥

वहीं उन्होंने अग्निके समान तेजस्वी और सहस्र फणोंसे युक्त दूसरा श्रेष्ठ नाग भी देखा, जो अपने मुखसे आगकी प्रचण्ड ज्वालाएँ उगल रहा था ॥ ११ ॥

ततः कृष्णश्च पार्थश्च संस्पृश्याम्भः कृताञ्जली।
तौ नागावुपतस्थाते नमस्यन्तौ वृषध्वजम् ॥ १२ ॥

तब श्रीकृष्ण और अर्जुन जलसे आचमन करके हाथ जोड़ भगवान् शङ्करको प्रणाम करते हुए उन दोनों नागोंके निकट खड़े हो गये ॥ १२ ॥

गृणन्तौ वेदविद्वांसौ तद् ब्रह्म शतरुद्रियम् ।
अप्रमेयं प्रणमतो गत्वा सर्वात्मना भवम् ॥ १३ ॥

वे दोनों ही वेदोंके विद्वान् थे। अतः उन्होंने शतरुद्री मन्त्रोंका पाठ करते हुए साक्षात् ब्रह्मस्वरूप अप्रमेय शिवकी सब प्रकारसे शरण लेकर उन्हें प्रणाम किया ॥ १३ ॥

ततस्तौ रुद्रमाहात्म्याद्धित्वा रूपं महोरगौ ।
धनुर्बाणश्च शत्रुघ्नं तद् द्वन्द्वं समपद्यत ॥ १४ ॥

तदनन्तर भगवान् शङ्करकी महिमासे वे दोनों महानाग अपने उस रूपको छोड़कर दो शत्रुनाशक धनुष-बाणके रूपमें परिणत हो गये ॥ १४ ॥

तौ तज्जगृहतुः प्रीतौ धनुर्बाणं च सुप्रभम् ।
आजह्रतुर्महात्मानौ ददतुश्च महात्मने ॥ १५ ॥

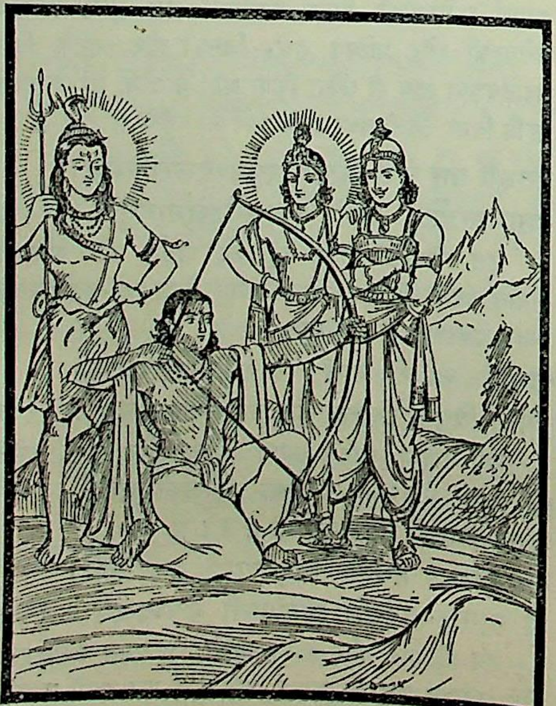
उस समय अत्यन्त प्रसन्न होकर महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनने उस प्रकाशमान धनुष और बाणको हाथमें ले लिया । फिर वे उन्हें महादेवजीके पास ले आये और उन्हीं महात्माके हाथोंमें अर्पित कर दिया ॥ १५ ॥

ततः पार्श्वाद् वृषाङ्कस्य ब्रह्मचारी न्यवर्तत ।
पिङ्गाक्षस्तपसः क्षेत्रं बलवान् नीललोहितः ॥ १६ ॥

तब भगवान् शङ्करके पार्श्वभागसे एक ब्रह्मचारी प्रकट हुआ, जो पिङ्गल नेत्रोंसे युक्त, तपस्याका क्षेत्र, बलवान् तथा नील-लोहित वर्णका था ॥ १६ ॥

स तद् गृह्य धनुःश्रेष्ठं तस्थौ स्थानं समाहितः ।
विचकर्षाथ विधिवत् सशरं धनुरुत्तमम् ॥ १७ ॥

वह एकाग्रचित्त हो उस श्रेष्ठ धनुषको हाथमें लेकर एक धनुर्धरको जैसे खड़ा होना चाहिये, वैसे खड़ा हुआ । फिर उसने बाणसहित उस उत्तम धनुषको विधिपूर्वक खींचा ।१७।



तस्य मौर्वीं च मुष्टिं च स्थानं चालक्ष्य पाण्डवः ।
श्रुत्वा मन्त्रं भवप्रोक्तं जग्राहाचिन्त्यविक्रमः ॥ १८ ॥

उस समय अचिन्त्य पराक्रमी पाण्डुपुत्र अर्जुनने उसकी मुट्ठीसे धनुष पकड़ना, धनुषकी डोरीको खींचना और विशेष प्रकारसे उसका खड़ा होना—इन सब बातोंकी ओर लक्ष्य रखते हुए भगवान् शङ्करके द्वारा उच्चारित मन्त्रको सुनकर मनसे ग्रहण कर लिया ॥ १८ ॥

स सरस्येव तं बाणं मुमोचातिबलः प्रभुः ।
चकार च पुनर्वीरस्तस्मिन् सरसि तद् धनुः ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् अत्यन्त बलशाली वीर भगवान् शिवने उस बाणको उसी सरोवरमें छोड़ दिया । फिर उस धनुषको भी वहीं डाल दिया ॥ १९ ॥

ततः प्रीतं भवं ज्ञात्वा स्मृतिमानर्जुनस्तदा ।
वरमारण्यके दत्तं दर्शनं शङ्करस्य च ॥ २० ॥
मनसा चिन्तयामास तन्मे सम्पद्यतामिति ।

तब स्मरणशक्तिसे सम्पन्न अर्जुनने भगवान् शङ्करको अत्यन्त प्रसन्न जानकर वनवासके समय जो भगवान् शङ्करका दर्शन और वरदान प्राप्त हुआ था, उसका मन-ही-मन चिन्तन किया और यह इच्छा की कि मेरा वह मनोरथ पूर्ण हो ॥२०½॥

तस्य तन्मतमाज्ञाय प्रीतः प्रादाद् वरं भवः ॥ २१ ॥
तच्च पाशुपतं घोरं प्रतिज्ञायाश्च पारणम् ।

उनके इस अभिप्रायको जानकर भगवान् शङ्करने प्रसन्न हो वरदानके रूपमें वह घोर पाशुपत अस्त्र, जो उनकी प्रतिज्ञाकी पूर्ति करानेवाला था, दे दिया ॥ २१½ ॥

ततः पाशुपतं दिव्यमवाप्य पुनरीश्वरात् ॥ २२ ॥
संहृष्टरोमा दुर्धर्षः कृतं कार्यममन्यत ।

भगवान् शङ्करसे उस दिव्य पाशुपतास्त्रको पुनः प्राप्त करके दुर्धर्ष वीर अर्जुनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और उन्हें यह विश्वास हो गया कि अब मेरा कार्य पूर्ण हो जायगा॥

ववन्दतुश्च संहृष्टौ शिरोभ्यां तं महेश्वरम् ॥ २३ ॥
अनुज्ञातौ क्षणे तस्मिन् भवेनार्जुनकेशवौ ।
प्राप्तौ स्वशिविरं वीरौ मुदा परमया युतौ ॥ २४ ॥

फिर तो अत्यन्त हर्षमें भरे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों महापुरुषोंने मस्तक नवाकर भगवान् महेश्वरको प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले उसी क्षण वे दोनों वीर बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने शिविरको लौट आये ॥ २३-२४ ॥

तथा भवेनानुमतौ महासुरनिघातिना ।
इन्द्राविष्णू यथा प्रीतौ जम्भस्य वधकाङ्क्षिणौ ॥ २५ ॥

जैसे पूर्वकालमें जम्भासुरके वधकी इच्छा रखनेवाले इन्द्र और विष्णु महासुरविनाशक भगवान् शङ्करकी अनुमति पाकर प्रसन्नतापूर्वक लौटे थे, उसी प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुन भी आनन्दित होकर अपने शिबिरमें आये ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनस्य पुनः पाशुपतास्त्रप्राप्तौ एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनको पुनः पाशुपतास्त्रकी प्राप्तिविषयक इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका प्रातःकाल उठकर स्नान और नित्यकर्म आदिसे निवृत्त हो ब्राह्मणोंको दान देना, वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो सिंहासनपर बैठना और वहाँ पधारे हुए भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करना

संजय उवाच

तयोः संवदतोरेवं कृष्णदारुकयोस्तथा।
सात्यगाद् रजनी राजन्नथ राजान्वबुध्यत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! इधर श्रीकृष्ण और दारुकमें पूर्वोक्त प्रकारसे बातें हो ही रही थीं कि वह रात बीत गयी। दूसरी ओर राजा युधिष्ठिर भी जाग गये ॥ १ ॥

पठन्ति पाणिस्वनिका मागधा मधुपर्किकाः।
वैतालिकाश्च सूताश्च तुष्टुवुः पुरुषर्षभम् ॥ २ ॥

उस समय हाथसे ताली देकर गीत गानेवाले तथा माङ्गलिक वस्तुओंको प्रस्तुत करनेवाले सूत, मागध और वैतालिक जन पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिरकी स्तुति करने लगे ॥ २ ॥

नर्तकाश्चाप्यनृत्यन्त जगुर्गीतानि गायकाः।
कुरुवंशस्तवार्थानि मधुरं रक्तकण्ठिनः ॥ ३ ॥

नर्तक नाचने और रागयुक्त कण्ठवाले गायक कुरुकुलकी स्तुतिसे युक्त मधुर गीत गाने लगे ॥ ३ ॥

मृदङ्गा झर्झरा भेर्यः पणवानकगोमुखाः।
आडम्बराश्च शङ्खाश्च दुन्दुभ्यश्च महास्वनाः ॥ ४ ॥
एवमेतानि सर्वाणि तथान्यान्यपि भारत।
वादयन्ति सुसंहृष्टाः कुशलाः साधुशिक्षिताः ॥ ५ ॥

भारत! सुशिक्षित एवं कुशल वादक अत्यन्त हर्षमें भरकर मृदङ्ग, झाँझ, भेरी, पणव, आनक, गोमुख, आडम्बर, शङ्ख और बड़े जोरसे बजनेवाली दुन्दुभियाँ तथा दूसरे प्रकारके वाद्योंको भी बजाने लगे ॥ ४-५ ॥

स मेघसमनिर्घोषो महाञ्शब्दोऽस्पृशद् दिवम्।
पार्थिवप्रवरं सुप्तं युधिष्ठिरमबोधयत् ॥ ६ ॥

वाद्योंका वह मेघके समान गम्भीर एवं महान् घोष आकाशतक फैल गया। उस ध्वनिने सोये हुए नृपश्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिरको जगा दिया ॥ ६ ॥

प्रतिबुद्धः सुखं सुप्तो महार्हे शयनोत्तमे।
उत्थायावश्यकार्यार्थं ययौ स्नानगृहं नृपः ॥ ७ ॥

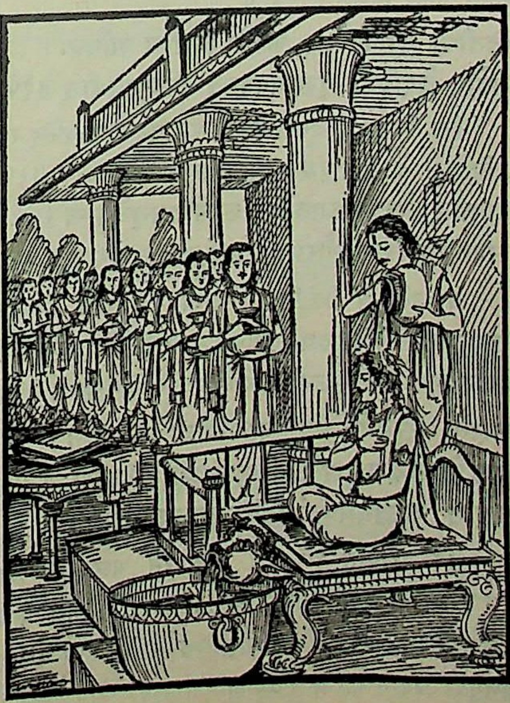
बहुमूल्य एवं उत्तम शय्यापर सुखपूर्वक सोकर जगे हुए राजा युधिष्ठिर वहाँसे उठकर आवश्यक कार्यके लिये स्नान करने गये ॥ ७ ॥

ततः शुक्लाम्बराः स्नातास्तरुणाः शतमष्ट च।
स्नापकाः काञ्चनैः कुम्भैः पूर्णैः समुपतस्थिरे ॥ ८ ॥

वहाँ स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण किये हुए एक सौ आठ युवक सोनेके घड़ोंमें जल भरकर उन्हें नहलानेके लिये उपस्थित हुए ॥ ८ ॥

भद्रासने सूपविष्टः परिधायाम्बरं लघु।
सस्नौ चन्दनसंयुक्तैः पानीयैरभिमन्त्रितैः ॥ ९ ॥

उस समय एक हलका वस्त्र पहनकर राजा युधिष्ठिर भद्रासन (चौकी) पर बैठ गये और चन्दनयुक्त मन्त्रपूत जलसे स्नान करने लगे ॥ ९ ॥



उत्सादितः कषायेण बलवद्भिः सुशिक्षितैः।
आप्लुतः साधिवासेन जलेन स सुगन्धिना ॥ १० ॥

सबसे पहले बलवान् तथा सुशिक्षित पुरुषोंने सर्वौषधि आदिद्वारा तैयार किये हुए उबटनसे उनके शरीरको अच्छी तरह मला, फिर उन्होंने अधिवासित एवं सुगन्धित जलसे स्नान किया ॥ १० ॥

राजहंसनिभं प्राप्य उष्णीषं शिथिलार्पितम्।
जलक्षयनिमित्तं वै वेष्टयामास मूर्धनि ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् राजहंसके समान सफेद ढीली-ढाली पगड़ी लेकर माथेका जल सुखानेके लिये उसे मस्तकपर लपेट लिया ॥ ११ ॥

हरिणा चन्दनेनाङ्गमुपलिप्य महाभुजः।
स्रग्वी चाक्लिष्टवसनः प्राङ्मुखः प्राञ्जलिः स्थितः॥ १२ ॥

फिर वे महाबाहु युधिष्ठिर अपने सारे अङ्गोंमें हरिचन्दनका अनुलेपन करके नूतन वस्त्र और पुष्पमाला धारण किये हाथ जोड़े पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये ॥ १२ ॥

जजाप जप्यं कौन्तेयः सतां मार्गमनुष्ठितः।
तत्राग्निशरणं दीप्तं प्रविवेश विनीतवत् ॥ १३ ॥

सत्पुरुषोंके मार्गपर चलनेवाले कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने जपने योग्य गायत्री मन्त्रका जप किया और प्रज्वलित अग्निसे प्रकाशित अग्निशालामें विनीतभावसे प्रवेश किया ॥ १३ ॥

समिद्भिः सपवित्राभिरग्निमाहुतिभिस्तथा।
मन्त्रपूताभिरर्चित्वा निश्चक्राम गृहात् ततः ॥ १४ ॥

वहाँ पवित्री (कुशके दो पत्तों) सहित समिधाओं तथा मन्त्रपूत आहुतियोंसे अग्निदेवकी पूजा करके वे उस अग्निहोत्र-गृहसे बाहर निकले ॥ १४ ॥

द्वितीयां पुरुषव्याघ्रः कक्ष्यां निर्गम्य पार्थिवः।
ततो वेदविदो वृद्धानपश्यद् ब्राह्मणर्षभान् ॥ १५ ॥

फिर शिबिरकी दूसरी ड्योढ़ी पार करके पुरुषसिंह राजा युधिष्ठिरने वेदवेत्ता वृद्ध ब्राह्मणशिरोमणियोंको देखा ॥ १५ ॥

दान्तान् वेदव्रतस्नातान् स्नातानवभृथेषु च।
सहस्रानुचरान् सौरान् सहस्रं चाष्ट चापरान् ॥ १६ ॥

वे सबके-सब जितेन्द्रिय, वेदाध्ययनके व्रतमें निष्णात, यज्ञान्तस्नानसे पवित्र तथा सूर्यदेवके उपासक थे। वे संख्यामें एक हजार आठ थे और उनके साथ एक सहस्र अनुचर थे ॥ १६ ॥

अक्षतैः सुमनोभिश्च वाचयित्वा महाभुजः।
तान् द्विजान् मधुसर्पिर्भ्यां फलैः श्रेष्ठैः सुमङ्गलैः॥ १७ ॥
प्रादात् काञ्चनमेकैकं निष्कं विप्राय पाण्डवः।

तब महाबाहु पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने अक्षत-फूल देकर उन ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया और उनमेंसे प्रत्येक ब्राह्मणको मधु, घी एवं श्रेष्ठ माङ्गलिक फलोंके साथ एक-एक स्वर्णमुद्रा प्रदान की ॥ १७½ ॥

अलंकृतं चाश्वशतं वासांसीष्टाश्च दक्षिणाः ॥ १८ ॥
तथा गाः कपिला दोग्ध्रीः सवत्साः पाण्डुनन्दनः।
हेमशृङ्गा रौप्यखुरा दत्त्वा चक्रे प्रदक्षिणम् ॥ १९ ॥

इसके सिवा उन पाण्डुनन्दनने ब्राह्मणोंको सजे-सजाये सौ घोड़े, उत्तम वस्त्र, इच्छानुसार दक्षिणा और बछड़ों-सहित दूध देनेवाली बहुत-सी कपिला गौएँ दीं। उन गौओंके सींगोंमें सोने और खुरोंमें चाँदी मढ़े हुए थे। उन सबको देकर युधिष्ठिरने उन (गौओं एवं ब्राह्मणों)की परिक्रमा की ॥

स्वस्तिकान् वर्धमानांश्च नन्द्यावर्तांश्च काञ्चनान्।
माल्यं च जलकुम्भांश्च ज्वलितं च हुताशनम् ॥ २० ॥
पूर्णान्यक्षतपात्राणि रुचकं रोचनास्तथा।
स्वलंकृताः शुभाः कन्या दधिसर्पिर्मधूदकम् ॥ २१ ॥
मङ्गल्यान् पक्षिणश्चैव यच्चान्यदपि पूजितम्।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च कौन्तेयो बाह्यां कक्ष्यां ततोऽगमत् ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् सोनेके बने हुए स्वस्तिक, सिकोरे, बन्द मुँहवाले अर्घ्यपात्र, माला, जलसे भरे हुए कलश, प्रज्वलित अग्नि, अक्षतसे भरे हुए पूर्णपात्र, बिजौरा नीबू, गोरोचन, आभूषणोंसे विभूषित सुन्दरी कन्याएँ, दही, घी, मधु, जल, माङ्गलिक पक्षी तथा अन्यान्य भी जो प्रशस्त वस्तुएँ हैं, उन सबको देखकर और उनमेंसे कुछका स्पर्श करके कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने बाहरी ड्योढ़ीमें प्रवेश किया ॥ २०—२२ ॥

ततस्तस्यां महाबाहोस्तिष्ठतः परिचारकाः।
सौवर्णं सर्वतोभद्रं मुक्तावैदूर्यमण्डितम् ॥ २३ ॥
परार्ध्यास्तरणास्तीर्णं सोत्तरच्छदमृद्धिमत्।
विश्वकर्मकृतं दिव्यमुपजह्रुर्वरासनम् ॥ २४ ॥

उस ड्योढ़ीमें खड़े हुए महाबाहु युधिष्ठिरके सेवकोंने उनके लिये सोनेका बना हुआ एक सर्वतोभद्र नामक श्रेष्ठ आसन दिया, जिसमें मुक्ता और वैदूर्यमणि जड़ी हुई थी। उसपर बहुमूल्य बिछौना बिछा हुआ था। उसके ऊपर सुन्दर चादर बिछायी गयी थी। वह दिव्य एवं समृद्धिशाली सिंहासन साक्षात् विश्वकर्माका बनाया हुआ था ॥ २३-२४ ॥

तत्र तस्योपविष्टस्य भूषणानि महात्मनः।
उपाजह्रुर्महार्हाणि प्रेष्याः शुभ्राणि सर्वशः ॥ २५ ॥

वहाँ बैठे हुए महात्मा राजा युधिष्ठिरको उनके सेवकोंने सब प्रकारके उज्ज्वल एवं बहुमूल्य आभूषण भेंट किये ॥ २५ ॥

मुक्ताभरणवेषस्य कौन्तेयस्य महात्मनः।
रूपमासीन्महाराज द्विषतां शोकवर्धनम् ॥ २६ ॥

महाराज ! मुक्तामय आभूषणोंसे विभूषित वेशवाले महात्मा कुन्तीनन्दनका स्वरूप उस समय शत्रुओंका शोक बढ़ा रहा था ॥ २६ ॥

चामरैश्चन्द्ररश्म्याभैर्हेमदण्डैः सुशोभनैः ।
दोधूयमानैः शुशुभे विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ २७ ॥

चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेत तथा सुवर्णमय दण्ड-वाले सुन्दर शोभाशाली अनेक चँवर डुलाये जा रहे थे। उनसे राजा युधिष्ठिरकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसे बिजलियोंसे मेघ सुशोभित होता है ॥ २७ ॥

संस्तूयमानः सूतैश्च वन्द्यमानश्च वन्दिभिः ।
उपगीयमानो गन्धर्वैरास्ते स्म कुरुनन्दनः ॥२८॥

उस समय सूतगण स्तुति करते थे, वन्दीजन वन्दना कर रहे थे और गन्धर्वगण उनके सुयशके गीत गाते थे। इन सबसे घिरे हुए युधिष्ठिर वहाँ सिंहासनपर विराजमान थे।२८।

ततो मुहूर्तादासीत् स्यन्दनानां स्वनो महान् ।
नेमिघोषश्च रथिनां खुरघोषश्च वाजिनाम् ॥ २९॥

तदनन्तर दो ही घड़ीमें रथोंका महान् शब्द गूँज उठा। रथियोंके रथोंके पहियोंकी घरघराहट और घोड़ोंकी टापोंके शब्द सुनायी देने लगे ॥ २९ ॥

ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ।
नराणां पदशब्दैश्च कम्पतीव स्म मेदिनी ॥ ३०॥

हाथियोंके घंटोंकी घनघनाहट, शङ्खोंकी ध्वनि तथा पैदल चलनेवाले मनुष्योंके पैरोंकी धमकसे यह पृथ्वी काँपती-सी जान पड़ती थी ॥ ३० ॥

ततः शुद्धान्तमासाद्य जानुभ्यां भूतले स्थितः ।
शिरसा वन्दनीयं तमभिवाद्य जनेश्वरम् ॥ ३१ ॥
कुण्डली बद्धनिस्त्रिंशः संनद्धकवचो युवा ।
अभिप्रणम्य शिरसा द्वाःस्थो धर्मात्मजाय वै ॥ ३२ ॥
न्यवेदयद्धृषीकेशमुपयान्तं महात्मने ।

इसी समय कानोंमें कुण्डल पहने, कमरमें तलवार बाँधे और वक्षःस्थलपर कवच धारण किये एक तरुण द्वारपालने उस ड्योढ़ीके भीतर प्रवेश करके धरतीपर दोनों घुटने टेक दिये और वन्दनीय महाराज युधिष्ठिरको मस्तक नवाकर प्रणाम किया। इस प्रकार सिरसे प्रणाम करके उसने धर्मपुत्र महात्मा युधिष्ठिरको यह सूचना दी कि भगवान् श्रीकृष्ण पधार रहे हैं ॥ ३१-३२½ ॥

सोऽब्रवीत् पुरुषव्याघ्रः स्वागतेनैव माधवम् ॥३३॥
अर्घ्यं चैवासनं चास्मै दीयतां परमार्चितम् ।

तब पुरुषसिंह युधिष्ठिरने द्वारपालसे कहा—'तुम माधवको स्वागतपूर्वक ले आओ और उन्हें अर्घ्य तथा परम उत्तम आसन अर्पित करो' ॥ ३३½ ॥

ततः प्रवेश्य वार्ष्णेयमुपवेश्य वरासने ।
पूजयामास विधिवद् धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३४ ॥

तब द्वारपालने भगवान् श्रीकृष्णको भीतर ले आकर एक श्रेष्ठ आसनपर बैठा दिया। तत्पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिरने स्वयं ही विधिपूर्वक उनका पूजन किया ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि युधिष्ठिरसज्जतायां द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें युधिष्ठिरके सुसज्जित होनेसे सम्बन्ध रखनेवाला बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

अर्जुनकी प्रतिज्ञाको सफल बनानेके लिये युधिष्ठिरकी श्रीकृष्णसे प्रार्थना और श्रीकृष्णका उन्हें आश्वासन देना

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरो राजा प्रतिनन्द्य जनार्दनम् ।
उवाच परमप्रीतः कौन्तेयो देवकीसुतम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर कुन्तीकुमार राजा युधिष्ठिरने अत्यन्त प्रसन्न हो देवकीनन्दन जनार्दनका अभिनन्दन करके पूछा—॥ १ ॥

सुखेन रजनी व्युष्टा कच्चित् ते मधुसूदन ।
कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रसन्नानि तवाच्युत ॥ २ ॥

'मधुसूदन! क्या आपकी रात सुखपूर्वक बीती है? अच्युत! क्या आपकी सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियाँ प्रसन्न हैं?' ॥ २ ॥

वासुदेवोऽपि तद्युक्तं पर्यपृच्छद् युधिष्ठिरम् ।
ततश्च प्रकृतीः क्षत्ता न्यवेदयदुपस्थिताः ॥ ३ ॥

तब भगवान् श्रीकृष्णने भी उनसे समयोचित प्रश्न किये। तत्पश्चात् सेवकने आकर सूचना दी कि मन्त्री, सेना-पति आदि उपस्थित हैं ॥ ३ ॥

अनुज्ञातश्च राज्ञा स प्रावेशयत तं जनम्।
विराटं भीमसेनं च धृष्टद्युम्नं च सात्यकिम् ॥ ४ ॥
चेदिपं धृष्टकेतुं च द्रुपदं च महारथम्।
शिखण्डिनं यमौ चैव चेकितानं सकेकयम् ॥ ५ ॥
युयुत्सुं चैव कौरव्यं पाञ्चाल्यं चोत्तमौजसम्।
युधामन्युं सुबाहुं च द्रौपदेयांश्च सर्वशः ॥ ६ ॥

उस समय महाराजकी अनुमति पाकर विराट, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, चेदिराज धृष्टकेतु, महारथी द्रुपद, शिखण्डी, नकुल, सहदेव, चेकितान, केकयराजकुमार, कुरुवंशी युयुत्सु, पाञ्चाल वीर उत्तमौजा, युधामन्यु, सुबाहु तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्र—इन सब लोगोंको द्वारपाल भीतर ले आया॥४–६॥

एते चान्ये च बहवः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम्।
उपतस्थुर्महात्मानं विविशुश्चासने शुभे ॥ ७ ॥

ये तथा और भी बहुत-से क्षत्रियशिरोमणि महात्मा युधिष्ठिरकी सेवामें उपस्थित हुए और सुन्दर आसनपर बैठे॥

एकस्मिन्नासने वीरावुपविष्टौ महाबलौ।
कृष्णश्च युयुधानश्च महात्मानौ महाद्युती ॥ ८ ॥

महाबली और महातेजस्वी महात्मा श्रीकृष्ण और सात्यकि ये दोनों वीर एक ही आसनपर बैठे थे ॥ ८ ॥

ततो युधिष्ठिरस्तेषां शृण्वतां मधुसूदनम्।
अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षमाभाष्य मधुरं वचः ॥ ९ ॥

तब युधिष्ठिरने उन सब लोगोंके सुनते हुए कमलनयन भगवान् मधुसूदनको सम्बोधित करके मधुर वाणीमें कहा—॥

एकं त्वां वयमाश्रित्य सहस्राक्षमिवामराः।
प्रार्थयामो जयं युद्धे शाश्वतानि सुखानि च ॥ १० ॥

'प्रभो ! जैसे देवता इन्द्रका आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार हमलोग एकमात्र आपका सहारा लेकर युद्धमें विजय और शाश्वत सुख पाना चाहते हैं ॥ १० ॥

त्वं हि राज्यविनाशं च द्विषद्भिश्च निराक्रियाम्।
क्लेशांश्च विविधान् कृष्ण सर्वांस्तानपि वेद नः ॥ ११ ॥

'श्रीकृष्ण ! शत्रुओंने जो हमारे राज्यका नाश करके हमारा तिरस्कार किया और भाँति-भाँतिके क्लेश दिये, उन सबको आप अच्छी तरह जानते हैं ॥ ११ ॥

त्वयि सर्वेश सर्वेषामस्माकं भक्तवत्सल।
सुखमायत्तमत्यर्थं यात्रा च मधुसूदन ॥ १२ ॥

'भक्तवत्सल सर्वेश्वर ! मधुसूदन ! हम सब लोगोंका सुख और जीवननिर्वाह पूर्णरूपसे आपके ही अधीन है॥१२॥

स तथा कुरु वार्ष्णेय यथा त्वयि मनो मम।
अर्जुनस्य यथा सत्या प्रतिज्ञा स्याच्चिकीर्षिता ॥ १३ ॥

'वार्ष्णेय ! हमारा मन आपमें ही लगा हुआ है । अतः आप ऐसा करें, जिससे अर्जुनकी अभीष्ट प्रतिज्ञा सत्य होकर रहे॥

स भवांस्तारयत्वस्माद् दुःखामर्षमहार्णवात्।
पारं तितीर्षतामद्य प्लवो नो भव माधव ॥ १४ ॥

'माधव ! आज इस दुःख और अमर्षके महासागरसे पार होनेकी इच्छावाले हम सब लोगोंके लिये आप नौका बन जाइये । आप ही इस संकटसे हमारा उद्धार कीजिये ॥ १४ ॥

न हि तत् कुरुते संख्ये रथी रिपुवधोद्यतः।
यथा वै कुरुते कृष्ण सारथिर्यत्नमास्थितः ॥ १५ ॥

'श्रीकृष्ण ! संग्राममें शत्रुवधके लिये उद्यत हुआ रथी भी वैसा कार्य नहीं कर पाता, जैसा कि प्रयत्नशील सारथि कर दिखाता है ॥ १५ ॥

यथैव सर्वास्वापत्सु पासि वृष्णीञ्जनार्दन।
तथैवास्मान् महाबाहो वृजिनात् त्रातुमर्हसि ॥ १६ ॥

'महाबाहु जनार्दन ! जैसे आप वृष्णिवंशियोंको सम्पूर्ण आपत्तियोंसे बचाते हैं, उसी प्रकार हमारी भी इस संकटसे रक्षा कीजिये ॥ १६ ॥

त्वमगाधेऽप्लवे मग्नान् पाण्डवान् कुरुसागरे।
समुद्धर प्लवो भूत्वा शङ्खचक्रगदाधर ॥ १७ ॥

'शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले परमेश्वर ! नौका-रहित अगाध कौरव-सागरमें निमग्न पाण्डवोंका आप स्वयं ही नौका बनकर उद्धार कीजिये ॥ १७ ॥

नमस्ते देवदेवेश सनातन विशातन।
विष्णो जिष्णो हरे कृष्ण वैकुण्ठ पुरुषोत्तम ॥ १८ ॥

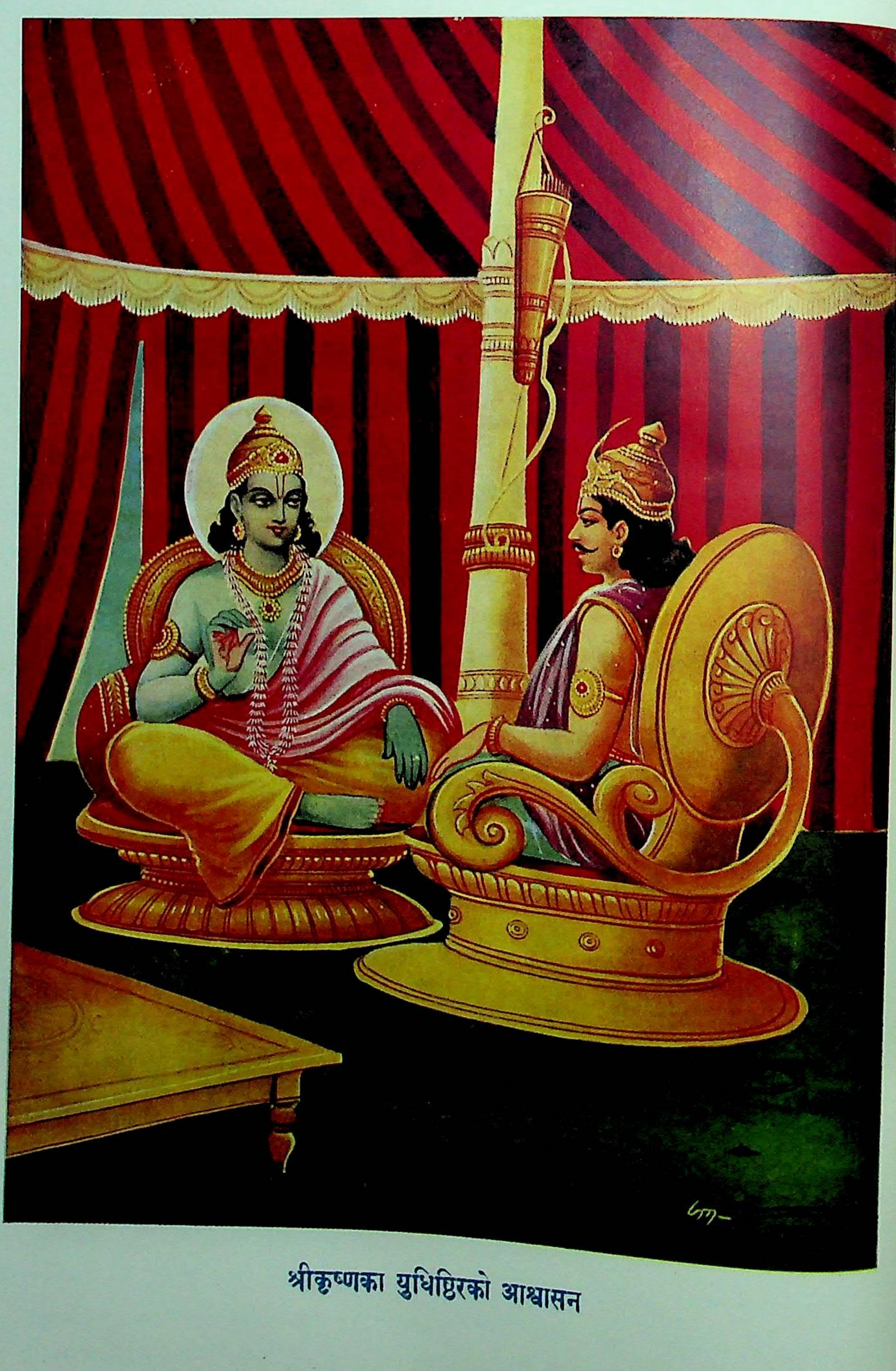
'शत्रुनाशक ! सनातन देवदेवेश्वर ! विष्णो ! जिष्णो ! हरे ! कृष्ण ! वैकुण्ठ ! पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है ॥

नारदस्त्वां समाचख्यौ पुराणमृषिसत्तमम्।
वरदं शार्ङ्गिणं श्रेष्ठं तत् सत्यं कुरु माधव ॥ १९ ॥

'माधव ! देवर्षि नारदने बताया है कि आप शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले, सर्वोत्तम वरदायक, पुरातन ऋषिश्रेष्ठ नारायण हैं, उनकी वह बात सत्य कर दिखाइये ॥ १९ ॥

इत्युक्तः पुण्डरीकाक्षो धर्मराजेन संसदि।
तोयमेघस्वनो वाग्मी प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ २० ॥

उस राजसभामें धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर उत्तम



श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको आश्वासन

वक्ता कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने सजल मेघके समान गम्भीर वाणीमें उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया ॥ २० ॥

वासुदेव उवाच

सामरेष्वपि लोकेषु सर्वेषु न तथाविधः।
शरासनधरः कश्चिद् यथा पार्थो धनंजयः ॥ २१ ॥

श्रीकृष्ण बोले—राजन्! देवताओंसहित सम्पूर्ण लोकोंमें कोई भी वैसा धनुर्धर नहीं है, जैसे आपके भाई कुन्तीकुमार धनंजय हैं ॥ २१ ॥

वीर्यवानस्त्रसम्पन्नः पराक्रान्तो महाबलः।
युद्धशौण्डः सदामर्षी तेजसा परमो नृणाम् ॥ २२ ॥

वे शक्तिशाली, अस्त्रज्ञानसम्पन्न, पराक्रमी, महाबली, युद्धकुशल, सदा अमर्षशील और मनुष्योंमें परम तेजस्वी हैं ॥

स युवा वृषभस्कन्धो दीर्घबाहुर्महाबलः।
सिंहर्षभगतिः श्रीमान् द्विषतस्ते हनिष्यति ॥ २३ ॥

अर्जुनके कंधे वृषभके समान सुपुष्ट हैं, भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं, उनकी चाल भी श्रेष्ठ सिंहके सदृश है, वे महान् बलवान् युवक और श्रीसम्पन्न हैं, अतः आपके शत्रुओंको अवश्य मार डालेंगे ॥ २३ ॥

अहं च तत् करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः।
धार्तराष्ट्रस्य सैन्यानि धक्ष्यत्यग्निरिवेन्धनम् ॥ २४ ॥

मैं भी वही करूँगा, जिससे कुन्तीपुत्र अर्जुन दुर्योधनकी सारी सेनाओंको उसी प्रकार जला डालेंगे, जैसे आग ईंधनको जलाती है ॥ २४ ॥

अद्य तं पापकर्माणं क्षुद्रं सौभद्रघातिनम्।
अपुनर्दर्शनं मार्गमिषुभिः क्षेप्स्यतेऽर्जुनः ॥ २५ ॥

आज सुभद्राकुमार अभिमन्युकी हत्या करनेवाले उस नीच पापी जयद्रथको अर्जुन अपने बाणोंद्वारा उस मार्गपर डाल देंगे, जहाँ जानेपर उस जीवका पुनः इस लोकमें दर्शन नहीं होता ॥ २५ ॥

तस्याद्य गृध्राः श्येनाश्च चण्डगोमायवस्तथा।
भक्षयिष्यन्ति मांसानि ये चान्ये पुरुषादकाः ॥ २६ ॥

आज गीध, बाज, क्रोधमें भरे हुए गीदड़ तथा अन्य नरभक्षी जीव-जन्तु जयद्रथका मांस खायेंगे ॥ २६ ॥

यद्यस्य देवा गोप्तारः सेन्द्राः सर्वे तथाप्यसौ।
राजधानीं यमस्याद्य हतः प्राप्स्यति संकुले ॥ २७ ॥

यदि इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी उसकी रक्षाके लिये आ जायँ तथापि वह आज संग्राममें मारा जाकर यमराजकी राजधानीमें अवश्य जा पहुँचेगा ॥ २७ ॥

निहत्य सैन्धवं जिष्णुरद्य त्वामुपयास्यति।
विशोको विज्वरो राजन् भव भूतिपुरस्कृतः ॥ २८ ॥

राजन्! आज विजयशील अर्जुन जयद्रथको मारकर ही आपके पास आयेंगे, आप ऐश्वर्यसे सम्पन्न रहकर शोक और चिन्ताको त्याग दीजिये ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका अर्जुनको आशीर्वाद, अर्जुनका स्वप्न सुनकर समस्त सुहृदोंकी प्रसन्नता, सात्यकि और श्रीकृष्णके साथ रथपर बैठकर अर्जुनकी रणयात्रा तथा अर्जुनके कहनेसे सात्यकिका युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये जाना

संजय उवाच

तथा तु वदतां तेषां प्रादुरासीद् धनंजयः।
दिदृक्षुर्भरतश्रेष्ठं राजानं ससुहृद्गणम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार उन लोगोंमें बात-चीत हो ही रही थी कि सुहृदोंसहित भरतश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरका दर्शन करनेकी इच्छासे अर्जुन वहाँ आ गये ॥

तं निविष्टं शुभां कक्ष्यामभिवन्द्याग्रतः स्थितम्।
तमुत्थायार्जुनं प्रेम्णा सस्वजे पाण्डवर्षभः ॥ २ ॥

उस सुन्दर ड्योढ़ीमें प्रवेश करके राजाको प्रणाम करनेके पश्चात् उनके सामने खड़े हुए अर्जुनको पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिरने उठकर प्रेमपूर्वक हृदयसे लगा लिया ॥ २ ॥

मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय परिष्वज्य च बाहुना।
आशिषः परमाः प्रोच्य स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ३ ॥

उनका मस्तक सूँघकर और एक बाँहसे उनका आलिंगन करके उन्हें उत्तम आशीर्वाद देते हुए राजाने मुसकराकर कहा—॥ ३ ॥

व्यक्तमर्जुन संग्रामे ध्रुवस्ते विजयो महान्।
यादृग्रूपा च ते छाया प्रसन्नश्च जनार्दनः ॥ ४ ॥

'अर्जुन ! आज संग्राममें तुम्हें निश्चय ही महान् विजय प्राप्त होगी, यह बात स्पष्टरूपसे दृष्टिगोचर हो रही है; क्योंकि इसीके अनुरूप तुम्हारे मुखकी कान्ति है और भगवान् श्रीकृष्ण भी प्रसन्न हैं' ॥ ४ ॥

तमब्रवीत् ततो जिष्णुर्महदाश्चर्यमुत्तमम् ।
दृष्टवानस्मि भद्रं ते केशवस्य प्रसादजम् ॥ ५ ॥

'तब विजयशील अर्जुनने उनसे कहा—राजन् ! आपका कल्याण हो । आज मैंने बहुत उत्तम और आश्चर्यजनक स्वप्न देखा है । भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे ही वैसा स्वप्न प्रकट हुआ था' ॥ ५ ॥

ततस्तत् कथयामास यथा दृष्टं धनंजयः ।
आश्वासनार्थं सुहृदां त्र्यम्बकेण समागमम् ॥ ६ ॥

यों कहकर अर्जुन अपने सुहृदोंके आश्वासनके लिये जिस प्रकार भगवान् शंकरसे मिलनका स्वप्न देखा था, वह सब कह सुनाया ॥ ६ ॥

ततः शिरोभिरवनिं स्पृष्ट्वा सर्वे च विस्मिताः ।
नमस्कृत्य वृषाङ्काय साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥ ७ ॥

यह स्वप्न सुनकर वहाँ आये हुए सब लोग आश्चर्यचकित हो उठे और सबने धरतीपर मस्तक टेककर भगवान् शंकरको प्रणाम करके कहा—'यह तो बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ' ॥ ७ ॥

अनुज्ञातास्ततः सर्वे सुहृदो धर्मसूनुना ।
त्वरमाणाः सुसंनद्धा हृष्टा युद्धाय निर्ययुः ॥ ८ ॥

तदनन्तर धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर कवच धारण किये हुए समस्त सुहृद् हर्षमें भरकर शीघ्रतापूर्वक वहाँसे युद्धके लिये निकले ॥ ८ ॥

अभिवाद्य तु राजानं युयुधानाच्युतार्जुनाः ।
हृष्टा विनिर्ययुस्ते वै युधिष्ठिरनिवेशनात् ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिरको प्रणाम करके सात्यकि, श्रीकृष्ण और अर्जुन बड़े हर्षके साथ उनके शिबिरसे बाहर निकले ॥ ९ ॥

रथेनैकेन दुर्धर्षौ युयुधानजनार्दनौ ।
जग्मतुः सहितौ वीरावर्जुनस्य निवेशनम् ॥ १० ॥

दुर्धर्ष वीर सात्यकि और श्रीकृष्ण एक रथपर आरूढ़ हो एक साथ अर्जुनके शिबिरमें गये ॥ १० ॥

तत्र गत्वा हृषीकेशः कल्पयामास सूतवत् ।
रथं रथवरस्याजौ वानरर्षभलक्षणम् ॥ ११ ॥

वहाँ पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्णने एक सारथिके समान रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके वानरश्रेष्ठ हनुमान्के चिह्नसे युक्त ध्वजावाले रथको युद्धके लिये सुसज्जित किया ॥ ११ ॥

स मेघसमनिर्घोषस्तप्तकाञ्चनसप्रभः ।
बभौ रथवरः क्लृप्तः शिशुर्दिवसकृद् यथा ॥ १२ ॥

मेघके समान गम्भीर घोष करनेवाला और तपाये हुए सुवर्णके समान प्रभासे उद्भासित होनेवाला वह सजाया हुआ श्रेष्ठ रथ प्रातःकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहा था ॥

ततः पुरुषशार्दूलः सज्जं सज्जपुरःसरः ।
कृताह्निकाय पार्थाय न्यवेदयत तं रथम् ॥ १३ ॥

तदनन्तर युद्धके लिये सुसज्जित पुरुषोंमें सर्वश्रेष्ठ पुरुषसिंह श्रीकृष्णने नित्य-कर्म सम्पन्न करके बैठे हुए अर्जुनको यह सूचित किया कि रथ तैयार है ॥ १३ ॥

तं तु लोकवरः पुंसां किरीटी हेमवर्मभृत् ।
चापबाणधरो वाहं प्रदक्षिणमवर्तत ॥ १४ ॥

तब पुरुषोंमें श्रेष्ठ लोकप्रवर अर्जुनने सोनेके कवच और किरीट धारण करके धनुष-बाण लेकर उस रथकी परिक्रमा की ॥

तपोविद्यावयोवृद्धैः क्रियावद्भिर्जितेन्द्रियैः ।
स्तूयमानो जयाशीर्भिरारुरोह महारथम् ॥ १५ ॥

उस समय तपस्या, विद्या तथा अवस्थामें बड़े-बूढ़े, क्रियाशील, जितेन्द्रिय ब्राह्मण उन्हें विजयसूचक आशीर्वाद देते हुए उनकी स्तुति-प्रशंसा कर रहे थे । उनकी की हुई वह स्तुति सुनते हुए अर्जुन उस विशाल रथपर आरूढ़ हुए ॥ १५ ॥

जैत्रैः सांग्रामिकैर्मन्त्रैः पूर्वमेव रथोत्तमम् ।
अभिमन्त्रितमर्चिष्मानुदयं भास्करो यथा ॥ १६ ॥

उस उत्तम रथको पहलेसे ही विजयसाधक युद्धसम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित किया गया था । उसपर आरूढ़ हुए तेजस्वी अर्जुन उदयाचलपर चढ़े हुए सूर्यके समान जान पड़ते थे ॥ १६ ॥

स रथे रथिनां श्रेष्ठः काञ्चने काञ्चनावृतः ।
विबभौ विमलोऽर्चिष्मान् मेराविव दिवाकरः ॥ १७ ॥

सुवर्णमय कवचसे आवृत हो उस स्वर्णमय रथपर आरूढ़ हुए रथियोंमें श्रेष्ठ उज्ज्वल कान्तिधारी तेजस्वी अर्जुन मेरु पर्वतपर प्रकाशित होनेवाले सूर्यके समान शोभा पा रहे थे ॥

अन्वारुरुहतुः पार्थं युयुधानजनार्दनौ ।
शर्यातेर्यज्ञमायान्तं यथेन्द्रं देवमश्विनौ ॥ १८ ॥

अर्जुनके बैठनेके बाद सात्यकि और श्रीकृष्ण भी उस रथपर आरूढ़ हो गये, मानो राजा शर्यातिके यज्ञमें आते हुए इन्द्रदेवके साथ दोनों अश्विनीकुमार आ रहे हों ॥ १८ ॥

अथ जग्राह गोविन्दो रश्मीन् रश्मिविदां वरः ।
मातलिर्वासवस्येव वृत्रं हन्तुं प्रयास्यतः ॥ १९ ॥

उन घोड़ोंकी रास पकड़नेकी कलामें सर्वश्रेष्ठ भगवान् गोविन्दने रथकी बागडोर अपने हाथमें ले ली, ठीक उसी प्रकार जैसे, वृत्रासुरका वध करनेके लिये जानेवाले इन्द्रके रथकी बागडोर मातलिने पकड़ी थी ॥ १९ ॥

स ताभ्यां सहितः पार्थो रथप्रवरमास्थितः ।

सहितो बुधशुक्राभ्यां तमो निघ्नन् यथा शशी ॥ २० ॥

सात्यकि और श्रीकृष्ण दोनोंके साथ उस श्रेष्ठ रथपर बैठे हुए अर्जुन बुध और शुक्रके साथ स्थित हुए अन्धकार-नाशक चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे ॥ २० ॥

सैन्धवस्य वधं प्रेप्सुः प्रयातः शत्रुपूगहा ।
सहाम्बुपतिमित्राभ्यां यथेन्द्रस्तारकामये ॥ २१ ॥

शत्रुसमूहका नाश करनेवाले अर्जुन जब सात्यकि और श्रीकृष्णके साथ सिंधुराज जयद्रथका वध करनेकी इच्छासे प्रस्थित हुए, उस समय वरुण और मित्रके साथ तारकामय संग्राममें जानेवाले इन्द्रके समान सुशोभित हुए ॥ २१ ॥

ततो वादित्रनिर्घोषैर्माङ्गल्यैश्च स्तवैः शुभैः ।
प्रयान्तमर्जुनं वीरं मागधाश्चैव तुष्टुवुः ॥ २२ ॥

तदनन्तर रणवाद्योंके घोष तथा शुभ एवं माङ्गलिक स्तुतियोंके साथ यात्रा करते हुए वीर अर्जुनकी मागधजन स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥

सजयाशीः सपुण्याहः सूतमागधनिःस्वनः ।
युक्तो वादित्रघोषेण तेषां रतिकरोऽभवत् ॥ २३ ॥

विजयसूचक आशीर्वाद तथा पुण्याहवाचनके साथ सूत, मागध एवं बन्दीजनोंका शब्द रणवाद्योंकी ध्वनिसे मिलकर उन सबकी प्रसन्नताको बढ़ा रहा था ॥ २३ ॥

तमनुप्रयतो वायुः पुण्यगन्धवहः शुभः ।
ववौ संहर्षयन् पार्थं द्विषतश्चापि शोषयन् ॥ २४ ॥

अर्जुनके प्रस्थान करनेपर पीछेसे मङ्गलमय पवित्र एवं सुगन्धयुक्त वायु बहने लगी, जो अर्जुनका हर्ष बढ़ाती हुई उनके शत्रुओंका शोषण कर रही थी ॥ २४ ॥

ततस्तस्मिन् क्षणे राजन् विविधानि शुभानि च ।
प्रादुरासन् निमित्तानि विजयाय बहूनि च ।
पाण्डवानां त्वदीयानां विपरीतानि मारिष ॥ २५ ॥

माननीय महाराज ! उस समय बहुत-से ऐसे शुभ शकुन प्रकट हुए, जो पाण्डवोंकी विजय और आपके सैनिकोंकी पराजयकी सूचना दे रहे थे ॥ २५ ॥

दृष्ट्वार्जुनो निमित्तानि विजयाय प्रदक्षिणम् ।
युयुधानं महेष्वासमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥

अर्जुनने अपने दाहिने प्रकट होनेवाले उन विजयसूचक शुभ लक्षणोंको देखकर महाधनुर्धर सात्यकिसे इस प्रकार कहा—॥ २६ ॥

युयुधानाद्य युद्धे मे दृश्यते विजयो ध्रुवः ।
यथा हीमानि लिङ्गानि दृश्यन्ते शिनिपुङ्गव ॥ २७ ॥

'शिनिप्रवर युयुधान ! आज जैसे ये शुभ लक्षण दिखायी देते हैं, उनसे युद्धमें मेरी निश्चित विजय दृष्टिगोचर हो रही है॥

सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र सैन्धवको नृपः ।
यियासुर्यमलोकाय मम वीर्यं प्रतीक्षते ॥ २८ ॥

'अतः मैं वहीं जाऊँगा, जहाँ सिंधुराज जयद्रथ यमलोकमें जानेकी इच्छासे मेरे पराक्रमकी प्रतीक्षा कर रहा है ॥ २८ ॥

यथा परमकं कृत्यं सैन्धवस्य वधो मम ।
तथैव सुमहत् कृत्यं धर्मराजस्य रक्षणम् ॥ २९ ॥

'मेरे लिये सिंधुराज जयद्रथका वध जैसे अत्यन्त महान् कार्य है, उसी प्रकार धर्मराजकी रक्षा भी परम महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है ॥ २९ ॥

स त्वमद्य महाबाहो राजानं परिपालय ।
यथैव हि मया गुप्तस्त्वया गुप्तो भवेत् तथा ॥ ३० ॥

'महाबाहो ! आज तुम्हीं राजा युधिष्ठिरकी सब ओरसे रक्षा करो । जिस प्रकार वे मेरे द्वारा सुरक्षित होते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे द्वारा भी उनकी सुरक्षा हो सकती है ॥ ३० ॥

न पश्यामि च तं लोके यस्त्वां युद्धे पराजयेत् ।
वासुदेवसमं युद्धे स्वयमप्यमरेश्वरः ॥ ३१ ॥

'मैं संसारमें ऐसे किसी वीरको नहीं देखता, जो युद्धमें तुम्हें पराजित कर सके । तुम संग्रामभूमिमें साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके समान हो । साक्षात् देवराज इन्द्र भी तुम्हें नहीं जीत सकते ॥ ३१ ॥

त्वयि चाहं पराश्वस्तः प्रद्युम्ने वा महारथे ।
शक्नुयां सैन्धवं हन्तुमनपेक्षो नरर्षभ ॥ ३२ ॥

'नरश्रेष्ठ ! इस कार्यके लिये मैं तुमपर अथवा महारथी प्रद्युम्नपर ही पूरा भरोसा करता हूँ । सिंधुराज जयद्रथका वध तो मैं किसीकी सहायताकी अपेक्षा किये बिना ही कर सकता हूँ ॥

मय्यपेक्षा न कर्तव्या कथंचिदपि सात्वत ।
राजन्येव परा गुप्तिः कार्या सर्वात्मना त्वया ॥ ३३ ॥

'सात्वतवीर ! तुम किसी प्रकार भी मेरा अनुसरण न करना । तुम्हें सब प्रकारसे राजा युधिष्ठिरकी ही पूर्णरूपसे रक्षा करनी चाहिये ॥ ३३ ॥

न हि यत्र महाबाहुर्वासुदेवो व्यवस्थितः ।
किंचिद् व्यापद्यते तत्र यत्राहमपि च ध्रुवम् ॥ ३४ ॥

'जहाँ महाबाहु भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं और मैं भी उपस्थित हूँ, वहाँ अवश्य ही कोई कार्य बिगड़ नहीं सकता है' ॥ ३४ ॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन सात्यकिः परवीरहा ।
तथेत्युक्त्वागमत् तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ३५ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सात्यकि 'बहुत अच्छा' कहकर जहाँ राजा युधिष्ठिर थे, वहीं चले गये ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनवाक्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनवाक्यविषयक चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८४ ॥

(जयद्रथवधपर्व)

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका विलाप

धृतराष्ट्र उवाच

श्वोभूते किमकार्षुस्ते दुःखशोकसमन्विताः।
अभिमन्यौ हते तत्र के वायुध्यन्त मामकाः॥ १॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय! अभिमन्युके मारे जानेपर दुःख और शोकमें डूबे हुए पाण्डवोंने सबेरा होनेपर क्या किया? तथा मेरे पक्षवाले योद्धाओंमेंसे किन लोगोंने युद्ध किया?॥

जानन्तस्तस्य कर्माणि कुरवः सव्यसाचिनः।
कथं तत् किल्बिषं कृत्वा निर्भया ब्रूहि मामकाः॥ २॥

सव्यसाची अर्जुनके पराक्रमको जानते हुए भी मेरे पक्षवाले कौरव योद्धा उनका अपराध करके कैसे निर्भय रह सके? यह बताओ॥ २॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवान्तकम्।
आयान्तं पुरुषव्याघ्रं कथं ददृशुराहवे॥ ३॥

पुत्रशोकसे संतप्त हो क्रोधमें भरे हुए प्राणान्तकारी मृत्युके समान आते हुए पुरुषसिंह अर्जुनकी ओर मेरे पुत्र युद्धमें कैसे देख सके?॥ ३॥

कपिराजध्वजं संख्ये विधुन्वानं महद् धनुः।
दृष्ट्वा पुत्रपरिद्यूनं किमकुर्वत मामकाः॥ ४॥

जिनकी ध्वजामें कपिराज हनुमान् विराजमान हैं, उन पुत्रवियोगसे व्यथित हुए अर्जुनको युद्धस्थलमें अपने विशाल धनुषकी टंकार करते देख मेरे पुत्रोंने क्या किया?॥ ४॥

किं नु संजय संग्रामे वृत्तं दुर्योधनं प्रति।
परिदेवो महानद्य श्रुतो मे नाभिनन्दनम्॥ ५॥

संजय! संग्रामभूमिमें दुर्योधनपर क्या बीता है? इन दिनों मैंने महान् विलापकी ध्वनि सुनी है। आमोद-प्रमोदके शब्द मेरे कानोंमें नहीं पड़े हैं॥ ५॥

बभूवुर्ये मनोग्राह्याः शब्दाः श्रुतिसुखावहाः।
न श्रूयन्तेऽद्य सर्वे ते सैन्धवस्य निवेशने॥ ६॥

पहले सिंधुराजके शिविरमें जो मनको प्रिय लगनेवाले और कानोंको सुख देनेवाले शब्द होते रहते थे, वे सब अब नहीं सुनायी पड़ते हैं॥ ६॥

स्तुवतां नाद्य श्रूयन्ते पुत्राणां शिबिरे मम।
सूतमागधसंघानां नर्तकानां च सर्वशः॥ ७॥

मेरे पुत्रोंके शिबिरमें अब स्तुति करनेवाले सूतों, मागधों एवं नर्तकोंके शब्द सर्वथा नहीं सुनायी पड़ते हैं॥ ७॥

शब्देन नादिताभीक्ष्णमभवद् यत्र मे श्रुतिः।
दीनानामद्य तं शब्दं न शृणोमि समीरितम्॥ ८॥

जहाँ मेरे कान निरन्तर स्वजनोंके आनन्द-कोलाहलसे गूँजते रहते थे, वहीं आज मैं अपने दीन दुखी पुत्रोंके द्वारा उच्चारित वह हर्षसूचक शब्द नहीं सुन रहा हूँ॥ ८॥

निवेशने सत्यधृतेः सोमदत्तस्य संजय।
आसीनोऽहं पुरा तात शब्दमश्रौषमुत्तमम्॥ ९॥

तात संजय! पहले मैं यथार्थ धैर्यशाली सोमदत्तके भवनमें बैठा हुआ उत्तम शब्द सुना करता था॥ ९॥

तदद्य पुण्यहीनोऽहमार्तस्वरनिनादितम्।
निवेशनं गतोत्साहं पुत्राणां मम लक्षये॥ १०॥

परंतु आज पुण्यहीन मैं अपने पुत्रोंके घरको उत्साहशून्य एवं आर्तनादसे गूँजता हुआ देख रहा हूँ॥ १०॥

विविंशतेर्दुर्मुखस्य चित्रसेनविकर्णयोः।
अन्येषां च सुतानां मे न तथा श्रूयते ध्वनिः॥ ११॥

विविंशति, दुर्मुख, चित्रसेन, विकर्ण तथा मेरे अन्य पुत्रोंके घरोंमें अब पूर्ववत् आनन्दित ध्वनि नहीं सुनी जाती है॥ ११॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यं शिष्याः पर्युपासते।
द्रोणपुत्रं महेष्वासं पुत्राणां मे परायणम्॥ १२॥
वितण्डालापसंलापैर्द्रुतवादित्रवादितैः।
गीतैश्च विविधैरिष्टै रमते यो दिवानिशम्॥ १३॥
उपास्यमानो बहुभिः कुरुपाण्डवसात्वतैः।
सूत तस्य गृहे शब्दो नाद्य द्रौणेर्यथा पुरा॥ १४॥

सूत संजय! मेरे पुत्रोंके परम आश्रय जिस महाधनुर्धर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी जातियोंके शिष्य उपासना (निकट रहकर सेवा) करते रहे हैं, जो वितण्डावाद, भाषण, पारस्परिक बातचीत, द्रुतस्वरमें बजाये हुए वाद्योंके शब्दों तथा भाँति-भाँतिके अभीष्ट गीतोंसे दिन-रात मन बहलाया करता था, जिसके पास बहुत-से कौरव, पाण्डव और सात्वतवंशी वीर बैठा करते थे, उस अश्वत्थामाके घरमें आज पहलेके समान हर्षसूचक शब्द नहीं हो रहा है॥ १२—१४॥

द्रोणपुत्रं महेष्वासं गायना नर्तकाश्च ये।
अत्यर्थमुपतिष्ठन्ति तेषां न श्रूयते ध्वनिः॥ १५॥

महाधनुर्धर द्रोणपुत्रकी सेवामें जो गायक और नर्तक अधिक उपस्थित होते थे, उनकी ध्वनि अब नहीं सुनायी देती है॥ १५॥

विन्दानुविन्दयोः सायं शिबिरे यो महाध्वनिः॥ १६॥
श्रूयते सोऽद्य न तथा केकयानां च वेश्मसु।

नित्यं प्रमुदितानां च तालगीतस्वनो महान् ॥ १७ ॥
नृत्यतां श्रूयते तात गणानां सोऽद्य न स्वनः ।

विन्द और अनुविन्दके शिविरमें संध्याके समय जो महान् शब्द सुनायी पड़ता था, वह अब नहीं सुननेमें आता है। तात सदा अनन्दित रहनेवाले केकयोंके भवनोंमें झुंड-के झुंड नर्तकोंका ताल-स्वरके साथ गीतका जो महान् शब्द सुनायी पड़ता था, वह अब नहीं सुना जाता है ॥

सप्त तन्तून् वितन्वाना याजका यमुपासते ॥ १८ ॥
सौमदत्तिं श्रुतनिधिं तेषां न श्रूयते ध्वनिः ।

वेद-विद्याके भण्डार जिस सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाके यहाँ सातों यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले याजक सदा रहा करते थे, अब वहाँ उन ब्राह्मणोंकी आवाज नहीं सुनायी देती है ॥

ज्याघोषो ब्रह्मघोषश्च तोमरासिरथध्वनिः ॥ १९ ॥
द्रोणस्यासीदविरतो गृहे तं न शृणोम्यहम् ।

द्रोणाचार्यके घरमें निरन्तर धनुषकी प्रत्यञ्चाका घोष, वेदमन्त्रोंके उच्चारणकी ध्वनि तथा तोमर, तलवार एवं रथके शब्द गूँजते रहते थे; परंतु अब मैं वहाँ वह शब्द नहीं सुन रहा हूँ ॥ १९½ ॥

नानादेशसमुत्थानां गीतानां योऽभवत् स्वनः ॥ २० ॥
वादित्रनादितानां च सोऽद्य न श्रूयते महान् ।

नाना प्रदेशोंसे आये हुए लोगोंके गाये हुए गीतोंका और बजाये हुए बाजोंका भी जो महान् शब्द श्रवण गोचर होता था, वह अब नहीं सुनायी देता है ॥ २०½ ॥

यदा प्रभृत्युपप्लव्याच्छान्तिमिच्छञ्जनार्दनः ॥ २१ ॥
आगतः सर्वभूतानामनुकम्पार्थमच्युतः ।
ततोऽहमब्रुवं सूत मन्दं दुर्योधनं तदा ॥ २२ ॥

संजय ! जब अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले भगवान् जनार्दन समस्त प्राणियोंपर कृपा करनेके लिये शान्ति स्थापित करनेकी इच्छा लेकर उपप्लव्यसे हस्तिनापुरमें पधारे थे, उस समय मैंने अपने मूर्ख पुत्र दुर्योधनसे इस प्रकार कहा था—॥

वासुदेवेन तीर्थेन पुत्र संशाम्य पाण्डवैः ।
कालप्राप्तमहं मन्ये मा त्वं दुर्योधनातिगाः ॥ २३ ॥

'बेटा ! भगवान् श्रीकृष्णको साधन बनाकर पाण्डवोंके साथ संधि कर लो। मैं इसीको समयोचित कर्तव्य मानता हूँ। दुर्योधन ! तुम इसे टालो मत ॥ २३ ॥

शमं चेद् याचमानं त्वं प्रत्याख्यास्यसि केशवम् ।
हितार्थमभिजल्पन्तं न तवास्ति रणे जयः ॥ २४ ॥

'भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे हितकी ही बात कहते हैं और स्वयं संधिके लिये याचना कर रहे हैं। ऐसी दशामें यदि तुम इनकी बात नहीं मानोगे तो युद्धमें तुम्हारी विजय नहीं होगी' ॥

प्रत्याचष्ट स दाशार्हमृषभं सर्वधन्विनाम् ।
अनुनेयानि जल्पन्तमनयान्नान्वपद्यत ॥ २५ ॥

परंतु उसने सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णकी बात माननेसे इनकार कर दिया। यद्यपि वे अनुनयपूर्ण वचन बोलते थे, तथापि दुर्योधनने अन्यायवश उन्हें नहीं माना ॥ २५ ॥

(कर्णदुःशासनमते सौबलस्य च दुर्मतेः ।
प्रत्याख्यातो महाबाहुः कुलान्तकरणेन मे ॥)

कर्ण, दुःशासन और खोटी बुद्धिवाले शकुनिके मतमें आकर मेरे कुलका नाश करनेवाले दुर्योधनने महाबाहु श्रीकृष्णका तिरस्कार कर दिया ॥

ततो दुःशासनस्यैव कर्णस्य च मतं द्वयोः ।
अन्ववर्तत मां हित्वा कृष्टः कालेन दुर्मतिः ॥ २६ ॥

फिर तो कालसे आकृष्ट हुए दुर्बुद्धि दुर्योधनने मुझे छोड़कर दुःशासन और कर्ण इन्हीं दोनोंके मतका अनुसरण किया ॥ २६ ॥

न ह्यहं द्यूतमिच्छामि विदुरो न प्रशंसति ।
सैन्धवो नेच्छति द्यूतं भीष्मो न द्यूतमिच्छति ॥ २७ ॥

मैं जूआ खेलना नहीं चाहता था, विदुर भी उसकी प्रशंसा नहीं करते थे, सिंधुराज जयद्रथ भी जूआ नहीं चाहते थे और भीष्मजी भी द्यूतकी अभिलाषा नहीं रखते थे ॥

शल्यो भूरिश्रवाश्चैव पुरुमित्रो जयस्तथा ।
अश्वत्थामा कृपो द्रोणो द्यूतं नेच्छन्ति संजय ॥ २८ ॥

संजय ! शल्य, भूरिश्रवा, पुरुमित्र, जय, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य भी जूआ होने देना नहीं चाहते थे ॥

एतेषां मतमादाय यदि वर्तेत पुत्रकः ।
सज्ञातिमित्रः ससुहृच्चिरं जीवेदनामयः ॥ २९ ॥

यदि बेटा दुर्योधन इन सबकी राय लेकर चलता तो भाई-बन्धु, मित्र और सुहृदोंसहित दीर्घकालतक नीरोग एवं स्वस्थ रहकर जीवन धारण करता ॥ २९ ॥

श्लक्ष्णा मधुरसम्भाषा ज्ञातिबन्धुप्रियंवदाः ।
कुलीनाः सम्मताः प्राज्ञाः सुखं प्राप्स्यन्ति पाण्डवाः ॥ ३० ॥

'पाण्डव सरल, मधुरभाषी, भाई-बन्धुओंके प्रति प्रिय वचन बोलनेवाले, कुलीन, सम्मानित और विद्वान् हैं; अतः उन्हें सुखकी प्राप्ति होगी ॥ ३० ॥

धर्मापेक्षी नरो नित्यं सर्वत्र लभते सुखम् ।
प्रेत्यभावे च कल्याणं प्रसादं प्रतिपद्यते ॥ ३१ ॥

'धर्मकी अपेक्षा रखनेवाला मनुष्य सदा सर्वत्र सुखका भागी होता है। मृत्युके पश्चात् भी उसे कल्याण एवं प्रसन्नता प्राप्त होती है ॥ ३१ ॥

अर्हास्ते पृथिवीं भोक्तुं समर्थाः साधनेऽपि च ।
तेषामपि समुद्रान्ता पितृपैतामही मही ॥ ३२ ॥

'पाण्डव पृथ्वीका राज्य भोगनेमें और उसे प्राप्त करनेमें भी समर्थ हैं। यह समुद्रपर्यन्त पृथ्वी उनके बाप-दादोंकी भी है ॥ ३२ ॥

नियुज्यमानाः स्थास्यन्ति पाण्डवा धर्मवर्त्मनि।
सन्ति मे ज्ञातयस्तात येषां श्रोष्यन्ति पाण्डवाः ॥३३॥

'तात! पाण्डवोंको यदि आदेश दिया जाय तो वे उसे मानकर सदा धर्ममार्गपर ही स्थिर रहेंगे। मेरे अनेक ऐसे भाई-बन्धु हैं, जिनकी बात पाण्डव सुनेंगे ॥ ३३ ॥

शल्यस्य सोमदत्तस्य भीष्मस्य च महात्मनः।
द्रोणस्याथ विकर्णस्य वाह्लीकस्य कृपस्य च ॥३४॥
अन्येषां चैव वृद्धानां भरतानां महात्मनाम्।
त्वदर्थं ब्रुवतां तात करिष्यन्ति वचो हि ते ॥३५॥

'वत्स! शल्य, सोमदत्त, महात्मा भीष्म, द्रोणाचार्य, विकर्ण, बाह्लीक, कृपाचार्य तथा अन्य जो बड़े-बूढ़े महामना भरतवंशी हैं, वे यदि तुम्हारे लिये उनसे कुछ कहेंगे तो पाण्डव उनकी बात अवश्य मानेंगे ॥ ३४-३५ ॥

कं वा त्वं मन्यसे तेषां यस्तान् ब्रूयादतोऽन्यथा।
कृष्णो न धर्मं संजह्यात् सर्वे ते हि तदन्वयाः ॥३६॥

'बेटा दुर्योधन! तुम उपर्युक्त व्यक्तियोंमेंसे किसको ऐसा मानते हो जो पाण्डवोंके विषयमें इसके विपरीत कह सके। श्रीकृष्ण कभी धर्मका परित्याग नहीं कर सकते और समस्त पाण्डव उन्हींके मार्गका अनुसरण करनेवाले हैं ॥३६॥

मयापि चोक्तास्ते वीरा वचनं धर्मसंहितम्।
नान्यथा प्रकरिष्यन्ति धर्मात्मानो हि पाण्डवाः ॥३७॥

'मेरे कहनेपर भी वे मेरे धर्मयुक्त वचनकी अवहेलना नहीं करेंगे; क्योंकि वीर पाण्डव धर्मात्मा हैं' ॥ ३७ ॥

इत्यहं विलपन् सूत बहुशः पुत्रमुक्तवान्।
न च मे श्रुतवान् मूढो मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥३८॥

सूत! इस प्रकार विलाप करते हुए मैंने अपने पुत्र दुर्योधनसे बहुत कुछ कहा, परंतु उस मूर्खने मेरी एक नहीं सुनी। अतः मैं समझता हूँ कि कालचक्रने पलटा खाया है ॥ ३८ ॥

वृकोदरार्जुनौ यत्र वृष्णिवीरश्च सात्यकिः।
उत्तमौजाश्च पाञ्चाल्यो युधामन्युश्च दुर्जयः ॥३९॥
धृष्टद्युम्नश्च दुर्धर्षः शिखण्डी चापराजितः।
अश्मकाः केकयाश्चैव क्षत्रधर्मा च सौमकिः ॥४०॥
चैद्यश्च चेकितानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः।
द्रौपदेया विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥४१॥
यमौ च पुरुषव्याघ्रौ मन्त्री च मधुसूदनः।
क एतान्जातु युध्येत लोकेऽस्मिन् वै जिजीविषुः ॥४२॥

जिस पक्षमें भीमसेन, अर्जुन, वृष्णिवीर सात्यकि, पाञ्चालवीर उत्तमौजा, दुर्जय युधामन्यु, दुर्धर्ष धृष्टद्युम्न, अपराजित वीर शिखण्डी, अश्मक, केकयराजकुमार, सोमकपुत्र क्षत्रधर्मा, चेदिराज धृष्टकेतु, चेकितान, काशिराजके पुत्र अभिभू, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, राजा विराट और महारथी द्रुपद हैं, जहाँ पुरुषसिंह नकुल, सहदेव और मन्त्रदाता मधुसूदन हैं, वहाँ इस संसारमें कौन ऐसा वीर है, जो जीवित रहनेकी इच्छा रखकर इन वीरोंके साथ कभी युद्ध करेगा ॥ ३९-४२ ॥

दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणान् प्रसहेद् वा परान् मम।
अन्यो दुर्योधनात् कर्णाच्छकुनेश्चापि सौबलात् ॥४३॥
दुःशासनचतुर्थानां नान्यं पश्यामि पञ्चमम्।

अथवा दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि तथा चौथे दुःशासनके सिवा मैं पाँचवें किसी ऐसे वीरको नहीं देखता, जो दिव्यास्त्र प्रकट करनेवाले मेरे इन शत्रुओंका वेग सह सके ॥ ४३½ ॥

येषामभीषुहस्तः स्याद् विष्वक्सेनो रथे स्थितः ॥ ४४ ॥
संनद्धश्चार्जुनो योद्धा तेषां नास्ति पराजयः।

रथपर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्ण हाथोंमें बागडोर लेकर जिनका सारथ्य करते हैं तथा जिनकी ओरसे कवचधारी अर्जुन युद्ध करनेवाले हैं, उनकी कभी पराजय नहीं हो सकती ॥ ४४½ ॥

तेषामथ विलापानां नायं दुर्योधनः स्मरेत् ॥ ४५ ॥
हतौ हि पुरुषव्याघ्रौ भीष्मद्रोणौ त्वमात्थ वै।

संजय! यह दुर्योधन मेरे उन विलापोंको कभी याद नहीं करेगा। तुम कहते हो कि 'पुरुषसिंह भीष्म और द्रोणाचार्य मारे गये' ॥ ४५½ ॥

तेषां विदुरवाक्यानामुक्तानां दीर्घदर्शिनाम् ॥ ४६ ॥
दृष्ट्वेमां फलनिर्वृत्तिं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः।
सेनां दृष्ट्वाभिभूतां मे शैनेयेनार्जुनेन च ॥ ४७ ॥

विदुरने भविष्यमें होनेवाली दूरतककी घटनाओंको ध्यानमें रखकर जो बातें कही थीं, उन्हींके अनुसार इस समय हमें यह फल मिल रहा है। इसे देखकर मैं यह समझता हूँ कि मेरे पुत्र सात्यकि और अर्जुनके द्वारा अपनी सेनाका संहार देखते हुए शोक कर रहे होंगे ॥ ४६-४७ ॥

शून्यान् दृष्ट्वा रथोपस्थान् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः।
हिमात्यये यथा कक्षं शुष्कं वातेरितो महान् ॥ ४८ ॥
अग्निर्देहेत् तथा सेनां मामिकां स धनंजयः।
आचक्ष्व मम तत् सर्वं कुशलो ह्यसि संजय ॥४९॥

बहुत-से रथोंकी बैठकोंको रथियोंसे शून्य देखकर मेरे पुत्र शोकमें डूब गये होंगे; ऐसा मेरा विश्वास है। जैसे ग्रीष्म ऋतुमें वायुका सहारा पाकर बढ़ी हुई अग्नि सूखे घासको जला डालती है, उसी प्रकार अर्जुन मेरी सेनाको दग्ध कर डालेंगे। संजय! तुम कथा कहनेमें कुशल हो; अतः युद्धका सारा समाचार मुझसे कहो ॥ ४८-४९ ॥

यदुपायात सायाह्ने कृत्वा पार्थस्य किल्बिषम् ।
अभिमन्यौ हते तात कथमासीन्मनो हि वः ॥ ५० ॥

तात ! जब तुमलोग अभिमन्युके मारे जानेपर अर्जुनका महान् अपराध करके सायंकालमें शिबिरको लौटे थे, उस समय तुम्हारे मनकी क्या अवस्था थी ? ॥ ५० ॥

न जातु तस्य कर्माणि युधि गाण्डीवधन्वनः ।
अपकृत्य महत् तात सोढुं शक्ष्यन्ति मामकाः ॥ ५१ ॥

तात ! गाण्डीवधारी अर्जुनका महान् अपकार करके मेरे पुत्र युद्धमें उनके पराक्रमको कभी नहीं सह सकेंगे ॥५१॥

किन्नु दुर्योधनः कृत्यं कर्णः कृत्यं किमब्रवीत् ।
दुःशासनः सौबलश्च तेषामेवं गतेष्वपि ॥ ५२ ॥

उस समय उनकी ऐसी अवस्था होनेपर भी दुर्योधनने कौन-सा कर्तव्य निश्चित किया ? कर्ण, दुःशासन तथा शकुनिने क्या करनेकी सलाह दी ? ॥ ५२ ॥

सर्वेषां समवेतानां पुत्राणां मम संजय ।
यद् वृत्तं तात संग्रामे मन्दस्यापनयैर्भृशम् ॥ ५३ ॥
लोभानुगस्य दुर्बुद्धेः क्रोधेन विकृतात्मनः ।
राज्यकामस्य मूढस्य रागोपहतचेतसः ।
दुर्नीतं वा सुनीतं वा तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ५४ ॥

तात संजय ! युद्धमें मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधनके अत्यन्त अन्यायसे एकत्र हुए मेरे अन्य सभी पुत्रोंपर जो कुछ बीता था तथा लोभका अनुसरण करनेवाले, क्रोधसे विकृत चित्त-वाले, रागसे दूषित हृदयवाले, राज्यकामी मूढ़ और दुर्बुद्धि दुर्योधनने जो न्याय अथवा अन्याय किया हो, वह सब मुझसे कहो ॥ ५३-५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें धृतराष्ट्रवाक्यविषयक पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ५५ श्लोक हैं)

षडशीतितमोऽध्यायः

संजयका धृतराष्ट्रको उपालम्भ

संजय उवाच

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा तव ह्यपनयो महान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! मैंने सब कुछ प्रत्यक्ष देखा है, वह सब आपको अभी बताऊँगा । स्थिर होकर सुननेकी इच्छा कीजिये । इस परिस्थितिमें आपका महान् अन्याय ही कारण है ॥ १ ॥

गतोदके सेतुबन्धो यादृक् तादृगयं तव ।
विलापो निष्फलो राजन् मा शुचो भरतर्षभ ॥ २ ॥

भरतश्रेष्ठ राजन् ! जैसे पानी निकल जानेपर वहाँ पुल बाँधना व्यर्थ है, उसी प्रकार इस समय आपका यह विलाप भी निष्फल है । आप शोक न कीजिये ॥ २ ॥

अनतिक्रमणीयोऽयं कृतान्तस्याद्भुतो विधिः ।
मा शुचो भरतश्रेष्ठ दिष्टमेतत् पुरातनम् ॥ ३ ॥

कालके इस अद्भुत विधानका उल्लङ्घन करना असम्भव है । भरतभूषण ! शोक त्याग दीजिये । यह सब पुरातन प्रारब्धका फल है ॥ ३ ॥

यदि त्वं हि पुरा द्यूतात् कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
निवर्तयेथाः पुत्रांश्च न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ४ ॥

यदि आप कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर तथा अपने पुत्रोंको पहले ही जूएसे रोक देते तो आपपर यह संकट नहीं आता ॥

युद्धकाले पुनः प्राप्ते तदैव भवता यदि ।
निवर्तिताः स्युः संरब्धा न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ५ ॥

फिर जब युद्धका अवसर आया, उसी समय यदि आपने क्रोधमें भरे हुए अपने पुत्रोंको बलपूर्वक रोक दिया होता तो आपपर यह संकट नहीं आ सकता था ॥ ५ ॥

दुर्योधनं चाविधेयं बध्नीतेति पुरा यदि ।
कुरूनचोदयिष्यस्त्वं न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ६ ॥

यदि आप पहले ही कौरवोंको यह आज्ञा दे देते कि इस दुर्विनीत दुर्योधनको कैद कर लो तो आपपर यह संकट नहीं आता ॥ ६ ॥

तत् ते बुद्धिव्यभीचारमुपलप्स्यन्ति पाण्डवाः ।
पञ्चाला वृष्णयः सर्वे ये चान्येऽपि नराधिपाः ॥ ७ ॥

आपकी बुद्धिके वैपरीत्यका फल पाण्डव, पाञ्चाल, समस्त वृष्णिवंशी तथा अन्य जो-जो नरेश हैं, वे सभी भोगेंगे ॥७॥

स कृत्वा पितृकर्म त्वं पुत्रं संस्थाप्य सत्पथे ।
वर्तेथा यदि धर्मेण न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ८ ॥

यदि आपने अपने पुत्रको सन्मार्गमें स्थापित करके पिताके कर्तव्यका पालन करते हुए धर्मके अनुसार बर्ताव किया होता तो आपपर यह संकट नहीं आता ॥ ८ ॥

त्वं तु प्राज्ञतमो लोके हित्वा धर्मं सनातनम् ।
दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्चान्वगा मतम् ॥ ९ ॥

आप संसारमें बड़े बुद्धिमान् समझे जाते हैं तो भी आपने सनातनधर्मका परित्याग करके दुर्योधन, कर्ण और शकुनिके मतका अनुसरण किया है ॥ ९ ॥

तत् तं विलपितं सर्वं मया राजन् निशामितम् ।

अर्थे निविशमानस्य विषमिश्रं यथा मधु ॥ १० ॥

राजन् ! आप स्वार्थमें सने हुए हैं। आपका यह सारा विलाप-कलाप मैंने सुन लिया। यह विषमिश्रित मधुके समान ऊपरसे ही मीठा है (इसके भीतर घातक कटुता भरी हुई है) ॥ १० ॥

नामन्यत तदा कृष्णो राजानं पाण्डवं पुरा।
न भीष्मं नैव च द्रोणं यथा त्वां मन्यतेऽच्युतः ॥ ११ ॥

अपनी महिमासे च्युत न होनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण पहले आपका जैसा सम्मान करते थे, वैसा उन्होंने पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर, भीष्म तथा द्रोणाचार्यका भी समादर नहीं किया है ॥ ११ ॥

अजानात् स यदा तु त्वां राजधर्मादधश्च्युतम्।
तदाप्रभृति कृष्णस्त्वां न तथा बहु मन्यते ॥ १२ ॥

परंतु जबसे श्रीकृष्णने यह जान लिया है कि आप राजोचित धर्मसे नीचे गिर गये हैं, तबसे वे आपका उस तरह अधिक आदर नहीं करते हैं ॥ १२ ॥

परुषाण्युच्यमानांश्च यथा पार्थानुपेक्षसे।
तस्यानुबन्धः प्राप्तस्त्वां पुत्राणां राज्यकामुक ॥ १३ ॥

पुत्रोंको राज्य दिलानेकी अभिलाषा रखनेवाले महाराज ! कुन्तीके पुत्रोंको कठोर बातें (गालियाँ) सुनायी जाती थीं और आप उनकी उपेक्षा करते थे। आज उसी अन्यायका फल आपको प्राप्त हुआ है ॥ १३ ॥

पितृपैतामहं राज्यमपवृत्तं तदानघ।
अथ पार्थैर्जितां कृत्स्नां पृथिवीं प्रत्यपद्यथाः ॥ १४ ॥

निष्पाप नरेश ! आपने उन दिनों बाप-दादोंके राज्यको तो अपने अधिकारमें कर ही लिया था; फिर कुन्तीके पुत्रोंद्वारा जीती हुई सम्पूर्ण पृथ्वीका विशाल साम्राज्य भी हड़प लिया ॥ १४ ॥

पाण्डुना निर्जितं राज्यं कौरवाणां यशस्तथा।
ततश्चाप्यधिकं भूयः पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ॥ १५ ॥

राजा पाण्डुने भूमण्डलका राज्य जीता और कौरवोंके यशका विस्तार किया था। फिर धर्मपरायण पाण्डवोंने अपने पितासे भी बढ़-चढ़कर राज्य और सुयशका प्रसार किया है। १५।

तेषां तत् तादृशं कर्म त्वामासाद्य सुनिष्फलम्।
यत् पित्र्याद् भ्रंशिता राज्यात् त्वयेहामिषगृद्धिना॥१६॥

परंतु उनका वैसा महान् कर्म भी आपको पाकर अत्यन्त निष्फल हो गया; क्योंकि आपने राज्यके लोभमें पड़कर उन्हें अपने पैतृक राज्यसे भी वञ्चित कर दिया ॥ १६ ॥

यत् पुनर्युद्धकाले त्वं पुत्रान् गर्हयसे नृप।
बहुधा व्याहरन् दोषान् न तदद्योपपद्यते ॥१७॥

नरेश्वर ! आज जब युद्धका अवसर उपस्थित है, ऐसे समयमें जो आप अपने पुत्रोंके नाना प्रकारके दोष बताते हुए उनकी निन्दा कर रहे हैं यह इस समय आपको शोभा नहीं देता है ॥ १७ ॥

न हि रक्षन्ति राजानो युध्यन्तो जीवितं रणे।
चमूं विगाह्य पार्थानां युध्यन्ते क्षत्रियर्षभाः ॥१८॥

राजा लोग रणक्षेत्रमें युद्ध करते हुए अपने जीवनकी रक्षा नहीं कर रहे हैं। वे क्षत्रियशिरोमणि नरेश पाण्डवोंकी सेनामें घुसकर युद्ध करते हैं ॥ १८ ॥

यां तु कृष्णार्जुनौ सेनां यां सात्यकिवृकोदरौ।
रक्षेरन् को नु तां युध्येच्चमूमन्यत्र कौरवैः ॥ १९ ॥

श्रीकृष्ण, अर्जुन, सात्यकि तथा भीमसेन जिस सेनाकी रक्षा करते हों, उसके साथ कौरवोंके सिवा दूसरा कौन युद्ध कर सकता है ? ॥ १९ ॥

येषां योद्धा गुडाकेशो येषां मन्त्री जनार्दनः।
येषां च सात्यकिर्योद्धा येषां योद्धा वृकोदरः ॥ २० ॥
को हि तान् विषहेद् योद्धुं मर्त्यधर्मा धनुर्धरः।
अन्यत्र कौरवेयेभ्यो ये वा तेषां पदानुगाः ॥ २१ ॥

जिनके योद्धा गुडाकेश अर्जुन हैं, जिनके मन्त्री भगवान् श्रीकृष्ण हैं तथा जिनकी ओरसे युद्ध करनेवाले योद्धा सात्यकि और भीमसेन हैं, उनके साथ कौरवों तथा उनके चरणचिह्नों पर चलनेवाले अन्य नरेशोंको छोड़कर दूसरा कौन मरणधर्मा धनुर्धर युद्ध करनेका साहस कर सकता है ? ॥ २०-२१ ॥

यावत् तु शक्यते कर्तुमन्तरज्ञैर्जनाधिपैः।
क्षत्रधर्मरतैः शूरैस्तावत् कुर्वन्ति कौरवाः ॥ २२ ॥

अवसरको जाननेवाले, क्षत्रिय-धर्मपरायण, शूरवीर राजा लोग जितना कर सकते हैं, कौरवपक्षी नरेश उतना पराक्रम करते हैं ॥ २२ ॥

यथा तु पुरुषव्याघ्रैर्युद्धं परमसंकटम्।
कुरूणां पाण्डवैः सार्धं तत् सर्वं शृणु तत्त्वतः ॥ २३ ॥

पुरुषसिंह पाण्डवोंके साथ कौरवोंका जिस प्रकार अत्यन्त संकटपूर्ण युद्ध हुआ है, वह सब आप ठीक-ठीक सुनिये ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संजयवाक्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें संजय-वाक्यविषयक छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

कौरव-सैनिकोंका उत्साह तथा आचार्य द्रोणके द्वारा चक्रशकटव्यूहका निर्माण

संजय उवाच

तस्यां निशायां व्युष्टायां द्रोणः शस्त्रभृतां वरः।
स्वान्यनीकानि सर्वाणि प्राक्रामद् व्यूहितुं ततः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! वह रात बीतनेपर प्रातःकाल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने अपनी सारी सेनाओंका व्यूह बनाना आरम्भ किया ॥ १ ॥

शूराणां गर्जतां राजन् संक्रुद्धानाममर्षिणाम्।
श्रूयन्ते स्म गिरश्चित्राः परस्परवधैषिणाम् ॥ २ ॥

राजन्! उस समय अत्यन्त क्रोधमें भरकर एक दूसरेके वधकी इच्छासे गर्जना करनेवाले अमर्षशील शूरवीरोंकी विचित्र बातें सुनायी देती थीं ॥ २ ॥

विस्फार्य च धनूंष्यन्ये ज्याः परे परिमृज्य च।
विनिःश्वसन्तः प्राक्रोशन् क्वेदानीं स धनंजयः ॥ ३ ॥

कोई धनुष खींचकर और कोई प्रत्यञ्चापर हाथ फेरकर रोषपूर्ण उच्छ्वास लेते हुए चिल्ला-चिल्लाकर कहते थे कि इस समय वह अर्जुन कहाँ है? ॥ ३ ॥

विकोशान् सुत्सरूनन्ये कृतधारान् समाहितान्।
पीतानाकाशसंकाशानसीन् केचिच्च चिक्षिपुः ॥ ४ ॥

कितने ही योद्धा आकाशके समान निर्मल पानीदार, सँभालकर रक्खी हुई, सुन्दर मूठ और तेज धारवाली तलवारोंको म्यानसे निकालकर चलाने लगे ॥ ४ ॥

चरन्तस्त्वसिमार्गांश्च धनुर्मार्गांश्च शिक्षया।
संग्राममनसः शूरा दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ॥ ५ ॥

मनमें संग्रामके लिये पूर्ण उत्साह रखनेवाले सहस्रों शूरवीर अपनी शिक्षाके अनुसार खड्गयुद्ध और धनुर्युद्धके मार्गों (पैतरों) का प्रदर्शन करते दिखायी देते थे ॥ ५ ॥

सघण्टाश्चन्दनादिग्धाः स्वर्णवज्रविभूषिताः।
समुत्क्षिप्य गदाश्चान्ये पर्यपृच्छन्त पाण्डवम् ॥ ६ ॥

दूसरे बहुत-से योद्धा घंटानादसे युक्त, चन्दनचर्चित तथा सुवर्ण एवं हीरोंसे विभूषित गदाएँ ऊपर उठाकर पूछते थे कि पाण्डुपुत्र अर्जुन कहाँ है? ॥ ६ ॥

अन्ये बलमदोन्मत्ताः परिघैर्बाहुशालिनः।
चक्रुः सम्बाधमाकाशमुच्छ्रितेन्द्रध्वजोपमैः ॥ ७ ॥

अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले कितने ही योद्धा अपने बलके मदसे उन्मत्त हो ऊँचे फहराते हुए इन्द्र-ध्वजके समान उठे हुए परिघोंसे सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त कर रहे थे ॥

नानाप्रहरणैश्चान्ये विचित्रस्रगलङ्कृताः।
संग्राममनसः शूरास्तत्र तत्र व्यवस्थिताः ॥ ८ ॥

दूसरे शूरवीर योद्धा विचित्र मालाओंसे अलङ्कृत हो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये मनमें युद्धके लिये उत्साहित होकर जहाँ-तहाँ खड़े थे ॥ ८ ॥

क्वार्जुनः क्व स गोविन्दः क्व च मानी वृकोदरः।
क्व च ते सुहृदस्तेषामाह्वयन्ते रणे तदा ॥ ९ ॥

वे उस समय रणक्षेत्रमें शत्रुओंको ललकारते हुए इस प्रकार कहते थे, कहाँ है अर्जुन? कहाँ हैं श्रीकृष्ण? कहाँ है घमंडी भीमसेन? और कहाँ हैं उनके सारे सुहृद् ॥ ९ ॥

ततः शङ्खमुपाध्माय त्वरयन् वाजिनः स्वयम्।
इतस्ततस्तान् रचयन् द्रोणश्चरति वेगितः ॥ १० ॥

तदनन्तर द्रोणाचार्य शङ्ख बजाकर स्वयं ही अपने घोड़ोंको उतावलीके साथ हाँकते और उन सैनिकोंका व्यूह-निर्माण करते हुए इधर-उधर बड़े वेगसे विचर रहे थे ॥ १० ॥

तेष्वनीकेषु सर्वेषु स्थितेष्वाहवनन्दिषु।
भारद्वाजो महाराज जयद्रथमथाब्रवीत् ॥ ११ ॥

महाराज! युद्धसे प्रसन्न होनेवाले उन समस्त सैनिकोंके व्यूहबद्ध हो जानेपर द्रोणाचार्यने जयद्रथसे कहा— ॥ ११ ॥

त्वं चैव सौमदत्तिश्च कर्णश्चैव महारथः।
अश्वत्थामा च शल्यश्च वृषसेनः कृपस्तथा ॥ १२ ॥
शतं चाश्वसहस्राणां रथानामयुतानि षट्।
द्विरदानां प्रभिन्नानां सहस्राणि चतुर्दश ॥ १३ ॥
पदातीनां सहस्राणि दंशितान्येकविंशतिः।
गव्यूतिषु त्रिमात्रासु मामनासाद्य तिष्ठत ॥ १४ ॥

'राजन्! तुम, भूरिश्रवा, महारथी कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन तथा कृपाचार्य, एक लाख घुड़सवार, साठ हजार रथ, चौदह हजार मदस्रावी गजराज तथा इक्कीस हजार कवचधारी पैदल सैनिकोंको साथ लेकर मुझसे छः कोसकी दूरीपर जाकर डटे रहो ॥ १२–१४ ॥

तत्रस्थं त्वां न संसोढुं शक्ता देवाः सवासवाः।
किं पुनः पाण्डवाः सर्वे समाश्वसिहि सैन्धव ॥ १५ ॥

'सिंधुराज! वहाँ रहनेपर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता भी तुम्हारा सामना नहीं कर सकते; फिर समस्त पाण्डव तो कर ही कैसे सकते हैं? अतः तुम धैर्य धारण करो' ॥ १५ ॥

एवमुक्तः समाश्वस्तः सिन्धुराजो जयद्रथः।
सम्प्रायात् सह गान्धारैर्वृतस्तैश्च महारथैः ॥ १६ ॥
वर्मिभिः सादिभिर्यत्तैः प्रासपाणिभिरास्थितैः।

उनके ऐसा कहनेपर सिंधुराज जयद्रथको बड़ा आश्वासन मिला। वह गान्धार महारथियोंसे घिरा हुआ युद्धके लिये चल दिया। कवचधारी घुड़सवार हाथोंमें प्रास लिये पूरी सावधानीके साथ उन्हें घेरे हुए चल रहे थे ॥ १६½ ॥

चामरापीडिनः सर्वे जाम्बूनदविभूषिताः ॥ १७ ॥
जयद्रथस्य राजेन्द्र हयाः साधुप्रवाहिनः ।
ते चैव सप्तसाहस्रास्त्रिसाहस्राश्च सैन्धवाः ॥ १८ ॥

राजेन्द्र ! जयद्रथके घोड़े सवारीमें बहुत अच्छा काम देते थे । वे सबके सब चवँरकी कलँगीसे सुशोभित और सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित थे । उन सिंधुदेशीय अश्वोंकी संख्या दस हजार थी ॥ १७-१८ ॥

मत्तानां सुविरूढानां हस्त्यारोहैर्विशारदैः ।
नागानां भीमरूपाणां वर्मिणां रौद्रकर्मिणाम् ॥ १९ ॥
अध्यर्धेन सहस्रेण पुत्रो दुर्मर्षणस्तव ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां युध्यमानो व्यवस्थितः ॥ २० ॥

जिनपर युद्धकुशल हाथीसवार आरूढ थे, ऐसे भयंकर रूप तथा पराक्रमवाले डेढ़ हजार कवचधारी मतवाले गजराजोंके साथ आकर आपका पुत्र दुर्मर्षण युद्धके लिये उद्यत हो सम्पूर्ण सेनाओंके आगे खड़ा हुआ ॥ १९-२० ॥

ततो दुःशासनश्चैव विकर्णश्च तवात्मजौ ।
सिन्धुराजार्थसिद्ध्यर्थमग्रानीके व्यवस्थितौ ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् आपके दो पुत्र दुःशासन और विकर्ण सिन्धुराज जयद्रथके अभीष्ट अर्थकी सिद्धिके लिये सेनाके अग्रभागमें खड़े हुए ॥ २१ ॥

दीर्घो द्वादश गव्यूतिः पश्चार्धे पञ्च विस्तृतः ।
व्यूहस्तु चक्रशकटो भारद्वाजेन निर्मितः ॥ २२ ॥

आचार्य द्रोणने चक्रगर्भ शकट-व्यूहका निर्माण किया था, जिसकी लम्बाई बारह गव्यूति (चौबीस कोस) थी और पिछले भागकी चौड़ाई पाँच गव्यूति (दस कोस) थी ॥२२॥

नानानृपतिभिर्वीरैस्तत्र तत्र व्यवस्थितैः ।
रथाश्वगजपत्त्योघैर्द्रोणेन विहितः स्वयम् ॥ २३ ॥

यत्र-तत्र खड़े हुए अनेक नरपतियों तथा हाथीसवार, घुड़सवार, रथी और पैदल सैनिकोंद्वारा द्रोणाचार्यने स्वयं उस व्यूहकी रचना की थी ॥ २३ ॥

पश्चार्धे तस्य पद्मस्तु गर्भव्यूहः सुदुर्भिदः ।
सूची पद्मस्य गर्भस्थो गूढो व्यूहः कृतः पुनः ॥ २४ ॥

उस चक्रशकटव्यूहके पिछले भागमें पद्मनामक एक गर्भव्यूह बनाया गया था, जो अत्यन्त दुर्भेद्य था । उस पद्मव्यूहके मध्यभागमें सूची नामक एक गूढ़ व्यूह और बनाया गया था ॥ २४ ॥

एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य द्रोणो व्यवस्थितः ।
सूचीमुखे महेष्वासः कृतवर्मा व्यवस्थितः ॥ २५ ॥

इस प्रकार इस महाव्यूहकी रचना करके द्रोणाचार्य युद्धके लिये तैयार खड़े थे । सूचीमुख व्यूहके प्रमुख भागमें महाधनुर्धर कृतवर्मा खड़ा किया गया था ॥ २५ ॥

अनन्तरं च काम्बोजो जलसंधश्च मारिष ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च तदनन्तरमेव च ॥ २६ ॥

आर्य ! कृतवर्माके पीछे काम्बोजराज और जलसंध खड़े हुए, तदनन्तर दुर्योधन और कर्ण स्थित हुए ॥२६॥

ततः शतसहस्राणि योधानामनिवर्तिनाम् ।
व्यवस्थितानि सर्वाणि शकटे मुखरक्षिणाम् ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् युद्धमें पीठ न दिखानेवाले एक लाख योद्धा खड़े हुए थे । वे सबके सब शकटव्यूहके प्रमुख भागकी रक्षाके लिये नियुक्त थे ॥ २७ ॥

तेषां च पृष्ठतो राजा बलेन महता वृतः ।
जयद्रथस्ततो राजा सूचीपार्श्वे व्यवस्थितः ॥ २८ ॥

उनके पीछे विशाल सेनाके साथ स्वयं राजा जयद्रथ सूचीव्यूहके पार्श्वभागमें खड़ा था ॥ २८ ॥

शकटस्य तु राजेन्द्र भारद्वाजो मुखे स्थितः ।
अनु तस्याभवद् भोजो जुगोपैनं ततः स्वयम् ॥ २९ ॥

राजेन्द्र ! उस शकटव्यूहके मुहानेपर भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्य थे और उनके पीछे भोज था, जो स्वयं आचार्यकी रक्षा करता था ॥ २९ ॥

श्वेतवर्माम्बरोष्णीषो व्यूढोरस्को महाभुजः ।
धनुर्विस्फारयन् द्रोणस्तस्थौ क्रुद्ध इवान्तकः ॥ ३० ॥

द्रोणाचार्यका कवच श्वेत रंगका था । उनके वस्त्र और उष्णीष (पगड़ी) भी श्वेत ही थे । छाती चौड़ी और भुजाएँ विशाल थीं । उस समय धनुष खींचते हुए द्रोणाचार्य वहाँ क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान खड़े थे ॥ ३० ॥

पताकिनं शोणहयं वेदिकृष्णाजिनध्वजम् ।
द्रोणस्य रथमालोक्य प्रहृष्टाः कुरवोऽभवन् ॥ ३१ ॥

उस समय वेदी और काले मृगचर्मके चिह्नसे युक्त ध्वजवाले, पताकासे सुशोभित और लाल घोड़ोंसे जुते हुए द्रोणाचार्यके रथको देखकर समस्त कौरव बड़े प्रसन्न हुए ३१

सिद्धचारणसंघानां विस्मयः सुमहानभूत् ।
द्रोणेन विहितं दृष्ट्वा व्यूहं क्षुब्धार्णवोपमम् ॥ ३२ ॥

द्रोणाचार्यद्वारा रचित वह महाव्यूह क्षुब्ध महासागरके समान जान पड़ता था । उसे देखकर सिद्धों और चारणोंके समुदायोंको महान् विस्मय हुआ ॥ ३२ ॥

सशैलसागरवनां नानाजनपदाकुलाम् ।
ग्रसेद् व्यूहः क्षितिं सर्वामिति भूतानि मेनिरे ॥ ३३ ॥

उस समय समस्त प्राणी ऐसा मानने लगे कि वह व्यूह पर्वत, समुद्र और काननोंसहित अनेकानेक जनपदोंसे भरी हुई इस सारी पृथ्वीको अपना ग्रास बना लेगा ॥ ३३ ॥

बहुरथमनुजाश्वपत्तिनागं
प्रतिभयनिःस्वनमद्भुतानुरूपम् ।

अहितहृदयभेदनं महद् वै
शकटमवेक्ष्य कृतं ननन्द राजा ॥ ३४ ॥

बहुत-से रथ, पैदल मनुष्य, घोड़े और हाथियोंसे परिपूर्ण, भयंकर कोलाहलसे युक्त एवं शत्रुओंके हृदयको विदीर्ण करनेमें समर्थ, अद्भुत और समयके अनुरूप बने हुए उस महान् शकटव्यूहको देखकर राजा दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कौरवव्यूहनिर्माणे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें कौरव-सेनाके व्यूहका निर्माणविषयक सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

कौरव-सेनाके लिये अपशकुन, दुर्मर्षणका अर्जुनसे लड़नेका उत्साह तथा अर्जुनका रणभूमिमें प्रवेश एवं शङ्खनाद

संजय उवाच

ततो व्यूढेष्वनीकेषु समुत्क्रुष्टेषु मारिष ।
ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेषु नदत्सु च ॥ १ ॥
अनीकानां च संह्रादे वादित्राणां च निःस्वने ।
प्रध्मापितेषु शङ्खेषु संनादे लोमहर्षणे ॥ २ ॥
अभिहारयत्सु शनकैर्भरतेषु युयुत्सुषु ।
रौद्रे मुहूर्ते सम्प्राप्ते सव्यसाची व्यदृश्यत ॥ ३ ॥

संजय कहते हैं—आर्य ! जब इस प्रकार कौरव-सेनाओंकी व्यूह-रचना हो गयी, युद्धके लिये उत्सुक सैनिक कोलाहल करने लगे, नगाड़े पीटे जाने लगे, मृदङ्ग बजने लगे, सैनिकोंकी गर्जनाके साथ-साथ रणवाद्योंकी तुमुल ध्वनि फैलने लगी, शङ्ख फूँके जाने लगे, रोमाञ्चकारी शब्द गूँजने लगा और युद्धके इच्छुक भरतवंशी वीर जब कवच धारण करके धीरे-धीरे प्रहारके लिये उद्यत होने लगे, उस समय उग्र मुहूर्त आनेपर युद्धभूमिमें सव्यसाची अर्जुन दिखायी दिये ॥

वलानां वायसानां च पुरस्तात् सव्यसाचिनः ।
बहुलानि सहस्राणि प्राक्रीडंस्तत्र भारत ॥ ४ ॥

भारत ! वहाँ सव्यसाची अर्जुनके सम्मुख आकाशमें कई हजार कौए और वायस क्रीडा करते हुए उड़ रहे थे ॥ ४ ॥

मृगाश्च घोरसंनादाः शिवाश्चाशिवदर्शनाः ।
दक्षिणेन प्रयातानामस्माकं प्राणदंस्तथा ॥ ५ ॥

और जब हमलोग आगे बढ़ने लगे, तब भयंकर शब्द करनेवाले पशु और अशुभ दर्शनवाले सियार हमारे दाहिने आकर कोलाहल करने लगे ॥ ५ ॥

(लोकक्षये महाराज यादृशास्तादृशा हि ते ।
अशिवा धार्तराष्ट्राणां शिवाः पार्थस्य संयुगे ॥)

महाराज ! उस लोक-संहारकारी युद्धमें जैसे-तैसे अपशकुन प्रकट होने लगे, जो आपके पुत्रोंके लिये अमङ्गलकारी और अर्जुनके लिये मङ्गलकारी थे ॥

सनिर्घाता ज्वलन्त्यश्च पेतुरुल्काः सहस्रशः ।
चचाल च मही कृत्स्ना भये घोरे समुत्थिते ॥ ६ ॥

महान् भय उपस्थित होनेके कारण आकाशसे भयंकर गर्जनाके साथ सहस्रों जलती हुई उल्काएँ गिरने लगीं और सारी पृथ्वी काँपने लगी ॥ ६ ॥

विष्वग्वाताः सनिर्घाता रूक्षाः शर्करवर्षिणः ।
ववुरायाति कौन्तेये संग्रामे समुपस्थिते ॥ ७ ॥

अर्जुनके आने और संग्रामका अवसर उपस्थित होनेपर रेतकी वर्षा करनेवाली विकट गर्जन-तर्जनके साथ रूखी एवं चौबाई हवा चलने लगी ॥ ७ ॥

नाकुलिश्च शतानीको धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
पाण्डवानामनीकानि प्राज्ञौ तौ व्यूहतुस्तदा ॥ ८ ॥

उस समय नकुलपुत्र शतानीक और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न—इन दोनों बुद्धिमान् वीरोंने पाण्डव सैनिकोंके व्यूहका निर्माण किया ॥ ८ ॥

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतेन च ।
त्रिभिरश्वसहस्रैश्च पदातीनां शतैः शतैः ॥ ९ ॥
अध्यर्धमात्रे धनुषां सहस्रे तनयस्तव ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थित्वा दुर्मर्षणोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

तदनन्तर एक हजार रथी, सौ हाथीसवार, तीन हजार घुड़सवार और दस हजार पैदल सैनिकोंके साथ आकर अर्जुनसे डेढ़ हजार धनुषकी दूरीपर स्थित हो समस्त कौरव सैनिकोंके आगे होकर आपके पुत्र दुर्मर्षणने इस प्रकार कहा—॥ ९-१० ॥

अद्य गाण्डीवधन्वानं तपन्तं युद्धदुर्मदम् ।
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ ११ ॥

'जिस प्रकार तटभूमि समुद्रको आगे बढ़नेसे रोकती है, उसी प्रकार आज मैं युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले शत्रुसंतापी गाण्डीवधारी अर्जुनको रोक दूँगा ॥ ११ ॥

अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनंजयममर्षणम् ।
विषक्तं मयि दुर्धर्षमश्मकूटमिवाश्मनि ॥ १२ ॥

'आज सब लोग देखें, जैसे पत्थर दूसरे प्रस्तरसमूहसे टकराकर रह जाता है, उसी प्रकार अमर्षशील दुर्धर्ष अर्जुन युद्धस्थलमें मुझसे भिड़कर अवरुद्ध हो जायँगे ॥ १२ ॥

तिष्ठध्वं रथिनो यूयं संग्राममभिकाङ्क्षिणः ।

युध्यामि संहतानेतान् यशो मानं च वर्धयन् ॥ १३ ॥

'संग्रामकी इच्छा रखनेवाले रथियो ! आपलोग चुपचाप खड़े रहें । मैं कौरवकुलके यश और मानकी वृद्धि करता हुआ आज इन संगठित होकर आये हुए शत्रुओंके साथ युद्ध करूँगा।' ॥ १३ ॥

एवं ब्रुवन्महाराज महात्मा स महामतिः ।
महेष्वासैर्वृतो राजन् महेष्वासो व्यवस्थितः ॥ १४ ॥

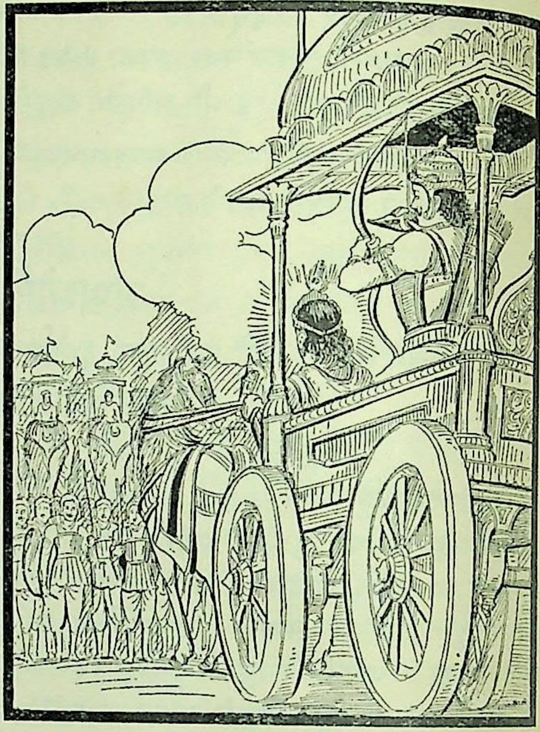
राजन् ! महाराज ! ऐसा कहता हुआ वह महामनस्वी महाबुद्धिमान् एवं महाधनुर्धर दुर्मर्षण बड़े-बड़े धनुर्धरोंसे घिरकर युद्धके लिये खड़ा हो गया ॥ १४ ॥

ततोऽन्तक इव क्रुद्धः सवज्र इव वासवः ।
दण्डपाणिरिवासह्यो मृत्युः कालेन चोदितः ॥ १५ ॥
शूलपाणिरिवाक्षोभ्यो वरुणः पाशवानिव ।
युगान्ताग्निरिवार्चिष्मान् प्रधक्ष्यन् वै पुनः प्रजाः ॥ १६ ॥
क्रोधामर्षबलोद्धूतो निवातकवचान्तकः ।
जयो जेता स्थितः सत्ये पारयिष्यन् महाव्रतम् ॥ १७ ॥
आमुक्तकवचः खड्गी जाम्बूनदकिरीटभृत् ।
शुभ्रमाल्याम्बरधरः स्वङ्गदश्चारुकुण्डलः ॥ १८ ॥
रथप्रवरमास्थाय नरो नारायणानुगः ।
विधुन्वन् गाण्डिवं संख्ये बभौ सूर्य इवोदितः ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए यमराज, वज्रधारी इन्द्र, दण्डधारी असह्य अन्तक, कालप्रेरक मृत्यु, किसीसे भी क्षुब्ध न होनेवाले त्रिशूलधारी रुद्र, पाशधारी वरुण तथा पुनः समस्त प्रजाको दग्ध करनेके लिये उठे हुए ज्वालाओंसे युक्त प्रलयकालीन अग्निदेवके समान दुर्धर्ष वीर अर्जुन युद्धस्थलमें अपने श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो गाण्डीव धनुषकी टंकार करते हुए नवोदित सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे । वे क्रोध, अमर्ष और बलसे प्रेरित होकर आगे बढ़ रहे थे । उन्होंने ही पूर्वकालमें निवातकवच नामक दानवोंका संहार किया था । वे जय नामके अनुसार ही विजयी होते थे । सत्यमें स्थित होकर अपने महान् व्रतको पूर्ण करनेके लिये उद्यत थे । उन्होंने कवच बाँध रक्खा था । मस्तकपर जाम्बूनद सुवर्णका बना हुआ किरीट धारण किया था । उनके कमरमें तलवार लटक रही थी । वे नरस्वरूप अर्जुन नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका अनुसरण करते हुए सुन्दर अंगदों (बाजूबन्द) और मनोहर कुण्डलोंसे सुशोभित हो रहे थे । उन्होंने श्वेत माला और श्वेत वस्त्र पहन रक्खे थे ॥ १५–१९ ॥

सोऽग्रानीकस्य महत इषुपाते धनंजयः ।
व्यवस्थाप्य रथं राजञ्शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ २० ॥

राजन् ! प्रतापी अर्जुनने अपने सामने खड़ी हुई विशाल शत्रुसेनाके सम्मुख, जितनी दूरसे बाण मारा जा सके उतनी ही दूरीपर अपने रथको खड़ा करके शङ्ख बजाया ॥ २० ॥



अथ कृष्णोऽप्यसम्भ्रान्तः पार्थेन सह मारिष ।
प्राध्मापयत् पाञ्चजन्यं शङ्खं प्रवरमोजसा ॥ २१ ॥

आर्य ! तब श्रीकृष्णने भी अर्जुनके साथ बिना किसी घबराहटके अपने श्रेष्ठ शङ्ख पाञ्चजन्यको बलपूर्वक बजाया ॥ २१ ॥

तयोः शङ्खप्रणादेन तव सैन्ये विशाम्पते ।
आसन् संहृष्टरोमाणः कम्पिता गतचेतसः ॥ २२ ॥

प्रजानाथ ! उन दोनोंके शङ्खनादसे आपकी सेनाके समस्त योद्धाओंके रोंगटे खड़े हो गये, सब लोग काँपते हुए अचेत-से हो गये ॥ २२ ॥

यथा त्रस्यन्ति भूतानि सर्वाण्यशनिनिःस्वनात् ।
तथा शङ्खप्रणादेन वित्रेसुस्तव सैनिकाः ॥ २३ ॥

जैसे वज्रकी गड़गड़ाहटसे सारे प्राणी थर्रा उठते हैं, उसी प्रकार उन दोनों वीरोंकी शङ्खध्वनिसे आपके समस्त सैनिक संत्रस्त हो उठे ॥ २३ ॥

प्रसुस्रुवुः शकृन्मूत्रं वाहनानि च सर्वशः ।
एवं सवाहनं सर्वमाविग्नमभवद् बलम् ॥ २४ ॥

सेनाके सभी वाहन भयके मारे मल-मूत्र करने लगे । इस प्रकार सवारियोंसहित सारी सेना उद्विग्न हो गयी ॥ २४ ॥

सीदन्ति स्म नरा राजञ्शङ्खशब्देन मारिष ।
विसंज्ञाश्चाभवन् केचित् केचिद् राजन् वितत्रसुः ॥ २५ ॥

आदरणीय महाराज ! अपनी सेनाके सब मनुष्य वह शङ्खनाद सुनकर शिथिल हो गये । नरेश्वर ! कितने ही तो मूर्च्छित हो गये और कितने ही भयसे थर्रा उठे ॥ २५ ॥

ततः कपिर्महानादं सह भूतैर्ध्वजालयैः ।
अकरोद् व्यादितास्यश्च भीषयंस्तव सैनिकान् ॥ २६ ॥



श्रीकृष्ण और अर्जुनका दुर्मर्षणकी गजसेनामें प्रवेश

तत्पश्चात् अर्जुनकी ध्वजामें निवास करनेवाले भूतगणों-के साथ वहाँ बैठे हुए हनूमान्‌जीने मुँह बाकर आपके सैनिकों-को भयभीत करते हुए बड़े जोरसे गर्जना की ॥ २६ ॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्चानकैः सह ।
पुनरेवाभ्यहन्यन्त तव सैन्यप्रहर्षणाः ॥ २७ ॥

तब आपकी सेनामें भी पुनः मृदङ्ग और ढोलके साथ शङ्ख तथा नगाड़े बज उठे, जो आपके सैनिकोंके हर्ष और उत्साहको बढ़ानेवाले थे ॥ २७ ॥

नानावादित्रसंह्रादैः क्ष्वेडितास्फोटिताकुलैः ।
सिंहनादैः समुत्कृष्टैः समाधूतैर्महारथैः ॥ २८ ॥
तस्मिंस्तु तुमुले शब्दे भीरूणां भयवर्धने ।
अतीव हृष्टो दाशार्हमब्रवीत् पाकशासनिः ॥ २९ ॥

नाना प्रकारके रणवाद्योंकी ध्वनिसे, गर्जन-तर्जन करनेसे, ताल ठोंकनेसे, सिंहनादसे और महारथियोंके ललकारनेसे जो शब्द होते थे, वे सब मिलकर भयंकर हो उठे और भीरु पुरुषोंके हृदयमें भय उत्पन्न करने लगे। उस समय अत्यन्त हर्षमें भरे हुए इन्द्रपुत्र अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुनरणप्रवेशे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अर्जुनका रणभूमिमें प्रवेशविषयक अठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ३० श्लोक हैं)

एकोननवतितमोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा दुर्मर्षणकी गजसेनाका संहार और समस्त सैनिकोंका पलायन

अर्जुन उवाच

चोदयाश्वान् हृषीकेश यत्र दुर्मर्षणः स्थितः ।
एतद् भित्त्वा गजानीकं प्रवेक्ष्याम्यरिवाहिनीम् ॥ १ ॥

अर्जुन बोले—हृषीकेश! जहाँ दुर्मर्षण खड़ा है, उसी ओर घोड़ोंको बढ़ाइये। मैं उसकी इस गजसेनाका भेदन करके शत्रुओंकी विशाल वाहिनीमें प्रवेश करूँगा ॥ १ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना ।
अचोदयद्धयांस्तत्र यत्र दुर्मर्षणः स्थितः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! सव्यसाची अर्जुनके ऐसा कहनेपर महाबाहु श्रीकृष्णने, जहाँ दुर्मर्षण खड़ा था, उसी ओर घोड़ोंको हाँका ॥ २ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलः सम्प्रवृत्तः सुदारुणः ।
एकस्य च बहूनां च रथनागनरक्षयः ॥ ३ ॥

उस समय एक वीरका बहुत-से योद्धाओंके साथ बड़ा भयंकर घमासान युद्ध छिड़ गया, जो रथों, हाथियों और मनुष्योंका संहार करनेवाला था ॥ ३ ॥

ततः सायकवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
परानवाकिरत् पार्थः पर्वतानिव नीरदः ॥ ४ ॥

तदनन्तर अर्जुन बाणोंकी वर्षा करते हुए जल बरसाने-वाले मेघके समान प्रतीत होने लगे। जैसे मेघ पानीकी वर्षा करके पर्वतोंको आच्छादित कर देता है, उसी प्रकार अर्जुनने अपनी बाणवर्षासे शत्रुओंको ढक दिया ॥ ४ ॥

ते चापि रथिनः सर्वे त्वरिताः कृतहस्तवत् ।
अवाकिरन् बाणजालैस्तत्र कृष्णधनंजयौ ॥ ५ ॥

उधर उन समस्त कौरव रथियोंने भी सिद्धहस्त पुरुषोंकी भाँति शीघ्रतापूर्वक अपने बाणसमूहोंद्वारा वहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुनको आच्छादित कर दिया ॥ ५ ॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्वार्यमाणः परैर्युधि ।
शिरांसि रथिनां पार्थः कायेभ्योऽपाहरच्छरैः ॥ ६ ॥

उस समय युद्धस्थलमें शत्रुओंके द्वारा रोके जानेपर महाबाहु अर्जुन कुपित हो उठे और अपने बाणोंद्वारा रथियों-के मस्तकोंको उनके शरीरोंसे काटकर गिराने लगे ॥ ६ ॥

उद्भ्रान्तनयनैर्वक्त्रैः संदष्टौष्ठपुटैः शुभैः ।
सकुण्डलशिरस्त्राणैर्वसुधा समकीर्यत ॥ ७ ॥

कुण्डल और टोपोंसहित उन रथियोंके घूमते हुए नेत्रों तथा दाँतोंद्वारा चबाये जाते हुए ओठोंवाले सुन्दर मुखोंसे सारी रणभूमि पट गयी ॥ ७ ॥

पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः ।
विनिकीर्णानि योधानां वदनानि चकाशिरे ॥ ८ ॥

सब ओर बिखरे हुए योद्धाओंके मुख कटकर गिरे हुए कमल-समूहोंके समान सुशोभित होने लगे ॥ ८ ॥

तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण च ।
संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसंघाः सविद्युतः ॥ ९ ॥

सुवर्णमय कवच धारण किये और खूनसे लथपथ हो एक दूसरेसे सटे हुए हताहत योद्धाओंके शरीर विद्युत्सहित मेघसमूहोंके समान दिखायी देते थे ॥ ९ ॥

शिरसां पततां राजञ्शब्दोऽभूद् वसुधातले ।
कालेन परिपक्वानां तालानां पततामिव ॥ १० ॥

राजन्! कालसे परिपक्व हुए ताड़के फलोंके पृथ्वीपर गिरनेसे जैसा शब्द होता है, उसी प्रकार रणभूमिमें कटकर गिरते हुए योद्धाओंके मस्तकोंका शब्द होता था ॥ १० ॥

ततः कबन्धं किंचित् तु धनुरालम्ब्य तिष्ठति ।
किंचित् खड्गं विनिष्कृष्य भुजेनोद्यम्य तिष्ठति ॥ ११ ॥

कोई-कोई कबन्ध (बिना सिरका धड़) धनुष लेकर

खड़ा था और कोई तलवार खींचकर उसे हाथमें उठाये खड़ा हुआ था ॥ ११ ॥

पतितानि न जानन्ति शिरांसि पुरुषर्षभाः।
अमृष्यमाणाः संग्रामे कौन्तेयं जयगृद्धिनः ॥१२॥

संग्राममें विजयकी अभिलाषा रखनेवाले कितने ही श्रेष्ठ पुरुष कुन्तीपुत्र अर्जुनके प्रति अमर्षशील होकर यह भी न जान पाये कि उनके मस्तक कब कटकर गिर गये ॥१२॥

हयानामुत्तमाङ्गैश्च हस्तिहस्तैश्च मेदिनी।
बाहुभिश्च शिरोभिश्च वीराणां समकीर्यत ॥१३॥

घोड़ोंके मस्तकों, हाथियोंकी सूँड़ों और वीरोंकी भुजाओं तथा सिरोंसे सारी रणभूमि आच्छादित हो गयी थी॥

अयं पार्थः कुतः पार्थ एष पार्थ इति प्रभो।
तव सैन्येषु योधानां पार्थभूतमिवाभवत् ॥१४॥

प्रभो ! आपकी सेनाओंके समस्त योद्धाओंकी दृष्टिमें सब ओर अर्जुनमय-सा हो रहा था। वे बार-बार 'यह अर्जुन है, कहाँ अर्जुन है ? यह अर्जुन है' इस प्रकार चिल्ला उठते थे ॥

अन्योन्यमपि चाजघ्नुरात्मानमपि चापरे।
पार्थभूतममन्यन्त जगत् कालेन मोहिताः ॥१५॥

बहुत-से दूसरे सैनिक आपसमें ही एक दूसरेपर तथा अपने ऊपर भी प्रहार कर बैठते थे। वे कालसे मोहित होकर सारे संसारको अर्जुनमय ही मानने लगे ॥ १५ ॥

निष्टनन्तः सरुधिरा विसंज्ञा गाढवेदनाः।
शयाना बहवो वीराः कीर्तयन्तः स्वबान्धवान् ॥१६॥

बहुत-से वीर रक्तसे भीगे शरीरसे धराशायी होकर गहरी वेदनाके कारण कराहते हुए अपनी चेतना खो बैठते थे और कितने ही योद्धा धरतीपर पड़े-पड़े अपने बन्धु-बान्धवोंको पुकार रहे थे ॥ १६ ॥

सभिन्दिपालाः सप्रासाः सशक्त्यृष्टिपरश्वधाः।
सनिर्व्यूहाः सनिस्त्रिंशाः सशरासनतोमराः ॥१७॥
सबाणवर्माभरणाः सगदाः साङ्गदा रणे।
महाभुजगसंकाशा बाहवः परिघोपमाः ॥१८॥
उद्वेष्टन्ति विचेष्टन्ति संचेष्टन्ति च सर्वशः।
वेगं कुर्वन्ति संरब्धा निकृत्ताः परमेषुभिः ॥१९॥

अर्जुनके श्रेष्ठ बाणोंसे कटी हुई वीरोंकी परिघके समान मोटी और महान् सर्पके समान दिखायी देनेवाली भिन्दिपाल, प्रास, शक्ति, ऋष्टि, फरसे, निर्व्यूह, खड्ग, धनुष, तोमर, बाण, कवच, आभूषण, गदा और भुजबंद आदिसे युक्त भुजाएँ आवेशमें भरकर अपना महान् वेग प्रकट करती, ऊपरको उछलती, छटपटाती और सब प्रकारकी चेष्टाएँ करती थीं ॥ १७-१९ ॥

यो यः स समरे पार्थं प्रतिसंचरते नरः।
तस्य तस्यान्तको बाणः शरीरमुपसर्पति ॥२०॥

जो जो मनुष्य उस समराङ्गणमें अर्जुनका सामना करनेके लिये चलता था, उस-उसके शरीरपर प्राणान्तकारी बाण आ गिरता था ॥ २० ॥

नृत्यतो रथमार्गेषु धनुर्व्यायच्छतस्तथा।
न कश्चित् तत्र पार्थस्य ददर्शोऽन्तरमण्वपि ॥२१॥

अर्जुन वहाँ इस प्रकार निरन्तर रथके मार्गोंपर विचरते और धनुषको खींच रहे थे कि उस समय कोई भी उनपर प्रहार करनेका थोड़ा-सा भी अवसर नहीं देख पाता था ॥ २१ ॥

यत्तस्य घटमानस्य क्षिप्रं विक्षिपतः शरान्।
लाघवात् पाण्डुपुत्रस्य व्यस्मयन्त परे जनाः ॥२२॥

पाण्डुपुत्र अर्जुन पूर्ण सावधान हो विजय पानेकी चेष्टा करते और शीघ्रतापूर्वक बाण चलाते थे। उस समय उनकी फुर्ती देखकर दूसरे लोगोंको बड़ा आश्चर्य होता था ॥२२॥

हस्तिनं हस्तियन्तारमश्वमाश्विकमेव च।
अभिनत् फाल्गुनो बाणै रथिनं च ससारथिम् ॥२३॥

अर्जुनने हाथी और महावतको, घोड़े और घुड़सवारको तथा रथी और सारथिको भी अपने बाणोंसे विदीर्ण कर डाला॥

आवर्तमानमावृत्तं युध्यमानं च पाण्डवः।
प्रमुखे तिष्ठमानं च न किंचिन्न निहन्ति सः ॥२४॥

जो लौटकर आ रहे थे, जो आ चुके थे, जो युद्ध करते थे और जो सामने खड़े थे—इनमेंसे किसीको भी पाण्डुकुमार अर्जुन मारे बिना नहीं छोड़ते थे ॥ २४ ॥

यथोद्यन् वै गगने सूर्यो हन्ति महत् तमः।
तथार्जुनो गजानीकमवधीत् कङ्कपत्रिभिः ॥२५॥

जैसे आकाशमें उदित हुआ सूर्य महान् अन्धकारको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार अर्जुनने कंककी पाँखवाले बाणोंद्वारा उस गजसेनाका संहार कर डाला ॥ २५ ॥

हस्तिभिः पतितैर्भिन्नैस्तव सैन्यमदृश्यत।
अन्तकाले यथा भूमिर्व्यवकीर्णा महीधरैः ॥२६॥

राजन् ! बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर धरतीपर पड़े हुए हाथियोंसे आपकी सेना वैसी ही दिखायी देती थी, जैसे प्रलयकालमें यह पृथ्वी इधर-उधर बिखरे हुए पर्वतोंसे आच्छादित देखी जाती है ॥ २६ ॥

यथा मध्यन्दिने सूर्यो दुष्प्रेक्ष्यः प्राणिभिः सदा।
तथा धनंजयः क्रुद्धो दुष्प्रेक्ष्यो युधि शत्रुभिः ॥२७॥

जैसे दोपहरके सूर्यकी ओर देखना समस्त प्राणियोंके लिये सदा ही कठिन होता है, उसी प्रकार उस युद्धस्थलमें कुपित हुए अर्जुनकी ओर शत्रुलोग बड़ी कठिनाईसे देख पाते थे ॥ २७ ॥

तत् तथा तव पुत्रस्य सैन्यं युधि परंतप।
प्रभग्नं द्रुतमाविग्नमतीव शरपीडितम् ॥२८॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश ! इस प्रकार उस युद्धस्थलमें अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हुई आपके पुत्रकी सेनाके पाँव उखड़ गये और वह अत्यन्त उद्विग्न हो तुरंत ही वहाँसे भाग चली ॥

मारुतेनेव महता मेघानीकं व्यदीर्यत ।
प्रकाल्यमानं तत् सैन्यं नाशकत् प्रतिवीक्षितुम् ॥ २९ ॥

जैसे बड़े वेगसे उठी हुई वायु बादलोंके समूहको छिन्न-भिन्न कर देता है, उसी प्रकार दुर्मर्षणकी सेनाका व्यूह टूट गया और वह अर्जुनके खदेड़नेपर इस प्रकार जोर-जोरसे भागने लगी कि उसे पीछे फिरकर देखनेका भी साहस न हुआ ॥

प्रतोदैश्चापकोटीभिर्हुङ्कारैः साधुवाहितैः ।
कशापार्ष्ण्यभिघातैश्च वाग्भिरुग्राभिरेव च ॥ ३० ॥
चोदयन्तो हयांस्तूर्णं पलायन्ते स्म तावकाः ।
सादिनो रथिनश्चैव पत्तयश्चार्जुनार्दिताः ॥ ३१ ॥

अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हुए आपके पैदल, घुड़सवार और रथी सैनिक चाबुक, धनुषकी कोटि, हुंकार, हाँकनेकी सुन्दर कला, कोड़ोंके प्रहार, चरणोंके आघात तथा भयंकर वाणीद्वारा अपने घोड़ोंको बड़ी उतावलीके साथ हाँकते हुए भाग रहे थे ॥ ३०-३१ ॥

पार्ष्ण्यङ्गुष्ठाङ्कुशैर्नागं चोदयन्तस्तथा परे ।
शरैः सम्मोहिताश्चान्ये तमेवाभिमुखा ययुः ।
तव योधा हतोत्साहा विभ्रान्तमनसस्तदा ॥ ३२ ॥

दूसरे गजारोही सैनिक अपने पैरोंके अँगूठों और अंकुशोंद्वारा हाथियोंको हाँकते हुए रणभूमिसे पलायन कर रहे थे । कितने ही योद्धा अर्जुनके बाणोंसे मोहित होकर उन्हींके सामने चले जाते थे । उस समय आपके सभी योद्धाओंका उत्साह नष्ट हो गया था और मनमें बड़ी भारी घबराहट पैदा हो गयी थी ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुनयुद्धे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अर्जुनयुद्धविषयक नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८९ ॥

नवतितमोऽध्यायः

अर्जुनके बाणोंसे हताहत होकर सेनासहित दुःशासनका पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन् प्रभग्ने सैन्याग्रे वध्यमाने किरीटिना ।
के नु तत्र रणे वीराः प्रत्युदीयुर्धनंजयम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! किरीटधारी अर्जुनकी मार खाकर उस अग्रगामी सैन्यदलके पलायन कर जानेपर वहाँ रणक्षेत्रमें किन वीरोंने अर्जुनपर धावा किया था ? ॥ १ ॥

आहोस्विच्छकटव्यूहं प्रविष्टा मोघनिश्चयाः ।
द्रोणमाश्रित्य तिष्ठन्तं प्राकारमकुतोभयम् ॥ २ ॥

अथवा ऐसा तो नहीं हुआ कि अपना मनोरथ सफल न होनेपर वे परकोटेकी भाँति खड़े हुए द्रोणाचार्यका आश्रय लेकर सर्वथा निर्भय शकटव्यूहमें घुस गये हों ॥ २ ॥

संजय उवाच

तथार्जुनेन सम्भग्ने तस्मिंस्तव बलेऽनघ ।
हतवीरे हतोत्साहे पलायनकृतक्षणे ॥ ३ ॥
पाकशासनिनाभीक्ष्णं वध्यमाने शरोत्तमैः ।
न तत्र कश्चित् संग्रामे शशाकार्जुनमीक्षितुम् ॥ ४ ॥

संजयने कहा—निष्पाप नरेश ! जब इन्द्रपुत्र अर्जुनने पूर्वोक्त प्रकारसे आपकी सेनाके वीरोंको मारकर उसे हतोत्साह एवं भागनेके लिये विवश कर दिया, सभी सैनिक पलायन करनेका ही अवसर देखने लगे तथा उनके ऊपर निरन्तर श्रेष्ठ बाणोंकी मार पड़ने लगी, उस समय वहाँ संग्राममें कोई भी अर्जुनकी ओर आँख उठाकर देख न सका ॥ ३-४ ॥

ततस्तव सुतो राजन् दृष्ट्वा सैन्यं तथागतम् ।
दुःशासनो भृशं क्रुद्धो युद्धायार्जुनमभ्यगात् ॥ ५ ॥

राजन् ! सेनाकी वह दुरवस्था देखकर आपके पुत्र दुःशासनको बड़ा क्रोध हुआ और वह युद्धके लिये अर्जुनके सामने जा पहुँचा ॥ ५ ॥

स काञ्चनविचित्रेण कवचेन समावृतः ।
जाम्बूनदशिरस्त्राणः शूरस्तीव्रपराक्रमः ॥ ६ ॥

उसने अपने-आपको सुवर्णमय विचित्र कवचके द्वारा ढक लिया था, उसके मस्तकपर जाम्बूनद सुवर्णका बना हुआ शिरस्त्राण (टोप) शोभा पा रहा था । वह दुःसह पराक्रम करनेवाला शूरवीर था ॥ ६ ॥

नागानीकेन महता ग्रसन्निव महीमिमाम् ।
दुःशासनो महाराज सव्यसाचिनमावृणोत् ॥ ७ ॥

महाराज ! दुःशासनने अपनी विशाल गजसेनाद्वारा अर्जुनको इस प्रकार चारों ओरसे घेर लिया, मानो वह सारी पृथ्वीको ग्रस लेनेके लिये उद्यत हो ॥ ७ ॥

ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ।
ज्याक्षेपनिनदैश्चैव विरावेण च दन्तिनाम् ॥ ८ ॥
भूर्दिशश्चान्तरिक्षं च शब्देनासीत् समावृतम् ।
स मुहूर्तं प्रतिभयो दारुणः समपद्यत ॥ ९ ॥

हाथियोंके घंटोंकी ध्वनि, शङ्खनाद, धनुषकी टंकार और गजराजोंके चिग्घाड़नेके शब्दसे पृथ्वी, दिशाएँ तथा आकाश—ये सभी गूँज उठे थे । उस समय दुःशासन दो घड़ीके लिये अत्यन्त भयंकर एवं दारुण हो उठा ॥ ८-९ ॥

तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्णमङ्कुशैरभिचोदितान् ।
व्यालम्बहस्तान् संरब्धान् सपक्षानिव पर्वतान् ॥ १० ॥
सिंहनादेन महता नरसिंहो धनंजयः ।
गजानीकममित्राणामभीतो व्यधमच्छरैः ॥ ११ ॥

महावतोंद्वारा अंकुशोंसे हाँके जानेपर लम्बी सूँड़ उठाये और क्रोधमें भरे, पंखधारी पर्वतोंके समान उन हाथियोंको बड़े वेगसे अपने ऊपर आते देख मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी अर्जुनने बड़े जोरसे सिंहनाद करके शत्रुओंकी उस गजसेनाका बिना किसी भयके बाणोंद्वारा संहार कर डाला॥

महोर्मिणमिवोद्धूतं श्वसनेन महार्णवम् ।
किरीटी तद् गजानीकं प्राविशन्मकरो यथा ॥ १२ ॥

वायुद्वारा ऊपर उठाये हुए ऊँची-ऊँची तरंगोंसे युक्त महासागरके समान उस गजसैन्यमें किरीटधारी अर्जुनने मकरके समान प्रवेश किया ॥ १२ ॥

काष्ठातीत इवादित्यः प्रतपन् स युगक्षये ।
ददृशे दिक्षु सर्वासु पार्थः परपुरंजयः ॥ १३ ॥

जैसे प्रलयकालमें सूर्यदेव सीमाका उल्लङ्घन करके तपने लगते हैं, उसी प्रकार शत्रुओंकी राजधानीपर विजय पानेवाले अर्जुन सम्पूर्ण दिशाओंमें असीम पराक्रम करते हुए दिखायी देने लगे ॥ १३ ॥

खुरशब्देन चाश्वानां नेमिघोषेण तेन च ।
तेन चोत्क्रुष्टशब्देन ज्यानिनादेन तेन च ॥ १४ ॥
नानावादित्रशब्देन पाञ्चजन्यस्वनेन च ।
देवदत्तस्य घोषेण गाण्डीवनिनदेन च ॥ १५ ॥
मन्दवेगा नरा नागा बभूवुस्ते विचेतसः ।
शरैराशीविषस्पर्शैर्निर्भिन्नाः सव्यसाचिना ॥ १६ ॥

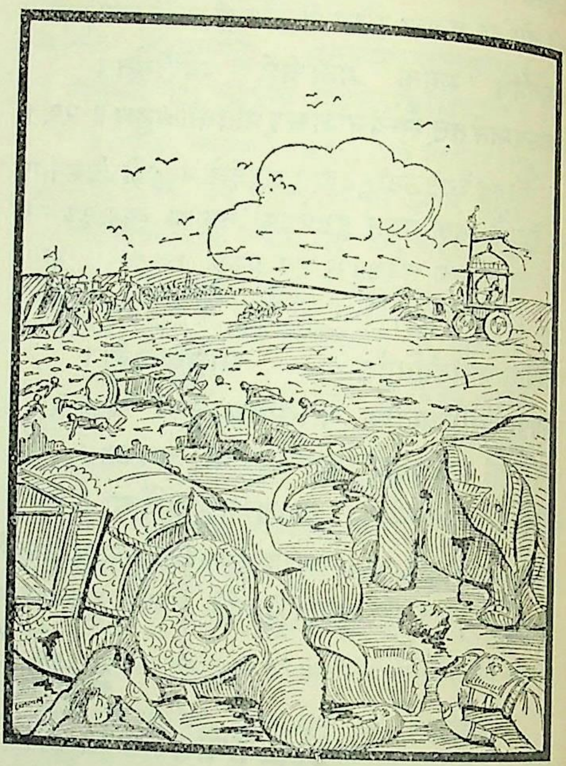
घोड़ोंकी टापोंके शब्दसे, रथके पहियोंकी उस घरघराहटसे, उच्चस्वरसे किये जानेवाले गर्जन-तर्जनकी उस आवाजसे, धनुषकी प्रत्यञ्चाकी उस टंकारसे, भाँति-भाँतिके वाद्योंकी ध्वनिसे, पाञ्चजन्यके हुंकारसे, देवदत्त नामक शङ्खके गम्भीर घोषसे तथा गाण्डीवकी टंकार-ध्वनिसे मनुष्यों और हाथियोंके वेग मन्द पड़ गये और वे सब-के-सब भयके मारे अचेत हो गये। सव्यसाची अर्जुनने विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंद्वारा उन्हें विदीर्ण कर दिया ॥ १४–१६ ॥

ते गजा विशिखैस्तीक्ष्णैर्युधि गाण्डीवचोदितैः ।
अनेकशतसाहस्रैः सर्वाङ्गेषु समर्पिताः ॥ १७ ॥

गाण्डीव धनुषद्वारा चलाये हुए लाखों तीखे बाण युद्धस्थलमें खड़े हुए उन हाथियोंके सम्पूर्ण अङ्गोंमें बिंध गये थे ॥ १७ ॥

आरावं परमं कृत्वा वध्यमानाः किरीटिना ।
निपेतुरनिशं भूमौ छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥ १८ ॥

अर्जुनके बाणोंकी मार खाकर बड़े जोरसे चीत्कार करके वे हाथी पंख कटे हुए पर्वतोंके समान पृथ्वीपर निरन्तर गिर रहे थे ॥ १८ ॥



अपरे दन्तवेष्टेषु कुम्भेषु च कटेषु च ।
शरैः समर्पिता नागाः क्रौञ्चवद् व्यनदन् मुहुः ॥ १९ ॥

कुछ दूसरे गजराज नीचेके ओठोंमें, कुम्भस्थलोंमें और कनपटियोंमें बाणोंसे छिद जानेके कारण कुरर पक्षीके समान बारंबार आर्तनाद कर रहे थे ॥ १९ ॥

गजस्कन्धगतानां च पुरुषाणां किरीटिना ।
छिद्यन्ते चोत्तमाङ्गानि भल्लैः संनतपर्वभिः ॥ २० ॥

किरीटधारी अर्जुन झुकी हुई गाँठवाले भल्ल नामक बाणोंद्वारा हाथीकी पीठपर बैठे हुए पुरुषोंके मस्तक भी धड़ाधड़ काटते जा रहे थे ॥ २० ॥

सकुण्डलानां पततां शिरसां धरणीतले ।
पद्मानामिव संघातैः पार्थश्चक्रे निवेदनम् ॥ २१ ॥

पृथ्वीपर गिरते हुए कुण्डलयुक्त मस्तक कमलपुष्पोंके ढेरके समान जान पड़ते थे, मानो अर्जुनने उन मस्तकोंके रूपमें पृथ्वीको पद्मके समूह भेंट किये हों ॥ २१ ॥

यन्त्रबद्धा विकवचा व्रणार्ता रुधिरोक्षिताः ।
भ्रमत्सु युधि नागेषु मनुष्या विललम्बिरे ॥ २२ ॥

युद्धके मैदानमें चक्कर काटते हुए हाथियोंपर बहुत-से मनुष्य इस प्रकार लटक रहे थे, मानो उन्हें किसी यन्त्रसे वहाँ जड़ दिया गया हो। उनके कवच नष्ट हो गये थे। वे घावसे पीड़ित और खूनसे लथपथ हो रहे थे ॥ २२ ॥

केचिदेकेन बाणेन सुमुक्तेन सुपत्रिणा ।
द्वौ त्रयश्च विनिर्भिन्ना निपेतुर्धरणीतले ॥ २३ ॥

कुछ हाथी तो अच्छी तरहसे चलाये हुए सुन्दर पंख-युक्त एक ही बाणद्वारा दो-दो तीन-तीनकी संख्यामें एक साथ विदीर्ण होकर पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥ २३ ॥

अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः ।
सारोहा न्यपतन् भूमौ द्रुमवन्त इवाचलाः ॥ २४ ॥

सवारोंसहित कितने ही हाथी नाराचोंसे अत्यन्त घायल होकर मुँहसे रक्त वमन करते हुए वृक्षयुक्त पर्वतोंके समान धराशायी हो रहे थे ॥ २४ ॥

मौर्वीं ध्वजं धनुश्चैव युगमीषां तथैव च ।
रथिनां कुट्टयामास भल्लैः संनतपर्वभिः ॥ २५ ॥

तदनन्तर अर्जुनने झुकी हुई गाँठवाले भल्लोंद्वारा रथियोंकी प्रत्यञ्चा, ध्वजा, धनुष, जुआ तथा ईषादण्डके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ २५ ॥

न संदधन् न चाकर्षन् न विमुञ्चन् न चोद्वहन् ।
मण्डलेनैव धनुषा नृत्यन् पार्थः स्म दृश्यते ॥ २६ ॥

उस समय अर्जुन मण्डलाकार धनुषके साथ सब ओर नृत्य करते हुए-से दृष्टिगोचर हो रहे थे। वे कब धनुषपर बाणोंको रखते, कब प्रत्यञ्चा खींचते, कब बाण छोड़ते और कब उन्हें तरकससे निकालते हैं, यह कोई नहीं देख पाता था॥

अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः ।
मुहूर्तान्न्यपतन्नन्ये वारणा वसुधातले ॥ २७ ॥

दो ही घड़ीमें और भी बहुत-से हाथी नाराचोंकी मारसे अत्यन्त क्षत-विक्षत होकर मुँहसे रक्त वमन करते हुए धरतीपर लोटने लगे ॥ २७ ॥

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
अदृश्यन्त महाराज तस्मिन् परमसंकुले ॥ २८ ॥

महाराज ! उस अत्यन्त भयानक युद्धमें चारों ओर असंख्य कबन्ध (धड़) उठे दिखायी देते थे ॥ २८ ॥

सचापाः साङ्गुलित्राणाः सखड्गाः साङ्गदा रणे ।
अदृश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ २९ ॥

वीरोंकी कटी हुई स्वर्णमय आभूषणोंसे विभूषित भुजाएँ धनुष, दस्ताने, तलवार और भुजबन्दोंसहित कटकर रणभूमिमें पड़ी दिखायी देती थीं ॥ २९ ॥

सूपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
चक्रैर्विमथितैरक्षैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः ॥ ३० ॥
चर्मचापधरैश्चैव व्यवकीर्णैस्ततस्ततः ।
स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पतितैश्च महाध्वजैः ॥ ३१ ॥
निहतैर्वारणैरश्वैः क्षत्रियैश्च निपातितैः ।
अदृश्यत मही तत्र दारुणप्रतिदर्शना ॥ ३२ ॥

सुन्दर उपकरणों, बैठकों, ईषादण्ड, बन्धनरज्जुओं और पहियोंसहित रथ चूर-चूर हो रहे थे। उनके धुरे टूट गये थे और जूए टुकड़े-टुकड़े होकर पड़े थे। बहुत-सी ढालों और धनुषोंको लिये-दिये वे टूटे हुए रथ इधर-उधर बिखरे पड़े थे। बहुत-से हार, आभूषण, वस्त्र और बड़े-बड़े ध्वज धरतीपर गिरे हुए थे । अनेक हाथी और घोड़े मारे गये थे तथा बहुत-से क्षत्रिय भी धराशायी कर दिये गये थे। इन सबके कारण वहाँकी भूमि देखनेमें अत्यन्त भयंकर जान पड़ती थी ॥ ३०—३२ ॥

एवं दुःशासनबलं वध्यमानं किरीटिना ।
सम्प्राद्रवन्महाराज व्यथितं सहनायकम् ॥ ३३ ॥

महाराज ! इस प्रकार किरीटधारी अर्जुनकी मार खाकर अत्यन्त व्यथित हुई दुःशासनकी सेना अपने नायकसहित भाग चली ॥ ३३ ॥

ततो दुःशासनस्त्रस्तः सहानीकः शरार्दितः ।
द्रोणं त्रातारमाकाङ्क्षञ्शकटव्यूहमभ्यगात् ॥ ३४ ॥

तब अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित और भयभीत हो सेनाओंसहित दुःशासन अपने रक्षक द्रोणाचार्यके आश्रयमें जानेकी इच्छा रखकर शकट-व्यूहके भीतर घुस गया ॥ ३४॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुःशासनसैन्यपराभवे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुःशासनकी सेनाका पराभवविषयक नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९० ॥

एकनवतितमोऽध्यायः

अर्जुन और द्रोणाचार्यका वार्तालाप तथा युद्ध एवं द्रोणाचार्यको छोड़कर आगे बढ़े हुए अर्जुनका कौरव सैनिकोंद्वारा प्रतिरोध

संजय उवाच

दुःशासनबलं हत्वा सव्यसाची महारथः ।
सिन्धुराजं परीप्सन् वै द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुःशासनकी सेनाका संहार करके सव्यसाची महारथी अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथको पानेकी इच्छा रखकर द्रोणाचार्यकी सेनापर धावा किया ॥ १ ॥

स तु द्रोणं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् ।
कृताञ्जलिरिदं वाक्यं कृष्णस्यानुमतेऽब्रवीत् ॥ २ ॥

व्यूहके मुहानेपर खड़े हुए आचार्य द्रोणके पास पहुँचकर अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमति ले हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—॥ २ ॥

शिवेन ध्याहि मां ब्रह्मन् स्वस्ति चैव वदस्व मे ।

भवत्प्रसादादिच्छामि प्रवेष्टुं दुर्भिदां चमूम् ॥ ३ ॥

'ब्रह्मन् ! आप मेरा कल्याण चिन्तन कीजिये। मुझे स्वस्ति कहकर आशीर्वाद दीजिये। मैं आपकी कृपासे ही इस दुर्भेद्य सेनाके भीतर प्रवेश करना चाहता हूँ ॥ ३ ॥

भवान् पितृसमो मह्यं धर्मराजसमोऽपि च ।
तथा कृष्णसमश्चैव सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ४ ॥

'आप मेरे लिये पिता पाण्डु, भ्राता धर्मराज युधिष्ठिर तथा सखा श्रीकृष्णके समान हैं। यह मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ ॥ ४ ॥

अश्वत्थामा यथा तात रक्षणीयस्त्वयानघ ।
तथाहमपि ते रक्ष्यः सदैव द्विजसत्तम ॥ ५ ॥

'तात ! निष्पाप द्विजश्रेष्ठ ! जैसे अश्वत्थामा आपके लिये रक्षणीय हैं, उसी प्रकार मैं भी सदैव आपसे संरक्षण पानेका अधिकारी हूँ ॥ ५ ॥

तव प्रसादादिच्छेयं सिन्धुराजानमाहवे ।
निहन्तुं द्विपदां श्रेष्ठ प्रतिज्ञां रक्ष मे प्रभो ॥ ६ ॥

'नरश्रेष्ठ ! मैं आपके प्रसादसे इस युद्धमें सिन्धुराज जयद्रथको मारना चाहता हूँ। प्रभो ! आप मेरी इस प्रतिज्ञाकी रक्षा कीजिये' ॥ ६ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तस्तदाचार्यः प्रत्युवाच स्मयन्निव ।
मामजित्वा न बीभत्सो शक्यो जेतुं जयद्रथः ॥ ७ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! अर्जुनके ऐसा कहनेपर उस समय द्रोणाचार्यने उन्हें हँसते हुए-से उत्तर दिया—'अर्जुन ! मुझे पराजित किये बिना जयद्रथको जीतना असम्भव है' ॥ ७ ॥

एतावदुक्त्वा तं द्रोणः शरव्रातैरवाकिरत् ।
सरथाश्वध्वजं तीक्ष्णैः प्रहसन् वै ससारथिम् ॥ ८ ॥

अर्जुनसे इतना ही कहकर द्रोणाचार्यने हँसते-हँसते रथ, घोड़े, ध्वज तथा सारथिसहित उनके ऊपर तीखे बाणसमूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ८ ॥

ततोऽर्जुनः शरव्रातान् द्रोणस्यावार्य सायकैः ।
द्रोणमभ्यद्रवद् बाणैर्घोररूपैर्महत्तरैः ॥ ९ ॥

तब अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यके बाणसमूहोंका निवारण करके बड़े-बड़े भयंकर बाणोंद्वारा उनपर आक्रमण किया ॥ ९ ॥

विव्याध चरणे द्रोणमनुमान्य विशाम्पते ।
क्षत्रधर्मं समास्थाय नवभिः सायकैः पुनः ॥ १० ॥

प्रजानाथ ! उन्होंने द्रोणाचार्यका समादर करते हुए क्षत्रिय-धर्मका आश्रय ले पुनः नौ बाणोंद्वारा उनके चरणोंमें आघात किया ॥ १० ॥

तस्येषूनिषुभिश्छित्त्वा द्रोणो विव्याध तावुभौ ।
विषाग्निज्वलितप्रख्यैरिषुभिः कृष्णपाण्डवौ ॥ ११ ॥

द्रोणाचार्यने अपने बाणोंद्वारा अर्जुनके उन बाणोंको काटकर प्रज्वलित विष एवं अग्निके समान तेजस्वी बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको घायल कर दिया ॥ ११ ॥

इयेष पाण्डवस्तस्य बाणैश्छेत्तुं शरासनम् ।
तस्य चिन्तयतस्त्वेवं फाल्गुनस्य महात्मनः ॥ १२ ॥
द्रोणः शरैरसम्भ्रान्तो ज्यां चिच्छेदाशु वीर्यवान् ।
विव्याध च हयानस्य ध्वजं सारथिमेव च ॥ १३ ॥

तब पाण्डुनन्दन अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यके धनुषको काट देनेकी इच्छा की। महामना अर्जुन अभी इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि पराक्रमी द्रोणाचार्यने बिना किसी घबराहटके अपने बाणोंद्वारा शीघ्र ही उनके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट डाली और अर्जुनके घोड़ों, ध्वज और सारथिको भी बींध डाला ॥ १२-१३ ॥

अर्जुनं च शरैर्वीरः स्मयमानोऽभ्यवाकिरत् ।
एतस्मिन्नन्तरे पार्थः सज्यं कृत्वा महद् धनुः ॥ १४ ॥
विशेषयिष्यन्नाचार्यं सर्वास्त्रविदुषां वरः ।
मुमोच षट्शतान् बाणान् गृहीत्वैकमिव द्रुतम् ॥ १५ ॥

इतना ही नहीं, वीर द्रोणाचार्यने मुसकराकर अर्जुनको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित कर दिया। इसी बीचमें सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ कुन्तीकुमार अर्जुनने अपने विशाल धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और आचार्यसे बढ़कर पराक्रम दिखानेकी इच्छासे तुरंत छः सौ बाण छोड़े। उन बाणोंको उन्होंने इस प्रकार हाथमें ले लिया था, मानो एक ही बाण हो ॥ १४-१५ ॥

पुनः सप्तशतानन्यान् सहस्रं चानिवर्तिनः ।
चिक्षेपायुतशश्चान्यांस्तेऽघ्नन् द्रोणस्य तां चमूम् ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् सात सौ और फिर एक हजार ऐसे बाण छोड़े जो किसी प्रकार प्रतिहत होनेवाले नहीं थे। तदनन्तर अर्जुनने दस-दस हजार बाणोंद्वारा प्रहार किया। उन सभी बाणोंने द्रोणाचार्यकी उस सेनाका संहार कर डाला ॥ १६ ॥

तैः सम्यगस्तैर्बलिना कृतिना चित्रयोधिना ।
मनुष्यवाजिमातङ्गा विद्धाः पेतुर्गतासवः ॥ १७ ॥

विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले अस्त्रवेत्ता महाबली अर्जुनके द्वारा भलीभाँति चलाये हुए उन बाणोंसे घायल हो बहुत-से मनुष्य, घोड़े और हाथी प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १७ ॥

विसूताश्वध्वजाः पेतुः संछिन्नायुधजीविताः ।
रथिनो रथमुख्येभ्यः सहसा शरपीडिताः ॥ १८ ॥

अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हुए बहुतेरे रथी सारथि

अश्व, ध्वज, अस्त्र-शस्त्र और प्राणोंसे भी वञ्चित हो सहसा श्रेष्ठ रथोंसे नीचे जा गिरे ॥ १८ ॥

चूर्णिताक्षिप्तदग्धानां वज्रानिलहुताशनैः ।
तुल्यरूपा गजाः पेतुर्गिर्यग्राम्बुदवेश्मनाम् ॥१९॥

वज्रके आघातसे चूर-चूर हुए पर्वतों, वायुके द्वारा संचालित हुए भयंकर बादलों तथा आगमें जले हुए गृहोंके समान रूपवाले बहुत-से हाथी धराशायी हो रहे थे ॥ १९ ॥

पेतुरश्वसहस्राणि प्रहतान्यर्जुनेषुभिः ।
हंसा हिमवतः पृष्ठे वारिविप्रहता इव ॥ २०॥

अर्जुनके बाणोंसे मारे गये सहस्रों घोड़े रणभूमिमें उसी प्रकार पड़े थे, जैसे वर्षाके जलसे आहत हुए बहुत-से हंस हिमालयकी तलहटीमें पड़े हुए हों ॥ २० ॥

रथाश्वद्विपपत्त्योघाः सलिलौघा इवाद्भुताः ।
युगान्तादित्यरश्म्याभैः पाण्डवास्त्रशरैर्हताः ॥ २१ ॥

प्रलयकालके सूर्यकी किरणोंके समान अर्जुनके तेजस्वी बाणोंद्वारा मारे गये रथ, घोड़े, हाथी और पैदलोंके समूह सूर्यकिरणोंद्वारा सोखे गये अद्भुत जलप्रवाहके समान जान पड़ते थे ॥ २१ ॥

तं पाण्डवादित्यशरांशुजालं
कुरुप्रवीरान् युधि निष्टपन्तम् ।
स द्रोणमेघः शरवृष्टिवेगैः
प्राच्छादयन्मेघ इवार्करश्मीन् ॥ २२ ॥

जैसे बादल सूर्यकी किरणोंको छिपा देता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यरूपी मेघने अपनी बाणवर्षाके वेगसे अर्जुनरूपी सूर्यके इस बाणरूपी किरणसमूहको आच्छादित कर दिया, जो युद्धमें मुख्य-मुख्य कौरव वीरोंको संतप्त कर रहा था ॥ २२ ॥

अथात्यर्थं विसृष्टेन द्विषतामसुभोजिना ।
आजघ्ने वक्षसि द्रोणो नाराचेन धनंजयम् ॥ २३ ॥

तत्पश्चात् शत्रुओंके प्राण लेनेवाले एक नाराचका प्रहार करके द्रोणाचार्यने अर्जुनकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥

स विह्वलितसर्वाङ्गः क्षितिकम्पे यथाचलः ।
धैर्यमालम्ब्य बीभत्सुर्द्रोणं विव्याध पत्रिभिः ॥ २४ ॥

उस आघातसे अर्जुनका सारा शरीर विह्वल हो गया, मानो भूकम्प होनेपर पर्वत हिल उठा हो। तथापि अर्जुनने धैर्य धारण करके पंखयुक्त बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको घायल कर दिया ॥ २४ ॥

द्रोणस्तु पञ्चभिर्बाणैर्वासुदेवमताडयत् ।
अर्जुनं च त्रिसप्तत्या ध्वजं चास्य त्रिभिः शरैः ॥२५॥

फिर द्रोणने भी पाँच बाणोंसे भगवान् श्रीकृष्णको, तिहत्तर बाणोंसे अर्जुनको और तीन बाणोंद्वारा उनके ध्वजको भी चोट पहुँचायी ॥ २५ ॥

विशेषयिष्यञ्शिष्यं च द्रोणो राजन् पराक्रमी ।
अदृश्यमर्जुनं चक्रे निमेषाच्छरवृष्टिभिः ॥ २६ ॥

राजन्! पराक्रमी द्रोणाचार्यने अपने शिष्य अर्जुनसे अधिक पराक्रम प्रकट करनेकी इच्छा रखकर पलक मारते-मारते अपने बाणोंकी वर्षाद्वारा अर्जुनको अदृश्य कर दिया ॥

प्रसक्तान् पततोऽद्राक्ष्म भारद्वाजस्य सायकान् ।
मण्डलीकृतमेवास्य धनुश्चादृश्यताद्भुतम् ॥ २७ ॥

हमने देखा, द्रोणाचार्यके बाण परस्पर सटे हुए गिरते थे। उनका अद्भुत धनुष सदा मण्डलाकार ही दिखायी देता था ॥ २७ ॥

तेऽभ्ययुः समरे राजन् वासुदेवधनंजयौ ।
द्रोणसृष्टाः सुबहवः कङ्कपत्रपरिच्छदाः ॥ २८ ॥

राजन्! उस समराङ्गणमें द्रोणाचार्यके छोड़े हुए कंकपत्रविभूषित बहुत-से बाण श्रीकृष्ण और अर्जुनपर पड़ने लगे ॥ २८ ॥

तद् दृष्ट्वा तादृशं युद्धं द्रोणपाण्डवयोस्तदा ।
वासुदेवो महाबुद्धिः कार्यवत्तामचिन्तयत् ॥ २९ ॥

उस समय द्रोणाचार्य और अर्जुनका वैसा युद्ध देखकर परम बुद्धिमान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने मन-ही-मन कर्तव्यका निश्चय कर लिया ॥ २९ ॥

ततोऽब्रवीद् वासुदेवो धनंजयमिदं वचः ।
पार्थ पार्थ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत् ॥ ३० ॥
द्रोणमुत्सृज्य गच्छामः कृत्यमेतन्महत्तरम् ।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण अर्जुनसे इस प्रकार बोले—'अर्जुन! अर्जुन! महाबाहो! हमारा अधिक समय यहाँ न बीत जाय, इसलिये द्रोणाचार्यको छोड़कर आगे चलें; यही इस समय सबसे महान् कार्य है' ॥ ३०½ ॥

पार्थश्चाप्यब्रवीत् कृष्णं यथेष्टमिति केशवम् ॥ ३१ ॥
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा द्रोणं प्रायान्महाभुजम् ।
परिवृत्तश्च बीभत्सुरगच्छद् विसृजञ्शरान् ॥ ३२ ॥

तब अर्जुनने भी सच्चिदानन्दस्वरूप केशवसे कहा—'प्रभो! आपकी जैसी रुचि हो, वैसा कीजिये।' तत्पश्चात् अर्जुन महाबाहु द्रोणाचार्यकी परिक्रमा करके लौट पड़े और बाणोंकी वर्षा करते हुए आगे चले गये ॥ ३१-३२ ॥

ततोऽब्रवीत् स्वयं द्रोणः क्वेदं पाण्डव गम्यते ।
ननु नाम रणे शत्रुमजित्वा न निवर्तसे ॥ ३३ ॥

यह देख द्रोणाचार्यने स्वयं कहा—'पाण्डुनन्दन! तुम इस प्रकार कहाँ चले जा रहे हो? तुम तो रणक्षेत्रमें शत्रुको पराजित किये बिना कभी नहीं लौटते थे' ॥ ३३ ॥

अर्जुन उवाच

गुरुर्भवान् न मे शत्रुः शिष्यः पुत्रसमोऽस्मि ते ।
न चास्ति स पुमाँल्लोके यस्त्वां युधि पराजयेत् ॥ ३४ ॥

अर्जुन बोले—ब्रह्मन् ! आप मेरे गुरु हैं । शत्रु नहीं हैं । मैं आपका पुत्रके समान प्रिय शिष्य हूँ । इस जगत्में ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जो युद्धमें आपको पराजित कर सके ॥ ३४ ॥

संजय उवाच

एवं ब्रुवाणो बीभत्सुर्जयद्रथवधोत्सुकः ।
त्वरायुक्तो महाबाहुस्त्वत्सैन्यं समुपाद्रवत् ॥ ३५ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसा कहते हुए महाबाहु अर्जुनने जयद्रथ-वधके लिये उत्सुक हो बड़ी उतावलीके साथ आपकी सेनापर धावा किया ॥ ३५ ॥

तं चक्ररक्षौ पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
अन्वयातां महात्मानौ विशन्तं तावकं बलम् ॥ ३६ ॥

आपकी सेनामें प्रवेश करते समय उनके पीछे-पीछे पाञ्चाल वीर महामना युधामन्यु और उत्तमौजा चक्र-रक्षक होकर गये ॥ ३६ ॥

ततो जयो महाराज कृतवर्मा च सात्वतः ।
काम्बोजश्च श्रुतायुश्च धनंजयमवारयन् ॥ ३७ ॥

महाराज ! तब जय, सात्वत-वंशी कृतवर्मा, काम्बोज-नरेश तथा श्रुतायुने सामने आकर अर्जुनको रोका ॥ ३७ ॥

तेषां दश सहस्राणि रथानामनुयायिनाम् ।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥ ३८ ॥
मावेल्लका ललित्थाश्च केकया मद्रकास्तथा ।
नारायणाश्च गोपालाः काम्बोजानां च ये गणाः ॥ ३९ ॥
कर्णेन विजिताः पूर्वं संग्रामे शूरसम्मताः ।
भारद्वाजं पुरस्कृत्य हृष्टात्मानोऽर्जुनं प्रति ॥ ४० ॥

इनके पीछे दस हजार रथी, अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति, मावेल्लक, ललित्थ, केकय, मद्रक, नारायण नामक गोपालगण तथा काम्बोजदेशीय सैनिकगण भी थे । इन सबको पूर्वकालमें कर्णने रणभूमिमें जीतकर अपने अधीन कर लिया था । ये सब-के-सब शूरवीरोंद्वारा सम्मानित योद्धा थे और प्रसन्नचित्त हो द्रोणाचार्यको आगे करके अर्जुनपर चढ़ आये थे ॥ ३८–४० ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवान्तकम् ।
त्यजन्तं तुमुले प्राणान् संनद्धं चित्रयोधिनम् ॥ ४१ ॥
गाहमानमनीकानि मातङ्गमिव यूथपम् ।
महेष्वासं पराक्रान्तं नरव्याघ्रमवारयन् ॥ ४२ ॥

अर्जुन पुत्रशोकसे संतप्त एवं कुपित हुए प्राणान्तक मृत्युके समान प्रतीत होते थे । वे उस भयंकर युद्धमें अपने प्राणोंको निछावर करनेके लिये उद्यत, कवच आदिसे सुसज्जित और विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले थे । जैसे यूथपति गज-राज गजसमूहमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार आपकी सेनाओंमें घुसते हुए महाधनुर्धर परम पराक्रमी उन नरश्रेष्ठ अर्जुनको पूर्वोक्त योद्धाओंने आकर रोका ॥ ४१-४२ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
अन्योन्यं वै प्रार्थयतां योधानामर्जुनस्य च ॥ ४३ ॥

तदनन्तर एक दूसरेको ललकारते हुए कौरव योद्धाओं तथा अर्जुनमें रोमाञ्चकारी एवं भयंकर युद्ध छिड़ गया ॥ ४३ ॥

जयद्रथवधप्रेप्सुमायान्तं पुरुषर्षभम् ।
न्यवारयन्त सहिताः क्रिया व्याधिमिवोत्थितम् ॥ ४४ ॥

जैसे चिकित्साकी क्रिया उभड़ते हुए रोगको रोक देती है, उसी प्रकार जयद्रथका वध करनेकी इच्छासे आते हुए पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनको समस्त कौरव वीरोंने एक साथ मिलकर रोक दिया ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणातिक्रमे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्रोणातिक्रमणविषयक इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

अर्जुनका द्रोणाचार्य और कृतवर्माके साथ युद्ध करते हुए कौरव-सेनामें प्रवेश तथा श्रुतायुधका अपनी गदासे और सुदक्षिणका अर्जुनद्वारा वध

संजय उवाच

संनिरुद्धस्तु तैः पार्थो महाबलपराक्रमः ।
द्रुतं समनुयातश्च द्रोणेन रथिनां वरः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—रथियोंमें श्रेष्ठ एवं महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न अर्जुन जब उन कौरव सैनिकोंद्वारा रोक दिये गये, उस समय द्रोणाचार्यने भी तुरंत ही उनका पीछा किया ॥ १ ॥

किरन्निषुगणांस्तीक्ष्णान् स रश्मीनिव भास्करः ।
तापयामास तत् सैन्यं देहं व्याधिगणो यथा ॥ २ ॥

जैसे रोगोंका समुदाय शरीरको संतप्त कर देता है, उसी प्रकार अर्जुनने कौरवोंकी उस सेनाको अत्यन्त संताप दिया। जैसे सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणोंका प्रसार करते हैं, उसी प्रकार वे तीखे बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे ॥ २ ॥

अश्वो विद्धो रथश्छिन्नः सारोहः पातितो गजः ।
छत्राणि चापविद्धानि रथाश्चक्रैर्विना कृताः ॥ ३ ॥

उन्होंने घोड़ोंको घायल कर दिया, रथके टुकड़े-टुकड़े कर डाले, सवारोंसहित हाथीको मार गिराया, छत्र इधर-उधर बिखेर दिये तथा रथोंको पहियोंसे सूना कर दिया ॥ ३ ॥

विद्रुतानि च सैन्यानि शरार्तानि समन्ततः ।
नासीत् तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ४ ॥

उनके बाणोंसे पीड़ित होकर सारे सैनिक सब ओर भाग चले। वहाँ इस प्रकार भयंकर युद्ध हो रहा था कि किसीको कुछ भी भान नहीं हो रहा था ॥ ४ ॥

तेषां संयच्छतां संख्ये परस्परमजिह्मगैः ।
अर्जुनो ध्वजिनीं राजन्नभीक्ष्णं समकम्पयत् ॥ ५ ॥

राजन् ! उस युद्धस्थलमें कौरव-सैनिक एक दूसरेको काबूमें रखनेका प्रयत्न करते थे और अर्जुन अपने बाणोंद्वारा उनकी सेनाको बारंबार कम्पित कर रहे थे ॥ ५ ॥

सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां सत्यसंगरः ।
अभ्यद्रवद् रथश्रेष्ठं शोणाश्वं श्वेतवाहनः ॥ ६ ॥

सत्यप्रतिज्ञ श्वेतवाहन अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञा सच्ची करनेकी इच्छासे लाल घोड़ोंवाले रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य-पर धावा किया ॥ ६ ॥

तं द्रोणः पञ्चविंशत्या मर्मभिद्भिरजिह्मगैः ।
अन्तेवासिनमाचार्यो महेष्वासं समार्पयत् ॥ ७ ॥

उस समय आचार्य द्रोणने अपने महाधनुर्धर शिष्य अर्जुनको पचीस मर्मभेदी बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ७ ॥

तं तूर्णमिव बीभत्सुः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
अभ्यधावदिषूनस्यन्निषुवेगविघातकान् ॥ ८ ॥

तब सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने भी तुरंत ही उनके बाणोंके वेगका विनाश करनेवाले भल्लोंका प्रहार करते हुए उनपर आक्रमण किया ॥ ८ ॥

तस्याशुक्षिप्तान् भल्लान् हि भल्लैः संनतपर्वभिः ।
प्रत्यविध्यदमेयात्मा ब्रह्मास्त्रं समुदीरयन् ॥ ९ ॥

अमेय आत्मबलसे सम्पन्न द्रोणाचार्यने अर्जुनके तुरंत चलाये हुए उन भल्लोंको झुकी हुई गाँठवाले भल्लोंद्वारा ही काट दिया और ब्रह्मास्त्र प्रकट किया ॥ ९ ॥

तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्याचार्यकं युधि ।
यतमानो युवा नैनं प्रत्यविध्यद् यदर्जुनः ॥ १० ॥

उस युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यकी अद्भुत अस्त्रशिक्षा हमने देखी कि नवयुवक अर्जुन प्रयत्नशील होनेपर भी उन्हें अपने बाणोंद्वारा चोट न पहुँचा सके ॥ १० ॥

क्षरन्निव महामेघो वारिधाराः सहस्रशः ।
द्रोणमेघः पार्थशैलं ववर्ष शरवृष्टिभिः ॥ ११ ॥

जैसे महान् मेघ जलकी सहस्रों धाराएँ बरसाता रहता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यरूपी मेघने अर्जुनरूपी पर्वतपर बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ११ ॥

अर्जुनः शरवर्षं तद् ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष ।
प्रतिजग्राह तेजस्वी बाणैर्बाणान् निशातयन् ॥ १२ ॥

पूजनीय नरेश ! उस समय अपने बाणोंद्वारा उनके बाणोंको काटते हुए तेजस्वी अर्जुनने भी ब्रह्मास्त्रद्वारा ही आचार्यकी उस बाण-वर्षाको रोका ॥ १२ ॥

द्रोणस्तु पञ्चविंशत्या श्वेतवाहनमार्दयत् ।
वासुदेवं च सप्तत्या बाह्वोरुरसि चाशुगैः ॥ १३ ॥

तब द्रोणाचार्यने पचीस बाण मारकर श्वेतवाहन अर्जुन-को पीड़ित कर दिया । साथ ही श्रीकृष्णकी भुजाओं तथा वक्षःस्थलमें भी उन्होंने सत्तर बाण मारे ॥ १३ ॥

पार्थस्तु प्रहसन् धीमानाचार्यं सशरौघिणम् ।
विसृजन्तं शितान् बाणानवारयत तं युधि ॥ १४ ॥

परम बुद्धिमान् अर्जुनने हँसते हुए ही युद्धस्थलमें तीखे बाणोंकी बौछार करनेवाले द्रोणाचार्यको उनकी बाण-वर्षा-सहित रोक दिया ॥ १४ ॥

अथ तौ वध्यमानौ तु द्रोणेन रथसत्तमौ ।
आवर्जयेतां दुर्धर्षं युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥ १५ ॥

तदनन्तर द्रोणाचार्यके द्वारा घायल किये जाते हुए वे दोनों रथिश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन उस समय प्रलयकालकी अग्निके समान उठे हुए उन दुर्धर्ष आचार्यको छोड़कर अन्यत्र चल दिये ॥ १५ ॥

वर्जयन् निशितान् बाणान् द्रोणचापविनिःसृतान् ।
किरीटमाली कौन्तेयो भोजानीकं व्यशातयत् ॥ १६ ॥

द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए तीखे बाणोंका निवारण करते हुए किरीटधारी कुन्तीकुमार अर्जुनने कृतवर्माकी सेनाका संहार आरम्भ किया ॥ १६ ॥

सोऽन्तरा कृतवर्माणं काम्बोजं च सुदक्षिणम् ।
अभ्ययाद् वर्जयन् द्रोणं मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १७ ॥

वे मैनाक पर्वतकी भाँति अविचल भावसे स्थित द्रोणाचार्यको छोड़ते हुए कृतवर्मा तथा काम्बोजराज सुदक्षिण-के बीचसे होकर निकले ॥ १७ ॥

ततो भोजो नरव्याघ्रो दुर्धर्षं कुरुसत्तमम् ।
अविध्यत् तूर्णमव्यग्रो दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ १८ ॥

तब पुरुषसिंह कृतवर्माने कुरुकुलके श्रेष्ठ एवं दुर्धर्ष वीर अर्जुनको कंकपत्रयुक्त दस बाणोंद्वारा तुरंत ही घायल कर दिया। उस समय उसके मनमें तनिक भी व्यग्रता नहीं हुई ॥ १८ ॥

तमर्जुनः शतेनाजौ राजन् विव्याध पत्रिणाम् ।
पुनश्चान्यैस्त्रिभिर्बाणैर्मोहयन्निव सात्वतम् ॥ १९ ॥

राजन् ! अर्जुनने कृतवर्माको उस युद्धस्थलमें सौ बाणों-द्वारा बींध डाला । फिर उसे मोहित-सा करते हुए उन्होंने तीन बाण और मारे ॥ १९ ॥

भोजस्तु प्रहसन् पार्थं वासुदेवं च माधवम् ।
एकैकं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ॥ २० ॥

तब कृतवर्माने भी हँसकर कुन्तीकुमार अर्जुन और मधुवंशी भगवान् वासुदेवमेंसे प्रत्येकको पचीस-पचीस बाण मारे ॥

तस्यार्जुनो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं त्रिसप्तभिः ।
शरैरग्निशिखाकारैः क्रुद्धाशीविषसंनिभैः ॥ २१ ॥

यह देख अर्जुनने उसके धनुषको काटकर क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्पके समान भयंकर और आगकी लपटोंके समान तेजस्वी इक्कीस बाणोंद्वारा उसे भी घायल कर दिया २१

अथान्यद् धनुरादाय कृतवर्मा महारथः ।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं विव्याधोरसि भारत ॥ २२ ॥

भारत ! तब महारथी कृतवर्माने दूसरा धनुष लेकर तुरंत ही पाँच बाणोंसे अर्जुनकी छातीमें चोट पहुँचायी ॥२२॥

पुनश्च निशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध पञ्चभिः ।
तं पार्थो नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ २३ ॥

फिर पाँच तीखे बाण और मारकर अर्जुनको घायल कर दिया । यह देख अर्जुनने कृतवर्माकी छातीमें नौ बाण मारे ॥

दृष्ट्वा विषक्तं कौन्तेयं कृतवर्मरथं प्रति ।
चिन्तयामास वार्ष्णेयो न नः कालात्ययो भवेत् ॥ २४ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनको कृतवर्माके रथसे उलझे हुए देखकर भगवान् श्रीकृष्णने मन-ही-मन सोचा कि हमलोगोंका अधिक समय यहीं न व्यतीत हो जाय ॥ २४ ॥

ततः कृष्णोऽब्रवीत् पार्थं कृतवर्मणि मा दयाम् ।
कुरु सम्बन्धकं हित्वा प्रमथ्यैनं विशातय ॥ २५ ॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'तुम कृतवर्मापर दया न करो । इस समय सम्बन्धी होनेका विचार छोड़कर इसे मथकर मार डालो' ॥ २५ ॥

ततः स कृतवर्माणं मोहयित्वार्जुनः शरैः ।
अभ्यगाज्जवनैरश्वैः काम्बोजानामनीकिनीम् ॥२६॥

तब अर्जुन अपने बाणोंद्वारा कृतवर्माको मूर्छित करके अपने वेगशाली घोड़ोंद्वारा काम्बोजोंकी सेनापर आक्रमण करने लगे ॥

अमर्षितस्तु हार्दिक्यः प्रविष्टे श्वेतवाहने ।
विधुन्वन् सशरं चापं पाञ्चाल्याभ्यां समागतः ॥२७॥

श्वेतवाहन अर्जुनके व्यूहमें प्रवेश कर जानेपर कृतवर्माको बड़ा क्रोध हुआ । वह बाणसहित धनुषको हिलाता हुआ पाञ्चालराजकुमार युधामन्यु और उत्तमौजासे भिड़ गया॥

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यावर्जुनस्य पदानुगौ ।
पर्यवारयदायान्तौ कृतवर्मा रथेषुभिः ॥२८॥

वे दोनों पाञ्चाल वीर अर्जुनके चक्ररक्षक होकर उनके पीछे-पीछे जा रहे थे । कृतवर्माने अपने रथ और बाणोंद्वारा वहाँ आते हुए उन दोनों वीरोंको रोक दिया ॥ २८ ॥

तावविध्यत् ततो भोजः कृतवर्मा शितैः शरैः ।
त्रिभिरेव युधामन्युं चतुर्भिश्चोत्तमौजसम् ॥२९॥

भोजवंशी कृतवर्माने अपने तीन तीखे बाणोंद्वारा युधामन्युको और चार बाणोंसे उत्तमौजाको घायल कर दिया॥२९॥

तावप्येनं विविधतुर्दशभिर्दशभिः शरैः ।
त्रिभिरेव युधामन्युरुत्तमौजास्त्रिभिस्तथा ॥ ३० ॥

तब उन दोनोंने भी कृतवर्माको दस-दस बाणोंसे बींध दिया । फिर युधामन्युने तीन और उत्तमौजाने भी तीन बाणोंद्वारा उसे चोट पहुँचायी ॥ ३० ॥

संचिच्छिदतुरप्यस्य ध्वजं कार्मुकमेव च ।
अथान्यद् धनुरादाय हार्दिक्यः क्रोधमूर्छितः ॥ ३१ ॥
कृत्वा विधनुषौ वीरौ शरवर्षैरवाकिरत् ।
तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा भोजं विजघ्नतुः ॥ ३२ ॥

साथ ही उन्होंने कृतवर्माके ध्वज और धनुषको भी काट डाला । यह देख कृतवर्मा क्रोधसे मूर्छित हो उठा और उसने दूसरा धनुष हाथमें लेकर उन दोनों वीरोंके धनुष काट दिये। तत्पश्चात् वह उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगा । इसी तरह वे दोनों पाञ्चाल वीर भी दूसरे धनुषोंपर डोरी चढ़ाकर भोजवंशी कृतवर्माको चोट पहुँचाने लगे ॥ ३१-३२ ॥

तेनान्तरेण बीभत्सुर्विवेशामित्रवाहिनीम् ।
न लेभाते तु तौ द्वारं वारितौ कृतवर्मणा ॥ ३३ ॥
धार्तराष्ट्रेष्वनीकेषु यतमानौ नरर्षभौ ।

इसी बीचमें अवसर पाकर अर्जुन शत्रुओंकी सेनामें घुस गये । परंतु कृतवर्माद्वारा रोक दिये जानेके कारण वे दोनों नरश्रेष्ठ युधामन्यु और उत्तमौजा प्रयत्न करनेपर भी आपके पुत्रोंकी सेनामें प्रवेश करनेका द्वार न पा सके ३३½

अनीकान्यर्दयन् युद्धे त्वरितः श्वेतवाहनः ॥ ३४ ॥
नावधीत् कृतवर्माणं प्राप्तमप्यरिषूदनः ।

श्वेत घोड़ोंवाले शत्रुसूदन अर्जुन उस युद्धस्थलमें बड़ी उतावलीके साथ शत्रु-सेनाओंको पीड़ा दे रहे थे । परंतु उन्होंने (सम्बन्धका विचार करके) कृतवर्माको सामने पाकर भी मारा नहीं ॥ ३४½ ॥

तं दृष्ट्वा तु तथा यान्तं शूरो राजा श्रुतायुधः ॥ ३५ ॥
अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धो विधुन्वानो महद् धनुः ।

अर्जुनको इस प्रकार आगे बढ़ते देख शूरवीर राजा श्रुतायुध अत्यन्त कुपित हो उठे और अपना विशाल धनुष हिलाते हुए उनपर टूट पड़े ॥ ३५½ ॥

स पार्थं त्रिभिरानर्छत् सप्तत्या च जनार्दनम् ॥ ३६ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन पार्थकेतुमताडयत् ।

उन्होंने अर्जुनको तीन और श्रीकृष्णको सत्तर बाण मारे । फिर अत्यन्त तीखे क्षुरप्रसे अर्जुनकी ध्वजापर प्रहार किया ॥ ३६½ ॥

ततोऽर्जुनो नवत्या तु शराणां नतपर्वणाम् ॥ ३७ ॥

आजघान भृशं क्रुद्धस्तोत्त्रैरिव महाद्विपम् ।

तब अर्जुनने अत्यन्त कुपित होकर अंकुशोंसे महान् गजराजको पीड़ित करनेकी भाँति झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंसे राजा श्रुतायुधको चोट पहुँचायी ॥ ३७½ ॥

स तन्न मम्रृषे राजन् पाण्डवेयस्य विक्रमम् ॥ ३८ ॥
अथैनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समार्पयत् ।

राजन् ! उस समय राजा श्रुतायुध पाण्डुकुमार अर्जुनके उस पराक्रमको न सह सके । अतः उन्होंने अर्जुनको सतहत्तर बाण मारे ॥ ३८½ ॥

तस्यार्जुनो धनुश्छित्त्वा शरावापं निकृत्य च ॥ ३९ ॥
आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तभिर्नतपर्वभिः ।

तब अर्जुनने उनका धनुष काटकर उनके तरकसके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये । फिर कुपित हो झुकी हुई गाँठवाले सात बाणोंद्वारा उनकी छातीपर प्रहार किया ॥ ३९½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय स राजा क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४० ॥
वासविं नवभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।

फिर तो राजा श्रुतायुधने क्रोधसे अचेत होकर दूसरा धनुष हाथमें लिया और इन्द्रकुमार अर्जुनकी भुजाओं तथा वक्षःस्थलमें नौ बाण मारे ॥ ४०½ ॥

ततोऽर्जुनः स्मयन्नेव श्रुतायुधमरिंदमः ॥ ४१ ॥
शरैरनेकसाहस्रैः पीडयामास भारत ।

भारत ! यह देख शत्रुदमन अर्जुनने मुसकराते हुए ही श्रुतायुधको कई हजार बाण मारकर पीड़ित कर दिया ४१½

अश्वांश्चास्यावधीत् तूर्णं सारथिं च महारथः ॥ ४२ ॥
विव्याध चैनं सप्तत्या नाराचानां महाबलः ।

साथ ही उन महारथी एवं महाबली वीरने उनके घोड़ों और सारथिको भी शीघ्रतापूर्वक मार डाला और सत्तर नाराचोंसे श्रुतायुधको भी घायल कर दिया ॥ ४२½ ॥

हताश्वं रथमुत्सृज्य स तु राजा श्रुतायुधः ॥ ४३ ॥
अभ्यद्रवद् रणे पार्थं गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।

घोड़ोंके मारे जानेपर पराक्रमी राजा श्रुतायुध उस रथको छोड़कर हाथमें गदा ले समराङ्गणमें अर्जुनपर टूट पड़े ॥

वरुणस्यात्मजो वीरः स तु राजा श्रुतायुधः ॥ ४४ ॥
पर्णाशा जननी यस्य शीततोया महानदी ।

वीर राजा श्रुतायुध वरुणके पुत्र थे । शीतसलिला महानदी पर्णाशा उनकी माता थी ॥ ४४½ ॥

तस्य माताब्रवीद् राजन् वरुणं पुत्रकारणात् ॥ ४५ ॥
अवध्योऽयं भवेल्लोके शत्रूणां तनयो मम ।

राजन् ! उनकी माता पर्णाशा अपने पुत्रके लिये वरुणसे बोली—'प्रभो ! मेरा यह पुत्र संसारमें शत्रुओंके लिये अवध्य हो' ॥ ४५½ ॥

वरुणस्त्वब्रवीत् प्रीतो ददाम्यस्मै वरं हितम् ॥ ४६ ॥
दिव्यमस्त्रं सुतस्तेऽयं येनावध्यो भविष्यति ।

तब वरुणने प्रसन्न होकर कहा—'मैं इसके लिये हितकारक वरके रूपमें यह दिव्य अस्त्र प्रदान करता हूँ, जिसके द्वारा तुम्हारा यह पुत्र अवध्य होगा ॥ ४६½ ॥

नास्ति चाप्यमरत्वं वै मनुष्यस्य कथंचन ॥ ४७ ॥
सर्वेणावश्यमर्तव्यं जातेन सरितां वरे ।

'सरिताओंमें श्रेष्ठ पर्णाशे ! मनुष्य किसी प्रकार भी अमर नहीं हो सकता । जिन लोगोंने यहाँ जन्म लिया है, उनकी मृत्यु अवश्यम्भावी है ॥ ४७½ ॥

दुर्धर्षस्त्वेष शत्रूणां रणेषु भविता सदा ॥ ४८ ॥
अस्त्रस्यास्य प्रभावाद् वै व्येतु ते मानसो ज्वरः ।

'तुम्हारा यह पुत्र इस अस्त्रके प्रभावसे रणक्षेत्रमें शत्रुओंके लिये सदा ही दुर्धर्ष होगा । अतः तुम्हारी मानसिक चिन्ता निवृत्त हो जानी चाहिये' ॥ ४८½ ॥

इत्युक्त्वा वरुणः प्रादाद् गदां मन्त्रपुरस्कृताम् ॥ ४९ ॥
यामासाद्य दुराधर्षः सर्वलोके श्रुतायुधः ।

ऐसा कहकर वरुणदेवने श्रुतायुधको मन्त्रोपदेशपूर्वक वह गदा प्रदान की, जिसे पाकर वे सम्पूर्ण जगत्में दुर्जय वीर माने जाते थे ॥ ४९½ ॥

उवाच चैनं भगवान् पुनरेव जलेश्वरः ॥ ५० ॥
अयुध्यति न मोक्तव्या सा त्वय्येव पतेदिति ।
हन्यादेषा प्रतीपं हि प्रयोक्तारमपि प्रभो ॥ ५१ ॥

गदा देकर भगवान् वरुणने उनसे पुनः कहा—'वत्स ! जो युद्ध न कर रहा हो, उसपर इस गदाका प्रहार न करना; अन्यथा यह तुम्हारे ऊपर ही आकर गिरेगी । शक्तिशाली पुत्र ! यह गदा प्रतिकूल आचरण करनेवाले प्रयोक्ता पुरुषको भी मार सकती है' ॥ ५०-५१ ॥

न चाकरोत् स तद्वाक्यं प्राप्ते काले श्रुतायुधः ।
स तया वीरघातिन्या जनार्दनमताडयत् ॥ ५२ ॥

परंतु काल आ जानेपर श्रुतायुधने वरुण देवके उक्त आदेशका पालन नहीं किया । उन्होंने उस वीरघातिनी गदाके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णको चोट पहुँचायी ॥ ५२ ॥

प्रतिजग्राह तां कृष्णः पीनेनांसेन वीर्यवान् ।
नाकम्पयत शौरिं सा विन्ध्यं गिरिमिवानिलः ॥ ५३ ॥

पराक्रमी श्रीकृष्णने अपने हृष्ट-पुष्ट कंधेपर उस गदाका आघात सह लिया । परंतु जैसे वायु विन्ध्यपर्वतको नहीं हिला सकती है, उसी प्रकार वह गदा श्रीकृष्णको कम्पित न कर सकी ॥ ५३ ॥

प्रत्युद्यान्ती तमेवैषा कृत्येव दुरधिष्ठिता ।
जघान चास्थितं वीरं श्रुतायुधममर्षणम् ॥ ५४ ॥

जैसे दोषयुक्त आभिचारिक क्रियासे उत्पन्न हुई कृत्या उसका प्रयोग करनेवाले यजमानका ही नाश कर देती है, उसी प्रकार उस गदाने लौटकर वहाँ खड़े हुए अमर्षशील वीर श्रुतायुधको मार डाला ॥ ५४ ॥

हत्वा श्रुतायुधं वीरं धरणीमन्वपद्यत।
गदां निवर्तितां दृष्ट्वा निहतं च श्रुतायुधम् ॥ ५५॥
हाहाकारो महांस्तत्र सैन्यानां समजायत।

वीर श्रुतायुधका वध करके वह गदा धरतीपर जा गिरी। लौटी हुई उस गदाको और उसके द्वारा मारे गये वीर श्रुतायुधको देखकर वहाँ आपकी सेनाओंमें महान् हाहाकार मच गया ॥ ५५½ ॥

स्वेनास्त्रेण हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिंदमम् ॥ ५६ ॥
अयुध्यमानाय ततः केशवाय नराधिप।
क्षिप्ता श्रुतायुधेनाथ तस्मात् तमवधीद् गदा ॥ ५७ ॥

नरेश्वर! शत्रुदमन श्रुतायुधको अपने ही अस्त्रसे मारा गया देख यह बात ध्यानमें आयी कि श्रुतायुधने युद्ध न करनेवाले श्रीकृष्णपर गदा चलायी है। इसीलिये उस गदाने उन्हींका वध किया है ॥ ५६–५७ ॥

यथोक्तं वरुणेनाजौ तथा स निधनं गतः।
व्यसुश्चाप्यपतद् भूमौ प्रेक्षतां सर्वधन्विनाम् ॥ ५८ ॥

वरुणदेवने जैसा कहा था, युद्धभूमिमें श्रुतायुधकी उसी प्रकार मृत्यु हुई। वे सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५८ ॥

पतमानस्तु स बभौ पर्णाशायाः प्रियः सुतः।
स भग्न इव वातेन बहुशाखो वनस्पतिः ॥ ५९ ॥

गिरते समय पर्णाशाके प्रिय पुत्र श्रुतायुध आँधीके उखाड़े हुए अनेक शाखाओंवाले वृक्षके समान प्रतीत हो रहे थे ॥ ५९ ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनामुख्याश्च सर्वशः।
प्राद्रवन्त हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिंदमम् ॥ ६० ॥

शत्रुसूदन श्रुतायुधको इस प्रकार मारा गया देख सारे सैनिक और सम्पूर्ण सेनापति वहाँसे भाग खड़े हुए ॥ ६० ॥

ततः काम्बोजराजस्य पुत्रः शूरः सुदक्षिणः।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैः फाल्गुनं शत्रुसूदनम् ॥ ६१ ॥

तत्पश्चात् काम्बोजराजका शूरवीर पुत्र सुदक्षिण वेगशाली अश्वोंद्वारा शत्रुसूदन अर्जुनका सामना करनेके लिये आया ॥

तस्य पार्थः शरान् सप्त प्रेषयामास भारत।
ते तं शूरं विनिर्भिद्य प्राविशन् धरणीतलम् ॥ ६२ ॥

भारत! अर्जुनने उसके ऊपर सात बाण चलाये। वे बाण उस शूरवीरके शरीरको विदीर्ण करके धरतीमें समा गये ॥ ६२ ॥

सोऽतिविद्धः शरैस्तीक्ष्णैर्गाण्डीवप्रेषितैर्मृधे।
अर्जुनं प्रतिविव्याध दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ ६३ ॥

गाण्डीव धनुषद्वारा छोड़े हुए तीखे बाणोंसे अत्यन्त घायल होनेपर सुदक्षिणने उस रणक्षेत्रमें कंककी पाँखवाले दस बाणोंद्वारा अर्जुनको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ६३ ॥

वासुदेवं त्रिभिर्विद्ध्वा पुनः पार्थं च पञ्चभिः।
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा केतुं चिच्छेद मारिष ॥ ६४ ॥

वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको तीन बाणोंसे घायल करके उसने अर्जुनपर पुनः पाँच बाणोंका प्रहार किया। आर्य! तब अर्जुनने उसका धनुष काटकर उसकी ध्वजाके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ ६४ ॥

भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां तं च विव्याध पाण्डवः।
स तु पार्थं त्रिभिर्विद्ध्वा सिंहनादमथानदत् ॥ ६५ ॥

इसके बाद पाण्डुकुमार अर्जुनने दो अत्यन्त तीखे भल्लोंसे सुदक्षिणको बींध डाला। फिर सुदक्षिण भी तीन बाणोंसे पार्थको घायल करके सिंहके समान दहाड़ने लगा ॥ ६५ ॥

सर्वपारशवीं चैव शक्तिं शूरः सुदक्षिणः।
सघण्टां प्राहिणोद् घोरां क्रुद्धो गाण्डीवधन्वने ॥ ६६ ॥

शूरवीर सुदक्षिणने कुपित होकर पूर्णतः लोहेकी बनी हुई घण्टायुक्त भयंकर शक्ति गाण्डीवधारी अर्जुनपर चलायी ॥

सा ज्वलन्ती महोल्केव तमासाद्य महारथम्।
सविस्फुलिङ्गा निर्भिद्य निपपात महीतले ॥ ६७ ॥

वह बड़ी भारी उल्काके समान प्रज्वलित होती और चिनगारियाँ बिखेरती हुई महारथी अर्जुनके पास जा उनके शरीरको विदीर्ण करके पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ६७ ॥

शक्त्या त्वभिहतो गाढं मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः।
समाश्वास्य महातेजाः सृक्किणी परिलेलिहन् ॥ ६८ ॥
तं चतुर्दशभिः पार्थो नाराचैः कङ्कपत्रिभिः।
साश्वध्वजधनुःसूतं विव्याधाचिन्त्यविक्रमः ॥ ६९ ॥

उस शक्तिके द्वारा गहरी चोट खाकर महातेजस्वी अर्जुन मूर्छित हो गये, फिर धीरे-धीरे सचेत हो अपने मुखके दोनों कोनोंको जीभसे चाटते हुए अचिन्त्य पराक्रमी पार्थने कंकके पाँखवाले चौदह नाराचोंद्वारा घोड़े, ध्वज, धनुष और सारथिसहित सुदक्षिणको घायल कर दिया ॥ ६८-६९ ॥

रथं चान्यैः सुबहुभिश्चक्रे विशकलं शरैः।
सुदक्षिणं तं काम्बोजं मोघसंकल्पविक्रमम् ॥ ७० ॥
बिभेद हृदि बाणेन पृथुधारेण पाण्डवः।

फिर दूसरे बहुत-से बाणोंद्वारा उसके रथको टूक-टूक कर दिया और काम्बोजराज सुदक्षिणके संकल्प एवं पराक्रमको व्यर्थ करके पाण्डुपुत्र अर्जुनने मोटी धारवाले बाणसे उसकी छाती छेद डाली ॥ ७०½ ॥

स भिन्नवर्मा स्रस्ताङ्गः प्रभ्रष्टमुकुटाङ्गदः ॥ ७१ ॥
पपाताभिमुखः शूरो यन्त्रमुक्त इव ध्वजः।

इससे उसका कवच फट गया, सारे अङ्ग शिथिल हो गये, मुकुट और बाजूबंद गिर गये तथा शूरवीर सुदक्षिण मशीनसे फेंके गये ध्वजके समान मुँहके बल गिर पड़ा ॥

गिरेः शिखरजः श्रीमान् सुशाखः सुप्रतिष्ठितः ॥ ७२ ॥
निर्भग्न इव वातेन कर्णिकारो हिमात्यये ।
शेते स्म निहतो भूमौ काम्बोजास्तरणोचितः ॥ ७३ ॥

जैसे सर्दी बीतनेके बाद पर्वतके शिखरपर उत्पन्न हुआ सुन्दर शाखाओंसे युक्त, सुप्रतिष्ठित एवं शोभासम्पन्न कनेरका वृक्ष वायुके वेगसे टूटकर गिर जाता है, उसी प्रकार काम्बोज-देशके मुलायम बिछौनोंपर शयन करनेके योग्य सुदक्षिण वहाँ मारा जाकर पृथ्वीपर सो रहा था ॥ ७२-७३ ॥

महार्हाभरणोपेतः सानुमानिव पर्वतः ।
सुदर्शनीयस्ताम्राक्षः कर्णिना स सुदक्षिणः ॥ ७४ ॥
पुनः काम्बोजराजस्य पार्थेन विनिपातितः ।

बहुमूल्य आभूषणोंसे विभूषित एवं शिखरयुक्त पर्वतके समान सुदर्शनीय अरुण नेत्रोंवाले काम्बोजराजकुमार सुदक्षिणको अर्जुनने एक ही बाणसे मार गिराया था ॥ ७४½ ॥

धारयन्नग्निसंकाशां शिरसा काञ्चनीं स्रजम् ॥ ७५ ॥
अशोभत महाबाहुर्व्यसुर्भूमौ निपातितः ।

अपने मस्तकपर अग्निके समान दमकते हुए सुवर्णमय हारको धारण किये महाबाहु सुदक्षिण यद्यपि प्राणशून्य करके पृथ्वीपर गिराया गया था, तथापि उस अवस्थामें भी उसकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ७५½ ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि व्यद्रवन्त सुतस्य ते ।
हतं श्रुतायुधं दृष्ट्वा काम्बोजं च सुदक्षिणम् ॥ ७६ ॥

तदनन्तर श्रुतायुध तथा काम्बोजराजकुमार सुदक्षिणको मारा गया देख आपके पुत्रकी सारी सेनाएँ वहाँसे भागने लगीं ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि श्रुतायुधसुदक्षिणवधे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें श्रुतायुध और सुदक्षिणका वधविषयक बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

अर्जुनद्वारा श्रुतायु, अच्युतायु, नियतायु, दीर्घायु, म्लेच्छ सैनिक और अम्बष्ठ आदिका वध

संजय उवाच

हते सुदक्षिणे राजन् वीरे चैव श्रुतायुधे ।
जवेनाभ्यद्रवन् पार्थं कुपिताः सैनिकास्तव ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! काम्बोजराज सुदक्षिण और वीर श्रुतायुधके मारे जानेपर आपके सारे सैनिक कुपित हो बड़े वेगसे अर्जुनपर टूट पड़े ॥ १ ॥

अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ।
अभ्यवर्षंस्ततो राजञ्शरवर्षैर्धनंजयम् ॥ २ ॥

महाराज ! वहाँ अभीषाह, शूरसेन, शिबि और वसाति-देशीय सैनिकगण अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २ ॥

तेषां षष्टिशतानन्यान् प्रामथ्नात् पाण्डवः शरैः ।
ते स्म भीताः पलायन्ते व्याघ्रात् क्षुद्रमृगा इव ॥ ३ ॥

उस समय पाण्डुकुमार अर्जुनने उपर्युक्त सेनाओंके छः हजार सैनिकों तथा अन्य योद्धाओंको भी अपने बाणोंद्वारा मथ डाला । जैसे छोटे-छोटे मृग बाघसे डरकर भागते हैं, उसी प्रकार वे अर्जुनसे भयभीत हो वहाँसे पलायन करने लगे॥

ते निवृत्ताः पुनः पार्थं सर्वतः पर्यवारयन् ।
रणे सपत्नान् निघ्नन्तं जिगीषन्तं परान् युधि ॥ ४ ॥

उस समय अर्जुन रणक्षेत्रमें शत्रुओंपर विजय पानेकी इच्छासे उनका संहार कर रहे थे । यह देख उन भागे हुए सैनिकोंने पुनः लौटकर पार्थको चारों ओरसे घेर लिया ॥४॥

तेषामापततां तूर्णं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
शिरांसि पातयामास बाहूंश्चापि धनंजयः ॥ ५ ॥

उन आक्रमण करनेवाले योद्धाओंके मस्तकों और भुजाओंको अर्जुनने गाण्डीव-धनुषद्वारा छोड़े हुए बाणोंसे तुरंत ही काट गिराया ॥ ५ ॥

शिरोभिः पातितैस्तत्र भूमिरासीन्निरन्तरा ।
अभ्रच्छायेव चैवासीद् ध्वाङ्क्षगृध्रबलैर्युधि ॥ ६ ॥

वहाँ गिराये हुए मस्तकोंसे वह रणभूमि ठसाठस भर गयी थी और उस युद्धस्थलमें कौओं तथा गीधोंकी सेनाके आ जानेसे वहाँ मेघकी छाया-सी प्रतीत होती थी ॥ ६ ॥

तेषु तूत्साद्यमानेषु क्रोधामर्षसमन्वितौ ।
श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च धनंजयमयुध्यताम् ॥ ७ ॥

इस प्रकार जब उन समस्त सैनिकोंका संहार होने लगा, तब श्रुतायु तथा अच्युतायु—ये दो वीर क्रोध और अमर्षमें भरकर अर्जुनके साथ युद्ध करने लगे ॥ ७ ॥

बलिनौ स्पर्धिनौ वीरौ कुलजौ बाहुशालिनौ ।
तावेनं शरवर्षाणि सव्यदक्षिणमस्यताम् ॥ ८ ॥

वे दोनों बलवान्, अर्जुनसे स्पर्धा रखनेवाले, वीर, उत्तम कुलमें उत्पन्न और अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले थे । उन दोनोंने अर्जुनपर दायें-बायेंसे बाण बरसाना आरम्भ किया ॥ ८ ॥

त्वरायुक्तौ महाराज प्रार्थयानौ महद् यशः ।
अर्जुनस्य वधप्रेप्सू पुत्रार्थे तव धन्विनौ ॥ ९ ॥

महाराज ! वे दोनों वीर महान् यशकी अभिलाषा रखते हुए आपके पुत्रके लिये अर्जुनके वधकी इच्छा रखकर हाथमें धनुष ले बड़ी उतावलीके साथ बाण चला रहे थे ॥ ९ ॥

तावर्जुनं सहस्रेण पत्रिणां नतपर्वणाम् ।
पूरयामासतुः क्रुद्धौ तटागं जलदौ यथा ॥ १० ॥

जैसे दो मेघ किसी तालाबको भरते हों, उसी प्रकार क्रोधमें भरे हुए उन दोनों वीरोंने झुकी हुई गाँठवाले सहस्रों बाणोंद्वारा अर्जुनको आच्छादित कर दिया ॥ १० ॥

श्रुतायुश्च ततः क्रुद्धस्तोमरेण धनंजयम् ।
आजघान रथश्रेष्ठः पीतेन निशितेन च ॥ ११ ॥

फिर रथियोंमें श्रेष्ठ श्रुतायुने कुपित होकर पानीदार तीखी धारवाले तोमरसे अर्जुनपर आघात किया ॥ ११ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः ।
जगाम परमं मोहं मोहयन् केशवं रणे ॥ १२ ॥

उस बलवान् शत्रुके द्वारा अत्यन्त घायल किये हुए शत्रुसूदन अर्जुन उस रणक्षेत्रमें श्रीकृष्णको मोहित करते हुए स्वयं भी अत्यन्त मूर्च्छित हो गये ॥ १२ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु सोऽच्युतायुर्महारथः ।
शूलेन भृशतीक्ष्णेन ताडयामास पाण्डवम् ॥ १३ ॥

इसी समय महारथी अच्युतायुने अत्यन्त तीखे शूलके द्वारा पाण्डुकुमार अर्जुनपर प्रहार किया ॥ १३ ॥

क्षते क्षारं स हि ददौ पाण्डवस्य महात्मनः ।
पार्थोऽपि भृशसंविद्धो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ १४ ॥

उसने इस प्रहारद्वारा महामना पाण्डुपुत्र अर्जुनके घावपर नमक छिड़क दिया । अर्जुन भी अत्यन्त घायल होकर ध्वज-दण्डके सहारे टिक गये ॥ १४ ॥

ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशाम्पते ।
सिंहनादो महानासीद्धतं मत्वा धनंजयम् ॥ १५ ॥

प्रजानाथ ! उस समय अर्जुनको मरा हुआ मानकर आपके सारे सैनिक जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ १५ ॥

कृष्णश्च भृशसंतप्तो दृष्ट्वा पार्थं विचेतनम् ।
आश्वासयत् सुहृद्याभिर्वाग्भिस्तत्र धनंजयम् ॥ १६ ॥

अर्जुनको अचेत हुआ देख भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त संतप्त हो उठे और मनको प्रिय लगनेवाले वचनोंद्वारा वहाँ उन्हें आश्वासन देने लगे ॥ १६ ॥

ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ लब्धलक्ष्यौ धनंजयम् ।
वासुदेवं च वार्ष्णेयं शरवर्षैः समन्ततः ॥ १७ ॥
सचक्रकूबररथं साश्वध्वजपताकिनम् ।
अदृश्यं चक्रतुर्युद्धे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १८ ॥

तदनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ श्रुतायु और अच्युतायुने अपना लक्ष्य सामने पाकर अर्जुन तथा वृष्णिवंशी श्रीकृष्णपर चारों ओरसे बाणवर्षा करके चक्र, कूबर, रथ, अश्व, ध्वज और पताका-सहित उन्हें उस रणक्षेत्रमें अदृश्य कर दिया । वह अद्भुत-सी बात हो गयी ॥ १७-१८ ॥

प्रत्याश्वस्तस्तु बीभत्सुः शनकैरिव भारत ।
प्रेतराजपुरं प्राप्य पुनः प्रत्यागतो यथा ॥ १९ ॥

भारत ! फिर अर्जुन धीरे-धीरे सचेत हुए, मानो यमराजके नगरमें पहुँचकर पुनः वहाँसे लौटे हों ॥ १९ ॥

संछन्नं शरजालेन रथं दृष्ट्वा सकेशवम् ।
शत्रू चाभिमुखौ दृष्ट्वा दीप्यमानाविवानलौ ॥ २० ॥
प्रादुश्चक्रे ततः पार्थः शाक्रमस्त्रं महारथः ।
तस्मादासन् सहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ॥ २१ ॥

उस समय भगवान् श्रीकृष्णसहित अपने रथको बाण समूहसे आच्छादित और सामने खड़े हुए दोनों शत्रुओंको अग्निके समान देदीप्यमान देखकर महारथी अर्जुनने ऐन्द्रास्त्र प्रकट किया । उससे झुकी हुई गाँठवाले सहस्रों बाण प्रकट होने लगे ॥ २०-२१ ॥

ते जघ्नुस्तौ महेष्वासौ ताभ्यां मुक्तांश्च सायकान् ।
विचेरुराकाशगताः पार्थबाणविदारिताः ॥ २२ ॥

उन बाणोंने उन दोनों महाधनुर्धरोंको तथा उनके छोड़े हुए सायकोंको भी छिन्न-भिन्न कर दिया । अर्जुनके बाणोंसे टुकड़े-टुकड़े होकर उन शत्रुओंके बाण आकाशमें विचरने लगे ॥

प्रतिहत्य शरांस्तूर्णं शरवेगेन पाण्डवः ।
प्रतस्थे तत्र तत्रैव योधयन् वै महारथान् ॥ २३ ॥

अपने बाणोंके वेगसे शत्रुओंके बाणोंको नष्ट करके पाण्डु-कुमार अर्जुनने जहाँ-तहाँ अन्य महारथियोंसे युद्ध करनेके लिये प्रस्थान किया ॥ २३ ॥

तौ च फाल्गुनबाणौघैर्विबाहुशिरसौ कृतौ ।
वसुधामन्वपद्येतां वातनुन्नाविव द्रुमौ ॥ २४ ॥

अर्जुनके उन बाण-समूहोंसे श्रुतायु और अच्युतायुके मस्तक कट गये । भुजाएँ छिन्न-भिन्न हो गयीं । वे दोनों आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंके समान धराशायी हो गये ॥ २४ ॥

श्रुतायुषश्च निधनं वधश्चैवाच्युतायुषः ।
लोकविस्मापनमभूत् समुद्रस्येव शोषणम् ॥ २५ ॥

श्रुतायु और अच्युतायुका वह वध समुद्रशोषणके समान सब लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाला था ॥ २५ ॥

तयोः पदानुगान् हत्वा पुनः पञ्चाशतं रथान् ।
प्रत्यगाद् भारतीं सेनां निघ्नन् पार्थो वरान् वरान् ॥ २६ ॥

उन दोनोंके पीछे आनेवाले पचास रथियोंको मारकर अर्जुनने श्रेष्ठ-श्रेष्ठ वीरोंको चुन-चुनकर मारते हुए पुनः कौरवसेनामें प्रवेश किया ॥ २६ ॥

श्रुतायुषं च निहतं प्रेक्ष्य चैवाच्युतायुषम् ।
नियतायुश्च संक्रुद्धो दीर्घायुश्चैव भारत ॥ २७ ॥

पुत्रौ तयोर्नरश्रेष्ठौ कौन्तेयं प्रतिजग्मतुः ।
किरन्तौ विविधान् बाणान् पितृव्यसनकर्शितौ ॥ २८ ॥

भारत ! श्रुतायु तथा अच्युतायुको मारा गया देख उन दोनोंके पुत्र नरश्रेष्ठ नियुतायु और दीर्घायु पिताके वधसे दुखी हो अत्यन्त क्रोधमें भरकर नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षा करते हुए कुन्तीकुमार अर्जुनका सामना करनेके लिये आये ॥ २७-२८ ॥

तावर्जुनो मुहूर्तेन शरैः संनतपर्वभिः ।
प्रैषयत् परमक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ २९ ॥

तब अर्जुनने अत्यन्त कुपित हो झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा दो ही घड़ीमें उन दोनोंको यमराजके घर भेज दिया ॥

लोडयन्तमनीकानि द्विपं पद्मसरो यथा ।
नाशक्नुवन् वारयितुं पार्थं क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ ३० ॥

जैसे हाथी कमलोंसे भरे हुए सरोवरको मथ डालता हो, उसी प्रकार आपकी सेनाओंका मन्थन करते हुए पार्थको आपके क्षत्रियशिरोमणि योद्धा रोक न सके ॥ ३० ॥

अङ्गास्तु गजवारेण पाण्डवं पर्यवारयन् ।
क्रुद्धाः सहस्रशो राजञ्छिक्षिता हस्तिसादिनः ॥ ३१ ॥

राजन् ! इसी समय युद्धविषयक शिक्षा पाये हुए अङ्गदेशके सहस्रों गजारोही योद्धाओंने क्रोधमें भरकर हाथियोंके समूहद्वारा पाण्डुकुमार अर्जुनको सब ओरसे घेर लिया ॥

दुर्योधनसमादिष्टाः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः ।
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च कलिङ्गप्रमुखा नृपाः ॥ ३२ ॥

फिर दुर्योधनकी आज्ञा पाकर पूर्व और दक्षिण देशोंके कलिंग आदि नरेशोंने भी अर्जुनपर पर्वताकार हाथियोंद्वारा घेरा डाल दिया ॥ ३२ ॥

तेषामापततां शीघ्रं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
निचकर्त शिरांस्युग्रो बाहूनपि सुभूषणान् ॥ ३३ ॥

तब उग्ररूपधारी अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे छोड़े हुए बाणोंद्वारा उन सारे आक्रमणकारियोंके मस्तकों तथा उत्तम भूषणभूषित भुजाओंको भी शीघ्र ही काट डाला ॥ ३३ ॥

तैः शिरोभिर्मही कीर्णा बाहुभिश्च सहाङ्गदैः ।
बभौ कनकपाषाणा भुजगैरिव संवृता ॥ ३४ ॥

उस समय उन मस्तकों और भुजबंदसहित भुजाओंसे आच्छादित हुई वहाँकी भूमि सर्पोंसे घिरी हुई स्वर्ण-प्रस्तरयुक्त भूमिके समान शोभा पा रही थी ॥ ३४ ॥

बाहवो विशिखैश्छिन्नाः शिरांस्युन्मथितानि च ।
पतमानान्यदृश्यन्त द्रुमेभ्य इव पक्षिणः ॥ ३५ ॥

बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुई भुजाएँ और कटे हुए मस्तक इस प्रकार गिरते दिखायी दे रहे थे, मानो वृक्षोंसे पक्षी गिर रहे हों ॥ ३५ ॥

शरैः सहस्रशो विद्धा द्विपाः प्रस्रुतशोणिताः ।
अदृश्यन्ताद्रयः काले गैरिकाम्बुस्रवा इव ॥ ३६ ॥

सहस्रों बाणोंसे विंधकर खूनकी धारा बहाते हुए हाथी वर्षाकालमें गेरुमिश्रित जलके झरने बहानेवाले पर्वतोंके समान दिखायी देते थे ॥ ३६ ॥

निहताः शेरते स्मान्ये बीभत्सोर्निशितैः शरैः ।
गजपृष्ठगता म्लेच्छा नानाविकृतदर्शनाः ॥ ३७ ॥

अर्जुनके तीखे बाणोंसे मारे जाकर दूसरे-दूसरे म्लेच्छ-सैनिक हाथीकी पीठपर ही लेट गये थे। उनकी नाना प्रकारकी आकृति बड़ी विकृत दिखायी देती थी ॥ ३७ ॥

नानावेषधरा राजन् नानाशस्त्रौघसंवृताः ।
रुधिरेणानुलिप्ताङ्गा भान्ति चित्रैः शरैर्हताः ॥ ३८ ॥

राजन् ! नाना प्रकारके वेश धारण करनेवाले तथा अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न योद्धा अर्जुनके विचित्र बाणोंसे मारे जाकर अद्भुत शोभा पा रहे थे। उनके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो रहे थे ॥ ३८ ॥

शोणितं निर्वमन्ति स्म द्विपाः पार्थशराहताः ।
सहस्रशश्छिन्नगात्राः सारोहाः सपदानुगाः ॥ ३९ ॥

सवारों और अनुचरोंसहित सहस्रों हाथी अर्जुनके बाणोंसे आहत हो मुँहसे रक्त वमन करते थे। उनके सम्पूर्ण अङ्ग छिन्न-भिन्न हो रहे थे ॥ ३९ ॥

चुक्रुशुश्च निपेतुश्च बभ्रमुश्चापरे दिशः ।
भृशं त्रस्ताश्च बहवः स्वानेव ममृदुर्गजाः ॥ ४० ॥
सान्तरायुधिनश्चैव द्विपास्तीक्ष्णविषोपमाः ।

बहुत-से हाथी चिग्घाड़ रहे थे, बहुतेरे धराशायी हो गये थे, दूसरे कितने ही हाथी सम्पूर्ण दिशाओंमें चक्कर काट रहे थे और बहुत-से गज अत्यन्त भयभीत हो भागते हुए अपने ही पक्षके योद्धाओंको कुचल रहे थे। तीक्ष्ण विषवाले सर्पोंके समान भयंकर वे सभी हाथी गुप्तास्त्रधारी सैनिकोंसे युक्त थे॥

विदन्त्यसुरमायां ये सुघोरा घोरचक्षुषः ॥ ४१ ॥
यवनाः पारदाश्चैव शकाश्च सह बाह्लिकैः ।
काकवर्णा दुराचाराः स्त्रीलोलाः कलहप्रियाः ॥ ४२ ॥

जो आसुरी मायाको जानते हैं, जिनकी आकृति अत्यन्त भयंकर है तथा जो भयानक नेत्रोंसे युक्त हैं एवं जो कौओंके समान काले, दुराचारी, स्त्रीलम्पट और कलहप्रिय होते हैं वे यवन, पारद, शक और बाह्लीक भी वहाँ युद्धके लिये उपस्थित हुए ॥ ४१-४२ ॥

द्राविडास्तत्र युध्यन्ते मत्तमातङ्गविक्रमाः ।
गोयोनिप्रभवा म्लेच्छाः कालकल्पाः प्रहारिणः ॥ ४३ ॥

मतवाले हाथियोंके समान पराक्रमी द्राविड तथा नन्दिनी गायसे उत्पन्न हुए कालके समान प्रहारकुशल म्लेच्छ भी वहाँ युद्ध कर रहे थे ॥ ४३ ॥

दार्वातिसारा दरदाः पुण्ड्राश्चैव सहस्रशः।
ते न शक्याः स संख्यातुं व्रात्याः शतसहस्रशः॥ ४४॥

दार्वातिसार, दरद और पुण्ड्र आदि हजारों लाखों संस्कार-शून्य म्लेच्छ वहाँ उपस्थित थे, जिनकी गणना नहीं की जा सकती थी ॥ ४४ ॥

अभ्यवर्षन्त ते सर्वे पाण्डवं निशितैः शरैः।
अवाकिरंश्च ते म्लेच्छा नानायुद्धविशारदाः॥ ४५॥

नाना प्रकारके युद्धोंमें कुशल वे सभी म्लेच्छगण पाण्डुपुत्र अर्जुनपर तीखे बाणोंकी वर्षा करके उन्हें आच्छादित करने लगे ॥ ४५ ॥

तेषामपि ससर्जाशु शरवृष्टिं धनंजयः।
सृष्टिस्तथाविधा ह्यासीच्छलभानामिवायतिः॥ ४६॥

तब अर्जुनने उनके ऊपर भी तुरंत बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ की। उनकी वह बाण-वृष्टि टिड्डी-दलोंकी सृष्टि-सी प्रतीत होती थी ॥ ४६ ॥

अभ्रच्छायामिव शरैः सैन्ये कृत्वा धनंजयः।
मुण्डाधमुण्डाञ्जटिलानशुचीञ्जटिलाननान्॥ ४७॥
म्लेच्छानशातयत् सर्वान् समेतानस्त्रतेजसा।

बाणोंद्वारा उस विशाल सेनापर बादलोंकी छाया-सी करके अर्जुनने अपने अस्त्रके तेजसे मुण्डित, अर्धमुण्डित, जटाधारी, अपवित्र तथा दाढ़ीभरे मुखवाले उन समस्त म्लेच्छोंका, जो वहाँ एकत्र थे, संहार कर डाला ॥ ४७½ ॥

शरैश्च शतशो विद्धास्ते संघा गिरिचारिणः।
प्राद्रवन्त रणे भीता गिरिगह्वरवासिनः॥ ४८॥

उस समय पर्वतोंपर विचरने और पर्वतीय कन्दराओंमें निवास करनेवाले सैकड़ों म्लेच्छ-संघ अर्जुनके बाणोंसे विद्ध एवं भयभीत हो रणभूमिसे भागने लगे ॥ ४८ ॥

गजाश्वसादिम्लेच्छानां पतितानां शितैः शरैः।
बलाः कंका वृका भूमावपिबन् रुधिरं मुदा॥ ४९॥

अर्जुनके तीखे बाणोंसे मरकर पृथ्वीपर गिरे हुए उन हाथीसवार और घुड़सवार म्लेच्छोंका रक्त कौए, बगले और भेड़िये बड़ी प्रसन्नताके साथ पी रहे थे ॥ ४९ ॥

पत्त्यश्वरथनागैश्च प्रच्छन्नकृतसंक्रमाम्।
शरवर्षप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम्।
प्रावर्तयन्नदीमुग्रां शोणितौघतरङ्गिणीम्॥ ५०॥
छिन्नाङ्गुलीक्षुद्रमत्स्यां युगान्ते कालसंनिभाम्।
प्राकरोद् गजसम्बाधां नदीमुत्तरशोणिताम्॥ ५१॥
देहेभ्यो राजपुत्राणां नागाश्वरथसादिनाम्।

उस समय अर्जुनने वहाँ रक्तकी एक भयंकर नदी बहा दी, जो प्रलयकालकी नदीके समान डरावनी प्रतीत होती थी। उसमें पैदल मनुष्य, घोड़े, रथ और हाथियोंको बिछाकर मानो पुल तैयार किया गया था, बाणोंकी वर्षा ही नौकाके समान जान पड़ती थी। केश सेवार और घासके समान जान पड़ते थे। उस भयंकर नदीसे रक्त-प्रवाहकी ही तरङ्गें उठ रही थीं। कटी हुई अँगुलियाँ छोटी-छोटी मछलियोंके समान जान पड़ती थीं। हाथी, घोड़े और रथोंकी सवारी करनेवाले राजकुमारोंके शरीरोंसे बहनेवाले रक्तसे लबालब भरी हुई उस नदीको अर्जुनने स्वयं प्रकट किया था। उसमें हाथियोंकी लाशें व्याप्त हो रही थीं ॥ ५०-५१½ ॥

यथास्थलं च निम्नं च न स्याद् वर्षति वासवे॥ ५२॥
तथासीत् पृथिवी सर्वा शोणितेन परिप्लुता।

जैसे इन्द्रके वर्षा करते समय ऊँचे-नीचे स्थलका भान नहीं होता है, उसी प्रकार वहाँकी सारी पृथ्वी रक्तकी धारामें डूबकर समतल-सी जान पड़ती थी ॥ ५२½ ॥

षट्सहस्रान् हयान् वीरान् पुनर्दशशतान् वरान्॥ ५३॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः।

क्षत्रियशिरोमणि अर्जुनने वहाँ छः हजार घुड़सवारों तथा एक हजार श्रेष्ठ शूरवीर क्षत्रियोंको मृत्युके लोकमें भेज दिया ॥ ५३½ ॥

शरैः सहस्रशो विद्धा विधिवत्कल्पिता द्विपाः॥ ५४॥
शेरते भूमिमासाद्य शैला वज्रहता इव।

विधिपूर्वक सुसज्जित किये गये हाथी सहस्रों बाणोंसे बिंधकर वज्रके मारे हुए पर्वतोंके समान धराशायी हो रहे थे॥

सवाजिरथमातङ्गान् निघ्नन् व्यचरदर्जुनः॥ ५५॥
प्रभिन्न इव मातङ्गो मृद्नन् नलवनं यथा।

जैसे मदकी धारा बहानेवाला मतवाला हाथी नरकुलके जंगलोंको रौंदता चलता है, उसी प्रकार अर्जुन घोड़े, रथ और हाथियोंसहित सम्पूर्ण शत्रुओंका संहार करते हुए रणभूमिमें विचर रहे थे ॥ ५५½ ॥

भूरिद्रुमलतागुल्मं शुष्केन्धनतृणोलपम्॥ ५६॥
निर्दहेदनलोऽरण्यं यथा वायुसमीरितः।
सेनारण्यं तव तथा कृष्णानिलसमीरितः॥ ५७॥
शरार्चिरदहत् क्रुद्धः पाण्डवाग्निर्धनंजयः।

जैसे वायुप्रेरित अग्नि सूखे ईंधन, तृण और लताओंसे युक्त तथा बहुसंख्यक वृक्षों और लतागुल्मोंसे भरे हुए जंगलको जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार श्रीकृष्णरूपी वायुसे प्रेरित हो बाणरूपी ज्वालाओंसे युक्त पाण्डुपुत्र अर्जुनरूपी अग्निने कुपित होकर आपकी सेनारूप वनको दग्ध कर दिया ॥ ५६-५७½ ॥

शून्यान् कुर्वन् रथोपस्थान् मानवैः संस्तरन् महीम्॥ ५८
प्रानृत्यदिव सम्बाधे चापहस्तो धनंजयः।

रथकी बैठकोंको सूनी करके धरतीपर मनुष्योंकी लाशोंका बिछौना करते हुए चापधारी धनंजय उस युद्धके मैदानमें नृत्य-सा कर रहे थे ॥ ५८½ ॥

वज्रकल्पैः शरैर्भूमिं कुर्वन्नुत्तरशोणिताम् ॥ ५९ ॥
प्राविशद् भारतीं सेनां संक्रुद्धो वै धनंजयः ।
तं श्रुतायुस्तथाम्बष्ठो व्रजमानं न्यवारयत् ॥ ६० ॥

क्रोधमें भरे हुए धनंजयने वज्रोपम बाणोंद्वारा पृथ्वीको रक्तसे आप्लावित करते हुए कौरवी सेनामें प्रवेश किया । उस समय सेनाके भीतर जाते हुए अर्जुनको श्रुतायु तथा अम्बष्ठने रोका ॥ ५९-६० ॥

तस्यार्जुनः शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ।
न्यपातयद्धयाञ्शीघ्रं यतमानस्य मारिष ॥ ६१ ॥

मान्यवर ! तब अर्जुनने कंककी पाँखोंवाले तीखे बाणोंद्वारा विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले अम्बष्ठके घोड़ोंको शीघ्र ही मार गिराया ॥ ६१ ॥

धनुश्चास्यापरैश्छित्त्वा शरैः पार्थो विचक्रमे ।
अम्बष्ठस्तु गदां गृह्य कोपपर्याकुलेक्षणः ॥ ६२ ॥
आससाद रणे पार्थं केशवं च महारथम् ।

फिर दूसरे बाणोंसे उसके धनुषको भी काटकर पार्थने विशेष बल-विक्रमका परिचय दिया । तब अम्बष्ठकी आँखें क्रोधसे व्याप्त हो गयीं । उसने गदा लेकर रणक्षेत्रमें महारथी श्रीकृष्ण और अर्जुनपर आक्रमण किया ॥ ६२½ ॥

ततः सम्प्रहरन् वीरो गदामुद्यस्य भारत ॥ ६३ ॥
रथमावार्य गदया केशवं समताडयत् ।

भारत ! तदनन्तर वीर अम्बष्ठने प्रहार करनेके लिये उद्यत हो गदा उठाये आगे बढ़कर अर्जुनके रथको रोक दिया और भगवान् श्रीकृष्णपर गदासे आघात किया ।६३½।

गदया ताडितं दृष्ट्वा केशवं परवीरहा ॥ ६४ ॥
अर्जुनोऽथ भृशं क्रुद्धः सोऽम्बष्ठं प्रति भारत ।

भरतनन्दन ! शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णको गदासे आहत हुआ देख अम्बष्ठके प्रति अत्यन्त कुपित हो उठे ॥ ६४½ ॥

ततः शरैर्हेमपुङ्खैः सगदं रथिनां वरम् ॥ ६५ ॥
छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम् ।

फिर तो जैसे बादल उदित हुए सूर्यको ढक लेता है, उसी प्रकार अर्जुनने समराङ्गणमें सोनेके पंखवाले बाणोंद्वारा गदासहित रथियोंमें श्रेष्ठ अम्बष्ठको आच्छादित कर दिया ॥

अथापरैः शरैश्चापि गदां तस्य महात्मनः ॥ ६६ ॥
अचूर्णयत् तदा पार्थस्तदद्भुतमिवाभवत् ।

तत्पश्चात् दूसरे बहुत-से बाण मारकर अर्जुनने महामना अम्बष्ठकी उस गदाको उसी समय चूर-चूर कर दिया । वह अद्भुत-सी घटना हुई ॥ ६६½ ॥

अथ तां पतितां दृष्ट्वा गृह्यान्यां च महागदाम् ॥ ६७ ॥
अर्जुनं वासुदेवं च पुनः पुनरताडयत् ।

उस गदाको गिरी हुई देख अम्बष्ठने दूसरी विशाल गदा ले ली और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनपर बारंबार प्रहार किया॥

तस्यार्जुनः क्षुरप्राभ्यां सगदावुद्यतौ भुजौ ॥ ६८ ॥
चिच्छेदेन्द्रध्वजाकारौ शिरश्चान्येन पत्रिणा ।

तब अर्जुनने उसकी गदासहित, इन्द्रध्वजके समान उठी हुई दोनों भुजाओंको दो क्षुरप्रोंसे काट डाला और पंखयुक्त दूसरे बाणसे उसके मस्तकको भी काट गिराया ॥६८½॥

स पपात हतो राजन् वसुधामनुनादयन् ॥ ६९ ॥
इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टो यन्त्रनिर्मुक्तबन्धनः ।

राजन् ! यन्त्रद्वारा बन्धनमुक्त होकर गिरे हुए इन्द्रध्वजके समान वह मरकर पृथ्वीपर धमाकेकी आवाज करता हुआ गिर पड़ा ॥ ६९½ ॥

रथानीकावगाढश्च वारणाश्वशतैर्वृतः ।
अदृश्यत तदा पार्थो घनैः सूर्य इवावृतः ॥ ७० ॥

उस समय रथियोंकी सेनामें घुसकर सैकड़ों हाथियों और घोड़ोंसे घिरे हुए कुन्तीकुमार अर्जुन बादलोंमें छिपे हुए सूर्यके समान दिखायी देते थे ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अम्बष्ठवधे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अम्बष्ठवधविषयक तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

दुर्योधनका उपालम्भ सुनकर द्रोणाचार्यका उसके शरीरमें दिव्य कवच बाँधकर उसीको अर्जुनके साथ युद्धके लिये भेजना

संजय उवाच

ततः प्रविष्टे कौन्तेये सिंधुराजजिघांसया ।
द्रोणानीकं विनिर्भिद्य भोजानीकं च दुस्तरम् ॥ १ ॥
काम्बोजस्य च दायादे हते राजन् सुदक्षिणे ।
श्रुतायुधे च विक्रान्ते निहते सव्यसाचिना ॥ २ ॥
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु विध्वस्तेषु समन्ततः ।
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥ ३ ॥
त्वरन्नेकरथेनैव समेत्य द्रोणमब्रवीत् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर जब कुन्तीकुमार अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथका वध करनेकी इच्छासे द्रोणाचार्य और कृतवर्माका दुस्तर सेना-व्यूह भेदन करके आपकी सेनामें प्रविष्ट हो गये और सव्यसाची अर्जुनके हाथसे

जब काम्बोजराजकुमार सुदक्षिण तथा पराक्रमी श्रुतायुध मार दिये गये तथा जब सारी सेनाएँ नष्ट-भ्रष्ट होकर चारों ओर भाग खड़ी हुईं, उस समय अपनी सम्पूर्ण सेनामें भगदड़ मची देख आपका पुत्र दुर्योधन बड़ी उतावलीके साथ एकमात्र रथके द्वारा द्रोणाचार्यके पास गया और उनसे मिलकर इस प्रकार बोला—॥ १–३½ ॥

गतः स पुरुषव्याघ्रः प्रमथ्यैतां महाचमूम् ॥ ४ ॥
अथ बुद्ध्या समीक्षस्व किन्नु कार्यमनन्तरम् ।
अर्जुनस्य विघाताय दारुणेऽस्मिञ्जनक्षये ॥ ५ ॥
यथा स पुरुषव्याघ्रो न हन्येत जयद्रथः ।
तथा विधत्स्व भद्रं ते त्वं हि नः परमा गतिः ॥ ६ ॥

'गुरुदेव ! पुरुषसिंह अर्जुन हमारी इस विशाल सेनाको मथकर व्यूहके भीतर चला गया । अब आप अपनी बुद्धिसे यह विचार कीजिये कि इसके बाद अर्जुनके विनाशके लिये क्या करना चाहिये ? इस भयंकर नरसंहारमें जिस प्रकार भी पुरुषसिंह जयद्रथ न मारे जायँ, वैसा उपाय कीजिये । आपका कल्याण हो । हमारा सबसे बड़ा सहारा आप ही हैं ॥ ४–६ ॥

असौ धनंजयाग्निर्हि कोपमारुतचोदितः ।
सेनाकक्षं दहति मे वह्निः कक्षमिवोत्थितः ॥ ७ ॥

'जैसे सहसा उठा हुआ दावानल सूखे घास-फूँस अथवा जंगलको जलाकर भस्म कर देता है, उसी प्रकार यह धनंजयरूपी अग्नि कोपरूपी प्रचण्ड वायुसे प्रेरित हो मेरे सैन्यरूपी सूखे वनको दग्ध किये देती है ॥ ७ ॥

अतिक्रान्ते हि कौन्तेये भित्त्वा सैन्यं परंतप ।
जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः ॥ ८ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले आचार्य ! जबसे कुन्तीकुमार अर्जुन आपकी सेनाका व्यूह भेदकर आपको भी लाँघकर आगे चले गये हैं, तबसे जयद्रथकी रक्षा करनेवाले योद्धा महान् संशयमें पड़ गये हैं ॥ ८ ॥

स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्राणामासीद् ब्रह्मविदां वर ।
नातिक्रमिष्यति द्रोणं जातु जीवन् धनंजयः ॥ ९ ॥

'ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ गुरुदेव ! हमारे पक्षके नरेशोंको यह दृढ़ विश्वास था कि अर्जुन द्रोणाचार्यके जीते-जी उन्हें लाँघकर सेनाके भीतर नहीं घुस सकेगा ॥ ९ ॥

योऽसौ पार्थो व्यतिक्रान्तो मिषतस्ते महाद्युते ।
सर्वं ह्यद्यातुरं मन्ये नेदमस्ति बलं मम ॥ १० ॥

'परंतु महातेजस्वी वीर ! आपके देखते-देखते वह कुन्तीकुमार अर्जुन आपको लाँघकर जो व्यूहमें घुस गया है, इससे मैं अपनी इस सारी सेनाको व्याकुल और विनष्ट हुई-सी मानता हूँ । अब मेरी इस सेनाका अस्तित्व नहीं रहेगा ॥ १० ॥

जानामि त्वां महाभाग पाण्डवानां हिते रतम् ।
तथा मुह्यामि च ब्रह्मन् कार्यवत्तां विचिन्तयन् ॥ ११ ॥

'ब्रह्मन् ! महाभाग ! मैं यह जानता हूँ कि आप पाण्डवोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं; इसीलिये अपने कार्यकी गुरुताका विचार करके मोहित हो रहा हूँ ॥ ११ ॥

यथाशक्ति च ते ब्रह्मन् वर्तये वृत्तिमुत्तमाम् ।
प्रीणामि च यथाशक्ति तच्च त्वं नावबुध्यसे ॥ १२ ॥

'विप्रवर ! मैं यथाशक्ति आपके लिये उत्तम जीविकावृत्तिकी व्यवस्था करता रहता हूँ और अपनी शक्तिभर आपको प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करता रहता हूँ; परंतु इन सब बातोंको आप याद नहीं रखते हैं ॥ १२ ॥

अस्मान्न त्वं सदा भक्तानिच्छस्यमितविक्रम ।
पाण्डवान् सततं प्रीणास्यस्माकं विप्रिये रतान् ॥ १३ ॥

'अमितपराक्रमी आचार्य ! हम आपके चरणोंमें सदा भक्ति रखते हैं तो भी आप हमें नहीं चाहते हैं और जो सदा हमलोगोंका अप्रिय करनेमें तत्पर रहते हैं, उन पाण्डवोंको आप निरन्तर प्रसन्न रखते हैं ॥ १३ ॥

अस्मानेवोपजीवंस्त्वमस्माकं विप्रिये रतः ।
न ह्ययं त्वां विजानामि मधुदिग्धमिव क्षुरम् ॥ १४ ॥

'हमसे ही आपकी जीविका चलती है तो भी आप हमारा ही अप्रिय करनेमें संलग्न रहते हैं । मैं नहीं जानता था कि आप शहदमें डुबोये हुए छुरेके समान हैं ॥ १४ ॥

नादास्यच्चेद् वरं मह्यं भवान् पाण्डवनिग्रहे ।
नावारयिष्यं गच्छन्तमहं सिन्धुपतिं गृहान् ॥ १५ ॥

'यदि आप मुझे अर्जुनको रोके रखनेका वर न देते तो मैं अपने घरको जाते हुए सिन्धुराज जयद्रथको कभी मना नहीं करता ॥ १५ ॥

मया त्वाशंसमानेन त्वत्तस्त्राणमबुद्धिना ।
आश्वासितः सिन्धुपतिर्मोहाद् दत्तश्च मृत्यवे ॥ १६ ॥

'मुझ मूर्खने आपसे संरक्षण पानेका भरोसा करके सिन्धुराज जयद्रथको समझा-बुझाकर यहीं रोक लिया और इस प्रकार मोहवश मैंने उन्हें मौतके हाथमें सौंप दिया ॥ १६ ॥

यमदंष्ट्रान्तरं प्राप्तो मुच्येतापि हि मानवः ।
नार्जुनस्य वशं प्राप्तो मुच्येताजौ जयद्रथः ॥ १७ ॥

'मनुष्य यमराजकी दाढ़ोंमें पड़कर भले ही बच जाय, परंतु रणभूमिमें अर्जुनके वशमें पड़े हुए जयद्रथके प्राण नहीं बच सकते ॥ १७ ॥

स तथा कुरु शोणाश्व यथा मुच्येत सैन्धवः ।
मम चार्तप्रलापानां मा क्रुधः पाहि सैन्धवम् ॥ १८ ॥

'लाल घोड़ोंवाले आचार्य ! आप कोई ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिससे सिन्धुराज जयद्रथ मृत्युसे छुटकारा पा सके । मैंने आर्त होनेके कारण जो प्रलाप किये हैं, उनके लिये क्रोध न कीजियेगा; जैसे भी हो, सिन्धुराजकी रक्षा कीजिये' ॥ १८ ॥

द्रोण उवाच

नाभ्यसूयामि ते वाक्यमश्वत्थाम्नासि मे समः।
सत्यं तु ते प्रवक्ष्यामि तज्जुषस्व विशाम्पते ॥ १९ ॥

द्रोणाचार्यने कहा—राजन् ! तुमने जो बात कही है, उसके लिये मैं बुरा नहीं मानता; क्योंकि तुम मेरे लिये अश्वत्थामाके समान हो । परंतु जो सच्ची बात है, वह तुम्हें बता रहा हूँ; उसे ध्यान देकर सुनो ॥ १९ ॥

सारथिः प्रवरः कृष्णः शीघ्राश्चास्य हयोत्तमाः।
अल्पं च विवरं कृत्वा तूर्णं याति धनंजयः ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण अर्जुनके श्रेष्ठ सारथि हैं तथा उनके उत्तम घोड़े भी तेज चलनेवाले हैं । इसलिये थोड़ा-सा भी अवकाश बनाकर अर्जुन तत्काल सेनामें घुस जाते हैं ॥ २० ॥

किं न पश्यसि बाणौघान् क्रोशमात्रे किरीटिनः।
पश्चाद् रथस्य पतितान् क्षिप्ताञ्शीघ्रं हि गच्छतः॥२१॥

क्या तुम देखते नहीं हो कि मेरे चलाये हुए बाणसमूह शीघ्रगामी अर्जुनके रथके एक कोस पीछे पड़े हैं ॥ २१ ॥

न चाहं शीघ्रयानेऽद्य समर्थो वयसान्वितः।
सेनामुखे च पार्थानामेतद् बलमुपस्थितम् ॥ २२॥

मैं बूढ़ा हो गया । अतः अब मैं शीघ्रतापूर्वक रथ चलानेमें असमर्थ हूँ । इधर मेरी सेनाके सामने यह कुन्तीकुमारोंकी भारी सेना उपस्थित है ॥ २२ ॥

युधिष्ठिरश्च मे ग्राह्यो मिषतां सर्वधन्विनाम्।
एवं मया प्रतिज्ञातं क्षत्रमध्ये महाभुज ॥ २३॥

महाबाहो ! मैंने क्षत्रियोंके बीचमें यह प्रतिज्ञा की है कि समस्त धनुर्धरोंके देखते-देखते युधिष्ठिरको कैद कर लूँगा।२३।

धनंजयेन चोत्सृष्टो वर्तते प्रमुखे नृप।
तस्माद् व्यूहमुखं हित्वा नाहं योत्स्यामि फाल्गुनम्॥२४॥

नरेश्वर ! इस समय युधिष्ठिर अर्जुनसे रहित होकर मेरे सामने खड़े हैं । ऐसी अवस्थामें मैं व्यूहका द्वार छोड़कर अर्जुनके साथ युद्ध करनेके लिये नहीं जाऊँगा ॥ २४ ॥

तुल्याभिजनकर्माणं शत्रुमेकं सहायवान्।
गत्वा योधय मा भैस्त्वं त्वं ह्यस्य जगतः पतिः ॥ २५॥

तुम्हारे शत्रु अर्जुन भी तो तुम्हारे-जैसे ही कुल और पराक्रमसे युक्त हैं । इस समय वे अकेले हैं और तुम सहायकोंसे सम्पन्न हो । (वे राज्यसे च्युत हो गये हैं और तुम) इस सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हो । अतः डरो मत । जाकर अर्जुनसे युद्ध करो ॥ २५ ॥

राजा शूरः कृती दक्षो वैरमुत्पाद्य पाण्डवैः।
वीर स्वयं प्रयाह्यत्र यत्र पार्थो धनंजयः ॥ २६ ॥

तुम राजा, शूरवीर, विद्वान् और युद्धकुशल हो। वीर ! तुमने ही पाण्डवोंके साथ वैर बाँधा है । अतः जहाँ कुन्तीकुमार अर्जुन गये हैं, वहाँ उनसे युद्ध करनेके लिये स्वयं ही शीघ्रतापूर्वक जाओ ॥ २६ ॥

दुर्योधन उवाच

कथं त्वामप्यतिक्रान्तः सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
धनंजयो मया शक्य आचार्य प्रतिबाधितुम् ॥ २७ ॥

दुर्योधन बोला—आचार्य ! आप सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं । जो आपको भी लाँघकर आगे बढ़ गया, वह अर्जुन मेरेद्वारा कैसे रोका जा सकता है ? ॥ २७ ॥

अपि शक्यो रणे जेतुं वज्रहस्तः पुरंदरः।
नार्जुनः समरे शक्यो जेतुं परपुरंजयः ॥ २८ ॥

युद्धमें वज्रधारी इन्द्रको भी जीता जा सकता है; परंतु समराङ्गणमें शत्रुओंकी राजधानीपर विजय पानेवाले अर्जुनको जीतना असम्भव है ॥ २८ ॥

येन भोजश्च हार्दिक्यो भवांश्च त्रिदशोपमः।
अस्त्रप्रतापेन जितौ श्रुतायुश्च निबर्हितः ॥ २९ ॥
सुदक्षिणश्च निहतः स च राजा श्रुतायुधः।
श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च म्लेच्छाश्चायुतशो हताः ॥ ३० ॥
तं कथं पाण्डवं युद्धे दहन्तमिव पावकम्।
प्रतियोत्स्यामि दुर्धर्षं तमहं शस्त्रकोविदम् ॥ ३१ ॥

जिसने भोजवंशी कृतवर्मा तथा देवताओंके समान तेजस्वी आपको भी अपने अस्त्रके प्रतापसे पराजित कर दिया, श्रुतायुका संहार कर डाला, काम्बोजराज सुदक्षिण तथा राजा श्रुतायुधको भी मार डाला, श्रुतायु, अच्युतायु तथा सहस्रों म्लेच्छ सैनिकोंके भी प्राण ले लिये, युद्धमें अग्निके समान शत्रुओंको दग्ध करनेवाले और अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता उस दुर्धर्ष वीर पाण्डुपुत्र अर्जुनके साथ मैं कैसे युद्ध कर सकूँगा ?॥

क्षमं च मन्यसे युद्धं मम तेनाद्य संयुगे।
परवानस्मि भवति प्रेष्यवद् रक्ष मद्यशः ॥ ३२ ॥

यदि आज युद्धस्थलमें आप अर्जुनके साथ मेरा युद्ध करना उचित मानते हैं तो मैं एक सेवककी भाँति आपकी आज्ञाके अधीन हूँ । आप मेरे यशकी रक्षा कीजिये ॥ ३२ ॥

द्रोण उवाच

सत्यं वदसि कौरव्य दुराधर्षो धनंजयः।
अहं तु तत् करिष्यामि यथैनं प्रसहिष्यसि ॥ ३३ ॥

द्रोणाचार्यने कहा—कुरुनन्दन ! तुम ठीक कहते हो । अर्जुन अवश्य दुर्जय वीर हैं । परंतु मैं एक ऐसा उपाय कर दूँगा, जिससे तुम उनका वेग सह सकोगे ॥३३॥

अद्भुतं चाद्य पश्यन्तु लोके सर्वधनुर्धराः।
विषक्तं त्वयि कौन्तेयं वासुदेवस्य पश्यतः ॥ ३४ ॥

आज संसारके सम्पूर्ण धनुर्धर भगवान् श्रीकृष्णके सामने ही कुन्तीकुमार अर्जुनको तुम्हारे साथ युद्धमें उलझे रहनेकी अद्भुत घटना देखें ॥ ३४ ॥

एष ते कवचं राजंस्तथा बध्नामि काञ्चनम्।
यथा न बाणा नास्त्राणि प्रहरिष्यन्ति ते रणे ॥ ३५॥

राजन्! मैं यह सुवर्णमय कवच तुम्हारे शरीरमें इस प्रकार बाँध देता हूँ, जिससे युद्धस्थलमें छूटनेवाले बाण और अन्य अस्त्र तुम्हें चोट नहीं पहुँचा सकेंगे ॥ ३५ ॥

यदि त्वां सासुरसुराः सयक्षोरगराक्षसाः।
योधयन्ति त्रयो लोकाः सनरा नास्ति ते भयम्॥३६॥

यदि मनुष्योंसहित देवता, असुर, यक्ष, नाग, राक्षस तथा तीनों लोकके प्राणी तुमसे युद्ध करते हों तो भी आज तुम्हें कोई भय नहीं होगा ॥ ३६ ॥

न कृष्णो न च कौन्तेयो न चान्यः शस्त्रभृद् रणे।
शरानर्पयितुं कश्चित् कवचे तव शक्ष्यति ॥ ३७॥

इस कवचके रहते हुए श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा दूसरे कोई शस्त्रधारी योद्धा भी तुम्हें बाणोंद्वारा चोट पहुँचानेमें समर्थ न हो सकेंगे ॥ ३७ ॥

स त्वं कवचमास्थाय क्रुद्धमद्य रणेऽर्जुनम्।
त्वरमाणः स्वयं याहि न त्वासौ विसहिष्यति ॥ ३८॥

अतः तुम यह कवच धारण करके शीघ्रतापूर्वक रणक्षेत्रमें कुपित हुए अर्जुनका सामना करनेके लिये स्वयं ही जाओ। वे तुम्हारा वेग नहीं सह सकेंगे ॥ ३८ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा त्वरन् द्रोणः स्पृष्ट्वाम्भो वर्म भास्वरम्।
आबबन्धाद्भुततमं जपन् मन्त्रं यथाविधि ॥ ३९॥
रणे तस्मिन् सुमहति विजयाय सुतस्य ते।
विसिस्मापयिषुर्लोकान् विद्यया ब्रह्मवित्तमः ॥ ४०॥

संजय कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने अपनी विद्याके प्रभावसे सब लोगोंको आश्चर्यमें डालनेकी इच्छा रखते हुए तुरंत आचमन करके उस महायुद्धमें आपके पुत्र दुर्योधनकी विजयके लिये उसके शरीरमें विधिपूर्वक मन्त्रजपके साथ-साथ वह अत्यन्त तेजस्वी अद्भुत कवच बाँध दिया ॥ ३९-४० ॥

द्रोण उवाच

करोतु स्वस्ति ते ब्रह्म ब्रह्मा चापि द्विजातयः।
सरीसृपाश्च ये श्रेष्ठास्तेभ्यस्ते स्वस्ति भारत ॥ ४१॥

द्रोणाचार्य बोले—भरतनन्दन! परब्रह्म परमात्मा तुम्हारा कल्याण करें। ब्रह्माजी तथा ब्राह्मण तुम्हारा मङ्गल करें। जो श्रेष्ठ सर्प हैं, उनसे भी तुम्हारा कल्याण हो ॥४१॥

ययातिर्नाहुषश्चैव धुन्धुमारो भगीरथः।
तुभ्यं राजर्षयः सर्वे स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ॥ ४२॥

नहुषपुत्र ययाति, धुन्धुमार और भगीरथ आदि सभी राजर्षि सदा तुम्हारा भला करें ॥ ४२ ॥

स्वस्ति तेऽस्त्वेकपादेभ्यो बहुपादेभ्य एव च।
स्वस्त्यस्त्वपादकेभ्यश्च नित्यं तव महारणे ॥ ४३॥

इस महायुद्धमें एक पैरवाले, अनेक पैरवाले तथा पैरोंसे रहित प्राणियोंसे तुम्हारा नित्य मङ्गल हो ॥ ४३ ॥

स्वाहा स्वधा शची चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा।
लक्ष्मीररुन्धती चैव कुरुतां स्वस्ति तेऽनघ ॥ ४४॥

निष्पाप नरेश! स्वाहा, स्वधा और शची आदि देवियाँ तुम्हारा सदा कल्याण करें। लक्ष्मी और अरुन्धती भी तुम्हारा मङ्गल करें ॥ ४४ ॥

असितो देवलश्चैव विश्वामित्रस्तथाङ्गिराः।
वसिष्ठः कश्यपश्चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते नृप ॥ ४५॥

नरेश्वर! असित, देवल, विश्वामित्र, अङ्गिरा, वसिष्ठ तथा कश्यप तुम्हारा भला करें ॥ ४५ ॥

धाता विधाता लोकेशो दिशश्च सदिगीश्वराः।
स्वस्ति तेऽद्य प्रयच्छन्तु कार्तिकेयश्च षण्मुखः ॥४६॥

धाता, विधाता, लोकनाथ ब्रह्मा, दिशाएँ, दिक्पाल तथा षडानन कार्तिकेय भी आज तुम्हें कल्याण प्रदान करें ॥४६॥

विवस्वान् भगवान् स्वस्ति करोतु तव सर्वशः।
दिग्गजाश्चैव चत्वारः क्षितिश्च गगनं ग्रहाः ॥ ४७॥

भगवान् सूर्य सब प्रकारसे तुम्हारा मङ्गल करें। चारों दिग्गज, पृथ्वी, आकाश और ग्रह तुम्हारा भला करें ॥४७॥

अधस्ताद् धरणीं योऽसौ सदा धारयते नृप।
शेषश्च पन्नगश्रेष्ठः स्वस्ति तुभ्यं प्रयच्छतु ॥ ४८॥

राजन्! जो सदा इस पृथ्वीके नीचे रहकर इसे अपने मस्तकपर धारण करते हैं, वे पन्नगश्रेष्ठ भगवान् शेषनाग तुम्हें कल्याण प्रदान करें ॥ ४८ ॥

गान्धारे युधि विक्रम्य निर्जिताः सुरसत्तमाः।
पुरा वृत्रेण दैत्येन भिन्नदेहाः सहस्रशः ॥ ४९॥

गान्धारीनन्दन! प्राचीन कालकी बात है, वृत्रासुरने युद्धमें पराक्रमपूर्वक सहस्रों श्रेष्ठ देवताओंके शरीरको विदीर्ण करके उन्हें परास्त कर दिया था ॥ ४९ ॥

हततेजोबलाः सर्वे तदा सेन्द्रा दिवौकसः।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुर्वृत्राद् भीता महासुरात् ॥ ५०॥

उस समय तेज और बलसे हीन हुए इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता महान् असुर वृत्रसे भयभीत हो ब्रह्माजीकी शरणमें गये॥

देवा ऊचुः

प्रमर्दितानां वृत्रेण देवानां देवसत्तम।
गतिर्भव सुरश्रेष्ठ त्राहि नो महतो भयात् ॥ ५१॥

देवता बोले—देवप्रवर! सुरश्रेष्ठ! वृत्रासुरने जिन्हें सब प्रकारसे कुचल दिया है, उन देवताओंके लिये आप आश्रयदाता हों। महान् भयसे हमारी रक्षा करें ॥ ५१ ॥

अथ पार्श्वे स्थितं विष्णुं शक्रादींश्च सुरोत्तमान्।
प्राह तथ्यमिदं वाक्यं विषण्णान् सुरसत्तमान्॥ ५२॥

तब अपने पास खड़े हुए भगवान् विष्णु तथा विषादमें भरे हुए इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओंसे ब्रह्माजीने यह यथार्थ बात कही—॥ ५२॥

रक्ष्या मे सततं देवाः सहेन्द्राः सद्विजातयः।
त्वष्टुः सुदुर्धरं तेजो येन वृत्रो विनिर्मितः॥ ५३॥

'देवताओ! इन्द्र आदि देवता और ब्राह्मण सदा ही मेरे रक्षणीय हैं। परंतु वृत्रासुरका जिससे निर्माण हुआ है, वह त्वष्टा प्रजापतिका अत्यन्त दुर्धर्ष तेज है॥ ५३॥

त्वष्ट्रा पुरा तपस्तप्त्वा वर्षायुतशतं तदा।
वृत्रो विनिर्मितो देवाः प्राप्यानुज्ञां महेश्वरात्॥ ५४॥

'देवगण! प्राचीन कालमें त्वष्टा प्रजापतिने दस लाख वर्षोंतक तपस्या करके भगवान् शङ्करसे वरदान पाकर वृत्रासुरको उत्पन्न किया था॥ ५४॥

स तस्यैव प्रसादाद् वो हन्यादेव रिपुर्बली।
नागत्वा शंकरस्थानं भगवान् दृश्यते हरः॥ ५५॥

'वह बलवान् शत्रु भगवान् शङ्करके ही प्रसादसे निश्चय ही तुम सब लोगोंको मार सकता है। अतः भगवान् शङ्करके निवासस्थानपर गये बिना उनका दर्शन नहीं हो सकता॥ ५५॥

दृष्ट्वा जेष्यथ वृत्रं तं क्षिप्रं गच्छत मन्दरम्।
यत्रास्ते तपसां योनिर्दक्षयज्ञविनाशनः॥ ५६॥
पिनाकी सर्वभूतेशो भगनेत्रनिपातनः।

'उनका दर्शन पाकर तुमलोग वृत्रासुरको जीत सकोगे। अतः शीघ्र ही मन्दराचलको चलो, जहाँ तपस्याके उत्पत्ति-स्थान, दक्षयज्ञविनाशक तथा भगदेवताके नेत्रोंका नाश करनेवाले सर्वभूतेश्वर पिनाकधारी भगवान् शिव विराजमान हैं'॥ ५६½॥

ते गत्वा सहिता देवा ब्रह्मणा सह मन्दरम्॥ ५७॥
अपश्यंस्तेजसां राशिं सूर्यकोटिसमप्रभम्।

'तब एकत्र हुए उन सब देवताओंने ब्रह्माजीके साथ मन्दराचलपर जाकर करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान् तेजोराशि भगवान् शिवका दर्शन किया॥ ५७½॥

सोऽब्रवीत् स्वागतं देवा ब्रूत किं करवाण्यहम्॥ ५८॥
अमोघं दर्शनं मह्यं कामप्राप्तिरतोऽस्तु वः।

उस समय भगवान् शिवने कहा—'देवताओ! तुम्हारा स्वागत है। बोलो, मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ? मेरा दर्शन अमोघ है। अतः तुम्हें अपने अभीष्ट मनोरथोंकी प्राप्ति हो'॥ ५८½॥

एवमुक्तास्तु ते सर्वे प्रत्यूचुस्तं दिवौकसः॥ ५९॥
तेजो हृतं नो वृत्रेण गतिर्भव दिवौकसाम्।
मूर्तीरीक्षस्व नो देव प्रहारैर्जर्जरीकृताः।
शरणं त्वां प्रपन्नाः स्म गतिर्भव महेश्वर॥ ६०॥

उनके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण देवता इस प्रकार बोले—'देव! वृत्रासुरने हमारा तेज हर लिया है। आप देवताओंके आश्रयदाता हों। महेश्वर! आप हमारे शरीरोंकी दशा देखिये। हम वृत्रासुरके प्रहारोंसे जर्जर हो गये हैं, इसलिये आपकी शरणमें आये हैं। आप हमें आश्रय दीजिये'॥ ५९-६०॥

शर्व उवाच

विदितं वो यथा देवाः कृत्येयं सुमहाबला।
त्वष्टुस्तेजोभवा घोरा दुर्निवार्याकृतात्मभिः॥ ६१॥

भगवान् शिव बोले—देवताओ! तुम्हें विदित हो कि यह प्रजापति त्वष्टाके तेजसे उत्पन्न हुई अत्यन्त प्रबल एवं भयंकर कृत्या है। जिन्होंने अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें नहीं किया है, ऐसे लोगोंके लिये इस कृत्याका निवारण करना अत्यन्त कठिन है॥ ६१॥

अवश्यं तु मया कार्यं साह्यं सर्वदिवौकसाम्।
ममेदं गात्रजं शक्र कवचं गृह्य भास्वरम्॥ ६२॥

तथापि मुझे सम्पूर्ण देवताओंकी सहायता अवश्य करनी चाहिये। अतः इन्द्र! मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए इस तेजस्वी कवचको ग्रहण करो॥ ६२॥

बधानानेन मन्त्रेण मानसेन सुरेश्वर।
वधायासुरमुख्यस्य वृत्रस्य सुरघातिनः॥ ६३॥

सुरेश्वर! मेरे बताये हुए इस मन्त्रका मानसिक जप करके असुरमुख्य देवशत्रु वृत्रका वध करनेके लिये इसे अपने शरीरमें बाँध लो॥ ६३॥

द्रोण उवाच

इत्युक्त्वा वरदः प्रादाद् वर्म तन्मन्त्रमेव च।
स तेन वर्मणा गुप्तः प्रायाद् वृत्रचमूं प्रति॥ ६४॥

द्रोणाचार्य कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर वरदायक भगवान् शङ्करने वह कवच और उसका मन्त्र उन्हें दे दिया। उस कवचसे सुरक्षित हो इन्द्र वृत्रासुरकी सेनाका सामना करनेके लिये गये॥ ६४॥

नानाविधैश्च शस्त्रौघैः पात्यमानैर्महारणे।
न संधिः शक्यते भेत्तुं वर्मबन्धस्य तस्य तु॥ ६५॥

उस महान् युद्धमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंके समुदाय उनके ऊपर चलाये गये; परंतु उनके द्वारा इन्द्रके उस कवच-बन्धनकी सन्धि भी नहीं काटी जा सकी॥ ६५॥

ततो जघान समरे वृत्रं देवपतिः स्वयम्।
तं च मन्त्रमयं बन्धं वर्म चाङ्गिरसे ददौ॥ ६६॥

तदनन्तर देवराज इन्द्रने स्वयं ही समराङ्गणमें वृत्रासुरको मार डाला। इसके बाद उन्होंने वह कवच तथा उसे

बाँधनेकी मन्त्रयुक्त विधि अङ्गिराको दे दी ॥ ६६ ॥

अङ्गिराः प्राह पुत्रस्य मन्त्रज्ञस्य बृहस्पतेः ।
बृहस्पतिरथोवाच आग्निवेश्याय धीमते ॥ ६७ ॥

अङ्गिराने अपने मन्त्रज्ञ पुत्र बृहस्पतिको उसका उपदेश दिया और बृहस्पतिने परम बुद्धिमान् आग्निवेश्यको यह विद्या प्रदान की ॥ ६७ ॥

आग्निवेश्यो मम प्रादात् तेन बध्नामि वर्म ते ।
तवाद्य देहरक्षार्थं मन्त्रेण नृपसत्तम ॥ ६८ ॥

आग्निवेश्यने मुझे उसका उपदेश किया था । नृपश्रेष्ठ ! उसी मन्त्रसे आज तुम्हारे शरीरकी रक्षाके लिये मैं यह कवच बाँध रहा हूँ ॥ ६८ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा ततो द्रोणस्तव पुत्रं महाद्युतिम् ।
पुनरेव वचः प्राह शनैराचार्यपुङ्गवः ॥ ६९ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! वहाँ आपके महातेजस्वी पुत्रसे यह प्रसंग सुनाकर आचार्यशिरोमणि द्रोणने पुनः धीरेसे यह बात कही—॥ ६९ ॥

ब्रह्मसूत्रेण बध्नामि कवचं तव भारत ।
हिरण्यगर्भेण यथा बद्धं विष्णोः पुरा रणे ॥ ७० ॥

'भारत ! जैसे पूर्वकालमें रणक्षेत्रमें भगवान् ब्रह्माने श्रीविष्णुके शरीरमें कवच बाँधा था, उसी प्रकार मैं भी ब्रह्मसूत्रसे तुम्हारे इस कवचको बाँधता हूँ ॥ ७० ॥

यथा च ब्रह्मणा बद्धं संग्रामे तारकामये ।
शक्रस्य कवचं दिव्यं तथा बध्नाम्यहं तव ॥ ७१ ॥

'तारकामय संग्राममें ब्रह्माजीने इन्द्रके शरीरमें जिस प्रकार दिव्य कवच बाँधा था, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे शरीरमें बाँध रहा हूँ' ॥ ७१ ॥

बद्ध्वा तु कवचं तस्य मन्त्रेण विधिपूर्वकम् ।
प्रेषयामास राजानं युद्धाय महते द्विजः ॥ ७२ ॥

इस प्रकार मन्त्रके द्वारा राजा दुर्योधनके शरीरमें विधिपूर्वक कवच बाँधकर विप्रवर द्रोणाचार्यने उसे महान् युद्धके लिये भेजा ॥ ७२ ॥

स संनद्धो महाबाहुराचार्येण महात्मना ।
रथानां च सहस्रेण त्रिगर्तानां प्रहारिणाम् ॥ ७३ ॥
तथा दन्तिसहस्रेण मत्तानां वीर्यशालिनाम् ।
अश्वानां नियुतेनैव तथान्यैश्च महारथैः ॥ ७४ ॥
वृतः प्रायान्महाबाहुरर्जुनस्य रथं प्रति ।
नानावादित्रघोषेण यथा वैरोचनिस्तथा ॥ ७५ ॥

महामना आचार्यके द्वारा अपने शरीरमें कवच बँध जानेपर महाबाहु दुर्योधन प्रहार करनेमें कुशल एक सहस्र त्रिगर्तदेशीय रथियों, एक सहस्र पराक्रमशाली मतवाले हाथीसवारों एक लाख घुड़सवारों तथा अन्य महारथियोंसे घिरकर नाना प्रकारके रणवाद्योंकी ध्वनिके साथ अर्जुनके रथकी ओर चला । ठीक उसी तरह, जैसे राजा बलि (इन्द्रके साथ युद्धके लिये) यात्रा करते हैं ॥ ७३–७५ ॥

ततः शब्दो महानासीत् सैन्यानां तव भारत ।
अगाधं प्रस्थितं दृष्ट्वा समुद्रमिव कौरवम् ॥ ७६ ॥

भारत ! उस समय अगाध समुद्रके समान कुरुनन्दन दुर्योधनको युद्धके लिये प्रस्थान करते देख आपकी सेनामें बड़े जोरसे कोलाहल होने लगा ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनकवचबन्धने चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधनका कवच-बन्धनविषयक चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९४ ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

द्रोण और धृष्टद्युम्नका भीषण संग्राम तथा उभय पक्षके प्रमुख वीरोंका परस्पर संकुल युद्ध

संजय उवाच

प्रविष्टयोर्महाराज पार्थवार्ष्णेययो रणे ।
दुर्योधने प्रयाते च पृष्ठतः पुरुषर्षभे ॥ १ ॥
जवेनाभ्यद्रवन् द्रोणं महता निःस्वनेन च ।
पाण्डवाः सोमकैः सार्धं ततो युद्धमवर्तत ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! उस रणक्षेत्रमें जब श्रीकृष्ण और अर्जुन पाण्डवसेनाके भीतर प्रवेश कर गये तथा पुरुषप्रवर दुर्योधन उनका पीछा करता हुआ आगे बढ़ गया, तब सोमकोंसहित पाण्डवोंने बड़ी भारी गर्जनाके साथ द्रोणाचार्यपर वेगपूर्वक धावा किया । फिर तो वहाँ बड़े जोरसे युद्ध होने लगा ॥ १–२ ॥

तद् युद्धमभवत् तीव्रं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च व्यूहस्य पुरतोऽद्भुतम् ॥ ३ ॥

व्यूहके द्वारपर होनेवाला कौरवों तथा पाण्डवोंका वह अद्भुत युद्ध अत्यन्त तीव्र एवं भयंकर था । उसे देखकर लोगोंके रोंगटे खड़े हो जाते थे ॥ ३ ॥

राजन् कदाचिन्नास्माभिर्दृष्टं तादृङ् न च श्रुतम् ।
यादृङ् मध्यगते सूर्ये युद्धमासीद् विशाम्पते ॥ ४ ॥

राजन् ! प्रजानाथ ! वहाँ मध्याह्नकालमें जैसा वह युद्ध हुआ था, वैसा न तो मैंने कभी देखा था और न सुना ही था ॥ ४ ॥

धृष्टद्युम्नमुखाः पार्था व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
द्रोणस्य सैन्यं ते सर्वे शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ५ ॥

धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवपक्षीय सब प्रहारकुशल योद्धा

अपनी सेनाका व्यूह बनाकर द्रोणाचार्यकी सेनापर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५ ॥

वयं द्रोणं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
पार्षतप्रमुखान् पार्थानभ्यवर्षाम सायकैः ॥ ६ ॥

उस समय हमलोग सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यको आगे करके धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवसैनिकोंपर बाण-वर्षा कर रहे थे ॥ ६ ॥

महामेघाविवोदीर्णौ मिश्रवातौ हिमात्यये।
सेनाग्रे प्रचकाशेते रुचिरे रथभूषिते ॥ ७ ॥

रथोंसे विभूषित हुई वे दोनों प्रधान एवं सुन्दर सेनाएँ हेमन्तके अन्त (शिशिर) में उठे हुए वायुयुक्त दो महामेघोंके समान प्रकाशित हो रही थीं ॥ ७ ॥

समेत्य तु महासेने चक्रतुर्वेगमुत्तमम्।
जाह्नवीयमुने नद्यौ प्रावृषीवोल्बणोदके ॥ ८ ॥

वे दोनों विशाल सेनाएँ परस्पर भिड़कर विजयके लिये बड़े वेगसे आगे बढ़नेका प्रयत्न करने लगीं; मानो वर्षाऋतुमें जलकी बाढ़ आनेसे बढ़ी हुई गङ्गा और यमुना दोनों नदियाँ बड़े वेगसे मिल रही हों ॥ ८ ॥

नानाशस्त्रपुरोवातो द्विपाश्वरथसंवृतः।
गदाविद्युन्महारौद्रः संग्रामजलदो महान् ॥ ९ ॥
भारद्वाजानिलोद्धूतः शरधारासहस्रवान्।
अभ्यवर्षन्महासैन्यः पाण्डुसेनाग्निमुद्धतम् ॥ १० ॥

उस समय महान् सैन्यदलसे संयुक्त एवं हाथी, घोड़े और रथोंसे भरा हुआ वह संग्राम महान् मेघके समान जान पड़ता था। नाना प्रकारके शस्त्र पूर्ववात (पुरवैया) के तुल्य चल रहे थे। गदाएँ विद्युत्के समान प्रकाशित होती थीं। देखनेमें वह संग्राम-मेघ बड़ा भयंकर जान पड़ता था। द्रोणाचार्य वायुके समान उसे संचालित कर रहे थे तथा उससे बाणरूपी जलकी सहस्रों धाराएँ गिर रही थीं और इस प्रकार वह अग्निके समान उठी हुई पाण्डव-सेनापर सब ओरसे वर्षा कर रहा था ॥ ९-१० ॥

समुद्रमिव घर्मान्ते विशन् घोरो महानिलः।
व्यक्षोभयदनीकानि पाण्डवानां द्विजोत्तमः ॥ ११ ॥

जैसे ग्रीष्मऋतुके अन्तमें बड़े जोरसे उठी हुई भयंकर वायु महासागरमें क्षोभ उत्पन्न करके वहाँ ज्वारका दृश्य उपस्थित कर देती है, उसी प्रकार विप्रवर द्रोणाचार्यने पाण्डवसेनामें हलचल मचा दी ॥ ११ ॥

तेऽपि सर्वप्रयत्नेन द्रोणमेव समाद्रवन्।
बिभित्सन्तो महासेतुं वार्योघाः प्रबला इव ॥ १२ ॥

पाण्डव-योद्धाओंने भी सारी शक्ति लगाकर द्रोणपर ही धावा किया था; मानो पानीके प्रखर प्रवाह किसी महान् पुलको तोड़ डालना चाहते हों ॥ १२ ॥

वारयामास तान् द्रोणो जलौघमचलो यथा।
पाण्डवान् समरे क्रुद्धान् पञ्चालांश्च सकेकयान् ॥ १३ ॥

जैसे सामने खड़ा हुआ पर्वत आती हुई जलराशिको रोक देता है, उसी प्रकार समराङ्गणमें द्रोणाचार्यने कुपित हुए पाण्डवों, पाञ्चालों तथा केकयोंको रोक दिया था ॥ १३ ॥

अथापरे च राजानः परिवृत्य समन्ततः।
महाबला रणे शूराः पञ्चालानन्ववारयन् ॥ १४ ॥

इसी प्रकार दूसरे महाबली शूरवीर नरेश भी उस युद्धस्थलमें सब ओरसे लौटकर पाञ्चालोंका ही प्रतिरोध करने लगे ॥ १४ ॥

ततो रणे नरव्याघ्रः पार्षतः पाण्डवैः सह।
संजघानासकृद् द्रोणं बिभित्सुररिवाहिनीम् ॥ १५ ॥

तदनन्तर रणक्षेत्रमें पाण्डवोंसहित नरश्रेष्ठ धृष्टद्युम्नने शत्रुसेनाके व्यूहका भेदन करनेकी इच्छासे द्रोणाचार्यपर बारंबार प्रहार किया ॥ १५ ॥

यथैव शरवर्षाणि द्रोणो वर्षति पार्षते।
तथैव शरवर्षाणि धृष्टद्युम्नोऽप्यवर्षत ॥ १६ ॥

आचार्य द्रोण धृष्टद्युम्नपर जैसे बाणोंकी वर्षा करते थे, धृष्टद्युम्न भी द्रोणपर वैसे ही बाण बरसाते थे ॥

सनिस्त्रिंशपुरोवातः शक्तिप्रासर्ष्टिसंवृतः।
ज्याविद्युच्चापसंह्रादो धृष्टद्युम्नबलाहकः ॥ १७ ॥
शरधाराश्मवर्षाणि व्यसृजत् सर्वतो दिशम्।
निघ्नन् रथवराश्वौघान् प्लावयामास वाहिनीम् ॥ १८ ॥

उस समय धृष्टद्युम्न एक महामेघके समान जान पड़ते थे। उनकी तलवार पुरवैया हवाके समान चल रही थी। वे शक्ति, प्रास एवं ऋष्टि आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न थे। उनकी प्रत्यञ्चा विद्युत्के समान प्रकाशित होती थी। धनुषकी टंकार मेघगर्जनाके समान जान पड़ती थी। उस धृष्टद्युम्नरूपी मेघने श्रेष्ठ रथी और घुड़सवारोंके समूहरूपी खेतीको नष्ट करनेके लिये सम्पूर्ण दिशाओंमें बाणरूपी जलकी धारा और अस्त्र-शस्त्ररूपी पत्थर बरसाते हुए शत्रु-सेनाको आप्लावित कर दिया ॥ १७-१८ ॥

यं यमार्च्छच्छरैर्द्रोणः पाण्डवानां रथव्रजम्।
ततस्ततः शरैर्द्रोणमपाकर्षत पार्षतः ॥ १९ ॥

द्रोणाचार्य बाणोंद्वारा पाण्डवोंकी जिस जिस रथसेनापर आक्रमण करते थे, धृष्टद्युम्न तत्काल बाणोंकी वर्षा करके उस-उस ओरसे उन्हें लौटा देते थे ॥ १९ ॥

तथा तु यतमानस्य द्रोणस्य युधि भारत।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य त्रिधा सैन्यमभिद्यत ॥ २० ॥

भारत ! युद्धमें इस प्रकार विजयके लिये प्रयत्नशील हुए द्रोणाचार्यकी सेना धृष्टद्युम्नके पास पहुँचकर तीन भागोंमें बँट गयी ॥ २० ॥

भोजमेकेऽभ्यवर्तन्त जलसंधं तथापरे ।
पाण्डवैर्हन्यमानाश्च द्रोणमेवापरे ययुः ॥ २१ ॥

पाण्डव-योद्धाओंकी मार खाकर कुछ सैनिक कृतवर्मा-के पास चले गये, दूसरे जलसंधके पास भाग गये और शेष सभी योद्धा द्रोणाचार्यका ही अनुसरण करने लगे ॥ २१ ॥

संघट्टयति सैन्यानि द्रोणस्तु रथिनां वरः ।
व्यधमच्चापि तान्यस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ २२ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोण बारंबार अपनी सेनाओंको संगठित करते और महारथी धृष्टद्युम्न उनकी सब सेनाओंको छिन्न-भिन्न कर देते थे ॥ २२ ॥

धार्तराष्ट्रास्तथाभूता वध्यन्ते पाण्डुसृञ्जयैः ।
अगोपाः पशवोऽरण्ये बहुभिः श्वापदैरिव ॥ २३ ॥

जैसे वनमें बिना रक्षकके पशुओंको बहुत-से हिंसक जन्तु मार डालते हैं, उसी प्रकार पाण्डव और सृंजय आपके सैनिकोंका वध कर रहे थे ॥ २३ ॥

कालः स्म ग्रसते योधान् धृष्टद्युम्नेन मोहितान्।
संग्रामे तुमुले तस्मिन्निति सम्मेनिरे जनाः ॥ २४ ॥

उस भयंकर संग्राममें सब लोग ऐसा मानने लगे कि काल ही धृष्टद्युम्नके द्वारा कौरवयोद्धाओंको मोहित करके उन्हें अपना ग्रास बना रहा है ॥ २४ ॥

कुनृपस्य यथा राष्ट्रं दुर्भिक्षव्याधितस्करैः ।
द्राव्यते तद्वदापन्ना पाण्डवैस्तव वाहिनी ॥ २५ ॥

जैसे दुष्ट राजाका राज्य दुर्भिक्ष, भाँति-भाँतिकी बीमारी और चोर-डाकुओंके उपद्रवके कारण उजाड़ हो जाता है, उसी प्रकार पाण्डव सैनिकोंद्वारा विपत्तिमें पड़ी हुई आपकी सेना इधर-उधर खदेड़ी जा रही थी ॥ २५ ॥

अर्करश्मिविमिश्रेषु शस्त्रेषु कवचेषु च ।
चक्षूंषि प्रत्यहन्यन्त सैन्येन रजसा तथा ॥ २६ ॥

योद्धाओंके अस्त्र-शस्त्रों और कवचोंपर सूर्यकी किरणें पड़नेसे वहाँ आँखें चौंधिया जाती थीं और सेनासे इतनी धूल उठती थी कि उससे सबके नेत्र बंद हो जाते थे ॥

त्रिधाभूतेषु सैन्येषु वध्यमानेषु पाण्डवैः ।
अमर्षितस्ततो द्रोणः पञ्चालान् व्यधमच्छरैः॥ २७ ॥

जब पाण्डवोंके द्वारा मारी जाती हुई कौरवसेना तीन भागोंमें बँट गयी, तब द्रोणाचार्यने अत्यन्त कुपित होकर अपने बाणोंद्वारा पाञ्चालोंका विनाश आरम्भ किया ॥ २७ ॥

मृद्गतस्तान्यनीकानि निघ्नतश्चापि सायकैः ।
बभूव रूपं द्रोणस्य कालाग्नेरिव दीप्यतः ॥ २८ ॥

पाञ्चालोंकी उन सेनाओंको रौंदते और बाणोंद्वारा उनका संहार करते हुए द्रोणाचार्यका स्वरूप प्रलयकालकी प्रज्वलित अग्निके समान जान पड़ता था ॥ २८ ॥

रथं नागं हयं चापि पत्तिनश्च विशाम्पते ।
एकैकेनेषुणा संख्ये निर्विभेद महारथः ॥ २९ ॥

प्रजानाथ ! महारथी द्रोणने उस युद्धस्थलमें शत्रुसेनाके प्रत्येक रथ, हाथी, अश्व और पैदल सैनिकको एक-एक बाणसे घायल कर दिया ॥ २९ ॥

पाण्डवानां तु सैन्येषु नास्ति कश्चित् स भारत ।
दधार यो रणे बाणान् द्रोणचापच्युतान् प्रभो ॥ ३० ॥

भारत ! प्रभो ! उस समय पाण्डवोंकी सेनामें कोई ऐसा वीर नहीं था, जो रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए बाणोंको धैर्यपूर्वक सह सका हो ॥ ३० ॥

तत् पच्यमानमर्केण द्रोणसायकतापितम् ।
बभ्राम पार्षतं सैन्यं तत्र तत्रैव भारत ॥ ३१ ॥

भरतनन्दन ! सूर्यके द्वारा अपनी किरणोंसे पकायी जाती हुई-सी धृष्टद्युम्नकी सेना द्रोणाचार्यके बाणोंसे संतप्त हो जहाँ-तहाँ चक्कर काटने लगी ॥ ३१ ॥

तथैव पार्षतेनापि काल्यमानं बलं तव ।
अभवत् सर्वतो दीप्तं शुष्कं वनमिवाग्निना ॥ ३२ ॥

इसी प्रकार धृष्टद्युम्नके द्वारा खदेड़ी जाती हुई आपकी सेना भी सब ओरसे आग लग जानेके कारण प्रज्वलित हुए सूखे वनकी भाँति दग्ध हो रही थी ॥ ३२ ॥

बाध्यमानेषु सैन्येषु द्रोणपार्षतसायकैः ।
त्यक्त्वा प्राणान् परं शक्त्या युध्यन्ते सर्वतोमुखाः ॥ ३३ ॥

द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नके बाणोंद्वारा सेनाओंके पीड़ित होनेपर भी सब लोग प्राणोंका मोह छोड़कर पूरी शक्तिसे सब ओर युद्ध कर रहे थे ॥ ३३ ॥

तावकानां परेषां च युध्यतां भरतर्षभ ।
नासीत् कश्चिन्महाराज योऽत्याक्षीत् संयुगं भयात् ॥ ३४ ॥

भरतभूषण ! महाराज ! वहाँ युद्ध करते हुए आपके और शत्रुओंके योद्धाओंमें कोई ऐसा नहीं था, जिसने भयके कारण युद्धका मैदान छोड़ दिया हो ॥ ३४ ॥

भीमसेनं तु कौन्तेयं सोदर्याः पर्यवारयन् ।
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः ॥ ३५ ॥

उस समय विविंशति, चित्रसेन तथा महारथी विकर्ण—इन तीनों भाइयोंने कुन्तीपुत्र भीमसेनको घेर लिया ॥ ३५ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ क्षेमधूर्तिश्च वीर्यवान् ।
त्रयाणां तव पुत्राणां त्रय एवानुयायिनः ॥ ३६ ॥

अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द तथा पराक्रमी क्षेमधूर्ति—ये तीनों ही आपके पूर्वोक्त तीनों पुत्रोंके अनुयायी थे ॥ ३६ ॥

बाह्लीकराजस्तेजस्वी कुलपुत्रो महारथः ।
सहसेनः सहामात्यो द्रौपदेयानवारयत् ॥ ३७ ॥

उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए तेजस्वी महारथी बाह्लीकराजने सेना और मन्त्रियोंसहित जाकर द्रौपदीपुत्रोंको रोका ॥ ३७ ॥

शैब्यो गोवासनो राजा योधैर्दशशतावरैः ।
काश्यस्याभिभुवः पुत्रं पराक्रान्तमवारयत् ॥ ३८ ॥

शिबिदेशीय राजा गोवासनने कम-से-कम एक सहस्र योद्धा साथ लेकर काशिराज अभिभूके पराक्रमी पुत्रका सामना किया ॥ ३८ ॥

अजातशत्रुं कौन्तेयं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
मद्राणामीश्वरः शल्यो राजा राजानमावृणोत् ॥ ३९ ॥

प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी अजातशत्रु कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरका सामना मद्रदेशके स्वामी राजा शल्यने किया॥

दुःशासनस्त्ववस्थाप्य स्वमनीकममर्षणः ।
सात्यकिं प्रत्ययौ क्रुद्धः शूरो रथवरं युधि ॥ ४० ॥

अमर्षशील शूरवीर दुःशासनने अपनी भागती हुई सेनाको पुनः स्थिरतापूर्वक स्थापित करके कुपित हो युद्धस्थलमें रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिपर आक्रमण किया ॥ ४० ॥

स्वकेनाहमनीकेन संनद्धः कवचावृतः ।
चतुःशतैर्महेष्वासैश्चेकितानमवारयम् ॥ ४१ ॥

अपनी सेना तथा चार सौ महाधनुर्धरोंके साथ कवच धारण करके सुसज्जित हो मैंने चेकितानको रोका ॥ ४१ ॥

शकुनिस्तु सहानीको माद्रीपुत्रमवारयत् ।
गान्धारकैः सप्तशतैश्चापशक्त्यसिपाणिभिः ॥ ४२ ॥

सेनासहित शकुनिने माद्रीपुत्र नकुलका प्रतिरोध किया। उसके साथ हाथोंमें धनुष, शक्ति और तलवार लिये सात सौ गान्धार-देशीय योद्धा मौजूद थे ॥ ४२ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमार्च्छताम् ।
प्राणांस्त्यक्त्वा महेष्वासौ मित्रार्थेऽभ्युद्यतायुधौ ॥ ४३ ॥

अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्दने मत्स्यनरेश विराटपर आक्रमण किया। उन दोनों महाधनुर्धर वीरोंने प्राणोंका मोह छोड़कर अपने मित्र दुर्योधनके लिये हथियार उठाया था ॥ ४३ ॥

शिखण्डिनं याज्ञसेनिं रुन्धानमपराजितम् ।
बाह्लीकः प्रतिसंयत्तः पराक्रान्तमवारयत् ॥ ४४ ॥

किसीसे परास्त न होनेवाले पराक्रमी यज्ञसेन-कुमार शिखण्डीको, जो राह रोककर खड़ा था, बाह्लीकने पूर्ण प्रयत्नशील होकर रोका ॥ ४४ ॥

धृष्टद्युम्नं तु पाञ्चाल्यं क्रूरैः सार्धं प्रभद्रकैः ।
आवन्त्यः सहसौवीरैः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ४५ ॥

अवन्तीके एक-दूसरे वीरने क्रूर स्वभाववाले प्रभद्रकों और सौवीरदेशीय सैनिकोंके साथ आकर क्रोधमें भरे हुए पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नको रोका ॥ ४५ ॥

घटोत्कचं तथा शूरं राक्षसं क्रूरकर्मिणम् ।
अलायुधोऽद्रवत् तूर्णं क्रुद्धमायान्तमाहवे ॥ ४६ ॥

क्रोधमें भरकर युद्धके लिये आते हुए क्रूरकर्मा तथा शूरवीर राक्षस घटोत्कचपर अलायुधने शीघ्रतापूर्वक आक्रमण किया ॥

अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं कुन्तिभोजो महारथः ।
सैन्येन महता युक्तः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ४७ ॥

पाण्डवपक्षके महारथी राजा कुन्तिभोजने विशाल सेनाके साथ आकर कुपित हुए कौरवपक्षीय राक्षसराज अलम्बुषका सामना किया ॥ ४७ ॥

सैन्धवः पृष्ठतस्त्वासीत् सर्वसैन्यस्य भारत ।
रक्षितः परमेष्वासैः कृपप्रभृतिभी रथैः ॥ ४८ ॥

भरतनन्दन ! उस समय सिंधुराज जयद्रथ सारी सेनाके पीछे महाधनुर्धर कृपाचार्य आदि रथियोंसे सुरक्षित था ॥

तस्यास्तां चक्ररक्षौ द्वौ सैन्धवस्य बृहत्तमौ ।
द्रौणिर्दक्षिणतो राजन् सूतपुत्रश्च वामतः ॥ ४९ ॥

राजन् ! जयद्रथके दो महान् चक्ररक्षक थे। उसके दाहिने चक्रकी अश्वत्थामा और बायें चक्रकी रक्षा सूतपुत्र कर्ण कर रहा था ॥ ४९ ॥

पृष्ठगोपास्तु तस्यासन् सौमदत्तिपुरोगमाः ।
कृपश्च वृषसेनश्च शलः शल्यश्च दुर्जयः ॥ ५० ॥
नीतिमन्तो महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः ।
सैन्धवस्य विधायैवं रक्षां युयुधिरे ततः ॥ ५१ ॥

भूरिश्रवा आदि वीर उसके पृष्ठभागकी रक्षा करते थे। कृप, वृषसेन, शल और दुर्जय वीर शल्य—ये सभी नीतिज्ञ, महान् धनुर्धर एवं युद्धकुशल थे और इस प्रकार सिंधुराजकी रक्षाका प्रबन्ध करके वहाँ युद्ध कर रहे थे ॥ ५०-५१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक पंचानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमोऽध्यायः

दोनों पक्षोंके प्रधान वीरोंका द्वन्द्व-युद्ध

संजय उवाच

राजन् संग्राममाश्चर्यं शृणु कीर्तयतो मम ।
कुरूणां पाण्डवानां च यथा युद्धमवर्तत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! कौरवों और पाण्डवोंमें जिस प्रकार युद्ध हुआ था, उस आश्चर्यमय संग्रामका मैं वर्णन करता हूँ, ध्यान देकर सुनिये ॥ १ ॥

भारद्वाजं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् ।
अयोधयन् रणे पार्था द्रोणानीकं बिभित्सवः ॥ २ ॥

व्यूहके द्वारपर खड़े हुए द्रोणाचार्यके पास आकर पाण्डवगण उनकी सेनाके व्यूहका भेदन करनेकी इच्छासे रणक्षेत्रमें उनके साथ युद्ध करने लगे ॥ २ ॥

रक्षमाणः स्वकं व्यूहं द्रोणोऽपि सह सैनिकैः ।
अयोधयद् रणे पार्थान् प्रार्थयानो महद् यशः ॥ ३ ॥

द्रोणाचार्य भी महान् यशकी अभिलाषा रखकर अपने व्यूहकी रक्षा करते हुए बहुत-से सैनिकोंको साथ लेकर समराङ्गणमें कुन्तीपुत्रोंके साथ युद्धमें संलग्न हो गये ॥ ३ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं दशभिः शरैः ।
आजघ्नतुः सुसंक्रुद्धौ तव पुत्रहितैषिणौ ॥ ४ ॥

आपके पुत्रका हित चाहनेवाले अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्दने अत्यन्त कुपित हो राजा विराटको दस बाण मारे ॥ ४ ॥

विराटश्च महाराज तावुभौ समरे स्थितौ ।
पराक्रान्तौ पराक्रम्य योधयामास सानुगौ ॥ ५ ॥

महाराज ! राजा विराटने भी समरभूमिमें अनुचरोंसहित खड़े हुए उन दोनों पराक्रमी वीरोंके साथ पराक्रमपूर्वक युद्ध किया ॥ ५ ॥

तेषां युद्धं समभवद् दारुणं शोणितोदकम् ।
सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने ॥ ६ ॥

जैसे वनमें सिंहका दो मदस्रावी महान् हाथियोंके साथ युद्ध हो रहा हो, उसी प्रकार विराट और विन्द-अनुविन्दमें बड़ा भयंकर संग्राम होने लगा, जहाँ पानीकी तरह खून बहाया जा रहा था ॥ ६ ॥

बाह्लीकं रभसं युद्धे याज्ञसेनिर्महाबलः ।
आजघ्ने विशिखैस्तीक्ष्णैर्घोरैर्मर्मास्थिभेदिभिः ॥ ७ ॥

महाबली शिखण्डीने युद्धस्थलमें वेगशाली बाह्लीकको मर्मस्थानों और हड्डियोंको विदीर्ण कर देनेवाले भयंकर तीखे बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ७ ॥

बाह्लीको याज्ञसेनिं तु हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ।
आजघान भृशं क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः ॥ ८ ॥

इससे बाह्लीक अत्यन्त कुपित हो उठे । उन्होंने शानपर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखसे युक्त और झुकी हुई गाँठवाले नौ बाणोंद्वारा शिखण्डीको घायल कर दिया ॥ ८ ॥

तद् युद्धमभवद् घोरं शरशक्तिसमाकुलम् ।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ॥ ९ ॥

उन दोनोंके उस युद्धने बड़ा भयंकर रूप धारण किया। उसमें बाणों और शक्तियोंका ही अधिक प्रहार हो रहा था । वह भीरु पुरुषोंके हृदयमें भय और शूरवीरोंके हृदयमें हर्ष-की वृद्धि करनेवाला था ॥ ९ ॥

ताभ्यां तत्र शरैर्मुक्तैरन्तरिक्षं दिशस्तथा ।
अभवत् संवृतं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन ॥ १० ॥

उन दोनों भाइयोंके छोड़े हुए बाणोंसे वहाँ आकाश और दिशाएँ—सब कुछ व्याप्त हो गया । कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था ॥ १० ॥

शैब्यो गोवासनो युद्धे काश्यपुत्रं महारथम् ।
ससैन्यो योधयामास गजः प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥

शिविदेशीय गोवासनने सेनासहित सामने जा काशिराजके महारथी पुत्रके साथ रणक्षेत्रमें उसी प्रकार युद्ध किया, जैसे एक हाथी अपने प्रतिद्वन्द्वी दूसरे हाथीके साथ युद्ध करता है ॥ ११ ॥

बाह्लीकराजः संक्रुद्धो द्रौपदेयान् महारथान् ।
मनः पञ्चेन्द्रियाणीव शुशुभे योधयन् रणे ॥ १२ ॥

क्रोधमें भरे हुए बाह्लीकराज महारथी द्रौपदीपुत्रोंके साथ रण-क्षेत्रमें युद्ध करते हुए उसी प्रकार शोभा पाने लगे, जैसे मन पाँचों इन्द्रियोंसे युद्ध करता हुआ सुशोभित होता है ॥ १२ ॥

अयोधयंस्ते सुभृशं तं शरौघैः समन्ततः ।
इन्द्रियार्था यथा देहं शश्वद् देहवतां वर ॥ १३ ॥

देहधारियोंमें श्रेष्ठ महाराज ! द्रौपदीके पुत्र भी चारों ओरसे बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए वहाँ बाह्लीकराजके साथ उसी प्रकार बड़े वेगसे युद्ध करने लगे, जैसे इन्द्रियोंके विषय शरीरके साथ सदा जूझते रहते हैं ॥ १३ ॥

वार्ष्णेयं सात्यकिं युद्धे पुत्रो दुःशासनस्तव ।
आजघ्ने सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः ॥ १४ ॥

आपके पुत्र दुःशासनने युद्धस्थलमें झुकी हुई गाँठवाले नौ तीखे बाणोंद्वारा वृष्णिवंशी सात्यकिको घायल कर दिया ॥

सोऽतिविद्धो बलवता महेष्वासेन धन्विना ।
ईषन्मूर्च्छां जगामाशु सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ १५ ॥

बलवान् एवं महान् धनुर्धर दुःशासनके बाणोंसे अत्यन्त बिंध जानेके कारण सत्यपराक्रमी सात्यकिको तुरंत ही थोड़ी-सी मूर्छा आ गयी ॥ १५ ॥

समाश्वस्तस्तु वार्ष्णेयस्तव पुत्रं महारथम् ।
विव्याध दशभिस्तूर्णं सायकैः कङ्कपत्रिभिः ॥ १६ ॥

थोड़ी देरमें स्वस्थ होनेपर सात्यकिने आपके महारथी पुत्र दुःशासनको कंककी पाँखवाले दस बाणोंद्वारा तुरंत ही घायल कर दिया ॥ १६ ॥

तावन्योन्यं दृढं विद्धावन्योन्यशरपीडितौ ।
रेजतुः समरे राजन् पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ १७ ॥

राजन् ! वे दोनों एक दूसरेके बाणोंसे पीड़ित और अत्यन्त घायल हो समराङ्गणमें दो खिले हुए पलाशके वृक्षोंकी भाँति शोभा पाने लगे ॥ १७ ॥

अलम्बुषस्तु संक्रुद्धः कुन्तिभोजशरार्दितः ।
अशोभत भृशं लक्ष्म्या पुष्पाढ्य इव किंशुकः ॥ १८ ॥

राजा कुन्तिभोजके बाणोंसे पीड़ित हो अत्यन्त क्रोधमें भरा हुआ राक्षस अलम्बुष फूलोंसे लदे हुए पलाश वृक्षके समान एक विशेष शोभासे सम्पन्न दिखायी देने लगा ॥

कुन्तिभोजं ततो रक्षो विद्ध्वा बहुभिरायसैः ।
अनदद् भैरवं नादं वाहिन्याः प्रमुखे तव ॥ १९ ॥

फिर राक्षसने बहुत-से लोहेके बाणोंद्वारा राजा कुन्तिभोजको घायल करके आपकी सेनाके प्रमुख भागमें बड़ी भयंकर गर्जना की ॥ १९ ॥

ततस्तौ समरे शूरौ योधयन्तौ परस्परम् ।
ददृशुः सर्वसैन्यानि शक्रजम्भौ यथा पुरा ॥ २० ॥

तदनन्तर सम्पूर्ण सेनाएँ पूर्वकालमें एक दूसरेसे युद्ध करनेवाले इन्द्र और जम्भासुरके समान समराङ्गणमें परस्पर जूझते हुए उन दोनों शूरवीरोंको देखने लगीं ॥ २० ॥

शकुनिं रभसं युद्धे कृतवैरं च भारत ।
माद्रीपुत्रौ च संरब्धौ शरैरार्दयतां भृशम् ॥ २१ ॥

भारत ! क्रोधमें भरे हुए दोनों माद्रीकुमारोंने पहलेसे वैर बाँधनेवाले और युद्धमें वेगपूर्वक आगे बढ़नेवाले शकुनिको अपने बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित किया ॥ २१ ॥

तुमुलः स महान् राजन् प्रावर्तत जनक्षयः ।
त्वया संजनितोऽत्यर्थं कर्णेन च विवर्धितः ॥ २२ ॥

राजन् ! इस प्रकार वह महाभयंकर जनसंहार चालू हो गया, जिसकी परिस्थितिको आपने ही उत्पन्न किया है और कर्णने उसे अत्यन्त बढ़ावा दिया है ॥ २२ ॥

रक्षितस्तव पुत्रैश्च क्रोधमूलो हुताशनः ।
य इमां पृथिवीं राजन् दग्धुं सर्वां समुद्यतः ॥ २३ ॥

महाराज ! आपके पुत्रोंने उस क्रोधमूलक वैरकी आगको सुरक्षित रक्खा है, जो इस सारी पृथ्वीको भस्म कर डालनेके लिये उद्यत है ॥ २३ ॥

शकुनिः पाण्डुपुत्राभ्यां कृतः स विमुखः शरैः ।
न स जानाति कर्तव्यं युद्धे किंचित् पराक्रमम् ॥ २४ ॥

पाण्डुकुमार नकुल और सहदेवने अपने बाणोंद्वारा शकुनिको युद्धसे विमुख कर दिया । उस समय उसे युद्धविषयक कर्तव्यका ज्ञान न रहा और न कुछ पराक्रमका ही भान हुआ ॥ २४ ॥

विमुखं चैनमालोक्य माद्रीपुत्रौ महारथौ ।
ववर्षतुः पुनर्बाणैर्यथा मेघौ महागिरिम् ॥ २५ ॥

उसे युद्धसे विमुख हुआ देखकर भी महारथी माद्रीकुमार नकुल-सहदेव उसके ऊपर पुनः उसी प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगे, जैसे दो मेघ किसी महान् पर्वतपर जलकी धारा बरसा रहे हों ॥ २५ ॥

स वध्यमानो बहुभिः शरैः संनतपर्वभिः ।
सम्प्रायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणानीकाय सौबलः ॥ २६ ॥

झुकी हुई गाँठवाले बहुत-से बाणोंकी मार खाकर सुबलपुत्र शकुनि वेगशाली घोड़ोंकी सहायतासे द्रोणाचार्यकी सेनाके पास जा पहुँचा ॥ २६ ॥

घटोत्कचस्तथा शूरं राक्षसं तमलायुधम् ।
अभ्ययाद् रभसं युद्धे वेगमास्थाय मध्यमम् ॥ २७ ॥

इधर घटोत्कचने अपने प्रतिद्वन्द्वी शूर राक्षस अलायुधका जो युद्धमें बड़ा वेगशाली था, मध्यम वेगका आश्रय ले सामना किया ॥ २७ ॥

तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाभवत् ।
यादृशं हि पुरा वृत्तं रामरावणयोर्मृधे ॥ २८ ॥

महाराज ! पूर्वकालमें श्रीराम और रावणके युद्धमें जैसी आश्चर्यजनक घटना घटित हुई थी, उसी प्रकार उन दोनों राक्षसोंका युद्ध भी विचित्र-सा ही हुआ ॥ २८ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा मद्रराजानमाहवे ।
विद्ध्वा पञ्चाशता बाणैः पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ २९ ॥

तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने युद्धमें मद्रराज शल्यको पचास बाणोंसे घायल करके पुनः सात बाणोंद्वारा उन्हें बींध डाला ॥ २९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तयोरत्यद्भुतं नृप ।
यथा पूर्वं महद् युद्धं शम्बरामरराजयोः ॥ ३० ॥

नरेश्वर ! जैसे पूर्वकालमें शम्बरासुर और देवराज इन्द्रमें महान् युद्ध हुआ था, उसी प्रकार उस समय उन दोनोंमें अत्यन्त अद्भुत संग्राम होने लगा ॥ ३० ॥

विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च तवात्मजः ।
अयोधयन् भीमसेनं महत्या सेनया वृताः ॥ ३१ ॥

आपके पुत्र विविंशति, चित्रसेन और विकर्ण—ये तीनों विशाल सेनाके साथ रहकर भीमसेनके साथ युद्ध करने लगे ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्वन्द्वयुद्धविषयक छानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका युद्ध तथा सात्यकिद्वारा धृष्टद्युम्नकी रक्षा

संजय उवाच

तथा तस्मिन् प्रवृत्ते तु संग्रामे लोमहर्षणे ।
कौरवेयांस्त्रिधाभूतान् पाण्डवाः समुपाद्रवन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! उस रोमाञ्चकारी संग्रामके

होते समय वहाँ तीन भागोंमें बँटे हुए कौरवोंपर पाण्डव-सैनिकोंने धावा किया ॥ १ ॥

जलसंधं महाबाहुं भीमसेनोऽभ्यवर्तत ।
युधिष्ठिरः सहानीकः कृतवर्माणमाहवे ॥ २ ॥

भीमसेनने महाबाहु जलसंधपर आक्रमण किया और सेनासहित युधिष्ठिरने युद्धस्थलमें कृतवर्मापर धावा बोल दिया॥

किरंस्तु शरवर्षाणि रोचमान इवांशुमान् ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमभ्यद्रवद् रणे ॥ ३ ॥

महाराज ! जैसे प्रकाशमान सूर्य सहस्रों किरणोंका प्रसार करते हैं, उसी प्रकार धृष्टद्युम्नने बाण-समूहोंकी वर्षा करते हुए रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया ॥ ३ ॥

ततः प्रववृते युद्धं त्वरतां सर्वधन्विनाम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च संक्रुद्धानां परस्परम् ॥ ४ ॥

तदनन्तर परस्पर क्रोधमें भरे और उतावले हुए कौरव-पाण्डवपक्षके सम्पूर्ण धनुर्धरोंका आपसमें युद्ध होने लगा ॥

संक्षये तु तथाभूते वर्तमाने महाभये ।
द्वन्द्वीभूतेषु सैन्येषु युध्यमानेष्वभीतवत् ॥ ५ ॥
द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण बली बलवता सह ।
यदक्षिपत् पृषत्कौघांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६ ॥

इस प्रकार जब महाभयंकर जनसंहार होने लगा और सारे सैनिक निर्भय-से होकर द्वन्द्व-युद्ध करने लगे, उस समय बलवान् द्रोणाचार्यने शक्तिशाली पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करते हुए जो बाण-समूहोंकी वर्षा आरम्भ की, वह अद्भुत-सी प्रतीत होने लगी ॥ ५-६ ॥

पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः ।
चक्राते द्रोणपाञ्चाल्यौ नृणां शीर्षाण्यनेकशः ॥ ७ ॥

द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नने मनुष्योंके बहुत-से मस्तक काट गिराये, जो चारों ओर नष्ट होकर पड़े हुए कमलवनोंके समान जान पड़ते थे ॥ ७ ॥

विनिकीर्णानि वीराणामनीकेषु समन्ततः ।
वस्त्राभरणशस्त्राणि ध्वजवर्मायुधानि च ॥ ८ ॥

चारों ओर सेनाओंमें वीरोंके बहुत-से वस्त्र, आभूषण, अस्त्र-शस्त्र, ध्वज, कवच तथा आयुध छिन्न-भिन्न होकर बिखरे पड़े थे ॥ ८ ॥

तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण च ।
संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसंघाः सविद्युतः ॥ ९ ॥

सुवर्णका कवच बाँधे तथा खूनसे लथपथ हुए सैनिक परस्पर सटे हुए बिजलियोंसहित मेघ-समूहोंके समान दिखायी देते थे ॥ ९ ॥

कुञ्जराश्वनरानन्ये पातयन्ति स्म पत्रिभिः ।
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महारथाः ॥ १० ॥

बहुत-से दूसरे महारथी चार हाथके धनुष खींचते हुए अपने पंखयुक्त बाणोंद्वारा हाथी, घोड़े और पैदल मनुष्योंको मार गिराते थे ॥ १० ॥

असिचर्माणि चापानि शिरांसि कवचानि च ।
विप्रकीर्यन्त शूराणां सम्प्रहारे महात्मनाम् ॥ ११ ॥

उन महामनस्वी वीरोंके संग्राममें योद्धाओंके खड्ग, ढाल, धनुष, मस्तक और कवच कटकर इधर-उधर बिखरे जाते थे॥

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
अदृश्यन्त महाराज तस्मिन् परमसंकुले ॥ १२ ॥

महाराज ! उस महाभयानक युद्धमें चारों ओर असंख्य कबन्ध खड़े दिखायी देते थे ॥ १२ ॥

गृध्राः कङ्का बकाः श्येना वायसा जम्बुकास्तथा ।
बहुशः पिशिताशाश्च तत्रादृश्यन्त मारिष ॥ १३ ॥

आर्य ! वहाँ बहुत-से गीध, कङ्क, बगले, बाज, कौए, सियार तथा अन्य मांसभक्षी प्राणी दृष्टिगोचर होते थे ॥१३॥

भक्षयन्तश्च मांसानि पिबन्तश्चापि शोणितम् ।
विलुम्पन्तश्च केशांश्च मज्जाश्च बहुधा नृप ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! वे मांस खाते, रक्त पीते और केशों तथा मज्जाको बारंबार नोचते थे ॥ १४ ॥

आकर्षन्तः शरीराणि शरीरावयवांस्तथा ।
नराश्वगजसंघानां शिरांसि च ततस्ततः ॥ १५ ॥

मनुष्यों, घोड़ों तथा हाथियोंके समूहोंके सम्पूर्ण शरीरों और अवयवों एवं मस्तकोंको इधर-उधर खींचते थे ॥१५॥

कृतास्त्रा रणदीक्षाभिर्दीक्षिता रणशालिनः ।
रणे जयं प्रार्थयाना भृशं युयुधिरे तदा ॥ १६ ॥

अस्त्रविद्याके ज्ञाता और युद्धमें शोभा पानेवाले वीर रणयज्ञकी दीक्षा लेकर संग्राममें विजय चाहते हुए उस समय बड़े जोरसे युद्ध करने लगे ॥ १६ ॥

असिमार्गान् बहुविधान् विचेरुः सैनिका रणे ।
ऋष्टिभिः शक्तिभिः प्रासैः शूलतोमरपट्टिशैः ॥ १७ ॥
गदाभिः परिघैश्चान्यैरायुधैश्च भुजैरपि ।
अन्योन्यं जघ्निरे क्रुद्धा युद्धरङ्गगता नराः ॥ १८ ॥

समस्त सैनिक उस रणक्षेत्रमें तलवारके बहुत-से पैंतरे दिखाते हुए विचर रहे थे । युद्धकी रंगभूमिमें आये हुए मनुष्य परस्पर कुपित हो एक दूसरेपर ऋष्टि, शक्ति, प्रास, शूल, तोमर, पट्टिश, गदा, परिघ, अन्यान्य आयुध तथा भुजाओंद्वारा चोट पहुँचाते थे ॥ १७-१८ ॥

रथिनो रथिभिः सार्धमश्वारोहाश्च सादिभिः ।
मातङ्गा वरमातङ्गैः पदाताश्च पदातिभिः ॥ १९ ॥

रथी रथियोंके, घुड़सवार घुड़सवारोंके, मतवाले हाथी श्रेष्ठ गजराजोंके और पैदल योद्धा पैदलोंके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ १९ ॥

क्षीबा इवान्ये चोन्मत्ता रङ्गेष्विव च वारणाः ।
उच्चुकुशुरथान्योन्यं जघ्नुरन्योन्यमेव च ॥ २० ॥

रंगस्थलके समान उस रणक्षेत्रमें अन्य बहुत-से मत्त और उन्मत्त हाथी एक दूसरेको देखकर चिग्घाड़ते और परस्पर आघात-प्रत्याघात करते थे ॥ २० ॥

वर्तमाने तथा युद्धे निर्मर्यादे विशाम्पते ।
धृष्टद्युम्नो हयानश्वैर्द्रोणस्य व्यत्यमिश्रयत् ॥ २१ ॥

राजन् ! जिस समय वह मर्यादाशून्य युद्ध हो रहा था, उसी समय धृष्टद्युम्नने अपने रथके घोड़ोंको द्रोणाचार्यके घोड़ोंसे मिला दिया ॥ २१ ॥

ते हयाः साध्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः ।
पारावतसवर्णाश्च रक्तशोणाश्च संयुगे ॥ २२ ॥

धृष्टद्युम्नके घोड़ोंका रंग कबूतरके समान था और द्रोणाचार्यके घोड़े लाल थे । उस युद्धके मैदानमें परस्पर मिले हुए वे वायुके समान वेगशाली अश्व बड़ी शोभा पा रहे थे ॥

पारावतसवर्णास्ते रक्तशोणविमिश्रिताः ।
हयाः शुशुभिरे राजन् मेघा इव सविद्युतः ॥ २३ ॥

राजन् ! कबूतरके समान वर्णवाले घोड़े लाल रंगके घोड़ोंसे मिलकर बिजलियोंसहित मेघोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥

धृष्टद्युम्नस्तु सम्प्रेक्ष्य द्रोणमभ्याशमागतम् ।
असिचर्माददे वीरो धनुरुत्सृज्य भारत ॥ २४ ॥

भारत ! वीर धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यको अत्यन्त निकट आया हुआ देख धनुष छोड़कर हाथमें ढाल और तलवार ले ली॥

चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म पार्षतः परवीरहा ।
ईषया समतिक्रम्य द्रोणस्य रथमाविशत् ॥ २५ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले धृष्टद्युम्न दुष्कर कर्म करना चाहते थे । अतः ईषादण्डके सहारे अपने रथको लाँघकर द्रोणाचार्यके रथपर जा चढ़े ॥ २५ ॥

अतिष्ठद् युगमध्ये स युगसंनहनेषु च ।
जघनार्धेषु चाश्वानां तत् सैन्यान्यभ्यपूजयन् ॥ २६ ॥

वे एक पैर जूएके ठीक बीचमें और दूसरा पैर उस जूएसे सटे हुए (आचार्यके) घोड़ोंके पिछले आधे भागोंपर रखकर खड़े हो गये । उनके इस कार्यकी सभी सैनिकोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ २६ ॥

खड्गेन चरतस्तस्य शोणाश्वानधितिष्ठतः ।
न ददर्शान्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २७ ॥

लाल घोड़ोंपर खड़े हो तलवार घुमाते हुए धृष्टद्युम्नके ऊपर प्रहार करनेके लिये आचार्य द्रोणको थोड़ा-सा भी अवसर नहीं दिखायी दिया । वह अद्भुत-सी बात हुई ॥

यथा श्येनस्य पतनं वनेष्वामिषगृद्धिनः ।
तथैवासीदभीसारस्तस्य द्रोणं जिघांसतः ॥ २८ ॥

जैसे वनमें मांसकी इच्छा रखनेवाला बाज झपट्टा मारता है, उसी प्रकार द्रोणको मार डालनेकी इच्छासे उनपर धृष्टद्युम्नका यह सहसा आक्रमण हुआ था ॥ २८ ॥

ततः शरशतेनास्य शतचन्द्रं समाक्षिपत् ।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य खड्गं च दशभिः शरैः ॥ २९ ॥

तदनन्तर द्रोणाचार्यने सौ बाण मारकर द्रुपदकुमारकी ढालको, जिसमें सौ चन्द्राकार चिह्न बने हुए थे, काट गिराया और दस बाणोंसे उनकी तलवारके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये॥

हयांश्चैव चतुःषष्ट्या शराणां जघ्निवान् बली ।
ध्वजं छत्रं च भल्लाभ्यां तथा तौ पार्ष्णिसारथी॥ ३० ॥

बलवान् आचार्यने चौसठ बाणोंसे धृष्टद्युम्नके चारों घोड़ोंको मार डाला । फिर दो भल्लोंसे ध्वज और छत्र काटकर उनके दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी मार गिराया ॥ ३० ॥

अथास्मै त्वरितो बाणमपरं जीवितान्तकम् ।
आकर्णपूर्णं चिक्षेप वज्रं वज्रधरो यथा ॥ ३१ ॥

तदनन्तर तुरंत ही एक दूसरा प्राणान्तकारी बाण कानतक खींचकर उनके ऊपर चलाया, मानो वज्रधारी इन्द्रने वज्र मारा हो ॥ ३१ ॥

तं चतुर्दशभिस्तीक्ष्णैर्बाणैश्चिच्छेद सात्यकिः ।
ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नं व्यमोचयत् ॥ ३२ ॥

उस समय सात्यकिने चौदह तीखे बाण मारकर उस बाणको काट डाला और इस प्रकार आचार्यप्रवरके चंगुलमें फँसे हुए धृष्टद्युम्नको बचा लिया ॥ ३२ ॥

सिंहेनेव मृगं ग्रस्तं नरसिंहेन मारिष ।
द्रोणेन मोचयामास पाञ्चाल्यं शिनिपुङ्गवः ॥ ३३ ॥

पूजनीय नरेश ! जैसे सिंहने किसी मृगको दबोच लिया हो, उसी प्रकार नरसिंह द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नको ग्रस लिया था; परंतु शिनिप्रवर सात्यकिने उन्हें छुड़ा लिया ॥ ३३ ॥

सात्यकिं प्रेक्ष्य गोप्तारं पाञ्चाल्यं च महाहवे ।
शराणां त्वरितो द्रोणः षड्विंशत्या समार्पयत्॥ ३४ ॥

उस महासमरमें सात्यकि धृष्टद्युम्नके रक्षक हो गये, यह देखकर द्रोणाचार्यने तुरंत ही उनपर छब्बीस बाणोंसे प्रहार किया ॥ ३४ ॥

ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो ग्रसन्तमपि सृंजयान् ।
प्रत्यविध्यच्छितैर्बाणैः षड्विंशत्या स्तनान्तरे ॥ ३५ ॥

तब शिनिके पौत्र सात्यकिने सृंजयोंके संहारमें लगे हुए द्रोणाचार्यकी छातीमें छब्बीस तीखे बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३५ ॥

ततः सर्वे रथास्तूर्णं पाञ्चाल्या जयगृद्धिनः ।

सात्वताभिसृते द्रोणे धृष्टद्युम्नमवाक्षिपन् ॥ ३६ ॥

जब द्रोणाचार्य सात्यकिके साथ उलझ गये, तब विजयाभिलाषी समस्त पाञ्चाल रथी तुरंत ही धृष्टद्युम्नको अपने रथपर बिठाकर दूर हटा ले गये ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणधृष्टद्युम्नयुद्धे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका युद्धविषयक सत्तानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

द्रोणाचार्य और सात्यकिका अद्भुत युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

बाणे तस्मिन् निकृत्ते तु धृष्टद्युम्ने च मोक्षिते ।
तेन वृष्णिप्रवीरेण युयुधानेन संजय ॥ १ ॥
अमर्षितो महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
नरव्याघ्रः शिनेः पौत्रे द्रोणः किमकरोद् युधि ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब वृष्णिवंशके प्रमुख वीर युयुधानने आचार्य द्रोणके उस बाणको काट दिया और धृष्टद्युम्नको प्राणसंकटसे बचा लिया, तब अमर्षमें भरे हुए सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर नरव्याघ्र द्रोणाचार्यने उस युद्धस्थलमें सात्यकिके प्रति क्या किया ? ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

सम्प्रद्रुतः क्रोधविषो व्यादितास्यशरासनः ।
तीक्ष्णधारेषुदशनः शितनाराचदंष्ट्रवान् ॥ ३ ॥
संरम्भामर्षताम्राक्षो महोरग इव श्वसन् ।

संजयने कहा—महाराज ! उस समय क्रोध और अमर्षसे लाल आँखें किये द्रोणाचार्यने फुफकारते हुए महानागके समान बड़े वेगसे सात्यकिपर धावा किया । क्रोध ही उस महानागका विष था, खींचा हुआ धनुष फैलाये हुए मुखके समान जान पड़ता था, तीखी धारवाले बाण दाँतोंके समान थे और तेज धारवाले नाराच दाढ़ोंका काम देते थे ॥ ३½ ॥

नरवीरः प्रमुदितः शोणैरश्वैर्महाजवैः ॥ ४ ॥
उत्पतद्भिरिवाकाशे क्रामद्भिरिव पर्वतम् ।
रुक्मपुङ्खाञ्छरानस्यन् युयुधानमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

हर्षमें भरे हुए नरवीर द्रोणाचार्यने अपने महान् वेगशाली लाल घोड़ोंद्वारा, जो मानो आकाशमें उड़ रहे और पर्वतको लाँघ रहे थे, सुवर्णमय पंखवाले बाणोंकी वर्षा करते हुए वहाँ युयुधानपर आक्रमण किया ॥ ४-५ ॥

शरपातमहावर्षं रथघोषबलाहकम् ।
कार्मुकाकर्षविक्षेपं नाराचबहुविद्युतम् ॥ ६ ॥
शक्तिखड्गाशनिधरं क्रोधवेगसमुत्थितम् ।
द्रोणमेघमनावार्यं हयमारुतचोदितम् ॥ ७ ॥

उस समय द्रोणाचार्य अश्वरूपी वायुसे संचालित अनिवार्य मेघके समान हो रहे थे । बाणोंका प्रहार ही उनके द्वारा की जानेवाली महावृष्टि थी । रथकी घर्घराहट ही मेघकी गर्जना थी, धनुषका खींचना ही धारावाहिक वृष्टिका साधन था, बहुत-से नाराच ही विद्युत्के समान प्रकाशित होते थे, उस मेघने खड्ग और शक्तिरूपी अशनिको धारण कर रक्खा था और क्रोधके वेगसे ही उसका उत्थान हुआ था ॥ ६-७ ॥

दृष्ट्वैवाभिपतन्तं तं शूरः परपुरंजयः ।
उवाच सूतं शैनेयः प्रहसन् युद्धदुर्मदः ॥ ८ ॥

शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले रणदुर्मद शूरवीर सात्यकि द्रोणाचार्यको अपने ऊपर आक्रमण करते देख सारथिसे जोर-जोरसे हँसते हुए बोले—॥ ८ ॥

एनं वै ब्राह्मणं शूरं स्वकर्मण्यनवस्थितम् ।
आश्रयं धार्तराष्ट्रस्य राज्ञो दुःखभयापहम् ॥ ९ ॥
शीघ्रं प्रजवितैरश्वैः प्रत्युद्याहि प्रहृष्टवत् ।
आचार्यं राजपुत्राणां सततं शूरमानिनम् ॥ १० ॥

'सूत ! ये शौर्यसम्पन्न ब्राह्मणदेवता अपने ब्राह्मणोचित कर्ममें स्थिर नहीं हैं । ये धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधनके आश्रय होकर उसके दुःख और भयका निवारण करनेवाले हैं । समस्त राजकुमारोंके ये ही आचार्य हैं और सदा अपनेको शूरवीर मानते हैं । तुम प्रसन्नचित्त होकर अपने वेगशाली अश्वोंद्वारा शीघ्र इनका सामना करनेके लिये चलो' ॥ ९-१० ॥

ततो रजतसंकाशा माधवस्य हयोत्तमाः ।
द्रोणस्याभिमुखाः शीघ्रमगच्छन् वातरंहसः ॥ ११ ॥

तदनन्तर चाँदीके समान श्वेत रंगवाले और वायुके समान वेगशाली सात्यकिके उत्तम घोड़े द्रोणाचार्यके सामने शीघ्रतापूर्वक जा पहुँचे ॥ ११ ॥

ततस्तौ द्रोणशैनेयौ युयुधाते परंतपौ ।
शरैरनेकसाहस्रैस्ताडयन्तौ परस्परम् ॥ १२ ॥

फिर तो शत्रुओंको संताप देनेवाले द्रोणाचार्य और सात्यकि एक दूसरेपर सहस्रों बाणोंका प्रहार करते हुए युद्ध करने लगे ॥ १२ ॥

इषुजालावृतं व्योम चक्रतुः पुरुषर्षभौ ।
पूरयामासतुर्वीरावुभौ दश दिशः शरैः ॥ १३ ॥

उन दोनों पुरुषशिरोमणि वीरोंने आकाशको

बाणोंके समूहसे आच्छादित कर दिया और दसों दिशाओं-को बाणोंसे भर दिया ॥ १३ ॥

मेघाविवातपापाये धाराभिरितरेतरम् ।
न स्म सूर्यस्तदा भाति न ववौ च समीरणः ॥ १४ ॥

जैसे वर्षाकालमें दो मेघ एक दूसरेपर जलकी धाराएँ गिराते हों, उसी प्रकार वे परस्पर बाण-वर्षा कर रहे थे। उस समय न तो सूर्यका पता चलता था और न हवा ही चलती थी ॥ १४ ॥

इषुजालावृतं घोरमन्धकारं समन्ततः ।
अनाधृष्यमिवान्येषां शूराणामभवत् तदा ॥ १५ ॥

चारों ओर बाणोंका जाल-सा बिछ जानेके कारण वहाँ घोर अन्धकार छा गया था। उस समय अन्य शूरवीरोंका वहाँ पहुँचना असम्भव-सा हो गया ॥ १५ ॥

अन्धकारीकृते लोके द्रोणशैनेययोः शरैः ।
तयोः शीघ्रास्त्रविदुषोर्द्रोणसात्वतयोस्तदा ॥ १६ ॥
नान्तरं शरवृष्टीनां ददृशे नरसिंहयोः ।

शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेकी कलाको जाननेवाले द्रोणाचार्य तथा सात्वतवंशी सात्यकिके बाणोंसे लोकमें अन्धकार छा जानेपर भी उस समय उन दोनों पुरुषसिंहोंकी बाण-वर्षामें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता था ॥ १६½ ॥

इषूणां संनिपातेन शब्दो धाराभिघातजः ॥ १७ ॥
शुश्रुवे शक्रमुक्तानामशनीनामिव स्वनः ।

बाणोंके परस्पर टकरानेसे उनकी धारोंके आघात-प्रत्याघातसे जो शब्द होता था, वह इन्द्रके छोड़े हुए वज्रास्त्रोंकी गड़गड़ाहटके समान सुनायी पड़ता था ॥ १७½ ॥

नाराचैर्व्यतिविद्धानां शराणां रूपमाबभौ ॥ १८ ॥
आशीविषविदष्टानां सर्पाणामिव भारत ।

भरतनन्दन ! नाराचोंसे अत्यन्त विद्ध हुए बाणोंका स्वरूप विषधर नागोंके डँसे हुए सर्पोंके समान जान पड़ता था ॥

तयोर्ज्यातलनिर्घोषः शुश्रुवे युद्धशौण्डयोः ॥ १९ ॥
अजस्रं शैलशृङ्गाणां वज्रेणाहन्यतामिव ।

उन दोनों युद्धकुशल वीरोंके धनुषोंकी प्रत्यञ्चाकी टंकारध्वनि ऐसी सुनायी देती थी, मानो पर्वतोंके शिखरोंपर निरन्तर वज्रसे आघात किया जा रहा हो ॥ १९½ ॥

उभयोस्तौ रथौ राजंस्ते चाश्वास्तौ च सारथी ॥ २० ॥
रुक्मपुङ्खैः शरैश्छिन्नाश्चित्ररूपा बभुस्तदा ।

राजन् ! उन दोनोंके वे रथ, वे घोड़े और वे सारथि सुवर्णमय पंखवाले बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर उस समय विचित्ररूपसे सुशोभित हो रहे थे ॥ २०½ ॥

निर्मलानामजिह्मानां नाराचानां विशाम्पते ॥ २१ ॥
निर्मुक्ताशीविषाभानां सम्पातोऽभूत् सुदारुणः ।

प्रजानाथ ! केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान निर्मल और सीधे जानेवाले नाराचोंका प्रहार वहाँ बड़ा भयंकर प्रतीत होता था ॥ २१½ ॥

उभयोः पतिते छत्रे तथैव पतितौ ध्वजौ ॥ २२ ॥
उभौ रुधिरसिक्ताङ्गावुभौ च विजयैषिणौ ।

दोनोंके छत्र कटकर गिर गये, ध्वज धराशायी हो गये और दोनों ही विजयकी अभिलाषा रखते हुए खूनसे लथपथ हो रहे थे ॥ २२½ ॥

स्रवद्भिः शोणितं गात्रैः प्रस्रुताविव वारणौ ॥ २३ ॥
अन्योन्यमभ्यविध्येतां जीवितान्तकरैः शरैः ।

सारे अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहनेके कारण वे दोनों वीर मदवर्षी गजराजोंके समान जान पड़ते थे। वे एक दूसरेको प्राणान्तकारी बाणोंसे बेध रहे थे ॥ २३½ ॥

गर्जितोत्क्रुष्टसंनादाः शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनाः ॥ २४ ॥
उपारमन् महाराज व्याजहार न कश्चन ।

महाराज ! उस समय गरजने, ललकारने और सिंहनाद-के शब्द तथा शङ्खों और दुन्दुभियोंके घोष बंद हो गये थे। कोई बातचीततक नहीं करता था ॥ २४½ ॥

तूष्णीम्भूतान्यनीकानि योधा युद्धादुपारमन् ॥ २५ ॥
ददर्श द्वैरथं ताभ्यां जातकौतूहलो जनः ।

सारी सेनाएँ मौन थीं, योद्धा युद्धसे विरत हो गये थे, सब लोग कौतूहलवश उन दोनोंके द्वैरथ युद्धका दृश्य देखने लगे ॥ २५½ ॥

रथिनो हस्तियन्तारो हयारोहाः पदातयः ॥ २६ ॥
अवैक्षन्ताचलैर्नेत्रैः परिवार्य नरर्षभौ ।

रथी, महावत, घुड़सवार और पैदल सभी उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंको घेरकर उन्हें एकटक नेत्रोंसे निहारने लगे ॥

हस्त्यनीकान्यतिष्ठन्त तथानीकानि वाजिनाम् ॥ २७ ॥
तथैव रथवाहिन्यः प्रतिव्यूह्य व्यवस्थिताः ।

हाथियोंकी सेनाएँ चुपचाप खड़ी थीं, घुड़सवार सैनिकोंकी भी यही दशा थी तथा रथसेनाएँ भी व्यूह बनाकर वहाँ स्थिरभावसे खड़ी थीं ॥ २७½ ॥

मुक्ताविद्रुमचित्रैश्च मणिकाञ्चनभूषितैः ॥ २८ ॥
ध्वजैराभरणैश्चित्रैः कवचैश्च हिरण्मयैः ।
वैजयन्तीपताकाभिः परिस्तोमाङ्गकम्बलैः ॥ २९ ॥
विमलैर्निशितैः शस्त्रैर्हयानां च प्रकीर्णकैः ।
जातरूपमयीभिश्च राजतीभिश्च मूर्धसु ॥ ३० ॥
गजानां कुम्भमालाभिर्दन्तवेष्टैश्च भारत ।
सबलाकाः सखद्योताः सैरावतशतह्रदाः ॥ ३१ ॥
अदृश्यन्तोष्णपर्याये मेघानामिव वागुराः ।

भारत ! मोती और मूँगोंसे चित्रित तथा मणियों और सुवर्णों-से विभूषित ध्वज, विचित्र आभूषण, सुवर्णमय कवच, वैजयन्ती,

पताका, हाथियोंके झूल और कम्बल, चमचमाते हुए तीखे शस्त्र, घोड़ोंकी पीठपर बिछाये जानेवाले वस्त्र, हाथियोंके कुम्भस्थलमें और मस्तकोंपर सुशोभित होनेवाली सोने-चाँदी-की मालाएँ तथा दन्तवेष्टन—इन सब वस्तुओंके कारण उभयपक्षकी सेनाएँ वर्षाकालमें बगलोंकी पाँति, खद्योत, ऐरावत और बिजलियोंसे युक्त मेघसमूहोंके समान दृष्टि-गोचर हो रही थीं ॥ २८–३१½ ॥

अपश्यन्नस्मदीयाश्च ते च यौधिष्ठिराः स्थिताः ॥ ३२ ॥
तद् युद्धं युयुधानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ।

राजन् ! हमारी और युधिष्ठिरकी सेनाके सैनिक वहाँ खड़े होकर महामना द्रोण और सात्यकिका वह युद्ध देख रहे थे ॥

विमानाग्रगता देवा ब्रह्मसोमपुरोगमाः ॥ ३३ ॥
सिद्धचारणसंघाश्च विद्याधरमहोरगाः ।

ब्रह्मा और चन्द्रमा आदि सब देवता विमानोंपर बैठकर वहाँ युद्ध देखनेके लिये आये थे । उनके साथ ही सिद्धों और चारणोंके समूह, विद्याधर और बड़े-बड़े नागगण भी थे ॥

गतप्रत्यागताक्षेपैश्चित्रैरस्त्रविघातिभिः ॥ ३४ ॥
विविधैर्विस्मयं जग्मुस्तयोः पुरुषसिंहयोः ।

वे सब लोग उन दोनों पुरुषसिंहोंके विचित्र गमन-प्रत्यागमन, आक्षेप तथा नाना प्रकारके अस्त्रनिवारक व्यापारोंसे आश्चर्यचकित हो रहे थे ॥ ३४½ ॥

हस्तलाघवमस्त्रेषु दर्शयन्तौ महाबलौ ॥ ३५ ॥
अन्योन्यमभिविध्येतां शरैस्तौ द्रोणसात्यकी ।

महावीर द्रोणाचार्य और सात्यकि अस्त्र चलानेमें अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए बाणोंद्वारा एक दूसरेको बेध रहे थे ॥

ततो द्रोणस्य दाशार्हः शरांश्चिच्छेद संयुगे ॥ ३६ ॥
पत्रिभिः सुदृढैराशु धनुश्चैव महाद्युतेः ।

इसी बीचमें सात्यकिने महातेजस्वी द्रोणाचार्यके धनुष और बाणोंको पंखयुक्त सुदृढ़ बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें शीघ्र ही काट डाला ॥ ३६½ ॥

निमेषान्तरमात्रेण भारद्वाजोऽपरं धनुः ॥ ३७ ॥
सज्यं चकार तदपि चिच्छेदास्य च सात्यकिः ।

तब भरद्वाजनन्दन द्रोणने पलक मारते-मारते दूसरा धनुष हाथमें लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी; परंतु सात्यकिने उनके उस धनुषको भी काट डाला ॥ ३७½ ॥

ततस्त्वरन् पुनर्द्रोणो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत ॥ ३८ ॥
सज्यं सज्यं धनुश्चास्य चिच्छेद निशितैः शरैः ।

तब द्रोणाचार्य पुनः बड़ी उतावलीके साथ दूसरा धनुष हाथमें लेकर खड़े हो गये; परंतु ज्यों ही वे धनुष-पर डोरी चढ़ाते, त्यों ही सात्यकि अपने तीखे बाणोंद्वारा उसे काट देते थे ॥ ३८½ ॥

एवमेकशतं छिन्नं धनुषां दृढधन्विना ॥ ३९ ॥
न चान्तरं तयोर्दृष्टं संधाने छेदनेऽपि च ।

इस प्रकार सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले सात्यकिने आचार्यके एक सौ धनुष काट डाले; परंतु कब वे संधान करते हैं और सात्यकि कब उस धनुषको काट देते हैं, उन दोनोंके इस कार्यमें किसीको कोई अन्तर नहीं दिखायी दिया ॥

ततोऽस्य संयुगे द्रोणो दृष्ट्वा कर्मातिमानुषम् ॥ ४० ॥
युयुधानस्य राजेन्द्र मनसैतदचिन्तयत् ।

राजेन्द्र ! तदनन्तर रणक्षेत्रमें सात्यकिके उस अमानुषिक पराक्रमको देखकर द्रोणाचार्यने मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया ॥ ४०½ ॥

एतदस्त्रबलं रामे कार्तवीर्ये धनंजये ॥ ४१ ॥
भीष्मे च पुरुषव्याघ्रे यदिदं सात्वतां वरे ।
तं चास्य मनसा द्रोणः पूजयामास विक्रमम् ॥ ४२ ॥

सात्वतकुलके श्रेष्ठ वीर सात्यकिमें जो यह अस्त्रबल दिखायी देता है, ऐसा तो केवल परशुराममें, कार्तवीर्य अर्जुनमें, धनंजयमें तथा पुरुषसिंह भीष्ममें ही देखा-सुना गया है । द्रोणाचार्यने मन-ही-मन उनके पराक्रमकी बड़ी प्रशंसा की ॥ ४१-४२ ॥

लाघवं वासवस्येव सम्प्रेक्ष्य द्विजसत्तमः ।
तुतोषास्त्रविदां श्रेष्ठस्तथा देवाः सवासवाः ॥ ४३ ॥

इन्द्रके समान सात्यकिके उस हस्तलाघव तथा पराक्रम-को देखकर अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ विप्रवर द्रोणाचार्य और इन्द्र आदि देवता भी बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४३ ॥

न तामालक्षयामासुर्लघुतां शीघ्रचारिणः ।
देवाश्च युयुधानस्य गन्धर्वाश्च विशाम्पते ॥ ४४ ॥
सिद्धचारणसंघाश्च विदुर्द्रोणस्य कर्म तत् ।

प्रजानाथ ! रणभूमिमें शीघ्रतापूर्वक विचरनेवाले सात्यकि-की उस फुर्तीको देवताओं, गन्धर्वों, सिद्धों और चारण-समूहोंने पहले कभी नहीं देखा था । वे जानते थे कि केवल द्रोणाचार्य ही वैसा पराक्रम कर सकते हैं (परंतु उस दिन उन्होंने सात्यकिका पराक्रम भी प्रत्यक्ष देख लिया) ॥ ४४½ ॥

ततोऽन्यद् धनुरादाय द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४५ ॥
अस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो योधयामास भारत ।

भारत ! तत्पश्चात् अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ क्षत्रियसंहारक द्रोणाचार्यने दूसरा धनुष हाथमें लेकर विभिन्न अस्त्रोंद्वारा युद्ध आरम्भ किया ॥ ४५½ ॥

तस्यास्त्राण्यस्त्रमायाभिः प्रतिहत्य स सात्यकिः ॥ ४६ ॥
जघान निशितैर्बाणैस्तदद्भुतमिवाभवत् ।

सात्यकिने अपने अस्त्रोंकी मायासे आचार्यके अस्त्रोंका निवारण करके उन्हें तीखे बाणोंसे घायल कर दिया । वह अद्भुत-सी घटना हुई ॥ ४६½ ॥

तस्यातिमानुषं कर्म दृष्ट्वान्यैरसमं रणे ॥ ४७ ॥

युक्तं योगेन योगशास्त्रावकाः समपूजयन् ।

उस रणक्षेत्रमें सात्यकिके उस युक्तियुक्त अलौकिक कर्मको, जिसकी दूसरोंसे कोई तुलना नहीं थी, देखकर आपके रणकौशलवेत्ता सैनिक उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ४७½ ॥

यदस्त्रमस्यति द्रोणस्तदेवास्यति सात्यकिः ॥ ४८ ॥
तमाचार्योऽप्यसम्भ्रान्तोऽयोधयच्छत्रुतापनः ।

द्रोणाचार्य जिस अस्त्रका प्रयोग करते, उसीका सात्यकि भी करते थे । शत्रुओंको संताप देनेवाले आचार्य द्रोण भी घबराहट छोड़कर सात्यकिसे युद्ध करते रहे ॥ ४८½ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज धनुर्वेदस्य पारगः ॥ ४९ ॥
वधाय युयुधानस्य दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ।

महाराज ! तदनन्तर धनुर्वेदके पारङ्गत विद्वान् द्रोणाचार्यने कुपित हो सात्यकिके वधके लिये एक दिव्यास्त्र प्रकट किया ॥ ४९½ ॥

तदाग्नेयं महाघोरं रिपुघ्नमुपलक्ष्य सः ॥ ५० ॥
दिव्यमस्त्रं महेष्वासो वारुणं समुदैरयत् ।

शत्रुओंका नाश करनेवाले उस अत्यन्त भयंकर आग्नेयास्त्रको देखकर महाधनुर्धर सात्यकिने भी वारुणनामक दिव्यास्त्रका प्रयोग किया ॥ ५०½ ॥

हाहाकारो महानासीद् दृष्ट्वा दिव्यास्त्रधारिणौ ॥ ५१ ॥
न विचेरुस्तदाकाशे भूतान्याकाशगान्यपि ।

उन दोनोंको दिव्यास्त्र धारण किये देख वहाँ महान् हाहाकार मच गया । उस समय आकाशचारी प्राणी भी आकाशमें विचरण नहीं करते थे ॥ ५१½ ॥

अस्त्रे ते वारुणाग्नेये ताभ्यां बाणसमाहिते ॥ ५२ ॥
न यावदभ्यपद्येतां व्यावर्तदथ भास्करः ।

वे वारुण और आग्नेय दोनों अस्त्र उन दोनोंके द्वारा अपने बाणोंमें स्थापित होकर जबतक एक दूसरेके प्रभावसे प्रतिहत नहीं हो गये, तभीतक भगवान् सूर्य दक्षिणसे पश्चिमके आकाशमें ढल गये ॥ ५२½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ ५३ ॥
नकुलः सहदेवश्च पर्यरक्षन्त सात्यकिम् ।

तब राजा युधिष्ठिर, पाण्डुकुमार भीमसेन, नकुल और सहदेव सब ओरसे सात्यकिकी रक्षा करने लगे ॥ ५३½ ॥

धृष्टद्युम्नमुखैः सार्धं विराटश्च सकेकयः ॥ ५४ ॥
मत्स्याः शाल्वेयसेनाश्च द्रोणमाजग्मुरञ्जसा ।

धृष्टद्युम्न आदि वीरोंके साथ विराट, केकयराजकुमार, मत्स्यदेशीय सैनिक तथा शाल्वदेशकी सेनाएँ—ये सब-के-सब अनायास ही द्रोणाचार्यपर चढ़ आये ॥ ५४½ ॥

दुःशासनं पुरस्कृत्य राजपुत्राः सहस्रशः ॥ ५५ ॥
द्रोणमभ्युपपद्यन्त सपत्नैः परिवारितम् ।

उधरसे सहस्रों राजकुमार दुःशासनको आगे करके शत्रुओंसे घिरे हुए द्रोणाचार्यके पास उनकी रक्षाके लिये आ पहुँचे ॥ ५५½ ॥

ततो युद्धमभूद् राजंस्तेषां तव च धन्विनाम् ॥ ५६ ॥
रजसा संवृते लोके शरजालसमावृते ।

राजन् ! तदनन्तर पाण्डवोंके और आपके धनुर्धरोंका परस्पर युद्ध होने लगा । उस समय सब लोग धूलसे आवृत और बाणसमूहसे आच्छादित हो गये थे ॥ ५६½ ॥

सर्वमाविग्नमभवन्न प्राज्ञायत किंचन ।
सैन्येन रजसा ध्वस्ते निर्मर्यादमवर्तत ॥ ५७ ॥

वहाँका सब कुछ उद्विग्न हो रहा था । सेनाद्वारा उड़ायी हुई धूलसे ध्वस्त होनेके कारण किसीको कुछ ज्ञात नहीं होता था । वहाँ मर्यादाशून्य युद्ध चल रहा था ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणसात्यकियुद्धे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्रोण और सात्यकिका युद्धविषयक अट्ठानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९८ ॥

एकोनशततमोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा तीव्र गतिसे कौरवसेनामें प्रवेश, विन्द और अनुविन्दका वध तथा अद्भुत जलाशयका निर्माण

संजय उवाच

(वर्तमाने तदा युद्धे द्रोणस्य सह पाण्डुभिः ॥)
विवर्तमाने त्वादित्ये तत्रास्तशिखरं प्रति ।
रजसा कीर्यमाणे च मन्दीभूते दिवाकरे ॥ १ ॥
तिष्ठतां युध्यमानानां पुनरावर्ततामपि ।
भज्यतां जयतां चैव जगाम तदहः शनैः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब द्रोणाचार्यका पाण्डवोंके साथ युद्ध हो रहा था और सूर्य अस्ताचलके शिखरकी ओर ढल चुके थे, उस समय धूलसे आवृत होनेके कारण दिवाकरकी रश्मियाँ मन्द दिखायी देने लगी थीं । योद्धाओंमेंसे कोई तो खड़े थे, कोई युद्ध करते थे, कोई भागकर पुनः पीछे लौटते थे और कोई विजयी हो रहे थे । इस प्रकार

उन सब लोगोंका वह दिन धीरे-धीरे बीतता चला जा रहा था ॥ १-२ ॥

तथा तेषु विषक्तेषु सैन्येषु जयगृद्धिषु ।
अर्जुनो वासुदेवश्च सैन्धवायैव जग्मतुः ॥ ३ ॥

विजयकी अभिलाषा रखनेवाली वे समस्त सेनाएँ जब युद्धमें इस प्रकार अनुरक्त हो रही थीं, तब अर्जुन और श्रीकृष्ण सिन्धुराज जयद्रथको प्राप्त करनेके लिये ही आगे बढ़ते चले गये ॥ ३ ॥

रथमार्गप्रमाणं तु कौन्तेयो निशितैः शरैः ।
चकार यत्र पन्थानं ययौ येन जनार्दनः ॥ ४ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुन अपने तीखे बाणोंद्वारा वहाँ रथके जाने योग्य रास्ता बना लेते थे, जिससे श्रीकृष्ण रथ लिये आगे बढ़ जाते थे ॥ ४ ॥

यत्र यत्र रथो याति पाण्डवस्य महात्मनः ।
तत्र तत्रैव दीर्यन्ते सेनास्तव विशाम्पते ॥ ५ ॥

प्रजानाथ ! महामना पाण्डुनन्दन अर्जुनका रथ जहाँ-जहाँ जाता था, वहीं-वहीं आपकी सेनामें दरार पड़ जाती थी ॥५॥

रथशिक्षां तु दाशार्हो दर्शयामास वीर्यवान् ।
उत्तमाधममध्यानि मण्डलानि विदर्शयन् ॥ ६ ॥

दशार्हवंशी परम पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण उत्तम, मध्यम और अधम तीनों प्रकारके मण्डल दिखाते हुए अपनी उत्तम रथ-शिक्षाका प्रदर्शन करते थे ॥ ६ ॥

ते तु नामाङ्किताः पीताः कालज्वलनसंनिभाः ।
स्नायुनद्धाः सुपर्वाणः पृथवो दीर्घगामिनः ॥ ७ ॥
वैणवाश्चायसाश्चोग्रा ग्रसन्तो विविधानरीन् ।
रुधिरं पतगैः सार्धं प्राणिनां पपुराहवे ॥ ८ ॥

अर्जुनके बाणोंपर उनका नाम अङ्कित था। उनपर पानी चढ़ाया गया था। वे कालाग्निके समान भयंकर, ताँतमें बँधे हुए, सुन्दर पंखवाले, मोटे तथा दूरतक जानेवाले थे। उनमेंसे कुछ तो बाँसके बने हुए थे और कुछ लोहेके। वे सभी भयंकर थे और नाना प्रकारके शत्रुओंका संहार करते हुए पक्षियोंके साथ उड़कर युद्धस्थलमें प्राणियोंका रक्त पीते थे ॥ ७-८ ॥

रथस्थितोऽग्रतः क्रोशं यानस्यत्यर्जुनः शरान् ।
रथे क्रोशमतिक्रान्ते तस्य ते घ्नन्ति शात्रवान् ॥ ९ ॥

रथपर बैठे हुए अर्जुन अपने आगे एक कोसकी दूरीतक जिन बाणोंको फेंकते थे, वे बाण उनके शत्रुओंका जबतक संहार करते, तबतक उनका रथ एक कोस और आगे निकल जाता था ॥ ९ ॥

तार्क्ष्यमारुतरंहोभिर्वाजिभिः साधुवाहिभिः ।
तदागच्छद्धृषीकेशः कृत्स्नं विस्मापयञ्जगत् ॥ १० ॥

उस समय भगवान् हृषीकेश अच्छी प्रकारसे रथका भार वहन करनेवाले गरुड़ एवं वायुके समान वेगशाली घोड़ोंद्वारा सम्पूर्ण जगत्को आश्चर्यचकित करते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ १० ॥

न तथा गच्छति रथस्तपनस्य विशाम्पते ।
नेन्द्रस्य न तु रुद्रस्य नापि वैश्रवणस्य च ॥ ११ ॥

प्रजानाथ ! सूर्य, इन्द्र, रुद्र तथा कुबेरका भी रथ वैसी तीव्र गतिसे नहीं चलता था, जैसे अर्जुनका चलता था ॥ ११ ॥

नान्यस्य समरे राजन् गतपूर्वस्तथा रथः ।
यथा ययावर्जुनस्य मनोऽभिप्रायशीघ्रगः ॥ १२ ॥

राजन् ! समरभूमिमें दूसरे किसीका रथ पहले कभी उस प्रकार तीव्र गतिसे नहीं चला था, जैसे अर्जुनका रथ मनकी अभिलाषाके अनुरूप शीघ्र गतिसे चलता था ॥ १२ ॥

प्रविश्य तु रणे राजन् केशवः परवीरहा ।
सेनामध्ये हयांस्तूर्णं चोदयामास भारत ॥ १३ ॥

महाराज ! भरतनन्दन ! शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने रणभूमिमें सेनाके भीतर प्रवेश करके अपने घोड़ोंको तीव्र वेगसे हाँका ॥ १३ ॥

ततस्तस्य रथौघस्य मध्यं प्राप्य हयोत्तमाः ।
कृच्छ्रेण रथमूहुस्तं क्षुत्पिपासासमन्विताः ॥ १४ ॥

तदनन्तर रथियोंके समूहके मध्यभागमें पहुँचकर भूख और प्याससे पीड़ित हुए वे उत्तम घोड़े बड़ी कठिनाईसे उस रथका भार वहन कर पाते थे ॥ १४ ॥

क्षताश्च बहुभिः शस्त्रैर्युद्धशौण्डैरनेकशः ।
मण्डलानि विचित्राणि विचेरुस्ते मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥

युद्धकुशल योद्धाओंने बहुत-से शस्त्रोंद्वारा उन्हें अनेक बार घायल कर दिया और वे क्षत-विक्षत हो बारंबार विचित्र मण्डलाकार गतिसे विचरण करते रहे ॥ १५ ॥

हतानां वाजिनागानां रथानां च नरैः सह ।
उपरिष्टादतिक्रान्ताः शैलाभानां सहस्रशः ॥ १६ ॥

रण-भूमिमें सहस्रों पर्वताकार हाथी, घोड़े, रथ और पैदल मनुष्य मरे पड़े थे। उन सबको अर्जुनके घोड़े ऊपर-ही-ऊपर लाँघ जाते थे ॥ १६ ॥

(श्रमेण महता युक्तास्ते हया वातरंहसः ।
मन्दवेगगता राजन् संवृत्तास्तत्र संयुगे ॥)

राजन् ! वे वायुके समान वेगशाली अश्व उस युद्धस्थलमें अधिक परिश्रमसे थक जानेके कारण मन्दगतिसे चलने लगे ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरावावन्त्यौ भ्रातरौ नृप ।
सहसेनौ समार्च्छेतां पाण्डवं क्लान्तवाहनम् ॥ १७ ॥

नरेश्वर ! इसी बीचमें अवन्तीके वीर राजकुमार दोनों

भाई विन्द और अनुविन्द थके हुए घोड़ोंवाले पाण्डुनन्दन अर्जुनका सामना करनेके लिये अपनी सेनाके साथ आये ॥ १७ ॥

तावर्जुनं चतुःषष्ट्या सप्तत्या च जनार्दनम्।
शराणां च शतैरश्वानविध्येतां मुदान्वितौ ॥ १८ ॥

उन दोनोंने अर्जुनको चौसठ और श्रीकृष्णको सत्तर बाण मारे तथा उनके घोड़ोंको सौ बाणोंसे घायल कर दिया। ऐसा करके उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १८ ॥

तावर्जुनो महाराज नवभिर्नतपर्वभिः।
आजघान रणे क्रुद्धो मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ १९ ॥

महाराज! मर्मको जाननेवाले अर्जुनने रणक्षेत्रमें कुपित होकर झुकी हुई गाँठवाले नौ मर्मभेदी बाणोंद्वारा उन दोनोंको चोट पहुँचायी ॥ १९ ॥

ततस्तौ तु शरौघेण बीभत्सुं सहकेशवम्।
आच्छादयेतां संरब्धौ सिंहनादं च चक्रतुः ॥ २० ॥

तब उन दोनों भाइयोंने कुपित हो श्रीकृष्णसहित अर्जुनको अपने बाणसमूहोंसे आच्छादित कर दिया और बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ २० ॥

तयोस्तु धनुषी चित्रे भल्लाभ्यां श्वेतवाहनः।
चिच्छेद समरे तूर्णं ध्वजौ च कनकोज्ज्वलौ ॥ २१ ॥

तदनन्तर श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुनने समराङ्गणमें दो बाणोंद्वारा उनके दोनों विचित्र धनुषों और सुवर्णके समान प्रकाशित होनेवाले दोनों ध्वजोंको भी तुरंत ही काट डाला ॥ २१ ॥

अथान्ये धनुषी राजन् प्रगृह्य समरे तदा।
पाण्डवं भृशसंक्रुद्धावर्दयामासतुः शरैः ॥ २२ ॥

राजन्! फिर वे दोनों भाई अत्यन्त कुपित हो उठे और उस समय समराङ्गणमें दूसरे धनुष लेकर उन्होंने बाणोंद्वारा पाण्डुकुमार अर्जुनको गहरी पीड़ा दी ॥ २२ ॥

तयोस्तु भृशसंक्रुद्धः शराभ्यां पाण्डुनन्दनः।
धनुषी चिच्छिदे तूर्णं भूय एव धनंजयः ॥ २३ ॥

यह देख पाण्डुनन्दन धनंजय अत्यन्त क्रोधसे जल उठे और दो बाण मारकर तुरंत ही उन्होंने उन दोनोंके धनुष पुनः काट डाले ॥ २३ ॥

तथान्यैर्विशिखैस्तूर्णं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः।
जघानाश्वांस्तथा सूतौ पार्ष्णी च सपदानुगौ ॥ २४ ॥

फिर सुवर्णमय पंखोंवाले और शानपर चढ़ाकर तेज किये हुए दूसरे बाणोंद्वारा उनके घोड़ोंको एवं दोनों सारथियों, पार्श्वरक्षकों तथा पदानुगामी सेवकोंको भी शीघ्र ही मार डाला ॥ २४ ॥

ज्येष्ठस्य च शिरः कायात् क्षुरप्रेण न्यकृन्तत।
स पपात हतः पृथ्व्यां वातरुग्ण इव द्रुमः ॥ २५ ॥

इसके बाद एक क्षुरप्रद्वारा बड़े भाई विन्दका मस्तक धड़से काट दिया। विन्द आँधीके उखाड़े हुए वृक्षके समान मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २५ ॥

विन्दं तु निहतं दृष्ट्वा ह्यनुविन्दः प्रतापवान्।
हताश्वं रथमुत्सृज्य गदां गृह्य महाबलः ॥ २६ ॥
अभ्यवर्तत संग्रामे भ्रातुर्वधमनुस्मरन्।

विन्दको मारा गया देख महाबली और प्रतापी अनुविन्द अपने भाईके वधका बारंबार चिन्तन करता हुआ अश्वहीन रथको त्यागकर हाथमें गदा ले संग्रामभूमिमें डटा रहा ॥ २६½ ॥

गदया रथिनां श्रेष्ठो नृत्यन्निव महारथः ॥ २७ ॥
अनुविन्दस्तु गदया ललाटे मधुसूदनम्।
स्पृष्ट्वा नाकम्पयत् क्रुद्धो मैनाकमिव पर्वतम् ॥ २८ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ महारथी अनुविन्दने कुपित हो नृत्य-सा करते हुए गदाद्वारा मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णके ललाटमें आघात किया; परंतु मैनाकपर्वतके समान श्रीकृष्णको कम्पित न कर सका ॥ २७-२८ ॥

तस्यार्जुनः शरैः षड्भिर्ग्रीवां पादौ भुजौ शिरः।
निचकर्त स संछिन्नः पपाताद्रिचयो यथा ॥ २९ ॥

तब अर्जुनने छः बाणोंद्वारा उसकी गर्दन, दोनों पैरों दोनों भुजाओं तथा मस्तकको भी काट डाला। इस प्रकार छिन्न-भिन्न होकर वह पर्वतसमूहके समान धराशायी हो गया ॥ २९ ॥

ततस्तौ निहतौ दृष्ट्वा तयो राजन् पदानुगाः।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः किरन्तः शतशः शरान् ॥ ३० ॥

राजन्! तब उन दोनों भाइयोंको मारा गया देख उनके सेवकगण अत्यन्त कुपित हो अर्जुनपर सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करते हुए टूट पड़े ॥ ३० ॥

तानर्जुनः शरैस्तूर्णं निहत्य भरतर्षभ।
व्यरोचत यथा वह्निर्दावं दग्ध्वा हिमात्यये ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ! अर्जुन बाणोंद्वारा तुरंत ही उन सबका संहार करके ग्रीष्मऋतुमें वनको जलाकर प्रकाशित होनेवाले अग्निदेवके समान सुशोभित हुए ॥ ३१ ॥

तयोः सेनामतिक्राम्य कृच्छ्रादिव धनंजयः।
विबभौ जलदं हित्वा दिवाकर इवोदितः ॥ ३२ ॥

उन दोनोंकी सेनाका बड़ी कठिनाईसे उल्लङ्घन करके अर्जुन मेघोंका आवरण भेदकर उदित हुए सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ ३२ ॥

तं दृष्ट्वा कुरवस्त्रस्ताः प्रहृष्टाश्चाभवन् पुनः।
अभ्यवर्तन्त पार्थं च समन्ताद् भरतर्षभ ॥ ३३ ॥

भरतश्रेष्ठ! उन्हें देखकर कौरवसैनिक पहले तो भयभीत हुए। फिर प्रसन्न भी हो गये। वे चारों ओरसे कुन्तीकुमारका सामना करनेके लिये डट गये ॥ ३३ ॥

श्रान्तं चैनं समालक्ष्य ज्ञात्वा दूरे च सैन्धवम्।

सिंहनादेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३४ ॥

अर्जुनको थका हुआ देख और सिन्धुराज जयद्रथको उनसे बहुत दूर जानकर आपके सैनिकोंने महान् सिंहनाद करते हुए उन्हें सब ओरसे घेर लिया ॥ ३४ ॥

तांस्तु दृष्ट्वा सुसंरब्धानुत्स्मयन् पुरुषर्षभः ।
शनकैरिव दाशार्हमर्जुनो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

उन सबको क्रोधमें भरा देख पुरुषशिरोमणि अर्जुनने मुसकराते हुए धीरे-धीरे भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—॥ ३५ ॥

शरार्दिताश्च ग्लानाश्च हया दूरे च सैन्धवः ।
किमिहानन्तरं कार्यं ज्यायिष्ठं तव रोचते ॥ ३६ ॥

'मेरे घोड़े बाणोंसे पीड़ित हो बहुत थक गये हैं और सिन्धुराज जयद्रथ अभी बहुत दूर है । अतः इस समय यहाँ कौन-सा कार्य आपको श्रेष्ठ जान पड़ता है ॥ ३६ ॥

ब्रूहि कृष्ण यथातत्त्वं त्वं हि प्राज्ञतमः सदा ।
भवन्नेत्रा रणे शत्रून् विजेष्यन्तीह पाण्डवाः ॥ ३७ ॥

'श्रीकृष्ण ! आप ही सदा सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी हैं । अतः मुझे यथार्थ बात बताइये । आपको नायक बनाकर ही पाण्डव इस रणक्षेत्रमें शत्रुओंपर विजयी होंगे ॥ ३७ ॥

मम त्वनन्तरं कृत्यं यद् वै तत् त्वं निबोध मे ।
हयान् विमुच्य हि सुखं विशल्यान् कुरु माधव ॥ ३८ ॥

'माधव ! मेरी दृष्टिमें इस समय जो कर्तव्य है, वह बताता हूँ, आप मुझसे सुनिये । घोड़ोंको खोलकर इन्हें सुख पहुँचानेके लिये इनके शरीरसे बाण निकाल दीजिये' ॥ ३८ ॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः प्रत्युवाच तम् ।
ममाप्येतन्मतं पार्थ यदिदं ते प्रभाषितम् ॥ ३९ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—'पार्थ ! तुमने इस समय जो बात कही है, यही मुझे भी अभीष्ट है' ॥ ३९ ॥

अर्जुन उवाच

अहमावारयिष्यामि सर्वसैन्यानि केशव ।
त्वमप्यत्र यथान्यायं कुरु कार्यमनन्तरम् ॥ ४० ॥

अर्जुन बोले—केशव ! मैं इन समस्त सेनाओंको रोक रक्खूँगा । आप भी यहाँ इस समय करनेयोग्य यथोचित कार्य सम्पन्न करें ॥ ४० ॥

संजय उवाच

सोऽवतीर्य रथोपस्थादसम्भ्रान्तो धनंजयः ।
गाण्डीवं धनुरादाय तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ ४१ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! अर्जुन बिना किसी घबराहटके रथकी बैठकसे उतर पड़े और गाण्डीव धनुष हाथमें लेकर पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हो गये ॥ ४१ ॥

तमभ्यधावन् क्रोशन्तः क्षत्रिया जयकाङ्क्षिणः ।
इदं छिद्रमिति ज्ञात्वा धरणीस्थं धनंजयम् ॥ ४२ ॥

धनंजयको धरतीपर खड़ा जान 'यही अवसर है' ऐसा कहते हुए विजयाभिलाषी क्षत्रिय हल्ला मचाते हुए उनकी ओर दौड़े ॥ ४२ ॥

तमेकं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ।
विकर्षन्तश्च चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ॥ ४३ ॥

उन सबने महान् रथसमूहके द्वारा एकमात्र अर्जुनको चारों ओर घेर लिया । वे सब-के-सब धनुष खींचते और उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करते थे ॥ ४३ ॥

शस्त्राणि च विचित्राणि क्रुद्धास्तत्र व्यदर्शयन् ।
छादयन्तः शरैः पार्थं मेघा इव दिवाकरम् ॥ ४४ ॥

जैसे बादल सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार बाणोंद्वारा कुन्तीकुमार अर्जुनको आच्छादित करते हुए कुपित कौरव-सैनिक वहाँ विचित्र अस्त्र-शस्त्रोंका प्रदर्शन करने लगे ॥ ४४ ॥

अभ्यद्रवन्त वेगेन क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ।
नरसिंहं रथोदाराः सिंहं मत्ता इव द्विपाः ॥ ४५ ॥

जैसे मतवाले हाथी सिंहपर धावा करते हों, उसी प्रकार वे श्रेष्ठ रथी क्षत्रिय क्षत्रियशिरोमणि नरसिंह अर्जुनपर बड़े वेगसे टूट पड़े थे ॥ ४५ ॥

तत्र पार्थस्य भुजयोर्महद्बलमदृश्यत ।
यत् क्रुद्धो बहुलाः सेनाः सर्वतः समवारयत् ॥ ४६ ॥

उस समय वहाँ अर्जुनकी दोनों भुजाओंका महान् बल देखनेमें आया । उन्होंने कुपित होकर उन विशाल सेनाओंको सब ओर जहाँ-की-तहाँ रोक दिया ॥ ४६ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतो विभुः ।
इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं सर्वानेव समावृणोत् ॥ ४७ ॥

शक्तिशाली अर्जुनने अपने अस्त्रोंद्वारा शत्रुओंके सम्पूर्ण अस्त्रोंका सब ओरसे निवारण करके अपने बहुसंख्यक बाणोंद्वारा तुरंत उन सबको ही आच्छादित कर दिया ॥ ४७ ॥

तत्रान्तरिक्षे बाणानां प्रगाढानां विशाम्पते ।
संघर्षेण महार्चिष्मान् पावकः समजायत ॥ ४८ ॥

प्रजानाथ ! वहाँ अन्तरिक्षमें ठसाठस भरे हुए बाणोंकी रगड़से भारी लपटोंसे युक्त आग प्रकट हो गयी ॥ ४८ ॥

तत्र तत्र महेष्वासैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः ।
हयैर्नागैश्च सम्भिन्नैर्नदद्भिश्चारिकर्षणैः ॥ ४९ ॥
संरब्धैश्चारिभिर्वीरैः प्रार्थयद्भिर्जयं मृधे ।
एकस्थैर्बहुभिः क्रुद्धैरूष्मेव समजायत ॥ ५० ॥

तदनन्तर जहाँ तहाँ हाँफते और खूनसे लथपथ हुए महाधनुर्धर योद्धाओं अर्जुनके शत्रुनाशक बाणोंद्वारा विदीर्ण हो चीत्कार करते हुए हाथियों और घोड़ों तथा युद्धमें

विजयकी अभिलाषा लिये रोषावेशमें भरकर एक जगह कुपित खड़े हुए बहुतेरे वीर शत्रुओंके जमघटसे उस स्थानपर गर्मी-सी होने लगी ॥ ४९-५० ॥

शरोर्मिणं ध्वजावर्तं नागनक्रं दुरत्ययम् ।
पदातिमत्स्यकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ ५१ ॥
असंख्येयमपारं च रथोर्मिणमतीव च ।
उष्णीषकमठं छत्रपताकाफेनमालिनम् ॥ ५२ ॥
रणसागरमक्षोभ्यं मातङ्गाङ्गशिलाचितम् ।
वेलाभूतस्तदा पार्थः पत्रिभिः समवारयत् ॥ ५३ ॥

उस समय अर्जुनने उस असंख्य, अपार, दुर्लङ्घ्य एवं अक्षोभ्य रण-समुद्रको सीमावर्ती तटप्रान्तके समान होकर अपने बाणोंद्वारा रोक दिया ! उस रण-सागरमें बाणोंकी तरङ्गें उठ रही थीं, फहराते हुए ध्वज भौंरोंके समान जान पड़ते थे, हाथी ग्राह थे, पैदल सैनिक मत्स्य और कीचड़के समान प्रतीत होते थे, शङ्खों और दुन्दुभियोंकी ध्वनि ही उस रण-सिन्धुकी गम्भीर गर्जना थी, रथ ऊँची-ऊँची लहरोंके समान जान पड़ते थे, योद्धाओंकी पगड़ी और टोप कछुओंके समान थे, छत्र और पताकाएँ फेनराशि-सी प्रतीत होती थीं तथा मतवाले हाथियोंकी लाशें ऊँचे-ऊँचे शिलाखण्डोंके समान उस सैन्यसागरको व्याप्त किये हुए थीं ॥ ५१—५३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अर्जुने धरणीं प्राप्ते हयहस्ते च केशवे ।
एतदन्तरमासाद्य कथं पार्थो न घातितः ॥ ५४ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब अर्जुन धरतीपर उतर आये और भगवान् श्रीकृष्णने घोड़ोंकी चिकित्सामें हाथ लगाया, तब यह अवसर पाकर मेरे सैनिकोंने कुन्तीकुमारका वध क्यों नहीं कर डाला ? ॥ ५४ ॥

संजय उवाच

सद्यः पार्थिव पार्थेन निरुद्धाः सर्वपार्थिवाः ।
रथस्था धरणीस्थेन वाक्यमच्छान्दसं यथा ॥ ५५ ॥

संजयने कहा—महाराज ! उस समय पार्थने पृथ्वीपर खड़े होकर रथपर बैठे हुए समस्त भूपालोंको सहसा उसी प्रकार रोक दिया, जैसे वेदविरुद्ध वाक्य अग्राह्य कर दिया जाता है ॥ ५५ ॥

स पार्थः पार्थिवान् सर्वान् भूमिस्थोऽपि रथस्थितान् ।
एको निवारयामास लोभः सर्वगुणानिव ॥ ५६ ॥

अर्जुनने अकेले ही पृथ्वीपर खड़े रहकर भी रथपर बैठे हुए समस्त पृथ्वीपतियोंको उसी प्रकार रोक दिया, जैसे लोभ सम्पूर्ण गुणोंका निवारण कर देता है ॥ ५६ ॥

ततो जनार्दनः संख्ये प्रियं पुरुषसत्तमम् ।
असम्भ्रान्तो महाबाहुरर्जुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५७ ॥

तदनन्तर सम्भ्रमरहित महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णने युद्धस्थलमें अपने प्रिय सखा पुरुषप्रवर अर्जुनसे यह बात कही—॥ ५७ ॥

उदपानमिहाश्वानां नालमस्ति रणेऽर्जुन ।
परीप्सन्ते जलं चेमे पेयं न त्ववगाहनम् ॥ ५८ ॥

'अर्जुन ! यहाँ घोड़ोंके पीनेके लिये पर्याप्त जल नहीं है। ये पीनेयोग्य जल चाहते हैं। इन्हें स्नानकी इच्छा नहीं है' ॥ ५८ ॥

इदमस्तीत्यसम्भ्रान्तो ब्रुवन्नस्त्रेण मेदिनीम् ।
अभिहत्यार्जुनश्चक्रे वाजिपानं सरः शुभम् ॥ ५९ ॥

'यह रहा इनके पीनेके लिये जल' ऐसा कहकर अर्जुनने बिना किसी घबराहटके अस्त्रद्वारा पृथ्वीपर आघात करके घोड़ोंके पीनेयोग्य जलसे भरा हुआ सुन्दर सरोवर उत्पन्न कर दिया ॥ ५९ ॥

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।
सुविस्तीर्णं प्रसन्नाम्भः प्रफुल्लवरपङ्कजम् ॥ ६० ॥

उसमें हंस और कारण्डव आदि जलपक्षी भरे हुए थे, चक्रवाक उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। स्वच्छ जलसे युक्त उस विशाल सरोवरमें सुन्दर कमल खिले हुए थे ॥ ६० ॥

कूर्ममत्स्यगणाकीर्णमगाधमृषिसेवितम् ।
आगच्छन्नारदमुनिर्दर्शनार्थं कृतं क्षणात् ॥ ६१ ॥

वह अगाध जलाशय कछुओं और मछलियोंसे भरा था। ऋषिगण उसका सेवन करते थे। तत्काल प्रकट किये हुए ऐसी योग्यतावाले उस सरोवरका दर्शन करनेके लिये देवर्षि नारदजी वहाँ आये ॥ ६१ ॥

शरवंशं शरस्थूणं शराच्छादनमद्भुतम् ।
शरवेश्माकरोत् पार्थस्त्वष्टेवाद्भुतकर्मकृत् ॥ ६२ ॥

विश्वकर्माके समान अद्भुत कर्म करनेवाले अर्जुनने वहाँ बाणोंका एक अद्भुत घर बना दिया था, जिनमें बाणोंके ही बाँस, बाणोंके ही खम्भे और बाणोंकी ही छाजन थी ॥ ६२ ॥

ततः प्रहस्य गोविन्दः साधु साध्वित्यथाब्रवीत् ।
शरवेश्मनि पार्थेन कृते तस्मिन् महात्मना ॥ ६३ ॥

महामना अर्जुनके द्वारा वह बाणमय गृह निर्मित हो जानेपर भगवान् श्रीकृष्णने हँसकर कहा—'शाबास अर्जुन, शाबास' ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि विन्दानुविन्दवधे अर्जुनसरोनिर्माणे च एकोनशततमोऽध्यायः । ९९ ।

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें विन्द और अनुविन्दका वध तथा अर्जुनके द्वारा जलाशयका निर्माणविषयक निन्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके $1\frac{1}{2}$ श्लोक मिलाकर कुल $64\frac{1}{2}$ श्लोक हैं)

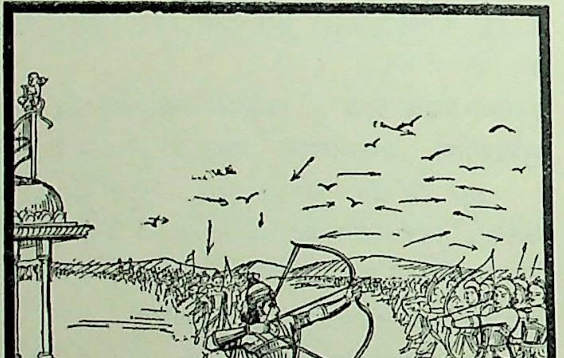
शततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णके द्वारा अश्वपरिचर्या तथा खा-पीकर हृष्ट-पुष्ट हुए अश्वोंद्वारा अर्जुनका पुनः शत्रुसेनापर आक्रमण करते हुए जयद्रथकी ओर बढ़ना

संजय उवाच

सलिले जनिते तस्मिन् कौन्तेयेन महात्मना ।
निस्तारिते द्विषत्सैन्ये कृते च शरवेश्मनि ॥ १ ॥
वासुदेवो रथात् तूर्णमवतीर्य महाद्युतिः ।
मोचयामास तुरगान् विनुन्नान् कङ्कपत्रिभिः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब महात्मा कुन्तीकुमारने वह जल उत्पन्न कर दिया, शत्रुओंकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया और बाणोंका घर बना दिया, तब महातेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णने तुरंत ही रथसे उतरकर कंकपत्रयुक्त बाणोंसे क्षत-विक्षत हुए घोड़ोंको खोल दिया ॥ १-२ ॥



अदृष्टपूर्वं तद् दृष्ट्वा साधुवादो महानभूत् ।
सिद्धचारणसंघानां सैनिकानां च सर्वशः ॥ ३ ॥

यह अदृष्टपूर्व कार्य देखकर सिद्ध, चारण तथा सैनिकोंके मुखसे निकला हुआ महान् साधुवाद सब ओर गूँज उठा ॥ ३ ॥

पदातिनं तु कौन्तेयं युध्यमानं महारथाः ।
नाशक्नुवन् वारयितुं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४ ॥

पैदल युद्ध करते हुए कुन्तीकुमार अर्जुनको समस्त महारथी मिलकर भी न रोक सके; यह अद्भुत-सी बात हुई ॥ ४ ॥

आपतत्सु रथौघेषु प्रभूतगजवाजिषु ।
नासम्भ्रमत् तदा पार्थस्तदस्य पुरुषानति ॥ ५ ॥

रथियोंके समूह तथा बहुत-से हाथी-घोड़े सब ओरसे उनपर टूट पड़े थे, तो भी उस समय कुन्तीकुमार अर्जुनको तनिक भी घबराहट नहीं हुई । उनका यह धैर्य और साहस समस्त पुरुषोंसे बढ़-चढ़कर था ॥ ५ ॥

व्यसृजन्त शरौघांस्ते पाण्डवं प्रति पार्थिवाः ।
न चाव्यथत धर्मात्मा वासविः परवीरहा ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण भूपाल पाण्डुनन्दन अर्जुनपर बाणसमूहोंकी वर्षा कर रहे थे, तो भी शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले इन्द्रकुमार धर्मात्मा पार्थ तनिक भी व्यथित नहीं हुए ॥ ६ ॥

स तानि शरजालानि गदाः प्रासांश्च वीर्यवान् ।
आगतानग्रसत् पार्थः सरितः सागरो यथा ॥ ७ ॥

उन पराक्रमी कुन्तीकुमारने शत्रुओंके उन बाणसमूहों, गदाओं और प्रासोंको अपने पास आनेपर उसी प्रकार ग्रस लिया, जैसे समुद्र सरिताओंको अपनेमें मिला लेता है ॥७॥

अस्त्रवेगेन महता पार्थो बाहुबलेन च ।
सर्वेषां पार्थिवेन्द्राणामग्रसत् तान् शरोत्तमान्॥ ८ ॥

अर्जुनने अस्त्रोंके महान् वेग और बाहुबलसे समस्त राजाधिराजोंके उत्तमोत्तम बाणोंको नष्ट कर दिया ॥ ८ ॥

तत् तु पार्थस्य विक्रान्तं वासुदेवस्य चोभयोः ।
अपूजयन् महाराज कौरवा महदद्भुतम् ॥ ९ ॥

महाराज ! अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण दोनोंके उस अत्यन्त अद्भुत पराक्रमकी समस्त कौरवोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ९ ॥

किमद्भुततमं लोके भविताप्यथवा ह्यभूत् ।
यदश्वान् पार्थगोविन्दौ मोचयामासतू रणे ॥ १० ॥

संसारमें इससे बढ़कर और कोई अत्यन्त अद्भुत घटना क्या होगी अथवा हुई होगी कि अर्जुन और श्रीकृष्णने उस भयंकर संग्राममें भी घोड़ोंको रथसे खोल दिया ॥ १० ॥

भयं विपुलमस्मासु तावधत्तां नरोत्तमौ ।
तेजो विदधतुश्चोग्रं विस्रब्धौ रणमूर्धनि ॥ ११ ॥

उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंने हमलोगोंमें महान् भय उत्पन्न कर दिया और युद्धके मुहानेपर निर्भय और निश्चिन्त होकर अपने भयानक तेजका प्रदर्शन किया ॥ ११ ॥

अथ स्मयन् हृषीकेशः स्त्रीमध्य इव भारत ।
अर्जुनेन कृते संख्ये शरगर्भगृहे तथा ॥ १२ ॥

भरतनन्दन ! युद्धस्थलमें अर्जुनके बनाये हुए उस बाणनिर्मित गृहमें भगवान् श्रीकृष्ण उसी प्रकार मुसकराते हुए निर्भय खड़े थे, मानो वे स्त्रियोंके बीचमें हों ॥ १२ ॥

उपावर्तयदव्यग्रस्तानश्वान् पुष्करेक्षणः ।
मिषतां सर्वसैन्यानां त्वदीयानां विशाम्पते ॥ १३ ॥

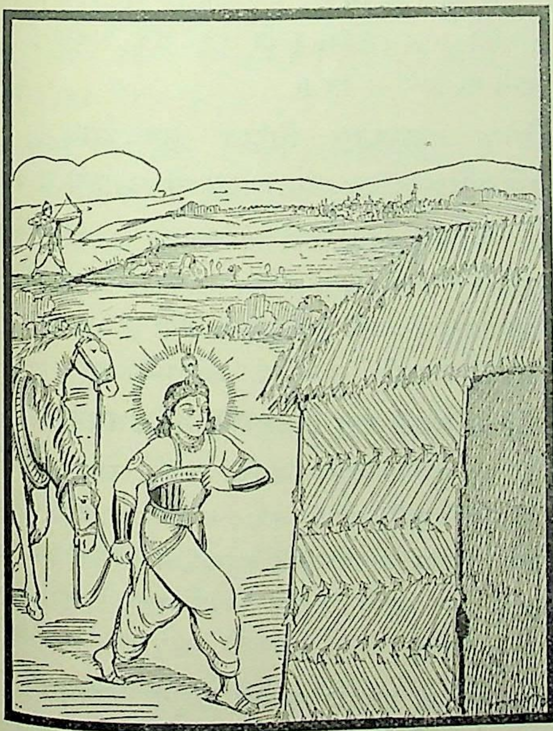
प्रजानाथ ! कमलनयन श्रीकृष्णने आपके सम्पूर्ण सैनिकोंके देखते-देखते उद्वेगशून्य होकर उन घोड़ोंको टहलाया ॥

तेषां श्रमं च ग्लानिं च वमथुं वेपथुं व्रणान् ।
सर्वं व्यपानुदत् कृष्णः कुशलो ह्यश्वकर्मणि ॥ १४ ॥

घोड़ोंकी चिकित्सा करनेमें कुशल श्रीकृष्णने उनके परिश्रम, थकावट, वमन, कम्पन और घाव—सारे कष्टोंको दूर कर दिया ॥ १४ ॥

शल्यानुद्धृत्य पाणिभ्यां परिमृज्य च तान् हयान् ।
उपावर्त्य यथान्यायं पाययामास वारि सः ॥ १५ ॥

उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे बाण निकालकर उन घोड़ोंको मला और यथोचित रूपसे टहलाकर उन्हें पानी पिलाया ॥



स तॉंल्लब्धोदकान् स्नातान् जग्धान्नान् विगतक्लमान् ।
योजयामास संहृष्टः पुनरेव रथोत्तमे ॥ १६ ॥

श्रीकृष्णने पानी पिलाकर उन्हें नहलाया, घास और दाने खिलाये तथा जब उनकी सारी थकावट दूर हो गयी, तब पुनः उस उत्तम रथमें उन्हें बड़ी प्रसन्नताके साथ जोत दिया ॥ १६ ॥

स तं रथवरं शौरिः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
समास्थाय महातेजाः सार्जुनः प्रययौ द्रुतम् ॥ १७ ॥

तदनन्तर सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी श्रीकृष्ण उस उत्तम रथपर अर्जुनसहित आरूढ़ हो बड़े वेगसे आगे बढ़े ॥

रथं रथवरस्याजौ युक्तं लब्धोदकैर्हयैः ।
दृष्ट्वा कुरुबलश्रेष्ठाः पुनर्विमनसोऽभवन् ॥ १८ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके उस रथको समराङ्गणमें पानी पीकर सुस्ताये हुए घोड़ोंसे जुता हुआ देख कौरवसेनाके श्रेष्ठ वीर फिर उदास हो गये ॥ १८ ॥

विनिःश्वसन्तस्ते राजन् भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ।
धिगहो धिग्गतः पार्थः कृष्णश्चेत्यब्रुवन् पृथक् ॥ १९ ॥

राजन् ! टूटे दाँतवाले सर्पोंके समान लंबी सांस खींचते हुए वे पृथक्-पृथक् कहने लगे—'अहो ! हमें धिक्कार है, धिक्कार है, अर्जुन और श्रीकृष्ण तो चले गये' ॥ १९ ॥

त्वत्सेनाः सर्वतो दृष्ट्वा लोमहर्षणमद्भुतम् ।
त्वरध्वमिति चाक्रन्दन् नैतदस्तीति चाब्रुवन् ॥ २० ॥

आपकी सम्पूर्ण सेनाएँ वह अद्भुत रोमाञ्चकारी व्यापार देखकर अपने साथियोंको पुकार-पुकारकर कहने लगीं—'वीरो ! ऐसा नहीं हो सकता । तुम सब लोग शीघ्रतापूर्वक उनका पीछा करो' ॥ २० ॥

सर्वक्षत्रस्य मिषतो रथेनैकेन दंशितौ ।
बालः क्रीडनकेनेव कदर्थीकृत्य नो बलम् ॥ २१ ॥
क्रोशतां यतमानानामसंसक्तौ परंतपौ ।
दर्शयित्वाऽऽत्मनो वीर्यं प्रयातौ सर्वराजसु ॥ २२ ॥

हमलोग चीखते-चिल्लाते तथा रोकनेकी चेष्टा करते ही रह गये; परंतु कुछ न हो सका । शत्रुओंको संताप देनेवाले कवचधारी श्रीकृष्ण और अर्जुन हम सब क्षत्रियोंके देखते-देखते हमारे बलकी अवहेलना करके एकमात्र रथके द्वारा सम्पूर्ण राजमण्डलीमें अपना पराक्रम दिखाकर उसी प्रकार बेरोक-टोक आगे बढ़ गये हैं, जैसे बालक खिलौनोंसे खेलता हुआ निकल जाता है ॥ २१-२२ ॥

(यथा दैवासुरे युद्धे तृणीकृत्य च दानवान् ।
इन्द्राविष्णू पुरा राजञ्जम्भस्य वधकाङ्क्षिणौ ॥)

राजन् ! पूर्वकालमें जैसे देवासुर-संग्राममें जम्भासुरका वध करनेकी इच्छावाले इन्द्र और भगवान् विष्णु दानवोंको तिनकोंके समान तुच्छ मानते हुए आगे बढ़ गये थे (उसी प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुन जयद्रथको मारनेके लिये बड़े वेगसे अग्रसर हो रहे हैं) ॥

तौ प्रयातौ पुनर्दृष्ट्वा तदान्ये सैनिकाब्रुवन् ।
त्वरध्वं कुरवः सर्वे वधे कृष्णकिरीटिनोः ॥ २३ ॥
रथयुक्तो हि दाशार्हो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
जयद्रथाय यात्येष कदर्थीकृत्य नो रणे ॥ २४ ॥

उन दोनोंको पुनः आगे बढ़ते देख दूसरे सैनिक बोल उठे—'कौरवो ! श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध करनेके लिये तुम सब लोग शीघ्र चेष्टा करो । इस रणक्षेत्रमें रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण हमारी अवहेलना करके हम सब धनुर्धरोंके देखते-देखते जयद्रथकी ओर बढ़े जा रहे हैं' ॥ २३–२४ ॥

तत्र केचिन्मिथो राजन् समभाषन्त भूमिपाः ।
अदृष्टपूर्वं संग्रामे तद् दृष्ट्वा महदद्भुतम् ॥ २५ ॥

राजन् ! वहाँ कुछ भूमिपाल समराङ्गणमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका वह अत्यन्त अद्भुत अदृष्टपूर्व कार्य देखकर आपसमें इस प्रकार बातें करने लगे—॥ २५ ॥

सर्वसैन्यानि राजा च धृतराष्ट्रोऽत्ययं गतः ।
दुर्योधनापराधेन क्षत्रं कृत्स्ना च मेदिनी ॥ २६ ॥
विलयं समनुप्राप्ता तच्च राजा न बुध्यते ।

'एकमात्र दुर्योधनके अपराधसे राजा धृतराष्ट्र तथा उनकी सम्पूर्ण सेनाएँ भारी विपत्तिमें फँस गयीं । सारा क्षत्रिय-समाज और सम्पूर्ण पृथ्वी विनाशके द्वारपर जा पहुँची है । इस बातको राजा धृतराष्ट्र नहीं समझ रहे हैं' ॥

इत्येवं क्षत्रियास्तत्र ब्रुवन्त्यन्ये च भारत ॥ २७ ॥
सिन्धुराजस्य यत् कृत्यं गतस्य यमसादनम् ।
तत् करोतु वृथादृष्टिर्धार्तराष्ट्रोऽनुपायवित् ॥ २८ ॥

भारत ! इसी प्रकार वहाँ दूसरे क्षत्रिय निम्नाङ्कित बातें कहते थे—'योग्य उपायको न जाननेवाले और मिथ्या-दृष्टि रखनेवाले राजा धृतराष्ट्र यमलोकमें गये हुए सिन्धुराज जयद्रथका जो और्ध्वदैहिक कृत्य है, उसका सम्पादन करें'॥

ततः शीघ्रतरं प्रायात् पाण्डवः सैन्धवं प्रति ।
विवर्तमाने तिग्मांशौ हृष्टैः पीतोदकैर्हयैः ॥ २९ ॥

तदनन्तर पानी पीकर हर्ष और उत्साहमें भरे हुए घोड़ोंद्वारा पाण्डुकुमार अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथकी ओर बड़े वेगसे बढ़ने लगे । उस समय सूर्यदेव अस्ताचलके शिखरकी ओर ढलते चले जा रहे थे ॥ २९ ॥

तं प्रयान्तं महाबाहुं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
नाशक्नुवन् वारयितुं योधाः क्रुद्धमिवान्तकम् ॥ ३० ॥

जैसे क्रोधमें भरे हुए यमराजको रोकना असम्भव है, उसी प्रकार आगे बढ़ते हुए समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुनको आपके सैनिक रोक न सके ॥ ३० ॥

विद्राव्य तु ततः सैन्यं पाण्डवः शत्रुतापनः ।
यथा मृगगणान् सिंहः सैन्धवार्थे व्यलोडयत् ॥ ३१ ॥

जैसे सिंह मृगोंके झुंडको खदेड़ता हुआ उन्हें मथ डालता है, उसी प्रकार शत्रुओंको संताप देनेवाले पाण्डुकुमार अर्जुन आपकी सेनाको खदेड़-खदेड़कर मारने और मथने लगे ॥ ३१ ॥

गाहमानस्त्वनीकानि तूर्णमश्वानचोदयत् ।
बलाकाभं तु दाशार्हः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥ ३२ ॥

सेनाके भीतर घुसते हुए श्रीकृष्णने तीव्र वेगसे अपने घोड़ोंको आगे बढ़ाया और बगुलोंके समान श्वेत रंगवाले अपने पाञ्चजन्य शङ्खको बड़े जोरसे बजाया ॥ ३२ ॥

कौन्तेयेनाग्रतः सृष्टा न्यपतन् पृष्ठतः शराः ।
तूर्णात् तूर्णतरं ह्यश्वाः प्रावहन् वातरंहसः ॥ ३३ ॥

वायुके समान वेगशाली अश्व इतनी तीव्रातितीव्र गतिसे रथको लिये हुए भाग रहे थे कि कुन्तीकुमार अर्जुनद्वारा आगेकी ओर फेंके हुए बाण उनके रथके पीछे गिरते थे ॥ ३३ ॥

ततो नृपतयः क्रुद्धाः परिवव्रुर्धनंजयम् ।
क्षत्रिया बहवश्चान्ये जयद्रथवधैषिणम् ॥ ३४ ॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए बहुत-से नरेशों तथा अन्य क्षत्रियोंने जयद्रथ-वधकी इच्छा रखनेवाले अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३४ ॥

सैन्येषु विप्रयातेषु धिष्ठितं पुरुषर्षभम् ।
दुर्योधनोऽन्वयात् पार्थं त्वरमाणो महाहवे ॥ ३५ ॥

सेनाओंके सहसा आक्रमण करनेपर पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन कुछ ठहर गये । इसी समय उस महासमरमें राजा दुर्योधनने बड़ी उतावलीके साथ उनका पीछा किया ॥ ३५ ॥

वातोद्धूतपताकं तं रथं जलदनिःस्वनम् ।
घोरं कपिध्वजं दृष्ट्वा विषण्णा रथिनोऽभवन् ॥ ३६ ॥

हवा लगनेसे अर्जुनके रथकी पताका फहरा रही थी । उस रथसे मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि हो रही थी और ध्वजापर वानरवीर हनुमान्जी विराजमान थे । उस भयंकर रथको देखकर सम्पूर्ण रथी विषादग्रस्त हो गये ॥ ३६ ॥

दिवाकरेऽथ रजसा सर्वतः संवृते भृशम् ।
शरार्ताश्च रणे योधाः शेकुः कृष्णौ न वीक्षितुम् ॥ ३७ ॥

उस समय सब ओर इतनी धूल उड़ रही थी कि सूर्यदेव छिप गये । उस रणक्षेत्रमें बाणोंसे पीड़ित हुए सैनिक श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते थे ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सैन्यविस्मये शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सेनाविस्मयविषयक सौवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ३८ श्लोक हैं)

एकाधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और अर्जुनको आगे बढ़ा देख कौरवसैनिकोंकी निराशा तथा दुर्योधनका युद्धके लिये आना

संजय उवाच

स्रंसन्त इव मज्जानस्तावकानां भयान्नृप।
तौ दृष्ट्वा समतिक्रान्तौ वासुदेवधनंजयौ॥ १॥

संजय कहते हैं—नरेश्वर! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनको सबको लाँघकर आगे बढ़ा हुआ देख भयके कारण आपके सैनिकोंकी मज्जा खिसकने लगी॥ १॥

सर्वे तु प्रतिसंरब्धा ह्रीमन्तः सत्त्वचोदिताः।
स्थिरीभूता महात्मानः प्रत्यगच्छन् धनंजयम्॥ २॥

फिर वे लज्जित हुए समस्त महामनस्वी सैनिक धैर्य और साहससे प्रेरित हो युद्धके लिये स्थिरचित्त होकर रोषपूर्वक अर्जुनकी ओर जाने लगे॥ २॥

ये गताः पाण्डवं युद्धे रोषामर्षसमन्विताः।
तेऽद्यापि न निवर्तन्ते सिन्धवः सागरादिव॥ ३॥

जो लोग युद्धमें रोष और अमर्षसे भरकर पाण्डुनन्दन अर्जुनके सामने गये, वे समुद्रतक गयी हुई नदियोंके समान आजतक नहीं लौटे॥ ३॥

असन्तस्तु न्यवर्तन्त वेदेभ्य इव नास्तिकाः।
नरकं भजमानास्ते प्रत्यपद्यन्त किल्बिषम्॥ ४॥

जैसे नास्तिक पुरुष वेदोंसे (उनकी बतायी हुई विधियोंसे) दूर रहते हैं, उसी प्रकार जो अधम मनुष्य थे, वे ही अर्जुनके सामने जाकर भी लौट आये (पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए)। वे नरकमें पड़कर अपने पापका फल भोग रहे होंगे॥

तावतीत्य रथानीकं विमुक्तौ पुरुषर्षभौ।
ददृशाते यथा राहोरास्यान्मुक्तौ प्रभाकरौ॥ ५॥

रथियोंकी सेनाको लाँघकर उनके घेरेसे मुक्त हुए पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन राहुके मुँहसे छूटे हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान दिखायी दिये॥ ५॥

मत्स्याविव महाजालं विदार्य विगतक्लमौ।
तथा कृष्णावदृश्येतां सेनाजालं विदार्य तत्॥ ६॥

जैसे दो मत्स्य किसी महाजालको फाड़कर निकल जानेपर क्लेशशून्य हो जाते हैं, उसी प्रकार उस सेनासमूहको विदीर्ण करके श्रीकृष्ण और अर्जुन क्लेशरहित दिखायी देते थे॥

विमुक्तौ शस्त्रसम्बाधाद् द्रोणानीकात् सुदुर्भिदात्।
अदृश्येतां महात्मानौ कालसूर्याविवोदितौ॥ ७॥

शस्त्रोंसे भरे हुए आचार्य द्रोणके दुर्भेद्य सैन्य-व्यूहसे छुटकारा पाकर महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन उदित हुए प्रलयकालके सूर्यके समान दृष्टिगोचर हो रहे थे॥ ७॥

अस्त्रसम्बाधनिर्मुक्तौ विमुक्तौ शस्त्रसंकटात्।
अदृश्येतां महात्मानौ शत्रुसम्बाधकारिणौ॥ ८॥
विमुक्तौ ज्वलनस्पर्शान्मकरास्याज्झषाविव।

शत्रुओंको संतप्त करनेवाले वे दोनों महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन अग्निके समान दाहक स्पर्शवाले मगरके मुखसे छूटे हुए दो मत्स्योंके समान अस्त्र-शस्त्रोंकी बाधाओं तथा संकटोंसे मुक्त दिखायी दे रहे थे॥ ८½॥

अक्षोभयेतां सेनां तौ समुद्रं मकराविव॥ ९॥
तावकास्तव पुत्राश्च द्रोणानीकस्थयोस्तयोः।
नैतौ तरिष्यतो द्रोणमिति चक्रुस्तदा मतिम्॥ १०॥

जैसे दो मगर समुद्रको क्षुब्ध कर देते हैं, उसी प्रकार उन दोनोंने सारी सेनाको व्याकुल कर दिया। आपके सैनिकों तथा पुत्रोंने उस समय द्रोणाचार्यके सैन्यव्यूहमें घुसे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके सम्बन्धमें यह विचार किया था कि ये दोनों द्रोणको नहीं लाँघ सकेंगे॥ ९-१०॥

तौ तु दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ द्रोणानीकं महाद्युती।
नाशशंसुर्महाराज सिन्धुराजस्य जीवितम्॥ ११॥

परंतु महाराज! जब वे दोनों महातेजस्वी वीर द्रोणाचार्यके सैन्यव्यूहको लाँघ गये, तब उन्हें देखकर आपके पुत्रोंको सिन्धुराजके जीवित रहनेकी आशा नहीं रह गयी॥ ११॥

आशा बलवती राजन् सिन्धुराजस्य जीविते।
द्रोणहार्दिक्ययोः कृष्णौ न मोक्ष्येते इति प्रभो॥ १२॥

राजन्! प्रभो! सब लोगोंको यह सोचकर कि श्रीकृष्ण और अर्जुन द्रोणाचार्य तथा कृतवर्माके हाथसे नहीं छूट सकेंगे, सिन्धुराजके जीवनकी आशा प्रबल हो उठी थी॥ १२॥

तामाशां विफलीकृत्य संतीर्णौ तौ परंतपौ।
द्रोणानीकं महाराज भोजानीकं च दुस्तरम्॥ १३॥

महाराज! शत्रुओंको संताप देनेवाले वे दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन लोगोंकी उस आशाको विफल करके द्रोणाचार्य तथा कृतवर्माकी दुस्तर सेनाको लाँघ गये॥ १३॥

अथ दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ ज्वलिताविव पावकौ।
निराशाः सिन्धुराजस्य जीवितं न शशंसिरे॥ १४॥

दो प्रज्वलित अग्नियोंके समान सारी सेनाको लाँघकर खड़े हुए उन दोनों वीरोंको सकुशल देख आपके सैनिकोंने निराश होकर सिन्धुराजके जीवनकी आशा त्याग दी॥ १४॥

मिथश्च समभाषेतामभीतौ भयवर्धनौ।
जयद्रथवधे वाचस्तास्ताः कृष्णधनंजयौ॥ १५॥

दूसरोंका भय बढ़ाने और स्वयं निर्भय रहनेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुन आपसमें जयद्रथवधके विषयमें इस प्रकार बातें करने लगे—॥ १५॥

असौ मध्ये कृतः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
चक्षुर्विषयसम्प्राप्तो न मे मोक्ष्यति सैन्धवः ॥ १६ ॥

'यद्यपि धृतराष्ट्रके छः महारथी पुत्रोंने जयद्रथको अपने बीचमें छिपा रक्खा है, तथापि यदि वह मेरी आँखोंको दीख गया तो मेरे हाथसे जीवित नहीं बच सकेगा ॥ १६ ॥

यद्यस्य समरे गोप्ता शक्रो देवगणैः सह ।
तथाप्येनं निहंस्याव इति कृष्णावभाषताम् ॥ १७ ॥

'यदि देवताओंसहित साक्षात् इन्द्र भी समराङ्गणमें इसकी रक्षा करें, तो भी हम दोनों इसे अवश्य मार डालेंगे'। इस प्रकार दोनों कृष्ण आपसमें बात कर रहे थे ॥ १७ ॥

इति कृष्णौ महाबाहू मिथोऽकथयतां तदा ।
सिन्धुराजमवेक्षन्तौ त्वत्पुत्रा बहु चुक्रुशुः ॥ १८ ॥

सिन्धुराज जयद्रथकी खोज करते हुए महाबाहु श्रीकृष्ण और अर्जुनने उस समय जब आपसमें उपर्युक्त बातें कहीं, तब आपके पुत्र बहुत कोलाहल करने लगे ॥ १८ ॥

अतीत्य मरुधन्वानं प्रयान्तौ तृषितौ गजौ ।
पीत्वा वारि समाश्वस्तौ तथैवास्तामरिंदमौ ॥ १९ ॥

जैसे मरुभूमिको लाँघकर जाते हुए दो प्यासे हाथी पानी पीकर तृप्त एवं संतुष्ट हो गये हों, उसी प्रकार शत्रुओं-का दमन करनेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुन भी शत्रुसेनाको लाँघकर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे ॥ १९ ॥

व्याघ्रसिंहगजाकीर्णानतिक्रम्य च पर्वतान् ।
वणिजाविव दृश्येतां हीनमृत्यू जरातिगौ ॥ २० ॥

जैसे व्याघ्र, सिंह और हाथियोंसे भरे हुए पर्वतोंको लाँघकर दो व्यापारी प्रसन्न दिखायी देते हों, उसी प्रकार मृत्यु और जरासे रहित श्रीकृष्ण और अर्जुन भी उस सेनाको लाँघकर संतुष्ट दीखते थे ॥ २० ॥

तथा हि मुखवर्णोऽयमनयोरिति मेनिरे ।
तावका वीक्ष्य मुक्तौ तौ विक्रोशन्ति स्म सर्वशः ॥ २१ ॥
द्रोणादाशीविषाकाराज्ज्वलितादिव पावकात् ।
अन्येभ्यः पार्थिवेभ्यश्च भास्वन्ताविव भास्करौ ॥ २२ ॥

इन दोनोंके मुखकी कान्ति वैसी ही थी, ऐसा सभी सैनिक मान रहे थे। विषधर सर्प और प्रज्वलित अग्निके समान भयंकर द्रोणाचार्य तथा अन्य नरेशोंके हाथसे छूटे हुए दो प्रकाशमान सूर्योंके सदृश श्रीकृष्ण और अर्जुनको वहाँ देखकर आपके समस्त सैनिक सब ओरसे कोलाहल मचा रहे थे ॥ २१–२२ ॥

विमुक्तौ सागरप्रख्याद् द्रोणानीकादरिंदमौ ।
अदृश्येतां मुदा युक्तौ समुत्तीर्यार्णवं यथा ॥ २३ ॥

समुद्रके समान विशाल द्रोणसेनासे मुक्त हुए वे दोनों शत्रुदमन वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन ऐसे प्रसन्न दिखायी देते थे, मानो महासागर लाँघ गये हों ॥ २३ ॥

अस्त्रौघान्महतो मुक्तौ द्रोणहार्दिक्यरक्षितात् ।
रोचमानावदृश्येतामिन्द्राग्न्योः सदृशौ रणे ॥ २४ ॥

द्रोणाचार्य और कृतवर्माद्वारा सुरक्षित महान् अस्त्र-समुदायसे छूटकर वे दोनों वीर समराङ्गणमें इन्द्र और अग्नि-के समान प्रकाशमान दिखायी देते थे ॥ २४ ॥

उद्भिन्नरुधिरौ कृष्णौ भारद्वाजस्य सायकैः ।
शितैश्चितौ व्यरोचेतां कर्णिकारैरिवाचलौ ॥ २५ ॥

द्रोणाचार्यके तीखे बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनके शरीर छिदे हुए थे और उनसे रक्तकी धारा बह रही थी। उस समय वे लाल कनेरसे भरे हुए दो पर्वतोंके समान सुशोभित होते थे ॥ २५ ॥

द्रोणग्राहह्रदान्मुक्तौ शक्त्याशीविषसंकटात् ।
अयःशरोग्रमकरात् क्षत्रियप्रवराम्भसः ॥ २६ ॥
ज्याघोषतलनिर्ह्रादाद् गदानिस्त्रिंशविद्युतः ।
द्रोणास्त्रमेघान्निर्मुक्तौ सूर्येन्दू तिमिरादिव ॥ २७ ॥

द्रोणाचार्य जिस सैन्य-सरोवरके ग्राहतुल्य जन्तु थे, जो शक्तिरूपी विषधर सर्पोंसे भरा था, लोहेके बाण जिसके भीतर भयंकर मगरका भय उत्पन्न करते थे, बड़े-बड़े क्षत्रिय जिसमें जलके समान शोभा पाते थे, धनुषकी टंकार जहाँ मेघगर्जनाके समान सुनायी पड़ती थी, गदा और खड्ग जहाँ विद्युत्के समान चमक रहे थे और द्रोणाचार्यके बाण ही जहाँ मेघ बनकर बरस रहे थे, उससे मुक्त हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन राहुसे छूटे हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ २६–२७ ॥

बाहुभ्यामिव संतीर्णौ सिन्धुषष्ठाः समुद्रगाः ।
तपान्ते सरितः पूर्णा महाग्राहसमाकुलाः ॥ २८ ॥

उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो वर्षा ऋतुमें जलसे लबालब भरी हुई बड़े-बड़े ग्राहोंसे व्याप्त समुद्र-गामिनी इरावती (रावी), विपाशा (ब्यास), वितस्ता (झेलम), शतद्रू (शतलज) और चन्द्रभागा (चनाब)- इन पाँचों नदियोंके साथ छठी सिंधु नदीको श्रीकृष्ण और अर्जुनने अपनी भुजाओंसे तैरकर पार किया हो ॥ २८ ॥

इति कृष्णौ महेष्वासौ प्रशस्तौ लोकविश्रुतौ ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त द्रोणास्त्रबलवारणात् ॥ २९ ॥

इस प्रकार द्रोणाचार्यके अस्त्र-बलका निवारण करनेके कारण समस्त प्राणी श्रीकृष्ण और अर्जुनको लोकविख्यात प्रशस्त गुणयुक्त महाधनुर्धर मानने लगे ॥ २९ ॥

जयद्रथं समीपस्थमवेक्षन्तौ जिघांसया ।
रुरुं निपाने लिप्सन्तौ व्याघ्राविव व्यतिष्ठताम् ॥ ३० ॥

जैसे पानी पीनेके घाटपर आये हुए रुरुमृगको दबोच लेनेकी इच्छासे दो व्याघ्र खड़े हों, उसी प्रकार निकटवर्ती

जयद्रथको मार डालनेकी इच्छासे उसकी ओर देखते हुए वे दोनों वीर खड़े थे ॥ ३० ॥

यथा हि सुखवर्णोऽयमनयोरिति मेनिरे ।
तव योधा महाराज हतमेव जयद्रथम् ॥ ३१ ॥

महाराज ! उस समय उन दोनोंके मुखपर जैसी समुज्ज्वल कान्ति थी, उसके अनुसार आपके योद्धाओंने जयद्रथको मरा हुआ ही माना ॥ ३१ ॥

लोहिताक्षौ महाबाहू संयुक्तौ कृष्णपाण्डवौ ।
सिन्धुराजमभिप्रेक्ष्य हृष्टौ व्यनदतां मुहुः ॥ ३२ ॥

एक साथ बैठे हुए लाल नेत्रोंवाले महाबाहु श्रीकृष्ण और अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथको देखकर हर्षसे उल्लसित हो बारंबार गर्जना करने लगे ॥ ३२ ॥

शौरेरभीषुहस्तस्य पार्थस्य च धनुष्मतः ।
तयोरासीत् प्रभा राजन् सूर्यपावकयोरिव ॥ ३३ ॥

राजन् ! हाथोंमें बागडोर लिये श्रीकृष्ण और धनुष धारण किये अर्जुन—इन दोनोंकी प्रभा सूर्य और अग्निके समान जान पड़ती थी ॥ ३३ ॥

हर्ष एव तयोरासीद् द्रोणानीकप्रमुक्तयोः ।
समीपे सैन्धवं दृष्ट्वा श्येनयोरामिषं यथा ॥ ३४ ॥

जैसे मांसका टुकड़ा देखकर दो बाजोंको प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यकी सेनासे मुक्त हुए उन दोनों वीरोंको अपने पास ही जयद्रथको देखकर सब प्रकारसे हर्ष ही हुआ ॥ ३४ ॥

तौ तु सैन्धवमालोक्य वर्तमानमिवान्तिके ।
सहसा पेततुः क्रुद्धौ क्षिप्रं श्येनाविवामिषम् ॥ ३५ ॥

अपने समीप ही खड़े हुए-से सिन्धुराज जयद्रथको देखकर तत्काल वे दोनों वीर कुपित हो उसी प्रकार सहसा उसपर टूट पड़े, जैसे दो बाज मांसपर झपट रहे हों ॥ ३५ ॥

तौ दृष्ट्वा तु व्यतिक्रान्तौ हृषीकेशधनंजयौ ।
सिन्धुराजस्य रक्षार्थं पराक्रान्तः सुतस्तव ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन सारी सेनाको लाँघकर आगे बढ़ते चले जा रहे हैं, यह देखकर आपके पुत्र दुर्योधनने सिन्धुराजकी रक्षाके लिये पराक्रम दिखाना आरम्भ किया ॥ ३६ ॥

द्रोणेनाबद्धकवचो राजा दुर्योधनस्ततः ।
ययावेकरथेनाजौ हयसंस्कारवित् प्रभो ॥ ३७ ॥

प्रभो ! घोड़ोंके संस्कारको जाननेवाला राजा दुर्योधन उस समय द्रोणाचार्यके बाँधे हुए कवचको धारण करके एकमात्र रथकी सहायतासे युद्धभूमिमें गया था ॥ ३७ ॥

कृष्णपार्थौ महेष्वासौ व्यतिक्रम्याथ ते सुतः ।
अग्रतः पुण्डरीकाक्षं प्रतीयाय नराधिप ॥ ३८ ॥

नरेश्वर ! महाधनुर्धर श्रीकृष्ण और अर्जुनको लाँघकर आपका पुत्र कमलनयन श्रीकृष्णके सामने जा पहुँचा ॥

ततः सर्वेषु सैन्येषु वादित्राणि प्रहृष्टवत् ।
प्रावाद्यन्त व्यतिक्रान्ते तव पुत्रे धनंजयम् ॥ ३९ ॥

तदनन्तर आपका पुत्र दुर्योधन जब अर्जुनको भी लाँघकर आगे बढ़ गया, तब सारी सेनाओंमें हर्षपूर्ण बाजे बजने लगे ॥ ३९ ॥

सिंहनादरवाश्चासञ्शङ्खशब्दविमिश्रिताः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनं तत्र कृष्णयोः प्रमुखे स्थितम् ॥ ४० ॥

दुर्योधनको वहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुनके सामने खड़ा देख शङ्खोंकी ध्वनिसे मिले हुए सिंहनादके शब्द सब ओर गूँजने लगे ॥ ४० ॥

ये च ते सिन्धुराजस्य गोप्तारः पावकोपमाः ।
ते प्राहृष्यन्त समरे दृष्ट्वा पुत्रं तव प्रभो ॥ ४१ ॥

प्रभो ! सिन्धुराजकी रक्षा करनेवाले जो अग्निके समान तेजस्वी वीर थे, वे आपके पुत्रको समराङ्गणमें डटा हुआ देख बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४१ ॥

दृष्ट्वा दुर्योधनं कृष्णो व्यतिक्रान्तं सहानुगम् ।
अब्रवीदर्जुनं राजन् प्राप्तकालमिदं वचः ॥ ४२ ॥

राजन् ! सेवकोंसहित दुर्योधन सबको लाँघकर सामने आ गया—यह देखकर श्रीकृष्णने अर्जुनसे यह समयोचित बात कही ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनागमे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधनका आगमनविषयक एक सौ एकवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अर्जुनकी प्रशंसापूर्वक उसे प्रोत्साहन देना, अर्जुन और दुर्योधनका एक दूसरेके सम्मुख आना, कौरव-सैनिकोंका भय तथा दुर्योधनका अर्जुनको ललकारना

वासुदेव उवाच

दुर्योधनमतिक्रान्तमेतं पश्य धनंजय ।
अत्यद्भुतमिमं मन्ये नास्त्यस्य सदृशो रथः ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण बोले—धनंजय ! सबको लाँघकर सामने आये हुए इस दुर्योधनको देखो । मैं तो इसे अत्यन्त अद्भुत योद्धा मानता हूँ । इसके समान दूसरा कोई रथी नहीं है ॥

दूरपाती महेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
दृढास्त्रश्चित्रयोधी च धार्तराष्ट्रो महाबलः ॥ २ ॥

यह महाबली धृतराष्ट्रपुत्र दूरतकके लक्ष्यको मार गिरानेवाला, महान् धनुर्धर, अस्त्र-विद्यामें निपुण और युद्धमें दुर्मद है। इसके अस्त्र-शस्त्र अत्यन्त सुदृढ़ हैं तथा यह विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाला है ॥ २ ॥

अत्यन्तसुखसंवृद्धो मानितश्च महारथः।
कृती च सततं पार्थ नित्यं द्वेष्टि च बान्धवान् ॥ ३ ॥

कुन्तीकुमार ! महारथी दुर्योधन अत्यन्त सुखसे पला हुआ सम्मानित और विद्वान् है। यह तुम-जैसे बन्धु-बान्धवोंसे नित्य-निरन्तर द्वेष रखता है ॥ ३ ॥

तेन युद्धमहं मन्ये प्राप्तकालं तवानघ।
अत्र वो द्यूतमायत्तं विजयायेतराय वा ॥ ४ ॥

निष्पाप अर्जुन ! मैं समझता हूँ, इस समय इसीके साथ युद्ध करनेका अवसर प्राप्त हुआ है। यहाँ तुमलोगोंके अधीन जो रणद्यूत होनेवाला है, वही विजय अथवा पराजयका कारण होगा ॥ ४ ॥

अत्र क्रोधविषं पार्थ विमुञ्च चिरसम्भृतम्।
एष मूलमनर्थानां पाण्डवानां महारथः ॥ ५ ॥

पार्थ ! तुम बहुत दिनोंसे सँजोकर रक्खे हुए अपने क्रोधरूपी विषको इसके ऊपर छोड़ो। महारथी दुर्योधन ही पाण्डवोंके सारे अनर्थोंकी जड़ है ॥ ५ ॥

सोऽयं प्राप्तस्तवाक्षेपं पश्य साफल्यमात्मनः।
कथं हि राजा राज्यार्थी त्वया गच्छेत संयुगम् ॥ ६ ॥

आज यह तुम्हारे बाणोंके मार्गमें आ पहुँचा है। इसे तुम अपनी सफलता समझो; अन्यथा राज्यकी अभिलाषा रखनेवाला राजा दुर्योधन तुम्हारे साथ युद्ध-भूमिमें कैसे उतर सकता था ? ॥ ६ ॥

दिष्ट्या त्विदानीं सम्प्राप्त एष ते बाणगोचरम्।
यथायं जीवितं जह्यात् तथा कुरु धनंजय ॥ ७ ॥

धनंजय ! सौभाग्यवश यह दुर्योधन इस समय तुम्हारे बाणोंके पथमें आ गया है। तुम ऐसा प्रयत्न करो, जिससे यह अपने प्राणोंको त्याग दे ॥ ७ ॥

ऐश्वर्यमदसम्मूढो नैष दुःखमुपेयिवान्।
न च ते संयुगे वीर्यं जानाति पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥

पुरुषरत्न ! ऐश्वर्यके घमंडमें चूर रहनेवाले इस दुर्योधनने कभी कष्ट नहीं उठाया है। यह युद्धमें तुम्हारे बल-पराक्रमको नहीं जानता है ॥ ८ ॥

त्वां हि लोकास्त्रयः पार्थ ससुरासुरमानुषाः।
नोत्सहन्ते रणे जेतुं किमुतैकः सुयोधनः ॥ ९ ॥

पार्थ ! देवता, असुर और मनुष्योंसहित तीनों लोक भी रणक्षेत्रमें तुम्हें जीत नहीं सकते। फिर अकेले दुर्योधनकी तो औकात ही क्या है ? ॥ ९ ॥

स दिष्ट्या समनुप्राप्तस्तव पार्थ रथान्तिकम्।
जह्येनं त्वं महाबाहो यथा वृत्रं पुरंदरः ॥ १० ॥

कुन्तीकुमार ! सौभाग्यकी बात है कि यह तुम्हारे रथके निकट आ पहुँचा है। महाबाहो ! जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था, उसी प्रकार तुम भी इस दुर्योधनको मार डालो ॥

एष ह्यनर्थे सततं पराक्रान्तस्तवानघ।
निकृत्या धर्मराजं च द्यूते वञ्चितवानयम् ॥ ११ ॥

अनघ ! यह सदा तुम्हारा अनर्थ करनेमें ही पराक्रम दिखाता आया है। इसने धर्मराज युधिष्ठिरको जूएमें छल-कपटसे ठग लिया है ॥ ११ ॥

बहूनि सुनृशंसानि कृतान्येतेन मानद।
युष्मासु पापमतिना अपापेष्वेव नित्यदा ॥ १२ ॥

मानद ! तुमलोग कभी इसकी बुराई नहीं करते थे, तो भी इस पापबुद्धि दुर्योधनने सदा तुमलोगोंके साथ बहुत-से क्रूरतापूर्ण बर्ताव किये हैं ॥ १२ ॥

तमनार्यं सदा क्रुद्धं पुरुषं कामचारिणम्।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा जहि पार्थाविचारयन् ॥ १३ ॥

पार्थ ! तुम युद्धमें श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय ले बिना किसी सोच-विचारके, सदा क्रोधमें भरे रहनेवाले इस स्वेच्छाचारी दुष्ट पुरुषको मार डालो ॥ १३ ॥

निकृत्या राज्यहरणं वनवासं च पाण्डव।
परिक्लेशं च कृष्णाया हृदि कृत्वा पराक्रमम् ॥ १४ ॥

पाण्डुनन्दन ! दुर्योधनने छलसे तुमलोगोंका राज्य छीन लिया है, तुम्हें जो वनवासका कष्ट भोगना पड़ा है तथा द्रौपदीको जो दुःख और अपमान उठाना पड़ा है—इन सब बातोंको मन-ही-मन याद करके पराक्रम करो ॥ १४ ॥

दिष्ट्यैष तव बाणानां गोचरे परिवर्तते।
प्रतिघाताय कार्यस्य दिष्ट्या च यततेऽग्रतः ॥ १५ ॥

सौभाग्यसे ही यह दुर्योधन तुम्हारे बाणोंकी पहुँचके भीतर चक्कर लगा रहा है। यह भी भाग्यकी बात है कि यह तुम्हारे कार्यमें बाधा डालनेके लिये सामने आकर प्रयत्नशील हो रहा है ॥ १५ ॥

दिष्ट्या जानाति संग्रामे योद्धव्यं हि त्वया सह।
दिष्ट्या च सफलाः पार्थ सर्वे कामा ह्यकामिताः ॥ १६ ॥

पार्थ ! भाग्यवश समराङ्गणमें तुम्हारे साथ युद्ध करना यह अपना कर्तव्य समझता है और भाग्यसे ही न चाहनेपर भी तुम्हारे सारे मनोरथ सफल हो रहे हैं ॥ १६ ॥

तस्माज्जहि रणे पार्थ धार्तराष्ट्रं कुलाधमम्।
यथेन्द्रेण हतः पूर्वं जम्भो देवासुरे मृधे ॥ १७ ॥

कुन्तीकुमार ! जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने देवासुर-संग्राममें जम्भका वध किया था, उसी प्रकार तुम रणक्षेत्रमें कुलकलङ्क धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको मार डालो ॥ १७ ॥

अस्मिन् हते त्वया सैन्यमनाथं भिद्यतामिदम् ।
वैरस्यास्यास्त्ववभृथो मूलं छिन्धि दुरात्मनाम् ॥ १८ ॥

इसके मारे जानेपर अनाथ हुई इस कौरवसेनाका संहार करो, दुरात्माओंकी जड़ काट डालो, जिससे इस वैररूपी यज्ञका अन्त होकर अवभृथस्नानका अवसर प्राप्त हो ॥१८॥

संजय उवाच

तं तथेत्यब्रवीत् पार्थः कृत्यरूपमिदं मम ।
सर्वमन्यदनादृत्य गच्छ यत्र सुयोधनः ॥ १९ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तब कुन्तीकुमार अर्जुनने 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'यह मेरे लिये सबसे महान् कर्तव्य प्राप्त हुआ है । अन्य सब कार्योंकी अवहेलना करके आप वहीं चलिये, जहाँ दुर्योधन खड़ा है ॥

येनैतद् दीर्घकालं नो भुक्तं राज्यमकण्टकम् ।
अप्यस्य युधि विक्रम्य छिन्द्यां मूर्धानमाहवे ॥ २० ॥

'जिसने दीर्घकालतक हमारे इस अकंटक राज्यका उपभोग किया है, मैं युद्धमें पराक्रम करके उस दुर्योधनका मस्तक काट डालूँगा ॥ २० ॥

अपि तस्य ह्यनर्हायाः परिक्लेशस्य माधव ।
कृष्णायाः शक्नुयां गन्तुं पदं केशप्रधर्षणे ॥ २१॥

'माधव ! जो क्लेश भोगनेके योग्य नहीं है, उस द्रौपदीका केश पकड़कर जो उसे अपमानित किया गया है, उसका बदला इस दुर्योधनको मारकर ही चुका सकता हूँ ॥ २१ ॥

(अप्यहं तानि दुःखानि पूर्ववृत्तानि माधव ।
दुर्योधनं रणे हत्वा प्रतिमोक्ष्ये कथंचन ॥)

'श्रीकृष्ण ! समराङ्गणमें दुर्योधनका वध करके मैं किसी प्रकार उन सभी दुःखोंसे छुटकारा पा जाऊँगा, जो पूर्वकालमें भोगने पड़े हैं' ॥

इत्येवंवादिनौ कृष्णौ हृष्टौ श्वेतान् हयोत्तमान् ।
प्रेषयामासतुः संख्ये प्रेप्सन्तौ तं नराधिपम् ॥ २२ ॥

इस प्रकारकी बातें करते हुए उन दोनों कृष्णोंने युद्धस्थलमें राजा दुर्योधनको अपना लक्ष्य बनानेके लिये हर्षपूर्वक अपने उत्तम सफेद घोड़ोंको उसकी ओर बढ़ाया ॥ २२ ॥

तयोः समीपं सम्प्राप्य पुत्रस्ते भरतर्षभ ।
न चकार भयं प्राप्ते भये महति मारिष ॥२३ ॥

आर्य ! भरतभूषण ! आपके पुत्रने उन दोनोंके समीप पहुँचकर महान् भयका अवसर प्राप्त होनेपर भी भय नहीं माना॥

तदस्य क्षत्रियास्तत्र सर्व एवाभ्यपूजयन् ।
यदर्जुनहृषीकेशौ प्रत्युद्यातौ न्यवारयत् ॥ २४ ॥

अपने सामने आये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनको दुर्योधनने जो रोक दिया, उसके इस कार्यकी वहाँ सभी क्षत्रियोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ २४ ॥

ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशाम्पते ।
महानादो ह्यभूत् तत्र दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ २५ ॥

प्रजानाथ ! युद्धस्थलमें राजा दुर्योधनको उपस्थित देख आपकी सारी सेनामें महान् सिंहनाद होने लगा ॥ २५ ॥

तस्मिञ्जनसमुन्नादे प्रवृत्ते भैरवे सति ।
कदर्थीकृत्य ते पुत्रः प्रत्यमित्रमवारयत् ॥ २६ ॥

जिस समय वह भयंकर जन-कोलाहल हो रहा था, उसी समय आपके पुत्रने अपने शत्रुको कुछ भी न समझकर आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २६ ॥

आवारितस्तु कौन्तेयस्तव पुत्रेण धन्विना ।
संरम्भमगमद् भूयः स च तस्मिन् परंतपः ॥ २७ ॥

आपके धनुर्धर पुत्र दुर्योधनद्वारा रोके जानेपर शत्रुओंको संताप देनेवाले कुन्तीकुमार अर्जुन पुनः उसके ऊपर अत्यन्त कुपित हो उठे ॥ २७ ॥

तौ दृष्ट्वा प्रतिसंरब्धौ दुर्योधनधनंजयौ ।
अभ्यवैक्षन्त राजानो भीमरूपाः समन्ततः ॥ २८ ॥

दुर्योधन तथा अर्जुनको परस्पर कुपित देख भयंकर नरेशगण सब ओर खड़े हो चुपचाप देखने लगे ॥ २८ ॥

दृष्ट्वा तु पार्थं संरब्धं वासुदेवं च मारिष ।
प्रहसन्नेव पुत्रस्ते योद्धुकामः समाह्वयत् ॥ २९ ॥

आर्य ! अर्जुन और श्रीकृष्णको अत्यन्त रोषमें भरे देख आपके पुत्रने जोर-जोरसे हँसते हुए ही युद्धकी इच्छासे उन दोनोंको ललकारा ॥ २९ ॥

ततः प्रहृष्टो दाशार्हः पाण्डवश्च धनंजयः ।
व्यक्रोशेतां महानादं दध्मतुश्चाम्बुजोत्तमौ ॥ ३० ॥

तब हर्षमें भरे हुए श्रीकृष्ण और पाण्डुनन्दन अर्जुनने बड़े जोरसे सिंहनाद किया और अपने उत्तम शङ्खोंको बजाया॥

तौ हृष्टरूपौ सम्प्रेक्ष्य कौरवेयास्तु सर्वशः ।
निराशाः समपद्यन्त पुत्रस्य तव जीविते ॥ ३१ ॥

उन दोनोंको हर्षोल्लाससे परिपूर्ण देख सम्पूर्ण कौरव-सैनिक आपके पुत्रके जीवनसे निराश हो गये ॥ ३१ ॥

शोकमापुः परे चैव कुरवः सर्व एव ते ।
अमन्यन्त च पुत्रं ते वैश्वानरमुखे हुतम् ॥ ३२ ॥

अन्य सब कौरव भी शोकमग्न हो गये और आपके पुत्रको आगके मुखमें होम दिया गया—ऐसा मानने लगे ॥

तथा तु दृष्ट्वा योधास्ते प्रहृष्टौ कृष्णपाण्डवौ ।
हतो राजा हतो राजेत्यूचिरे च भयार्दिताः ॥ ३३ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुनको इस प्रकार हर्षमग्न देख आपके समस्त सैनिक भयसे पीड़ित हो ऐसा कहते हुए कोलाहल करने लगे कि 'हाय ! राजा दुर्योधन मारे गये, मारे गये' ॥ ३३ ॥

जनस्य संनिनादं तु श्रुत्वा दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
व्येतु वो भीरहं कृष्णौ प्रेषयिष्यामि मृत्यवे ॥ ३४ ॥

लोगोंका वह आर्तनाद सुनकर दुर्योधन बोला—'तुम लोगोंका भय दूर हो जाना चाहिये। मैं इन दोनों कृष्णोंको मृत्युके घर भेज दूँगा' ॥ ३४ ॥

इत्युक्त्वा सैनिकान् सर्वाञ्जयापेक्षी नराधिपः।
पार्थमाभाष्य संरम्भादिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

अपने सम्पूर्ण सैनिकोंसे ऐसा कहकर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले राजा दुर्योधनने कुन्तीकुमारको सम्बोधित करके क्रोधपूर्वक इस प्रकार कहा— ॥ ३५ ॥

पार्थ यच्छिक्षितं तेऽस्त्रं दिव्यं पार्थिवमेव च।
तद् दर्शय मयि क्षिप्रं यदि जातोऽसि पाण्डुना ॥ ३६ ॥

'पार्थ ! यदि तुम पाण्डुके बेटे हो तो तुमने जो लौकिक एवं दिव्य अस्त्रोंकी शिक्षा प्राप्त की है, उन सबको मेरे ऊपर शीघ्र दिखाओ ॥ ३६ ॥

यद् बलं तव वीर्यं च केशवस्य तथैव च।
तत् कुरुष्व मयि क्षिप्रं पश्यामस्तव पौरुषम् ॥ ३७ ॥

'तुममें और श्रीकृष्णमें जो बल और पराक्रम हो, उसे मेरे ऊपर शीघ्र प्रकट करो। हम देखते हैं कि तुममें कितना पुरुषार्थ है ॥ ३७ ॥

अस्मत्परोक्षं कर्माणि कृतानि प्रवदन्ति ते।
स्वामिसत्कारयुक्तानि यानि तानीह दर्शय ॥ ३८ ॥

'हमारे परोक्षमें लोग स्वामीके सत्कारसे युक्त तुम्हारे किये हुए जिन कर्मोंका वर्णन करते हैं, उन्हें यहाँ दिखाओ' ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनवचने द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधनवचनविषयक एक सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ३९ श्लोक हैं)

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधन और अर्जुनका युद्ध तथा दुर्योधनकी पराजय

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनं राजा त्रिभिर्मर्मातिगैः शरैः।
अभ्यविध्यन्महावेगैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! अर्जुनसे ऐसा कहकर राजा दुर्योधनने तीन अत्यन्त वेगशाली मर्मभेदी बाणोंद्वारा उन्हें बींध डाला और चार बाणोंद्वारा उनके चारों घोड़ोंको भी घायल कर दिया ॥ १ ॥

वासुदेवं च दशभिः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे।
प्रतोदं चास्य भल्लेन छित्त्वा भूमावपातयत् ॥ २ ॥

इसी प्रकार दस बाण मारकर उसने श्रीकृष्णकी भी छाती छेद डाली और एक भल्लसे उनके चाबुकको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ २ ॥

तं चतुर्दशभिः पार्थश्चित्रपुङ्खैः शिलाशितैः।
अविध्यत् तूर्णमव्यग्रस्ते चाभ्रश्यन्त वर्मणि ॥ ३ ॥

तब व्यग्रतारहित अर्जुनने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए विचित्र पंखवाले चौदह बाणोंद्वारा तुरंत उसे घायल किया; परंतु उनके वे बाण दुर्योधनके कवचपर जाकर फिसल गये ॥ ३ ॥

तेषां नैष्फल्यमालोक्य पुनर्नव च पञ्च च।
प्राहिणोन्निशितान् बाणांस्ते चाभ्रश्यन्त वर्मणः ॥ ४ ॥

उन्हें निष्फल हुआ देख अर्जुनने पुनः चौदह तीखे बाण चलाये; परंतु वे भी कवचसे फिसल गये ॥ ४ ॥

अष्टाविंशांस्तु तान् बाणानस्तान् विप्रेक्ष्य निष्फलान्।
अब्रवीत् परवीरघ्नः कृष्णोऽर्जुनमिदं वचः ॥ ५ ॥

अर्जुनके चलाये हुए उन अट्ठाईस बाणोंको निष्फल हुआ देख शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले श्रीकृष्णने उनसे इस प्रकार कहा— ॥ ५ ॥

अदृष्टपूर्वं पश्यामि शिलानामिव सर्पणम्।
त्वया सम्प्रेषिताः पार्थ नार्थं कुर्वन्ति पत्रिणः ॥ ६ ॥

'पार्थ ! आज तो मैं प्रस्तरखण्डोंके चलनेके समान ऐसी बात देख रहा हूँ, जिसे पहले कभी नहीं देखा था। तुम्हारे चलाये हुए बाण तो कोई काम नहीं कर रहे हैं ॥ ६ ॥

कच्चिद् गाण्डीवजः प्राणस्तथैव भरतर्षभ।
मुष्टिश्च ते यथापूर्वं भुजयोश्च बलं तव ॥ ७ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे गाण्डीव-धनुषकी शक्ति पहले-जैसी ही है न ? तुम्हारी मुट्ठी एवं बाहुबल भी पूर्ववत् हैं न ! ॥

न वा कच्चिदयं कालः प्राप्तः स्यादद्य पश्चिमः।
तव चैवास्य शत्रोश्च तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ ८ ॥

'आज तुम्हारी और तुम्हारे इस शत्रुकी अन्तिम भेंटका समय नहीं आया है क्या ? मैं जो पूछता हूँ, उसका उत्तर दो ॥

विस्मयो मे महान् पार्थ तव दृष्ट्वा शरानिमान्।
व्यर्थान् निपतितान् संख्ये दुर्योधनरथं प्रति ॥ ९ ॥

'कुन्तीनन्दन ! आज युद्धस्थलमें दुर्योधनके रथके पास निष्फल होकर गिरे हुए तुम्हारे इन बाणोंको देखकर मुझे महान् आश्चर्य हो रहा है ॥ ९ ॥

वज्राशनिसमा घोराः परकायावभेदिनः।
शराः कुर्वन्ति ते नार्थं पार्थ काद्य विडम्बना ॥ १० ॥

'पार्थ ! वज्र और अशनिके समान भयंकर तथा शत्रुओंके शरीरको विदीर्ण कर देनेवाले तुम्हारे वे बाण आज कुछ काम नहीं कर रहे हैं, यह कैसी विडम्बना है ?' ॥ १० ॥

अर्जुन उवाच

द्रोणेनैषा मतिः कृष्ण धार्तराष्ट्रे निवेशिता ।
अभेद्या हि ममास्त्राणामेषा कवचधारणा ॥ ११ ॥

अर्जुन बोले—श्रीकृष्ण ! मेरा तो यह विश्वास है कि दुर्योधनको द्रोणाचार्यने अभेद्य कवच बाँधकर उसमें यह अद्भुत शक्ति स्थापित कर दी है । यह कवचधारणा मेरे अस्त्रोंके लिये अभेद्य है ॥ ११ ॥

अस्मिन्नन्तर्हितं कृष्ण त्रैलोक्यमपि वर्मणि ।
एको द्रोणो हि वेदैतदहं तस्माच्च सत्तमात् ॥ १२ ॥

श्रीकृष्ण ! इस कवचके भीतर तीनों लोकोंकी शक्ति संनिहित है । एकमात्र आचार्य द्रोण ही इस विद्याको जानते हैं और उन्हीं सद्गुरुसे सीखकर मैं भी इसे जान पाया हूँ ॥

न शक्यमेतत् कवचं बाणैर्भेत्तुं कथंचन ।
अपि वज्रेण गोविन्द स्वयं मघवता युधि ॥ १३ ॥

इस कवचको किसी प्रकार बाणोंद्वारा विदीर्ण नहीं किया जा सकता । गोविन्द ! युद्धस्थलमें साक्षात् देवराज इन्द्र अपने वज्रसे भी इसका विदारण नहीं कर सकते ॥ १३ ॥

जानंस्त्वमपि वै कृष्ण मां विमोहयसे कथम् ।
यद् वृत्तं त्रिषु लोकेषु यच्च केशव वर्तते ॥ १४ ॥
तथा भविष्यद् यच्चैव तत् सर्वं विदितं तव ।
न त्विदं वेद वै कश्चिद् यथा त्वं मधुसूदन ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण ! आप यह सब कुछ जानते हुए भी मुझे मोहमें कैसे डाल रहे हैं ? केशव ! तीनों लोकोंमें जो बात हो चुकी है, जो हो रही है तथा जो कुछ आगे होनेवाली है, वह सब आपको विदित है । मधुसूदन ! इसे आप जैसा जानते हैं, वैसा दूसरा कोई नहीं जानता है ॥ १४-१५ ॥

एष दुर्योधनः कृष्ण द्रोणेन विहितामिमाम् ।
तिष्ठत्यभीतवत् संख्ये बिभ्रत् कवचधारणाम् ॥ १६ ॥

श्रीकृष्ण ! द्रोणाचार्यके द्वारा विधिपूर्वक धारण करायी हुई इस कवचधारणाको ग्रहण करके यह दुर्योधन युद्धस्थलमें निर्भय-सा खड़ा है ॥ १६ ॥

यत्त्वत्र विहितं कार्यं नैष तद् वेत्ति माधव ।
स्त्रीवदेष बिभर्त्येतां युक्तां कवचधारणाम् ॥ १७ ॥

माधव ! इसे धारण करनेपर जिस कर्तव्यके पालनका विधान किया गया है, उसे यह नहीं जानता है । जैसे स्त्रियाँ गहने पहन लेती हैं, उसी प्रकार यह दूसरेके द्वारा दी हुई इस कवचधारणाको अपनाये हुए है ॥ १७ ॥

पश्य बाह्वोश्च मे वीर्यं धनुषश्च जनार्दन ।
पराजयिष्ये कौरव्यं कवचेनापि रक्षितम् ॥ १८ ॥

जनार्दन ! अब आप मेरी भुजाओं और धनुषका बल देखिये । मैं कवचसे सुरक्षित होनेपर भी दुर्योधनको पराजित कर दूँगा ॥ १८ ॥

इदमङ्गिरसे प्रादाद् देवेशो वर्म भास्वरम् ।
तस्माद् बृहस्पतिः प्राप ततः प्राप पुरंदरः ॥ १९ ॥

देवेश्वर ! ब्रह्माजीने यह तेजस्वी कवच अङ्गिराको दिया था । उनसे बृहस्पतिजीने प्राप्त किया था । बृहस्पतिजीसे वह इन्द्रको मिला ॥ १९ ॥

पुनर्ददौ सुरपतिर्मह्यं वर्म ससंग्रहम् ।
दैवं यद्यस्य वर्मैतद् ब्रह्मणा वा स्वयं कृतम् ॥ २० ॥
नैनं गोप्स्यति दुर्बुद्धिमद्य बाणहतं मया ।

फिर देवराज इन्द्रने विधि एवं रहस्यसहित वह कवच मुझे प्रदान किया । यदि दुर्योधनका यह कवच देवताओंद्वारा निर्मित हो अथवा स्वयं ब्रह्माजीका बनाया हुआ हो तो भी आज मेरे बाणोंद्वारा मारे गये इस दुर्बुद्धि दुर्योधनको यह बचा नहीं सकेगा ॥ २०½ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनो बाणमभिमन्त्र्य व्यकर्षयत् ॥ २१ ॥
मानवास्त्रेण मानार्हस्तीक्ष्णावरणभेदिना ।

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसा कहकर माननीय अर्जुनने कठोर आवरणका भेदन करनेवाले मानवास्त्रसे अपने बाणोंको अभिमन्त्रित करके धनुषकी डोरीको खींचा ॥ २१½ ॥

विकृष्यमाणांस्तेनैव धनुर्मध्यगताञ्छरान् ॥ २२ ॥
तानस्यास्त्रेण चिच्छेद द्रौणिः सर्वास्त्रघातिना ।

धनुषके बीचमें रखकर अर्जुनके द्वारा खींचे जानेवाले उन बाणोंको अश्वत्थामाने सर्वास्त्रघातक अस्त्रके द्वारा काट डाला॥

तान् निकृत्तानिषून् दृष्ट्वा दूरतो ब्रह्मवादिना ॥ २३ ॥
न्यवेदयत् केशवाय विस्मितः श्वेतवाहनः ।

ब्रह्मवादी अश्वत्थामाके द्वारा दूरसे ही काट दिये गये उन बाणोंको देखकर श्वेतवाहन अर्जुन चकित हो उठे और श्रीकृष्णको सूचित करते हुए बोले—॥ २३½ ॥

नैतदस्त्रं मया शक्यं द्विः प्रयोक्तुं जनार्दन ॥ २४ ॥
अस्त्रं मामेव हन्याद्धि हन्याच्चापि बलं मम ।

'जनार्दन ! इस अस्त्रका मैं दो बार प्रयोग नहीं कर सकता; क्योंकि ऐसा करनेपर यह मुझे ही मार डालेगा और मेरी सेनाका भी संहार कर देगा' ॥ २४½ ॥

ततो दुर्योधनः कृष्णौ नवभिर्नवभिः शरैः ॥ २५ ॥
अविध्यत रणे राजञ्छरैराशीविषोपमैः ।

राजन् ! इसी समय दुर्योधनने रणक्षेत्रमें विषधर सर्पके समान भयंकर नौ-नौ बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको घायल कर दिया ॥ २५½ ॥

भूय एवाभ्यवर्षच्च समरे कृष्णपाण्डवौ ॥ २६ ॥
शरवर्षेण महता ततोऽहृष्यन्त तावकाः ।
चक्रुर्वादित्रनिनदान् सिंहनादरवांस्तथा ॥ २७ ॥

उसने समरभूमिमें बड़ी भारी बाणवर्षा करके श्रीकृष्ण और पाण्डुकुमार धनंजयपर पुनः बाणोंकी झड़ी लगा दी। इससे आपके सैनिक बड़े प्रसन्न हुए। वे बाजे बजाने और सिंहनाद करने लगे ॥ २६-२७ ॥

ततः क्रुद्धो रणे पार्थः सृक्किणी परिसंलिहन्।
नापश्यच्च ततोऽस्याङ्गं यन्न स्याद् वर्मरक्षितम्॥२८॥

तदनन्तर युद्धस्थलमें कुपित हुए अर्जुन अपने मुँहके कोने चाटने लगे। उन्होंने दुर्योधनका कोई भी ऐसा अङ्ग नहीं देखा, जो कवचसे सुरक्षित न हो ॥ २८ ॥

ततोऽस्य निशितैर्बाणैः सुमुक्तैरन्तकोपमैः।
हयांश्चकार निर्देहानुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥२९॥

तदनन्तर अर्जुनने अच्छी तरह छोड़े हुए कालोपम तीखे बाणोंद्वारा दुर्योधनके चारों घोड़ों और दोनों पृष्ठ-रक्षकोंको मार डाला ॥ २९ ॥

धनुरस्याच्छिनत् तूर्णं हस्तावापं च वीर्यवान्।
रथं च शकलीकर्तुं सव्यसाची प्रचक्रमे ॥ ३०॥

तत्पश्चात् पराक्रमी सव्यसाची अर्जुनने तुरंत ही उसके धनुष और दस्तानेको काट दिया और रथको टूक-टूक करना आरम्भ किया ॥ ३० ॥

दुर्योधनं च बाणाभ्यां तीक्ष्णाभ्यां विरथीकृतम्।
आविध्यद्धस्ततलयोरुभयोरर्जुनस्तदा ॥ ३१॥

उस समय पार्थने रथहीन हुए दुर्योधनकी दोनों हथेलियोंमें दो पैने बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३१ ॥

प्रयत्नज्ञो हि कौन्तेयो नखमांसान्तरेषुभिः।
स वेदनाभिराविग्नः पलायनपरायणः ॥ ३२॥

उपायको जाननेवाले कुन्तीकुमारने अपने बाणोंद्वारा दुर्योधनके नखोंके मांसमें प्रहार किया। तब वह वेदनासे व्याकुल हो युद्धभूमिसे भाग चला ॥ ३२ ॥

तं कृच्छ्रामापदं प्राप्तं दृष्ट्वा परमधन्विनः।
समापेतुः परीप्सन्तो धनंजयशरार्दितम् ॥३३॥

धनंजयके बाणोंसे पीड़ित हुए दुर्योधनको भारी विपत्तिमें पड़ा हुआ देख श्रेष्ठ धनुर्धर योद्धा उसकी रक्षाके लिये आ पहुँचे ॥ ३३ ॥

तं रथैर्बहुसाहस्रैः कल्पितैः कुञ्जरैर्हयैः।
पदात्योघैश्च संरब्धैः परिवव्रुर्धनंजयम् ॥३४॥

उन्होंने कई हजार रथों, सजे-सजाये हाथियों, घोड़ों तथा रोषमें भरे हुए पैदल सैनिकोंद्वारा अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया॥ ३४ ॥

अथ नार्जुनगोविन्दौ न रथो वा व्यदृश्यत।
अस्त्रवर्षेण महता जनौघैश्चापि संवृतौ ॥ ३५॥

उस समय बड़ी भारी बाणवर्षा और जनसमुदायसे घिरे हुए अर्जुन, श्रीकृष्ण और उनका रथ—इनमेंसे कोई भी दिखायी नहीं देता था ॥ ३५ ॥

ततोऽर्जुनोऽस्त्रवीर्येण निजघ्ने तां वरूथिनीम्।
तत्र व्यङ्गीकृताः पेतुः शतशोऽथ रथद्विपाः ॥ ३६॥

तब अर्जुन अपने अस्त्रबलसे उस कौरवसेनाका विनाश करने लगे। वहाँ सैकड़ों रथ और हाथी अंग-भंग होनेके कारण धराशायी हो गये ॥ ३६ ॥

ते हता हन्यमानाश्च न्यगृह्णंस्तं रथोत्तमम्।
स रथस्तम्भितस्तस्थौ क्रोशमात्रे समन्ततः ॥ ३७॥

उन हताहत होनेवाले कौरवसैनिकोंने उत्तम रथी अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोक दिया। वे जयद्रथसे एक कोसकी दूरीपर चारों ओरसे रथसेनाद्वारा घिरे हुए खड़े थे ॥ ३७ ॥

ततोऽर्जुनं वृष्णिवीरस्त्वरितो वाक्यमब्रवीत्।
धनुर्विस्फारयात्यर्थमहं ध्मास्यामि चाम्बुजम् ॥ ३८॥

तब वृष्णिवीर श्रीकृष्णने तुरंत ही अर्जुनसे कहा—'तुम जोर-जोरसे धनुषको खींचो और मैं अपना शङ्ख बजाऊँगा'॥

ततो विस्फार्य बलवद् गाण्डीवं जघ्निवान् रिपून्।
महता शरवर्षेण तलशब्देन चार्जुनः ॥ ३९॥

यह सुनकर अर्जुनने बड़े जोरसे गाण्डीव धनुषको खींचकर हथेलीके चटचट शब्दके साथ भारी बाणवर्षा करते हुए शत्रुओंका संहार आरम्भ किया ॥ ३९ ॥

पाञ्चजन्यं च बलवान् दध्मौ तारेण केशवः।
रजसा ध्वस्तपक्ष्मान्तः प्रस्विन्नवदनो भृशम् ॥ ४०॥

बलवान् केशवने उच्चस्वरसे पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। उस समय उनकी पलकें धूलधूसरित हो रही थीं और उनके मुखपर बहुत-सी पसीनेकी बूँदें छा रही थीं ॥ ४० ॥

(तेनाच्युतोष्ठयुगपूरितमारुतेन
शङ्खान्तरोदरविवृद्धविनिःसृतेन।
नादेन सासुरवियत्सुरलोकपाल-
मुद्विग्नमीश्वर जगत् स्फुटतीव सर्वम् ॥)

तस्य शङ्खस्य नादेन धनुषो निःस्वनेन च।
निःसत्त्वाश्च ससत्त्वाश्च क्षितौ पेतुस्तदा जनाः ॥ ४१॥

'नरेश्वर! भगवान् श्रीकृष्णके दोनों ओठोंसे भरी हुई वायु शङ्खके भीतरी भागमें प्रवेश करके पुष्ट हो जब गम्भीर नादके रूपमें बाहर निकली, उस समय असुरलोक (पाताल), अन्तरिक्ष, देवलोक और लोकपालोंसहित सम्पूर्ण जगत् भयसे उद्विग्न हो विदीर्ण होता-सा जान पड़ा। उस शङ्खकी ध्वनि और धनुषकी टंकारसे उद्विग्न हो निर्मल और सबल सभी शत्रु-सैनिक उस समय पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४१ ॥

तैर्विमुक्तो रथो रेजे वाय्वीरित इवाम्बुदः।
जयद्रथस्य गोप्तारस्ततः क्षुब्धाः सहानुगाः ॥ ४२॥

उनके घेरेसे मुक्त हुआ अर्जुनका रथ वायुसंचालित मेघके समान शोभा पाने लगा। इससे जयद्रथके रक्षक सेवकों-सहित क्षुब्ध हो उठे ॥ ४२ ॥

ते दृष्ट्वा सहसा पार्थं गोप्तारः सैन्धवस्य तु।
चक्रुर्नादान् महेष्वासाः कम्पयन्तो वसुंधराम् ॥ ४३ ॥

जयद्रथकी रक्षामें नियुक्त हुए महाधनुर्धर वीर सहसा अर्जुनको देखकर पृथ्वीको कँपाते हुए जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ४३ ॥

बाणशब्दरवांश्चोग्रान् विमिश्राञ्शङ्खनिःस्वनैः।
प्रादुश्चक्रुर्महात्मानः सिंहनादरवानपि ॥ ४४ ॥

उन महामनस्वी वीरोंने शङ्खध्वनिसे मिले हुए बाण-जनित भयंकर शब्दों और सिंहनादको भी प्रकट किया ।४४।

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तावकानां समुत्थितम्।
प्रदध्मतुः शङ्खवरौ वासुदेवधनंजयौ ॥ ४५ ॥

आपके सैनिकोंद्वारा किये हुए उस भयंकर कोलाहल-को सुनकर श्रीकृष्ण और अर्जुनने अपने श्रेष्ठ शङ्खोंको बजाया ॥

तेन शब्देन महता पूरितेयं वसुंधरा।
सशैला सार्णवद्वीपा सपाताला विशाम्पते ॥ ४६ ॥

प्रजानाथ ! उस महान् शब्दसे पर्वत, समुद्र, द्वीप और पातालसहित यह सारी पृथ्वी गूँज उठी ॥ ४६ ॥

स शब्दो भरतश्रेष्ठ व्याप्य सर्वा दिशो दश।
प्रतिसस्वान तत्रैव कुरुपाण्डवयोर्बले ॥ ४७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वह शब्द सम्पूर्ण दसों दिशाओंमें व्याप्त होकर वहीं कौरव-पाण्डव सेनाओंमें प्रतिध्वनित होता रहा ॥

तावका रथिनस्तत्र दृष्ट्वा कृष्णधनंजयौ।
सम्भ्रमं परमं प्राप्तास्त्वरमाणा महारथाः ॥ ४८ ॥

आपके रथी और महारथी वहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुनको उपस्थित देख बड़े भारी उद्वेगमें पड़कर उतावले हो उठे ॥

अथ कृष्णौ महाभागौ तावका वीक्ष्य दंशितौ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४९ ॥

आपके योद्धा कवच धारण किये महाभाग श्रीकृष्ण और अर्जुनको आया हुआ देख कुपित हो उनकी ओर दौड़े, यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनपराजये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधन-पराजयविषयक एक सौ तीनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ५० श्लोक हैं)

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनका कौरव महारथियोंके साथ घोर युद्ध

संजय उवाच

तावका हि समीक्ष्यैवं वृष्ण्यन्धककुरूत्तमौ।
प्रागत्वरञ्जिघांसन्तस्तथैव विजयः परान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! आपके सैनिक इस प्रकार वृष्णि और अन्धकवंशके श्रेष्ठ पुरुष श्रीकृष्ण तथा कुरुकुल-रत्न अर्जुनको आगे देखकर उनका वध करनेकी इच्छासे उतावले हो उठे। इसी प्रकार अर्जुन भी शत्रुओंके वधकी अभिलाषासे शीघ्रता करने लगे ॥ १ ॥

सुवर्णचित्रैर्वैयाघ्रैः स्वनवद्भिर्महारथैः।
दीपयन्तो दिशः सर्वा ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥ २ ॥

वे कौरव सैनिक व्याघ्रचर्मसे आच्छादित सुवर्णजटित और गम्भीर घोष करनेवाले प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी विशाल रथोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे ॥ २ ॥

रुक्मपुङ्खैश्च दुष्प्रेक्ष्यैः कार्मुकैः पृथिवीपते।
कूजद्भिरतुलान् नादान् कोपितैस्तुरगैरिव ॥ ३ ॥

पृथ्वीपते ! वे सोनेके पंखवाले दुर्लक्ष्य बाणों और क्रोधमें भरे हुए घोड़ोंके समान अनुपम टंकारध्वनि करनेवाले धनुषोंके द्वारा भी समस्त दिशाओंमें दीप्ति बिखेर रहे थे ॥

भूरिश्रवाः शलः कर्णो वृषसेनो जयद्रथः।
कृपश्च मद्रराजश्च द्रौणिश्च रथिनां वरः ॥ ४ ॥

ते पिबन्त इवाकाशमश्वैरष्टौ महारथाः।
व्यराजयन् दश दिशो वैयाघ्रैर्हेमचन्द्रकैः ॥ ५ ॥

भूरिश्रवा, शल, कर्ण, वृषसेन, जयद्रथ, कृपाचार्य, मद्रराज शल्य तथा रथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा—ये आठ महारथी व्याघ्रचर्मद्वारा आच्छादित तथा सुवर्णमय चन्द्रचिह्नोंसे विभूषित अश्वोंद्वारा आकाशको पीते हुए-से दसों दिशाओंको सुशोभित कर रहे थे ॥ ४-५ ॥

ते दंशिताः सुसंरब्धा रथैर्मेघौघनिःस्वनैः।
समावृण्वन् दश दिशः पार्थस्य निशितैः शरैः ॥ ६ ॥
कौलूतका हयाश्चित्रा वहन्तस्तान् महारथान्।
व्यशोभन्त तदा शीघ्रा दीपयन्तो दिशो दश ॥ ७ ॥

रोसमें भरे हुए उन कवचधारी वीरोंने मेघके समान गम्भीर गर्जना करनेवाले रथों और पैने बाणों द्वारा अर्जुनकी दसो दिशाओंको आच्छादित कर दिया कुलूतदेशके विचित्र एवं शीघ्रगामी घोड़े उस समय उन महारथियोंके वाहन बनकर दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥

आजानेयैर्महावेगैर्नानादेशसमुत्थितैः।
पर्वतीयैर्नदीजैश्च सैन्धवैश्च हयोत्तमैः ॥ ८ ॥
कुरुयोधवरा राजंस्तव पुत्रं परीप्सवः।
धनंजयरथं शीघ्रं सर्वतः समुपाद्रवन् ॥ ९ ॥

राजन् ! नाना देशोंमें उत्पन्न महान् वेगशाली आजानेय[1], पर्वतीय[2] (पहाड़ी), नदीज[3] (दरियाई) तथा सिंधुदेशीय उत्तम घोड़ोंद्वारा आपके पुत्रकी रक्षाके लिये उत्सुक हुए श्रेष्ठ कौरव योद्धा सब ओरसे शीघ्र ही अर्जुनके रथपर टूट पड़े ॥ ८-९ ॥

ते प्रगृह्य महाशङ्खान् दध्मुः पुरुषसत्तमाः ।
पूरयन्तो दिवं राजन् पृथिवीं च ससागराम् ॥ १० ॥

नरेश्वर ! उन पुरुषप्रवर योद्धाओंने समुद्रसहित पृथ्वी और आकाशको शब्दोंसे व्याप्त करते हुए बड़े-बड़े शङ्ख लेकर बजाये ॥ १० ॥

तथैव दध्मतुः शङ्खौ वासुदेवधनंजयौ ।
प्रवरौ सर्वदेवानां सर्वशङ्खवरौ भुवि ॥ ११ ॥

इसी प्रकार सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन भूतलके समस्त शङ्खोंमें उत्तम अपने दिव्य शङ्ख बजाने लगे ॥

देवदत्तं च कौन्तेयः पाञ्चजन्यं च केशवः ।
शब्दस्तु देवदत्तस्य धनंजयसमीरितः ॥ १२ ॥
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्चैव समावृणोत् ।

कुन्तीकुमार अर्जुनने देवदत्त नामक शङ्ख बजाया और श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य । धनंजयके बजाये हुए देवदत्तका शब्द पृथ्वी, आकाश तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हो गया ॥

तथैव पाञ्चजन्योऽपि वासुदेवसमीरितः ॥ १३ ॥
सर्वशब्दानतिक्रम्य पूरयामास रोदसी ।

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके बजाये हुए पाञ्चजन्यने भी सम्पूर्ण शब्दोंको दबाकर अपनी ध्वनिसे पृथ्वी और आकाशको भर दिया ॥ १३½ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने दारुणे नादसंकुले ॥ १४ ॥
भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्धने ।
प्रवादितासु भेरीषु झर्झरेष्वानकेषु च ॥ १५ ॥
मृदङ्गेष्वपि राजेन्द्र वाद्यमानेष्वनेकशः ।
महारथाः समाख्याता दुर्योधनहितैषिणः ॥ १६ ॥
अमृष्यमाणास्तं शब्दं क्रुद्धाः परमधन्विनः ।
नानादेश्या महीपालाः स्वसैन्यपरिरक्षिणः ॥ १७ ॥
अमर्षिता महाशङ्खान् दध्मुर्वीरा महारथाः ।
कृते प्रतिकरिष्यन्तः केशवस्यार्जुनस्य च ॥ १८ ॥

राजेन्द्र ! इस प्रकार जब वहाँ भयंकर शब्द व्याप्त हो गया, जो कायरोंको डराने और शूरवीरोंके हर्षको बढ़ानेवाला था, जब भेरी, झाँझ, ढोल और मृदंग आदि अनेक प्रकारके बाजे बजने और बजाये जाने लगे, उस समय दुर्योधनका हित चाहनेवाले विख्यात महारथी उस शब्दको न सह सकनेके कारण कुपित हो उठे । वे नाना देशोंमें उत्पन्न वीर, महारथी, महाधनुर्धर महीपाल, जो अपनी सेनाका संरक्षण कर रहे थे, अमर्षमें भरकर बड़े-बड़े शङ्ख बजाने लगे; वे श्रीकृष्ण और अर्जुनके प्रत्येक कार्यका बदला चुकानेको उद्यत थे ॥ १४-१८ ॥

बभूव तव तत् सैन्यं शङ्खशब्दसमीरितम् ।
उद्विग्नरथनागाश्वमस्वस्थमिव वा विभो ॥ १९ ॥

प्रभो ! आपकी वह सेना शङ्खके शब्दसे व्याप्त होनेके कारण अस्वस्थ-सी दिखायी देती थी । उसके हाथी, घोड़े और रथी सभी उद्विग्न हो उठे थे ॥ १९ ॥

तत् प्रविद्धमिवाकाशं शूरैः शङ्खविनादितम् ।
बभूव भृशमुद्विग्नं निर्घातैरिव नादितम् ॥ २० ॥

शूरवीरोंने शङ्खध्वनिसे आकाशको विद्ध-सा कर डाला । वह वज्रकी गड़गड़ाहटसे व्याप्त-सा होकर अत्यन्त उद्वेगजनक हो गया ॥ २० ॥

स शब्दः सुमहान् राजन् दिशः सर्वा व्यनादयत् ।
त्रासयामास तत् सैन्यं युगान्त इव सम्भृतः ॥ २१ ॥

राजन् ! प्रलयकालके समान सब ओर फैला हुआ वह महान् शब्द सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करने और आपकी सेनाको डराने लगा ॥ २१ ॥

ततो दुर्योधनोऽष्टौ च राजानस्ते महारथाः ।
जयद्रथस्य रक्षार्थं पाण्डवं पर्यवारयन् ॥ २२ ॥

तदनन्तर दुर्योधन तथा आठ महारथी नरेशोंने जयद्रथकी रक्षाके लिये अर्जुनको घेर लिया ॥ २२ ॥

ततो द्रौणिस्त्रिसप्तत्या वासुदेवमताडयत् ।
अर्जुनं च त्रिभिर्भल्लैर्ध्वजमश्वांश्च पञ्चभिः ॥ २३ ॥

उस समय अश्वत्थामाने भगवान् श्रीकृष्णको तिहत्तर

---

१. आजानेयका लक्षण इस प्रकार है—गुणगन्धाः काये ये शुश्लक्ष्णाः कान्तितो जितक्रोधाः । सारयुता जितेन्द्रियाः क्षुत्तृडाहितं चापि नो दुःखम् ॥ जानन्त्याजानेया निर्दिष्टा वाजिनो धीरैः । अर्थात् जिनके शरीरसे गुड़की-सी गन्ध आती हो, जो कान्तिसे अत्यन्त चिकने और चमकीले जान पड़ते हों, क्रोधको जीत चुके हों, बलवान् और जितेन्द्रिय हों तथा भूख-प्यासके कष्टका अनुभव न करते हों, उन घोड़ोंको धीर पुरुषोंने 'आजानेय' कहा है ।

२. पर्वतीय घोड़ोंका लक्षण यों होना चाहिये—वाहास्तु पर्वतीया बलान्विताः स्निग्धकेशाश्च वृत्तखुरा दृढपादा महाजवास्तेऽतिविख्याताः । अर्थात् अत्यन्त विख्यात 'पर्वतीय' घोड़े बलवान् होते हैं, उनके बाल चिकने, टाप गोल, पैर सुदृढ़ और वेग महान् होते हैं ।

३. नदीज या दरियाई घोड़ोंका लक्षण इस प्रकार है—अश्वाः सकर्णिकाराः कचन नदीतीरजाः समुद्दिष्टाः । पूर्वार्धेऽभ्युदग्राः पश्चार्धे चानताः किंचित् । कहीं नदीके तटपर उत्पन्न हुए कनेरयुक्त अश्व 'नदीज' कहलाते हैं । वे आगेके आधे शरीरसे ऊँचे और पिछले आधे शरीरसे कुछ नीचे होते हैं ।

बाण मारे, तीन भल्लोंसे अर्जुनको चोट पहुँचायी और पाँचसे उनके ध्वज एवं घोड़ोंको घायल कर दिया ॥ २३ ॥

तमर्जुनः पृषत्कानां शतैः षड्भिरताडयत् ।
अत्यर्थमिव संक्रुद्धः प्रतिविद्धे जनार्दने ॥ २४ ॥

श्रीकृष्णके घायल हो जानेपर अर्जुन अत्यन्त कुपित हो उठे। उन्होंने छः सौ बाणोंद्वारा अश्वत्थामाको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ २४ ॥

कर्णं च दशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं त्रिभिस्तथा ।
शल्यस्य सशरं चापं मुष्टौ चिच्छेद वीर्यवान् ॥ २५ ॥

फिर पराक्रमी अर्जुनने दस बाणोंसे कर्णको और तीन बाणोंद्वारा वृषसेनको घायल करके राजा शल्यके बाणसहित धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट डाला ॥ २५ ॥

गृहीत्वा धनुरन्यत् तु शल्यो विव्याध पाण्डवम् ।
भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ २६ ॥

तब शल्यने दूसरा धनुष हाथमें लेकर पाण्डुपुत्र अर्जुनको बींध डाला। भूरिश्रवाने सानपर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले तीन बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया ॥

कर्णो द्वात्रिंशता चैव वृषसेनश्च सप्तभिः ।
जयद्रथस्त्रिसप्तत्या कृपश्च दशभिः शरैः ॥ २७ ॥
मद्रराजश्च दशभिर्विव्यधुः फाल्गुनं रणे ।

फिर कर्णने बत्तीस, वृषसेनने सात, जयद्रथने तिहत्तर, कृपाचार्यने दस तथा मद्रराज शल्यने भी दस बाण मारकर रणक्षेत्रमें अर्जुनको बींध डाला ॥ २७½ ॥

ततः शराणां षष्ट्या तु द्रौणिः पार्थमवाकिरत् ॥ २८ ॥
वासुदेवं च विंशत्या पुनः पार्थं च पञ्चभिः ।

तत्पश्चात् अश्वत्थामाने अर्जुनपर साठ बाण बरसाये, फिर श्रीकृष्णको बीस और अर्जुनको भी पाँच बाण मारे ॥

प्रहसंस्तु नरव्याघ्रः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥ २९ ॥
प्रत्यविध्यत् स तान् सर्वान् दर्शयन् पाणिलाघवम् ।

तब श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, उन श्वेतवाहन पुरुषसिंह अर्जुनने जोर-जोरसे हँसते और हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए उन सबको बींधकर बदला चुकाया ॥ २९½ ॥

कर्णं द्वादशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं त्रिभिः शरैः ॥ ३० ॥
शल्यस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे व्यकृन्तत ।

कर्णको बारह और वृषसेनको तीन बाणोंसे घायल करके राजा शल्यके बाणसहित धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे पुनः काट डाला ॥ ३०½ ॥

सौमदत्तिं त्रिभिर्विद्ध्वा शल्यं च दशभिः शरैः ॥ ३१ ॥
शितैरग्निशिखाकारैर्द्रौणिं विव्याध चाष्टभिः ।

इसके बाद भूरिश्रवाको तीन और शल्यको दस बाणोंसे बींधकर अग्निकी ज्वालाके समान आकारवाले आठ तीखे बाणोंद्वारा अश्वत्थामाको घायल कर दिया ॥ ३१½ ॥

गौतमं पञ्चविंशत्या सैन्धवं च शतेन ह ॥ ३२ ॥
पुनर्द्रौणिं च सप्तत्या शराणां सोऽभ्यताडयत् ।

तत्पश्चात् कृपाचार्यको पचीस, जयद्रथको सौ तथा अश्वत्थामाको पुनः उन्होंने सत्तर बाण मारे ॥ ३२½ ॥

भूरिश्रवास्तु संक्रुद्धः प्रतोदं चिच्छिदे हरेः ॥ ३३ ॥
अर्जुनं च त्रिसप्तत्या बाणानामाजघान ह ॥ ३४ ॥

भूरिश्रवाने कुपित होकर श्रीकृष्णका चाबुक काट डाला और अर्जुनको तिहत्तर बाणोंसे गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३३-३४ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैस्तानरीञ्श्वेतवाहनः ।
प्रत्यषेधद् द्रुतं क्रुद्धो महावातो घनानिव ॥ ३५ ॥

तदनन्तर जैसे प्रचण्ड वायु बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार श्वेतवाहन अर्जुनने कुपित हो सैकड़ों तीखे बाणोंद्वारा उन शत्रुओंको तुरंत पीछे हटा दिया ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ चारवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०४ ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुन तथा कौरव-महारथियोंके ध्वजोंका वर्णन और नौ महारथियोंके साथ अकेले अर्जुनका युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

ध्वजान् बहुविधाकारान् भ्राजमानानतिश्रिया ।
पार्थानां मामकानां च तान् ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! मेरे तथा कुन्तीके पुत्रोंके जो नाना प्रकारके ध्वज अत्यन्त शोभासे उद्भासित हो रहे थे, उनका मुझसे वर्णन करो ॥ १ ॥

संजय उवाच

ध्वजान् बहुविधाकाराञ्शृणु तेषां महात्मनाम् ।
रूपतो वर्णतश्चैव नामतश्च निबोध मे ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन्! उन महामनस्वी वीरोंके जो नाना प्रकारकी आकृतिवाले ध्वज फहरा रहे थे, उनका रूप-रंग और नाम मैं बता रहा हूँ, सुनिये ॥ २ ॥

तेषां तु रथमुख्यानां रथेषु विविधा ध्वजाः ।
प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र ज्वलिता इव पावकाः ॥ ३ ॥

राजेन्द्र! उन श्रेष्ठ महारथियोंके रथोंपर भाँति-भाँतिके ध्वज प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी दिखायी देते थे ॥

काञ्चनाः काञ्चनापीडाः काञ्चनस्रगलंकृताः ।
काञ्चनानीव शृङ्गाणि काञ्चनस्य महागिरेः ॥ ४ ॥

वे ध्वज सोनेके बने थे। उनके ऊपरी भागको सुवर्णसे ही सजाया गया था। सोनेकी ही मालाओंसे वे अलंकृत थे। अतः सुवर्णमय महापर्वत सुमेरुके स्वर्णमय शिखरोंके समान सुशोभित होते थे ॥ ४ ॥

अनेकवर्णा विविधा ध्वजाः परमशोभनाः ।
ते ध्वजाः संवृतास्तेषां पताकाभिः समन्ततः ॥ ५ ॥
नानावर्णविरागाभिः शुशुभुः सर्वतो वृताः ।

वे परम शोभासम्पन्न अनेक प्रकारके बहुरंगे ध्वज सब ओरसे नाना रंगकी पताकाओंद्वारा घिरकर बड़ी शोभा पाते थे ॥ ५½ ॥

पताकाश्च ततस्तास्तु श्वसनेन समीरिताः ॥ ६ ॥
नृत्यमाना व्यदृश्यन्त रङ्गमध्ये विलासिकाः ।

उनकी वे पताकाएँ वायुसे संचालित हो रंगमंचपर नृत्य करनेवाली विलासिनियोंके समान दिखायी देती थीं ॥ ६½ ॥

इन्द्रायुधसवर्णाभाः पताका भरतर्षभ ॥ ७ ॥
दोधूयमाना रथिनां शोभयन्ति महारथान् ।

भरतश्रेष्ठ ! इन्द्रधनुषके समान प्रभावाली फहराती हुई पताकाएँ रथियोंके विशाल रथोंकी शोभा बढ़ाती थीं ॥ ७½ ॥

सिंहलाङ्गलमुग्रास्यं ध्वजं वानरलक्षणम् ॥ ८ ॥
धनंजयस्य संग्रामे प्रत्यदृश्यत भैरवम् ।

उस संग्राममें अर्जुनका भयंकर ध्वज वानरके चिह्नसे सुशोभित दिखायी देता था। उस वानरकी पूँछ सिंहके समान थी और उसका मुख बड़ा ही उग्र था ॥ ८½ ॥

स वानरवरो राजन् पताकाभिरलंकृतः ॥ ९ ॥
त्रासयामास तत् सैन्यं ध्वजो गाण्डीवधन्वनः ।

राजन् ! श्रेष्ठ वानरसे सुशोभित तथा पताकाओंसे अलंकृत गाण्डीवधारी अर्जुनका वह ध्वज आपकी उस सेनाको भयभीत किये देता था ॥ ९½ ॥

तथैव सिंहलाङ्गूलं द्रोणपुत्रस्य भारत ॥ १० ॥
ध्वजाग्रं समपश्याम बालसूर्यसमप्रभम् ।

भारत ! इसी प्रकार हमलोगोंने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके श्रेष्ठ ध्वजको प्रातःकालीन सूर्यके समान अरुण कान्तिसे प्रकाशित देखा था। उसमें सिंहकी पूँछका चिह्न था ॥ १०½ ॥

काञ्चनं पवनोद्धूतं शक्रध्वजसमप्रभम् ॥ ११ ॥
नन्दनं कौरवेन्द्राणां द्रौणेर्लक्ष्म समुच्छ्रितम् ।

अश्वत्थामाका इन्द्रध्वजके समान प्रकाशमान सुवर्णमय ऊँचा ध्वज वायुकी प्रेरणासे फहराता हुआ कौरव-नरेशोंका आनन्द बढ़ा रहा था ॥ ११½ ॥

हस्तिकक्ष्या पुनर्हैमी बभूवाधिरथेर्ध्वजः ॥ १२ ॥
आहवे खं महाराज ददृशे पूरयन्निव ।

अधिरथपुत्र कर्णका ध्वज हाथीकी सुवर्णमयी रस्सीके चिह्नसे युक्त था। महाराज ! वह संग्राममें आकाशको भरता हुआ-सा दिखायी देता था ॥ १२½ ॥

पताका काञ्चनी स्रग्वी ध्वजे कर्णस्य संयुगे ॥ १३ ॥
नृत्यतीव रथोपस्थे श्वसनेन समीरिता ।

युद्धस्थलमें कर्णके ध्वजपर सुवर्णमयी मालासे विभूषित पताका वायुसे आन्दोलित हो रथकी बैठकपर नृत्य-सा कर रही थी ॥ १३½ ॥

आचार्यस्य तु पाण्डूनां ब्राह्मणस्य तपस्विनः ॥ १४ ॥
गोवृषो गौतमस्यासीत् कृपस्य सुपरिष्कृतः ।
स तेन भ्राजते राजन् गोवृषेण महारथः ॥ १५ ॥
त्रिपुरघ्नरथो यद्वद् गोवृषेण विराजता ।

पाण्डवोंके आचार्य, तपस्वी ब्राह्मण, गौतमगोत्रीय कृपाचार्यके ध्वजपर एक बैलका सुन्दर चिह्न अङ्कित था। राजन् ! उनका वह विशाल रथ उस वृषभचिह्नसे बड़ी शोभा पा रहा था; ठीक उसी तरह, जैसे त्रिपुरनाशक महादेवजीका रथ सुन्दर वृषभचिह्नसे शोभायमान होता था ॥ १४–१५½ ॥

मयूरो वृषसेनस्य काञ्चनो मणिरत्नवान् ॥ १६ ॥
व्याहरिष्यन्निवातिष्ठत् सेनाग्रमुपशोभयन् ।

वृषसेनका मणिरत्नविभूषित सुवर्णमय ध्वज मयूर-चिह्नसे युक्त था। वह मयूर सेनाके अग्रभागकी शोभा बढ़ाता हुआ इस प्रकार खड़ा था, मानो बोल देगा ॥१६½॥

तेन तस्य रथो भाति मयूरेण महात्मनः ॥ १७ ॥
यथा स्कन्दस्य राजेन्द्र मयूरेण विराजता ।

राजेन्द्र ! जैसे स्वामी स्कन्दका रथ सुन्दर मयूरचिह्नसे शोभित होता है, उसी प्रकार महामना वृषसेनका रथ उस मयूरचिह्नसे शोभा पा रहा था ॥ १७½ ॥

मद्रराजस्य शल्यस्य ध्वजाग्रेऽग्निशिखामिव ॥ १८ ॥
सौवर्णीं प्रतिपश्याम सीतामप्रतिमां शुभाम् ।

मद्रराज शल्यकी ध्वजाके अग्रभागमें हमने अग्निशिखाके समान उज्ज्वल, सुवर्णमय, अनुपम तथा शुभ लक्षणोंसे युक्त एक सीता (हलसे भूमिपर खींची हुई रेखा) देखी थी ॥ १८½ ॥

सा सीता भ्राजते तस्य रथमास्थाय मारिष ॥ १९ ॥
सर्वबीजविरूढेव यथा सीता श्रिया वृता ।

माननीय नरेश ! जैसे खेतमें हलकी नोकसे बनी हुई

रेखा सभी बीजोंके अङ्कुरित होनेपर शोभासम्पन्न दिखायी देती है, उसी प्रकार मद्रराजके रथका आश्रय ले वह सीता (हलद्वारा बनी हुई रेखा) बड़ी शोभा पा रही थी ॥ १९½ ॥

वराहः सिन्धुराजस्य राजतोऽभिविराजते ॥ २० ॥
ध्वजाग्रेऽलोहितार्काभो हेमजालपरिष्कृतः ।

सिन्धुराज जयद्रथकी ध्वजाके अग्रभागमें उज्ज्वल सूर्यके समान श्वेत कान्तिमान् और सोनेकी जालीसे विभूषित चाँदीका बना हुआ वराहचिह्न अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥ २०½ ॥

शुशुभे केतुना तेन राजतेन जयद्रथः ॥ २१ ॥
यथा देवासुरे युद्धे पुरा पूषा स्म शोभते ।

जैसे पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें पूषा शोभा पाते थे, उसी प्रकार उस रजतनिर्मित ध्वजसे जयद्रथकी शोभा हो रही थी ॥ २१½ ॥

सौमदत्तेः पुनर्यूपो यज्ञशीलस्य धीमतः ॥ २२ ॥
ध्वजः सूर्य इवाभाति सोमश्चात्र प्रदृश्यते ।

सदा यज्ञमें लगे रहनेवाले बुद्धिमान् भूरिश्रवाके रथमें यूपका चिह्न बना था । वह ध्वज सूर्यके समान प्रकाशित होता था और उसमें चन्द्रमाका चिह्न भी दृष्टिगोचर होता था ॥ २२½ ॥

स यूपः काञ्चनो राजन् सौमदत्तेर्विराजते ॥ २३ ॥
राजसूये मखश्रेष्ठे यथा यूपः समुच्छ्रितः ।

राजन् ! जैसे यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूयमें ऊँचा यूप सुशोभित होता है, भूरिश्रवाका वह सुवर्णमय यूप वैसे ही शोभा पा रहा था ॥ २३½ ॥

शलस्य तु महाराज राजतो द्विरदो महान् ॥ २४ ॥
केतुः काञ्चनचित्राङ्गैर्मयूरैरुपशोभितः ।
स केतुः शोभयामास सैन्यं ते भरतर्षभ ॥ २५ ॥

महाराज ! शलके ध्वजमें चाँदीका महान् गजराज बना हुआ था । भरतश्रेष्ठ ! वह ध्वज सुवर्णनिर्मित विचित्र अङ्गोंवाले मयूरोंसे सुशोभित था और आपकी सेनाकी शोभा बढ़ा रहा था ॥ २४-२५ ॥

यथा श्वेतो महानागो देवराजचमूं तथा ।
नागो मणिमयो राज्ञो ध्वजः कनकसंवृतः ॥ २६ ॥

जैसे श्वेत वर्णका महान् ऐरावत हाथी देवराजकी सेनाको सुशोभित करता है, उसी प्रकार राजा दुर्योधनका सुवर्णमण्डित ध्वज मणिमय गजराजके चिह्नसे उपलक्षित होता था ॥ २६ ॥

किंकिणीशतसंह्रादो भ्राजंश्चित्रो रथोत्तमे ।
व्यभ्राजत भृशं राजन् पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ २७ ॥
ध्वजेन महता संख्ये कुरूणामृषभस्तदा ।

प्रजानाथ ! वह विचित्र [illegible]

सैकड़ों क्षुद्रघंटिकाओंकी ध्वनिसे शोभायमान था । उस महान् ध्वजसे युद्धस्थलमें आपके पुत्र कुरुश्रेष्ठ दुर्योधनकी उस समय बड़ी शोभा हो रही थी ॥ २७½ ॥

नवैते तव वाहिन्यामुच्छ्रिताः परमध्वजाः ॥ २८ ॥
व्यदीपयंस्ते पृतनां युगान्तादित्यसंनिभाः ।

ये नौ उत्तम ध्वज आपकी सेनामें बहुत ऊँचे थे और प्रलयकालके सूर्यके समान अपना प्रकाश फैलाते हुए आपकी सेनाको उद्भासित कर रहे थे ॥ २८½ ॥

दशमस्त्वर्जुनस्यासीदेक एव महाकपिः ॥ २९ ॥
अदीप्यतार्जुनो येन हिमवानिव वह्निना ।

दसवाँ ध्वज एकमात्र अर्जुनका ही था, जो विशाल वानरचिह्नसे सुशोभित था । उससे अर्जुन उसी प्रकार देदीप्यमान हो रहे थे, जैसे अग्निसे हिमालय पर्वत उद्भासित होता है ॥ २९½ ॥

ततश्चित्राणि शुभ्राणि सुमहान्ति महारथाः ॥ ३० ॥
कार्मुकाण्याददुस्तूर्णमर्जुनार्थे परंतपाः ।

तदनन्तर शत्रुओंको संताप देनेवाले उन सब महारथियोंने अर्जुनको मारनेके लिये तुरंत ही विचित्र, चमकीले और विशाल धनुष हाथमें ले लिये ॥ ३०½ ॥

तथैव धनुरायच्छत् पार्थः शत्रुविनाशनः ॥ ३१ ॥
गाण्डीवं दिव्यकर्मा तद् राजन् दुर्मन्त्रिते तव ।

राजन् ! उसी प्रकार दिव्य कर्म करनेवाले शत्रुनाशन पार्थने भी आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप अपने गाण्डीव धनुषको खींचा ॥ ३१½ ॥

तवापराधाद् राजानो निहता बहुशो युधि ॥ ३२ ॥
नानादिग्भ्यः समाहूताः सहयाः सरथद्विपाः ।

महाराज ! आपके अपराधसे उस युद्धस्थलमें अनेक दिशाओंसे आमन्त्रित होकर आये हुए बहुत-से राजा अपने घोड़ों, रथों और हाथियोंसहित मारे गये हैं ॥ ३२½ ॥

तेषामासीद् व्यतिक्षेपो गर्जतामितरेतरम् ॥ ३३ ॥
दुर्योधनमुखानां च पाण्डूनामृषभस्य च ।

उस समय एक दूसरेको लक्ष्य करके गर्जना करनेवाले दुर्योधन आदि महारथियों तथा पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुनमें परस्पर आघात-प्रतिघात होने लगा ॥ ३३½ ॥

तत्राद्भुतं परं चक्रे कौन्तेयः कृष्णसारथिः ॥ ३४ ॥
यदेको बहुभिः सार्धं समागच्छदभीतवत् ।

वहाँ श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, उन कुन्तीकुमार अर्जुनने यह अत्यन्त अद्भुत पराक्रम किया कि अकेले ही बहुतोंके साथ निर्भय होकर युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ ३४½ ॥

[illegible] महाबाहुर्गाण्डीवं विक्षिपन् धनुः ॥ ३५ ॥

जिगीषुस्तान् नरव्याघ्रो जिघांसुश्च जयद्रथम् ।

उनपर विजय पानेकी इच्छा रखकर जयद्रथके वधकी अभिलाषासे गाण्डीव धनुषको खींचते हुए पुरुषसिंह महाबाहु अर्जुनकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ३५½ ॥

तत्रार्जुनो नरव्याघ्रः शरैर्मुक्तैः सहस्रशः ॥ ३६ ॥
अदृश्यांस्तावकान् योधान् प्रचक्रे शत्रुतापनः ।

उस समय शत्रुओंको संताप देनेवाले नरव्याघ्र अर्जुनने अपने छोड़े हुए सहस्रों बाणोंद्वारा आपके योद्धाओंको अदृश्य कर दिया ॥ ३६½ ॥

ततस्तेऽपि नरव्याघ्राः पार्थं सर्वे महारथाः ॥ ३७ ॥
अदृश्यं समरे चक्रुः सायकौघैः समन्ततः ।

तब उन सभी पुरुषसिंह महारथियोंने भी समराङ्गणमें सब ओरसे बाणसमूहोंकी वर्षा करके अर्जुनको अदृश्य कर दिया ॥ ३७½ ॥

संवृते नरसिंहैस्तु कुरूणामृषभेऽर्जुने ।
महानासीत् समुद्भूतस्तस्य सैन्यस्य निःस्वनः ॥ ३८ ॥

जब कुरुश्रेष्ठ अर्जुन उन पुरुषसिंहोंद्वारा घेर लिये गये, तब उस सेनामें महान् कोलाहल प्रकट हुआ ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि ध्वजवर्णने पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें ध्वजवर्णनविषयक एक सौ पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०५ ॥

षडधिकशततमोऽध्यायः

द्रोण और उनकी सेनाके साथ पाण्डव-सेनाका द्वन्द्वयुद्ध तथा द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करते समय रथ-भंग हो जानेपर युधिष्ठिरका पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

अर्जुने सैन्धवं प्राप्ते भारद्वाजेन संवृताः ।
पञ्चालाः कुरुभिः सार्धं किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथके समीप पहुँच गये, तब द्रोणाचार्यद्वारा रोके हुए पाञ्चाल-सैनिकोंने कौरवोंके साथ क्या किया ? ॥ १ ॥

संजय उवाच

अपराह्णे महाराज संग्रामे लोमहर्षणे ।
पञ्चालानां कुरूणां च द्रोणद्यूतमवर्तत ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! उस दिन अपराह्ण-कालमें, जब रोमाञ्चकारी युद्ध चल रहा था, पाञ्चालों और कौरवोंमें द्रोणाचार्यको दाँवपर रखकर द्यूत-सा होने लगा ॥ २ ॥

पञ्चाला हि जिघांसन्तो द्रोणं संहृष्टचेतसः ।
अभ्यमुञ्चन्त गर्जन्तः शरवर्षाणि मारिष ॥ ३ ॥

माननीय नरेश ! पाञ्चाल-सैनिक द्रोणको मार डालनेकी इच्छासे प्रसन्नचित्त होकर गर्जना करते हुए उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३ ॥

ततस्तु तुमुलस्तेषां संग्रामोऽवर्तताद्भुतः ।
पञ्चालानां कुरूणां च घोरो देवासुरोपमः ॥ ४ ॥

तदनन्तर उन पाञ्चालों और कौरवोंमें घोर देवासुर-संग्रामके समान अद्भुत एवं भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ४ ॥

सर्वे द्रोणरथं प्राप्य पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
तदनीकं बिभित्सन्तो महास्त्राणि व्यदर्शयन् ॥ ५ ॥

समस्त पाञ्चाल पाण्डवोंके साथ द्रोणाचार्यके रथके समीप जाकर उनकी सेनाके व्यूहका भेदन करनेकी इच्छासे बड़े-बड़े अस्त्रोंका प्रदर्शन करने लगे ॥ ५ ॥

द्रोणस्य रथपर्यन्तं रथिनो रथमास्थिताः ।
कम्पयन्तोऽभ्यवर्तन्त वेगमास्थाय मध्यमम् ॥ ६ ॥

वे पाञ्चाल रथी रथपर बैठकर मध्यम वेगका आश्रय ले पृथ्वीको कँपाते हुए द्रोणाचार्यके रथके अत्यन्त निकट जाकर उनका सामना करने लगे ॥ ६ ॥

तमभ्ययाद् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः ।
प्रवपन् निशितान् बाणान् महेन्द्राशनिसंनिभान् ॥ ७ ॥

केकयदेशके महारथी वीर बृहत्क्षत्रने महेन्द्रके वज्रके समान तीखे बाणोंकी वर्षा करते हुए वहाँ द्रोणाचार्यपर धावा किया ॥ ७ ॥

तं तु प्रत्युद्ययौ शीघ्रं क्षेमधूर्तिर्महायशाः ।
विमुञ्चन् निशितान् बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥

उस समय महायशस्वी क्षेमधूर्ति सैकड़ों और हजारों तीखे बाण छोड़ते हुए शीघ्रतापूर्वक बृहत्क्षत्रका सामना करनेके लिये गये ॥ ८ ॥

धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ।
त्वरितोऽभ्यद्रवद् द्रोणं महेन्द्र इव शम्बरम् ॥ ९ ॥

अत्यन्त बलसे विख्यात चेदिराज धृष्टकेतुने भी बड़ी उतावलीके साथ द्रोणाचार्यपर धावा किया, मानो देवराज इन्द्रने शम्बरासुरपर चढ़ाई की हो ॥ ९ ॥

तमापतन्तं सहसा व्यादितास्यमिवान्तकम् ।
वीरधन्वा महेष्वासस्त्वरमाणः समभ्ययात् ॥ १० ॥

मुँह बाये हुए कालके समान सहसा आक्रमण करनेवाले धृष्टकेतुका सामना करनेके लिये महाधनुर्धर वीरधन्वा बड़े वेगसे आ पहुँचे ॥ १० ॥

युधिष्ठिरं महाराजं जिगीषुं समवस्थितम्।
सहानीकं ततो द्रोणो न्यवारयत वीर्यवान् ॥ ११ ॥

तदनन्तर पराक्रमी द्रोणाचार्यने विजयकी इच्छासे सेना-सहित खड़े हुए महाराज युधिष्ठिरको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ११ ॥

नकुलं कुशलं युद्धे पराक्रान्तं पराक्रमी।
अभ्यगच्छत् समायान्तं विकर्णस्ते सुतः प्रभो ॥ १२ ॥

प्रभो ! आपके पराक्रमी पुत्र विकर्णने वहाँ आते हुए पराक्रमशाली युद्धकुशल नकुलका सामना किया ॥ १२ ॥

सहदेवं तथाऽऽयान्तं दुर्मुखः शत्रुकर्षणः।
शरैरनेकसाहस्रैः समवाकिरदाशुगैः ॥ १३ ॥

शत्रुसूदन दुर्मुखने अपने सामने आते हुए सहदेवपर कई हजार बाणोंकी वर्षा की ॥ १३ ॥

सात्यकिं तु नरव्याघ्रं व्याघ्रदत्तस्त्ववारयत्।
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैः कम्पयन् वै मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥

व्याघ्रदत्तने अत्यन्त तेज किये हुए तीखे बाणोंद्वारा बारंबार शत्रुसेनाको कम्पित करते हुए वहाँ पुरुषसिंह सात्यकिको आगे बढ़नेसे रोका ॥ १४ ॥

द्रौपदेयान् नरव्याघ्रान् मुञ्चतः सायकोत्तमान्।
संरब्धान् रथिनः श्रेष्ठान् सौमदत्तिरवारयत् ॥ १५ ॥

मनुष्योंमें व्याघ्रके समान पराक्रमी तथा श्रेष्ठ रथी द्रौपदीके पाँचों पुत्र कुपित होकर शत्रुओंपर उत्तम बाणोंकी वर्षा कर रहे थे। सोमदत्तकुमार शलने उन सबको रोक दिया ॥ १५ ॥

भीमसेनं तदा क्रुद्धं भीमरूपो भयानकः।
प्रत्यवारयदायान्तमार्ष्यश्रृङ्गिर्महारथः ॥ १६ ॥

भयंकर रूपधारी एवं भयानक महारथी ऋष्यश्रृङ्ग-कुमार अलम्बुषने उस समय क्रोधमें भरकर आते हुए भीमसेनको रोका ॥ १६ ॥

तयोः समभवद् युद्धं नरराक्षसयोर्मृधे।
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोर्नृप ॥ १७ ॥

राजन् ! पूर्वकालमें जिस प्रकार श्रीराम और रावणका संग्राम हुआ था, उसी प्रकार उस रणक्षेत्रमें मानव भीमसेन तथा राक्षस अलम्बुषका युद्ध हुआ ॥ १७ ॥

ततो युधिष्ठिरो द्रोणं नवत्या नतपर्वणाम्।
आजघ्ने भरतश्रेष्ठः सर्वमर्मसु भारत ॥ १८ ॥

भरतनन्दन ! तदनन्तर भरतभूषण युधिष्ठिरने झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंसे द्रोणाचार्यके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें आघात किया ॥ १८ ॥

तं द्रोणः पञ्चविंशत्या निजघान स्तनान्तरे।
रोषितो भरतश्रेष्ठ कौन्तेयेन यशस्विना ॥ १९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! यशस्वी कुन्तीकुमारके क्रोध दिलानेपर द्रोणाचार्यने उनकी छातीमें पचीस बाण मारे ॥ १९ ॥

भूय एव तु विंशत्या सायकानां समाचिनोत्।
साश्वसूतध्वजं द्रोणः पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ २० ॥

फिर द्रोणने सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते घोड़े, सारथि और ध्वजसहित युधिष्ठिरको बीस बाण मारे ॥ २० ॥

ताञ्शरान् द्रोणमुक्तांस्तु शरवर्षेण पाण्डवः।
अवारयत धर्मात्मा दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥ २१ ॥

धर्मात्मा पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए द्रोणाचार्यके छोड़े हुए उन बाणोंको अपनी बाण-वर्षाद्वारा रोक दिया ॥ २१ ॥

ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य संयुगे।
चिच्छेद समरे धन्वी धनुस्तस्य महात्मनः ॥ २२ ॥

तब धनुर्धर द्रोणाचार्य उस युद्धस्थलमें महात्मा धर्मराज युधिष्ठिरपर अत्यन्त कुपित हो उठे। उन्होंने समराङ्गणमें युधिष्ठिरके धनुषको काट दिया ॥ २२ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः।
शरैरनेकसाहस्रैः पूरयामास सर्वतः ॥ २३ ॥

धनुष काट देनेके पश्चात् महारथी द्रोणाचार्यने बड़ी उतावलीके साथ कई हजार बाणोंकी वर्षा करके उन्हें सब ओरसे ढक दिया ॥ २३ ॥

अदृश्यं वीक्ष्य राजानं भारद्वाजस्य सायकैः।
सर्वभूतान्यमन्यन्त हतमेव युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥

राजा युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यके बाणोंसे अदृश्य हुआ देख समस्त प्राणियोंने उन्हें मारा गया ही मान लिया ॥ २४ ॥

केचिच्चैनममन्यन्त तथैव विमुखीकृतम्।
हतो राजेति राजेन्द्र ब्राह्मणेन महात्मना ॥ २५ ॥

राजेन्द्र ! कुछ लोग ऐसा समझते थे कि युधिष्ठिर पराजित होकर भाग गये। कुछ लोगोंकी यही धारणा थी कि महामनस्वी ब्राह्मण द्रोणाचार्यके हाथसे राजा युधिष्ठिर मार डाले गये ॥ २५ ॥

स कृच्छ्रं परमं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
त्यक्त्वा तत् कार्मुकं छिन्नं भारद्वाजेन संयुगे ॥ २६ ॥
आददेऽन्यद् धनुर्दिव्यं भास्वरं वेगवत्तरम्।

इस प्रकार भारी संकटमें पड़े हुए धर्मराज युधिष्ठिरने युद्धमें द्रोणाचार्यके द्वारा काट दिये गये उस धनुषको त्यागकर दूसरा प्रकाशमान एवं अत्यन्त वेगशाली दिव्य धनुष धारण किया ॥ २६½ ॥

ततस्तान् सायकांस्तत्र द्रोणमुक्तान् सहस्रशः ॥ २७ ॥
चिच्छेद समरे वीरस्तदद्भुतमिवाभवत्।

तदनन्तर वीर युधिष्ठिरने समराङ्गणमें द्रोणाचार्यके

चलाये हुए सहस्रों बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। वह अद्भुत-सी बात हुई ॥ २७½ ॥

छित्त्वा तु ताञ्शरान् राजन् क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २८ ॥
शक्तिं जग्राह समरे गिरीणामपि दारिणीम्।
स्वर्णदण्डां महाघोरामष्टघण्टां भयावहाम् ॥ २९ ॥

राजन्! उस समराङ्गणमें क्रोधसे लाल आँखें किये युधिष्ठिरने द्रोणके उन बाणोंको काटकर एक शक्ति हाथमें ली, जो पर्वतोंको भी विदीर्ण कर देनेवाली थी। उसमें सोनेका डंडा और आठ घंटियाँ लगी थीं। वह अत्यन्त घोर शक्ति मनमें भय उत्पन्न करनेवाली थी ॥ २८-२९ ॥

समुत्क्षिप्य च तां हृष्टो ननाद बलवद् बली।
नादेन सर्वभूतानि त्रासयन्निव भारत ॥ ३० ॥

भारत! उसे चलाकर हर्षमें भरे हुए बलवान् युधिष्ठिरने बड़े जोरसे सिंहनाद किया। उन्होंने उस सिंहनादसे सम्पूर्ण भूतोंमें भय-सा उत्पन्न कर दिया ॥ ३० ॥

शक्तिं समुद्यतां दृष्ट्वा धर्मराजेन संयुगे।
स्वस्ति द्रोणाय सहसा सर्वभूतान्यथाब्रुवन् ॥ ३१ ॥

युद्धस्थलमें धर्मराजके द्वारा उठायी हुई उस शक्तिको देखकर समस्त प्राणी सहसा बोल उठे—'द्रोणाय स्वस्ति (द्रोणाचार्यका कल्याण हो)' ॥ ३१ ॥

सा राजभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसंनिभा।
प्रज्वालयन्ती गगनं दिशः सप्रदिशस्तथा ॥ ३२ ॥
द्रोणान्तिकमनुप्राप्ता दीप्तास्या पन्नगी यथा।

केंचुलसे छूटे हुए सर्पके समान राजाकी भुजाओंसे मुक्त हुई वह शक्ति आकाश, दिशाओं तथा विदिशाओं (कोणों) को प्रकाशित करती हुई जलते मुखवाली नागिनके समान द्रोणाचार्यके निकट जा पहुँची ॥ ३२½ ॥

तामापतन्तीं सहसा दृष्ट्वा द्रोणो विशाम्पते ॥ ३३ ॥
प्रादुश्चक्रे ततो ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविदां वरः।

प्रजानाथ! तब सहसा आती हुई उस शक्तिको देखकर अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ द्रोणने ब्रह्मास्त्र प्रकट किया ॥ ३३½ ॥

तदस्त्रं भस्मसात्कृत्वा तां शक्तिं घोरदर्शनाम् ॥ ३४ ॥
जगाम स्यन्दनं तूर्णं पाण्डवस्य यशस्विनः।

वह अस्त्र भयंकर दीखनेवाली उस शक्तिको भस्म करके तुरंत ही यशस्वी युधिष्ठिरके रथकी ओर चला ॥ ३४½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा द्रोणास्त्रं तत् समुद्यतम् ॥ ३५ ॥
अशामयन्महाप्राज्ञो ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष।

माननीय नरेश! तब महाप्राज्ञ राजा युधिष्ठिरने द्रोणद्वारा चलाये गये उस ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रद्वारा ही शान्त कर दिया ॥ ३५½ ॥

विद्ध्वा तं च रणे द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ३६ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेदास्य महद् धनुः।

इसके बाद झुकी हुई गाँठवाले पाँच बाणोंद्वारा रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यको घायल करके तीखे क्षुरप्रसे उनके विशाल धनुषको काट दिया ॥ ३६½ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ३७ ॥
गदां चिक्षेप सहसा धर्मपुत्राय मारिष।

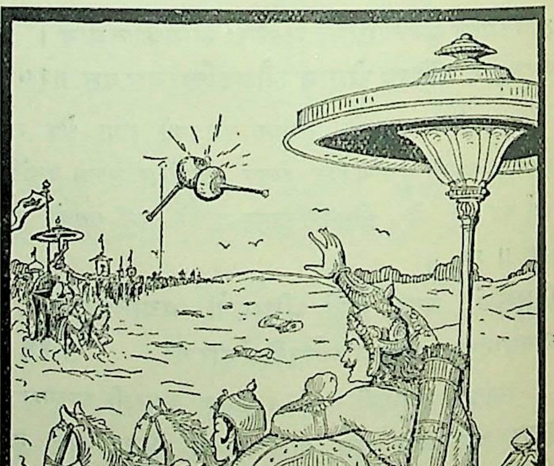
आर्य! क्षत्रियमर्दन द्रोणने उस कटे हुए धनुषको फेंककर सहसा धर्मपुत्र युधिष्ठिरपर गदा चलायी ॥ ३७½ ॥

तामापतन्तीं सहसा गदां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ॥ ३८ ॥
गदामेवाग्रहीत् क्रुद्धश्चिक्षेप च परंतप।

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश! उस गदाको सहसा अपने ऊपर आती देख क्रोधमें भरे हुए युधिष्ठिरने भी गदा ही उठा ली और द्रोणाचार्यपर चला दी ॥ ३८½ ॥

ते गदे सहसा मुक्ते समासाद्य परस्परम् ॥ ३९ ॥
संघर्षात् पावकं मुक्त्वा समेयातां महीतले।

एकबारगी छोड़ी हुई वे दोनों गदाएँ एक दूसरीसे टकराकर संघर्षसे आगकी चिनगारियाँ छोड़ती हुई



पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ ३९½ ॥

ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य मारिष ॥ ४० ॥
चतुर्भिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्हयाञ्जघ्ने शरोत्तमैः।

माननीय नरेश! तब द्रोणाचार्य अत्यन्त कुपित हो उठे और उन्होंने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए चार तीखे एवं उत्तम बाणोंद्वारा धर्मराजके चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ ४०½ ॥

चिच्छेदैकेन भल्लेन धनुश्चेन्द्रध्वजोपमम् ॥ ४१ ॥
केतुमेकेन चिच्छेद पाण्डवं चार्दयत् त्रिभिः ।

फिर एक भल्ल चलाकर उनका धनुष काट दिया। एक भल्लसे इन्द्रध्वजके समान उनकी ध्वजा खण्डित कर दी और तीन बाणोंसे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको भी पीड़ा पहुँचायी ॥ ४१½ ॥

हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवप्लुत्य युधिष्ठिरः ॥ ४२ ॥
तस्थावूर्ध्वभुजो राजा व्यायुधो भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! जिसके घोड़े मारे गये थे, उस रथसे तुरंत ही कूदकर राजा युधिष्ठिर बिना आयुधके हाथ ऊपर उठाये धरतीपर खड़े हो गये ॥ ४२½ ॥

विरथं तं समालोक्य व्यायुधं च विशेषतः ॥ ४३ ॥
द्रोणो व्यमोहयच्छत्रून् सर्वसैन्यानि वा विभो ।

प्रभो ! उन्हें रथ और विशेषतः आयुधसे रहित देख द्रोणाचार्यने शत्रुओं तथा उनकी सम्पूर्ण सेनाओंको मोहित कर दिया ॥ ४३½ ॥

मुञ्चन्निषुगणांस्तीक्ष्णाल्लँघुहस्तो दृढव्रतः ॥ ४४ ॥
अभिदुद्राव राजानं सिंहो मृगमिवोल्बणः ।

दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले द्रोणके हाथ बड़ी फुर्तीसे चलते थे। जैसे प्रचण्ड सिंह किसी मृगका पीछा करता हो, उसी प्रकार वे तीखे बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए राजा युधिष्ठिरकी ओर दौड़े ॥ ४४½ ॥

तमभिद्रुतमालोक्य द्रोणेनामित्रघातिना ॥ ४५ ॥
हाहेति सहसा शब्दः पाण्डूनां समजायत ।

शत्रुनाशक द्रोणाचार्यके द्वारा युधिष्ठिरका पीछा होता देख पाण्डवदलमें सहसा हाहाकार मच गया ॥ ४५½ ॥

हतो राजा हतो राजा भारद्वाजेन मारिष ॥ ४६ ॥
इत्यासीत् सुमहाञ्छब्दः पाण्डुसैन्यस्य भारत ।

भारत ! माननीय नरेश ! पाण्डुसेनामें यह महान् कोलाहल होने लगा कि 'राजा मारे गये, राजा मारे गये' ॥

ततस्त्वरितमारुह्य सहदेवरथं नृपः ।
अपायाज्जवनैरश्वैः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४७ ॥

तदनन्तर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर तुरंत ही सहदेवके रथपर आरूढ़ हो अपने वेगशाली घोड़ोंद्वारा वहाँसे हट गये ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरापयाने षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें युधिष्ठिरका पलायनविषयक एक सौ छवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

कौरवसेनाके क्षेमधूर्ति, वीरधन्वा, निरमित्र तथा व्याघ्रदत्तका वध और दुर्मुख एवं विकर्णकी पराजय

संजय उवाच

बृहत्क्षत्रमथायान्तं कैकेयं दृढविक्रमम् ।
क्षेमधूर्तिर्महाराज विव्याधोरसि मार्गणैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर सुदृढ़ पराक्रमी केकयराज बृहत्क्षत्रको आते देख क्षेमधूर्तिने अनेक बाणोंद्वारा उनकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ १ ॥

बृहत्क्षत्रस्तु तं राजा नवत्या नतपर्वणाम् ।
आजघ्ने त्वरितो राजन् द्रोणानीकबिभित्सया ॥ २ ॥

राजन् ! तब राजा बृहत्क्षत्रने भी झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंद्वारा तुरंत ही द्रोणाचार्यके सैन्यव्यूहका विघटन करनेकी इच्छासे क्षेमधूर्तिको घायल कर दिया ॥ २ ॥

क्षेमधूर्तिस्तु संक्रुद्धः कैकेयस्य महात्मनः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन ह ॥ ३ ॥

इससे क्षेमधूर्ति अत्यन्त कुपित हो उठा और उसने पानीदार तीखे भल्लसे महामनस्वी केकयराजका धनुष काट डाला ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं शरेणानतपर्वणा ।
विव्याध समरे तूर्णं प्रवरं सर्वधन्विनाम् ॥ ४ ॥

धनुष कट जानेपर समस्त धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ बृहत्क्षत्रको समराङ्गणमें झुकी हुई गाँठवाले बाणसे उसने तुरंत ही बींध डाला ॥ ४ ॥

अथान्यद् धनुरादाय बृहत्क्षत्रो हसन्निव ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे क्षेमधूर्तिं महारथम् ॥ ५ ॥

तदनन्तर बृहत्क्षत्रने दूसरा धनुष हाथमें लेकर हँसते हँसते महारथी क्षेमधूर्तिको घोड़ों, सारथि और रथसे हीन कर दिया ॥

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
जहार नृपतेः कायाच्छिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ ६ ॥

इसके बाद दूसरे पानीदार तीखे भल्लसे राजा क्षेमधूर्तिके प्रज्वलित कुण्डलोंवाले मस्तकको धड़से अलग कर दिया ॥ ६ ॥

तच्छिन्नं सहसा तस्य शिरः कुञ्चितमूर्धजम् ।
सकिरीटं महीं प्राप्य बभौ ज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ७ ॥

सहसा कटा हुआ घुँघराले बालोंवाला क्षेमधूर्तिका वह मस्तक मुकुटसहित पृथ्वीपर गिरकर आकाशसे टूटे हुए तारेके समान प्रतीत हुआ ॥ ७ ॥

तं निहत्य रणे हृष्टो बृहत्क्षत्रो महारथः ।
सहसाभ्यपतत् सैन्यं तावकं पार्थकारणात् ॥ ८ ॥

रणक्षेत्रमें क्षेमधूर्तिका वध करके प्रसन्न हुए महारथी बृहत्क्षत्र युधिष्ठिरके हितके लिये सहसा आपकी सेनापर टूट पड़े॥

धृष्टकेतुं तथाऽऽयान्तं द्रोणहेतोः पराक्रमी ।
वीरधन्वा महेष्वासो वारयामास भारत ॥ ९ ॥

भारत ! इसी प्रकार द्रोणाचार्यके हितके लिये महाधनुर्धर पराक्रमी वीरधन्वाने वहाँ आते हुए धृष्टकेतुको रोका ॥ ९ ॥

तौ परस्परमासाद्य शरदंष्ट्रौ तरस्विनौ ।
शरैरनेकसाहस्रैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १० ॥

वे दोनों वेगशाली वीर बाणरूपी दाढ़ोंसे युक्त हो परस्पर भिड़कर अनेक सहस्र बाणोंद्वारा एक दूसरेको चोट पहुँचाने लगे ॥ १० ॥

तावुभौ नरशार्दूलौ युयुधाते परस्परम् ।
महावने तीव्रमदौ वारणाविव यूथपौ ॥ ११ ॥

महान् वनमें तीव्र मदवाले दो यूथपति गजराजोंके समान वे दोनों पुरुषसिंह परस्पर युद्ध करने लगे ॥ ११ ॥

गिरिगह्वरमासाद्य शार्दूलाविव रोषितौ ।
युयुधाते महावीर्यौ परस्परजिघांसया ॥ १२ ॥

दोनों ही महान् पराक्रमी थे और एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे रोषमें भरकर पर्वतकी गुफामें पहुँचकर लड़नेवाले दो सिंहोंके समान आपसमें जूझ रहे थे ॥ १२ ॥

तद् युद्धमासीत् तुमुलं प्रेक्षणीयं विशाम्पते ।
सिद्धचारणसंघानां विस्मयाद्भुतदर्शनम् ॥ १३ ॥

प्रजानाथ ! उनका वह घमासान युद्ध देखने ही योग्य था । वह सिद्धों और चारणसमूहोंको भी आश्चर्यजनक एवं अद्भुत दिखायी देता था ॥ १३ ॥

वीरधन्वा ततः क्रुद्धो धृष्टकेतोः शरासनम् ।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन प्रहसन्निव भारत ॥ १४ ॥

भरतनन्दन ! तत्पश्चात् वीरधन्वाने कुपित होकर हँसते हुए-से ही एक भल्लद्वारा धृष्टकेतुके धनुषके दो टुकड़े कर दिये॥

तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं चेदिराजो महारथः ।
शक्तिं जग्राह विपुलां हेमदण्डामयस्मयीम् ॥ १५ ॥

महारथी चेदिराज धृष्टकेतुने उस कटे हुए धनुषको फेंककर एक लोहेकी बनी हुई स्वर्णदण्डविभूषित विशाल शक्ति हाथमें ले ली ॥ १५ ॥

तां तु शक्तिं महावीर्यां दोर्भ्यामायम्य भारत ।
चिक्षेप सहसा यत्तो वीरधन्वरथं प्रति ॥ १६ ॥

भारत ! उस अत्यन्त प्रबल शक्तिको दोनों हाथोंसे उठाकर यत्नशील धृष्टकेतुने सहसा वीरधन्वाके रथपर उसे दे मारा ॥ १६ ॥

तया तु वीरघातिन्या शक्त्या त्वभिहतो भृशम् ।
निर्भिन्नहृदयस्तूर्णं निपपात रथान्महीम् ॥ १७ ॥

उस वीरघातिनी शक्तिकी गहरी चोट खाकर वीरधन्वाका वक्षःस्थल विदीर्ण हो गया और वह तुरंत ही रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १७ ॥

तस्मिन् विनिहते वीरे त्रैगर्तानां महारथे ।
बलं तेऽभज्यत विभो पाण्डवेयैः समन्ततः ॥ १८ ॥

प्रभो ! त्रिगर्तदेशके उस महारथी वीरके मारे जानेपर पाण्डव सैनिकोंने चारों ओरसे आपकी सेनाको विघटित कर दिया ॥ १८ ॥

सहदेवे ततः षष्टिं सायकान् दुर्मुखोऽक्षिपत् ।
ननाद च महानादं तर्जयन् पाण्डवं रणे ॥ १९ ॥

तदनन्तर दुर्मुखने रणक्षेत्रमें सहदेवपर साठ बाण चलाये और उन पाण्डुकुमारको डाँट बताते हुए बड़े जोरसे गर्जना की ॥ १९ ॥

माद्रेयस्तु ततः क्रुद्धो दुर्मुखं च शितैः शरैः ।
भ्राता भ्रातरमायान्तं विव्याध प्रहसन्निव ॥ २० ॥

यह देख माद्रीकुमार कुपित हो उठे । वे दुर्मुखके भाई लगते थे । उन्होंने अपने पास आते हुए भ्राता दुर्मुखको हँसते हुए-से तीखे बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ २० ॥

तं रणे रभसं दृष्ट्वा सहदेवं महाबलम् ।
दुर्मुखो नवभिर्बाणैस्ताडयामास भारत ॥ २१ ॥

भारत ! रणक्षेत्रमें महाबली सहदेवका वेग बढ़ता देख दुर्मुखने नौ बाणोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया ॥ २१ ॥

दुर्मुखस्य तु भल्लेन छित्त्वा केतुं महाबलः ।
जघान चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥

तब महाबली सहदेवने एक भल्लसे दुर्मुखकी ध्वजा काटकर चार तीखे बाणोंद्वारा उसके चारों घोड़ोंको मार डाला॥

अथापरेण भल्लेन पीतेन निशितेन ह ।
चिच्छेद सारथेः कायाच्छिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ २३ ॥

फिर दूसरे पानीदार एवं तीखे भल्लसे उसके सारथिके चमकीले कुण्डलवाले मस्तकको धड़से काट गिराया ॥ २३ ॥

क्षुरप्रेण च तीक्ष्णेन कौरव्यस्य महद् धनुः ।
सहदेवो रणे छित्त्वा तं च विव्याध पञ्चभिः ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् सहदेवने तीखे क्षुरप्रसे समराङ्गणमें दुर्मुखके विशाल धनुषको काटकर उसे भी पाँच बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २४ ॥

हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दुर्मुखो विमनास्तदा ।
आरुरोह रथं राजन् निरमित्रस्य भारत ॥ २५ ॥

राजन् ! भरतनन्दन ! तब दुर्मुख दुखी मनसे उस अश्वहीन रथको त्यागकर निरमित्रके रथपर जा चढ़ा ॥ २५ ॥

सहदेवस्ततः क्रुद्धो निरमित्रं महाहवे ।
जघान पृतनामध्ये भल्लेन परवीरहा ॥ २६ ॥

इससे शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सहदेव कुपित हो उठे और उन्होंने उस महासमरमें सेनाके बीचों-बीच एक भल्लसे निरमित्रको मार डाला ॥ २६ ॥

स पपात रथोपस्थान्निरमित्रो जनेश्वरः ।
त्रिगर्तराजस्य सुतो व्यथयंस्तव वाहिनीम् ॥ २७ ॥

त्रिगर्तराजका पुत्र राजा निरमित्र अपने वियोगसे आपकी सेनाको व्यथित करता हुआ रथकी बैठकसे नीचे गिर पड़ा ॥ २७ ॥

तं तु हत्वा महाबाहुः सहदेवो व्यरोचत ।
यथा दाशरथी रामः खरं हत्वा महाबलम् ॥ २८ ॥

जैसे पूर्वकालमें दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम महाबली खरका वध करके सुशोभित हुए थे, उसी प्रकार महाबाहु सहदेव निरमित्रको मारकर शोभा पा रहे थे ॥ २८ ॥

हाहाकारो महानासीत् त्रिगर्तानां जनेश्वर ।
राजपुत्रं हतं दृष्ट्वा निरमित्रं महारथम् ॥ २९ ॥

नरेश्वर ! महारथी राजकुमार निरमित्रको मारा गया देख त्रिगर्तोंके दलमें महान् हाहाकार मच गया ॥ २९ ॥

नकुलस्ते सुतं राजन् विकर्णं पृथुलोचनम् ।
मुहूर्ताज्जितवाँल्लोके तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३० ॥

राजन् ! नकुलने विशाल नेत्रोंवाले आपके पुत्र विकर्णको दो ही घड़ीमें पराजित कर दिया; यह अद्भुत-सी बात हुई ॥ ३० ॥

सात्यकिं व्याघ्रदत्तस्तु शरैः संनतपर्वभिः ।
चक्रेऽदृश्यं साश्वसूतं सध्वजं पृतनान्तरे ॥ ३१ ॥

व्याघ्रदत्तने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा सेनाके मध्यभागमें घोड़ों, सारथि और ध्वजसहित सात्यकिको अदृश्य कर दिया ॥ ३१ ॥

तान् निवार्य शराञ्शूरः शैनेयः कृतहस्तवत् ।
साश्वसूतध्वजं बाणैर्व्याघ्रदत्तमपातयत् ॥ ३२ ॥

तब शूरवीर शिनिनन्दन सात्यकिने सिद्धहस्त पुरुषकी भाँति उन बाणोंका निवारण करके अपने बाणोंद्वारा घोड़ों, सारथि और ध्वजसहित व्याघ्रदत्तको मार गिराया ॥ ३२ ॥

कुमारे निहते तस्मिन् मागधस्य सुते प्रभो ।
मागधाः सर्वतो यत्ता युयुधानमुपाद्रवन् ॥ ३३ ॥

प्रभो ! मगधनरेशके पुत्र राजकुमार व्याघ्रदत्तके मारे जानेपर मगधदेशीय वीरोंने सब ओरसे प्रयत्नशील होकर युयुधानपर धावा किया ॥ ३३ ॥

विसृजन्तः शरांश्चैव तोमरांश्च सहस्रशः ।
भिन्दिपालांस्तथा प्रासान् मुद्गरान् मुसलानपि ॥ ३४ ॥
अयोधयन् रणे शूराः सात्वतं युद्धदुर्मदम् ।

वे शूरवीर मागध सैनिक बहुत-से बाणों, सहस्रों तोमरों, भिन्दिपालों, प्रासों, मुद्गरों और मुसलोंका प्रहार करते हुए समराङ्गणमें रणदुर्जय सात्यकिके साथ युद्ध करने लगे ॥

तांस्तु सर्वान् स बलवान् सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ॥ ३५ ॥
नातिकृच्छ्राद्धसन्नेव विजिग्ये पुरुषर्षभः ।

बलवान् युद्धदुर्मद पुरुषप्रवर सात्यकिने हँसते हुए ही उन सबको अधिक कष्ट उठाये बिना ही परास्त कर दिया ॥

मागधान् द्रवतो दृष्ट्वा हतशेषान् समन्ततः ॥ ३६ ॥
बलं तेऽभज्यत विभो युयुधानशरार्दितम् ।

प्रभो ! मरनेसे बचे हुए मागधसैनिकोंको चारों ओर भागते देख सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हुई आपकी सेनाका व्यूह भंग हो गया ॥ ३६½ ॥

नाशयित्वा रणे सैन्यं त्वदीयं माधवोत्तमः ॥ ३७ ॥
विधुन्वानो धनुः श्रेष्ठं व्यभ्राजत महायशाः ।

इस प्रकार मधुवंशके श्रेष्ठ वीर महायशस्वी सात्यकि रणक्षेत्रमें आपकी सेनाका विनाश करके अपने उत्तम धनुषको हिलाते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ३७½ ॥

भज्यमानं बलं राजन् सात्वतेन महात्मना ॥ ३८ ॥
नाभ्यवर्तत युद्धाय त्रासितं दीर्घबाहुना ।

राजन् ! महामना महाबाहु सात्यकिके द्वारा डरायी गयी और तितर-बितर की हुई आपकी सेना फिर युद्धके लिये सामने नहीं आयी ॥ ३८½ ॥

ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धः सहसोद्वृत्य चक्षुषी ।
सात्यकिं सत्यकर्माणं स्वयमेवाभिदुद्रुवे ॥ ३९ ॥

तब अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए द्रोणाचार्यने सहसा आँखें घुमाकर सत्यकर्मा सात्यकिपर स्वयं ही आक्रमण किया ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०७ ॥

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

द्रौपदी-पुत्रोंके द्वारा सोमदत्तकुमार शलका वध तथा भीमसेनके द्वारा अलम्बुषकी पराजय

संजय उवाच

द्रौपदेयान् महेष्वासान् सौमदत्तिर्महायशाः ।
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! महायशस्वी शलने महाधनुर्धर द्रौपदी-पुत्रोंमेंसे एक-एकको पाँच-पाँच बाणोंसे बींधकर पुनः सात बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ १ ॥

ते पीडिता भृशं तेन रौद्रेण सहसा विभो ।
प्रमूढा नैव विविदुर्मृधे कृत्यं स्म किंचन ॥ २ ॥

प्रभो ! उस भयंकर वीरके द्वारा अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण वे सहसा मोहित हो यह नहीं जान सके कि इस समय युद्धमें हमारा कर्तव्य क्या है ? ॥ २ ॥

नाकुलिश्च शतानीकः सौमदत्तिं नरर्षभम् ।
द्वाभ्यां विद्ध्वानदद्धृष्टः शराभ्यां शत्रुकर्शनः ॥ ३ ॥

तब नकुलके पुत्र शत्रुसूदन शतानीकने दो बाणोंद्वारा नरश्रेष्ठ शलको घायल करके बड़े हर्षके साथ सिंहनाद किया॥

तथेतरे रणे यत्तास्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
विव्यधुः समरे तूर्णं सौमदत्तिममर्षणम् ॥ ४ ॥

इसी प्रकार अन्य द्रौपदीपुत्रोंने भी समराङ्गणमें प्रयत्नशील होकर अमर्षशील शलको तुरंत ही तीन-तीन बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ ४ ॥

स तान् प्रति महाराज पञ्च चिक्षेप सायकान् ।
एकैकं हृदि चाजघ्ने एकैकेन महायशाः ॥ ५ ॥

महाराज ! तब महायशस्वी शलने उनपर पाँच बाण चलाये, जिनमेंसे एक-एकके द्वारा एक-एककी छाती छेद डाली॥

ततस्ते भ्रातरः पञ्च शरैर्विद्धा महात्मना ।
परिवार्य रणे वीरं विव्यधुः सायकैर्भृशम् ॥ ६ ॥

फिर महामना शलके बाणोंसे घायल हुए उन पाँचों भाइयोंने उस वीरको रणक्षेत्रमें चारों ओरसे घेरकर अपने बाणोंद्वारा अत्यन्त घायल कर दिया ॥ ६ ॥

आर्जुनिस्तु हयांस्तस्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ ७ ॥

अर्जुनकुमार श्रुतकीर्तिने अत्यन्त कुपित हो चार तीखे बाणोंद्वारा शलके चारों घोड़ोंको यमलोक भेज दिया ॥ ७ ॥

भैमसेनिर्धनुश्छित्त्वा सौमदत्तेर्महात्मनः ।
ननाद बलवन्नादं विव्याध च शितैः शरैः ॥ ८ ॥

फिर भीमसेनके पुत्र सुतसोमने पैने बाणोंद्वारा महामना सोमदत्तकुमारके धनुषको काटकर उन्हें भी बींध डाला और बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ८ ॥

यौधिष्ठिरिर्ध्वजं तस्य छित्त्वा भूमावपातयत् ।
नाकुलिश्चाथ यन्तारं रथनीडादपाहरत् ॥ ९ ॥

तदनन्तर युधिष्ठिरकुमार प्रतिविन्ध्यने शलकी ध्वजा काटकर पृथ्वीपर गिरा दी । फिर नकुलपुत्र शतानीकने उनके सारथिको मारकर रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥

साहदेविस्तु तं ज्ञात्वा भ्रातृभिर्विमुखीकृतम् ।
क्षुरप्रेण शिरो राजन् निचकर्त महात्मनः ॥ १० ॥

राजन् ! अन्तमें सहदेवकुमारने यह जानकर कि मेरे भाइयोंने शलको युद्धसे विमुख कर दिया है, महामनस्वी शलके मस्तकको क्षुरप्रसे काट डाला ॥ १० ॥

तच्छिरो न्यपतद् भूमौ तपनीयविभूषितम् ।
भ्राजयत् तं रणोद्देशं बालसूर्यसमप्रभम् ॥ ११ ॥

सोमदत्तकुमारका प्रातःकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशमान सुवर्णभूषित वह मस्तक उस रणभूमिको प्रकाशित करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ११ ॥

सौमदत्तेः शिरो दृष्ट्वा निहतं तन्महात्मनः ।
वित्रस्तास्तावका राजन् प्रदुद्रुवुरनेकधा ॥ १२ ॥

महाराज ! महामना शलके मस्तकको कटा हुआ देख आपके सैनिक अत्यन्त भयभीत हो अनेक दलोंमें बँटकर भागने लगे ॥ १२ ॥

अलम्बुषस्तु समरे भीमसेनं महाबलम् ।
योधयामास संक्रुद्धो लक्ष्मणं रावणिर्यथा ॥ १३ ॥

तदनन्तर जैसे पूर्वकालमें रावणकुमार मेघनादने लक्ष्मणके साथ युद्ध किया था, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए राक्षस अलम्बुषने महाबली भीमसेनके साथ संग्राम आरम्भ किया ॥ १३ ॥

सम्प्रयुद्धौ रणे दृष्ट्वा तावुभौ नरराक्षसौ ।
विस्मयः सर्वभूतानां प्रहर्षः समजायत ॥ १४ ॥

उस रणक्षेत्रमें उन दोनों मनुष्य एवं राक्षसको युद्ध करते देख समस्त प्राणियोंको अत्यन्त आश्चर्य और हर्ष हुआ॥

आर्ष्यशृङ्गिं ततो भीमो नवभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध प्रहसन् राजन् राक्षसेन्द्रममर्षणम् ॥ १५ ॥

राजन् ! फिर भीमसेनने हँसते हुए नौ पैने बाणोंद्वारा ऋष्यशृङ्गकुमार अमर्षशील राक्षसराज अलम्बुषको घायल कर दिया ॥ १५ ॥

तद् रक्षः समरे विद्धं कृत्वा नादं भयावहम् ।
अभ्यद्रवत् ततो भीमं ये च तस्य पदानुगाः ॥ १६ ॥

तब समराङ्गणमें घायल हुआ वह राक्षस भयंकर गर्जना करके भीमसेनकी ओर दौड़ा । उसके सेवकोंने भी उसीका साथ दिया ॥ १६ ॥

स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा शरैः संनतपर्वभिः ।
भैमान् परिजघानाशु रथांस्त्रिशतमाहवे ॥ १७ ॥

उसने झुकी हुई गाँठवाले पाँच बाणोंद्वारा भीमसेनको घायल करके उनके साथ आये हुए तीन सौ रथियोंका समरभूमिमें शीघ्र ही संहार कर डाला ॥ १७ ॥

पुनश्चतुःशतान् हत्वा भीमं विव्याध पत्रिणा ।
सोऽतिविद्धस्तथा भीमो राक्षसेन महाबलः ॥ १८ ॥
निपपात रथोपस्थे मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः ।

फिर चार सौ योद्धाओंको मारकर भीमसेनको भी एक बाणसे घायल किया । इस प्रकार राक्षसके द्वारा अत्यन्त

घायल किये जानेपर महाबली भीमसेन मूर्छित हो रथकी बैठकमें गिर पड़े ॥ १८½ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मारुतिः क्रोधमूर्छितः ॥ १९ ॥
विकृष्य कार्मुकं घोरं भारसाधनमुत्तमम् ।
अलम्बुषं शरैस्तीक्ष्णैरर्दयामास सर्वतः ॥ २० ॥

तदनन्तर पुनः होशमें आकर क्रोधसे व्याकुल हुए वायुपुत्र भीमने भार वहन करनेमें समर्थ, उत्तम तथा भयंकर धनुष तानकर पैने बाणोंद्वारा सब ओरसे अलम्बुषको पीड़ित कर दिया ॥ १९–२० ॥

स विद्धो बहुभिर्बाणैर्नीलाञ्जनचयोपमः ।
शुशुभे सर्वतो राजन् प्रफुल्ल इव किंशुकः ॥ २१ ॥

राजन् ! काले काजलके ढेरके समान वह राक्षस बहुत-से बाणोंद्वारा सब ओरसे घायल होकर लोहू-लुहान हो खिले हुए पलाशके वृक्षके समान सुशोभित होने लगा ॥ २१ ॥

स वध्यमानः समरे भीमचापच्युतैः शरैः ।
स्मरन् भ्रातृवधं चैव पाण्डवेन महात्मना ॥ २२ ॥
घोरं रूपमथो कृत्वा भीमसेनमभाषत ।

भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा समरभूमिमें घायल होकर और महात्मा पाण्डुकुमार भीमके द्वारा किये गये अपने भाईके वधका स्मरण करके उस राक्षसने भयंकर रूप धारण कर लिया और भीमसेनसे कहा—॥ २२½ ॥

तिष्ठेदानीं रणे पार्थ पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥ २३ ॥
बको नाम सुदुर्बुद्धे राक्षसप्रवरो बली ।
परोक्षं मम तद् वृत्तं यद् भ्राता मे हतस्त्वया ॥ २४ ॥

'पार्थ ! इस समय तुम रणक्षेत्रमें डटे रहो और आज मेरा पराक्रम देखो । दुर्मते ! मेरे बलवान् भाई राक्षसराज बकको जो तुमने मार डाला था, वह सब कुछ मेरी आँखोंकी ओटमें हुआ था (मेरे सामने तुम कुछ नहीं कर सकते थे)'॥

एवमुक्त्वा ततो भीममन्तर्धानं गतस्तदा ।
महता शरवर्षेण भृशं तं समवाकिरत् ॥ २५ ॥

भीमसेनसे ऐसा कहकर वह राक्षस उसी समय अन्तर्धान हो गया और फिर उनके ऊपर बाणोंकी भारी वर्षा करने लगा ॥

भीमस्तु समरे राजन्नदृश्ये राक्षसे तदा ।
आकाशं पूरयामास शरैः संनतपर्वभिः ॥ २६ ॥

राजन् ! उस समय समराङ्गणमें राक्षसके अदृश्य हो जानेपर भीमसेनने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा वहाँके समूचे आकाशको भर दिया ॥ २६ ॥

स वध्यमानो भीमेन निमेषाद् रथमास्थितः ।
जगाम धरणीं चैव क्षुद्रः खं सहसागमत् ॥ २७ ॥

भीमसेनके बाणोंकी मार खाकर राक्षस अलम्बुष पलक मारते-मारते अपने रथपर आ बैठा । वह क्षुद्र निशाचर कभी तो धरतीपर आ जाता और कभी सहसा आकाशमें पहुँच जाता था ॥ २७ ॥

उच्चावचानि रूपाणि चकार सुबहूनि च ।
अणुर्बृहत् पुनः स्थूलो नादान् मुञ्चन्निवाम्बुदः ॥ २८ ॥

उसने वहाँ छोटे-बड़े बहुत-से रूप धारण किये । वह मेघके समान गर्जना करता हुआ कभी बहुत छोटा हो जाता और कभी महान्, कभी सूक्ष्मरूप धारण करता और कभी स्थूल बन जाता था ॥ २८ ॥

उच्चावचास्तथा वाचो व्याजहार समन्ततः ।
निपेतुर्गगनाच्चैव शरधाराः सहस्रशः ॥ २९ ॥

इसी प्रकार वहाँ सब ओर घूम-घूमकर वह भिन्न-भिन्न प्रकारकी बोलियाँ भी बोलता था । उस समय भीमसेनपर आकाशसे बाणोंकी सहस्रों धाराएँ गिरने लगीं ॥ २९ ॥

शक्तयः कणपाः प्रासाः शूलपट्टिशतोमराः ।
शतघ्न्यः परिघाश्चैव भिन्दिपालाः परश्वधाः ॥ ३० ॥
शिलाः खड्गा गुडाश्चैव ऋष्टिर्वज्राणि चैव ह ।
सा राक्षसविसृष्टा तु शस्त्रवृष्टिः सुदारुणा ॥ ३१ ॥
जघान पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् रणमूर्धनि ।

शक्ति, कणप, प्रास, शूल, पट्टिश, तोमर, शतघ्नी, परिघ, भिन्दिपाल, फरसे, शिलाएँ, खड्ग, लोहेकी गोलियाँ, ऋष्टि और वज्र आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी । राक्षसद्वारा की हुई उस भयंकर शस्त्रवर्षाने युद्धके मुहानेपर पाण्डुपुत्र भीमके बहुत-से सैनिकोंका संहार कर डाला ॥

तेन पाण्डवसैन्यानां सूदिता युधि वारणाः ॥ ३२ ॥
हयाश्च बहवो राजन् पत्तयश्च तथा पुनः ।
रथेभ्यो रथिनः पेतुस्तस्य नुन्नाः स सायकैः ॥ ३३ ॥

राजन् ! राक्षस अलम्बुषने युद्धस्थलमें पाण्डव-सेनाके बहुत-से हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकोंका बारंबार संहार किया उसके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर बहुतेरे रथी रथोंसे गिर पड़े ॥ ३२-३३ ॥

शोणितोदां रथावर्तां हस्तिग्राहसमाकुलाम् ।
छत्रहंसां कर्दमिनीं बाहुपन्नगसंकुलाम् ॥ ३४ ॥
नदीं प्रावर्तयामास रक्षोगणसमाकुलाम् ।
वहन्तीं बहुधा राजंश्चेदिपञ्चालसृञ्जयान् ॥ ३५ ॥

उसने युद्धस्थलमें खूनकी नदी बहा दी, जिसमें रक्त ही पानीके समान बहता था, रथ भँवरोंके समान जान पड़ते थे, हाथियोंके शरीर उस नदीमें ग्राहके समान सब ओर छा रहे थे, छत्र हंसोंका भ्रम उत्पन्न करते थे, वहाँ कीच जम गयी थी, कटी हुई भुजाएँ सर्पोंके समान सब ओर व्याप्त हो रही थीं । राजन् ! बारंबार चेदि, पाञ्चाल और सृंजयोंको बहाती हुई वह नदी राक्षसोंसे घिरी हुई थी॥

तं तथा समरे राजन् विचरन्तमभीतवत्।
पाण्डवा भृशसंविग्नाः प्रापश्यंस्तस्य विक्रमम् ॥ ३६ ॥

महाराज ! उस निशाचरको समराङ्गणमें इस प्रकार निर्भय-सा विचरते देख पाण्डव अत्यन्त उद्विग्न हो उसका पराक्रम देखने लगे ॥ ३६ ॥

तावकानां तु सैन्यानां प्रहर्षः समजायत।
वादित्रनिनदश्चोग्रः सुमहान् रोमहर्षणः ॥ ३७ ॥

उस समय आपके सैनिकोंको महान् हर्ष हो रहा था। वहाँ रणवाद्योंका रोमाञ्चकारी एवं भयंकर शब्द बड़े जोर-जोरसे होने लगा ॥ ३७ ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य पाण्डवः।
नामृष्यत यथा नागस्तलशब्दं समीरितम् ॥ ३८ ॥

आपकी सेनाका वह घोर हर्षनाद सुनकर पाण्डुकुमार भीमसेन नहीं सहन कर सके। ठीक उसी तरह, जैसे हाथी ताल ठोंकनेका शब्द नहीं सह सकता ॥ ३८ ॥

ततः क्रोधाभिताम्राक्षो निर्दहन्निव पावकः।
संदधे त्वाष्ट्रमस्त्रं स स्वयं त्वष्टेव मारुतिः ॥ ३९ ॥

तब वायुकुमार भीमसेनने जलानेको उद्यत हुए अग्निके समान क्रोधसे लाल आँखें करके त्वाष्ट्र नामक अस्त्रका संधान किया, मानो साक्षात् त्वष्टा ही उसका प्रयोग कर रहे हों ॥

ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन् समन्ततः।
तैः शरैस्तव सैन्यस्य विद्रवः सुमहानभूत् ॥ ४० ॥

उससे चारों ओर सहस्रों बाण प्रकट होने लगे। उन बाणोंद्वारा आपकी सेनाका महान् संहार होने लगा ॥ ४० ॥

तदस्त्रं प्रेरितं तेन भीमसेनेन संयुगे।
राक्षसस्य महामायां हत्वा राक्षसमार्दयत् ॥ ४१ ॥

युद्धस्थलमें भीमसेनके द्वारा चलाये हुए उस अस्त्रने राक्षसकी महामायाको नष्ट करके उसे गहरी पीड़ा दी ॥ ४१ ॥

स वध्यमानो बहुधा भीमसेनेन राक्षसः।
संत्यज्य समरे भीमं द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ ४२ ॥

बारंबार भीमसेनकी मार खाकर राक्षसराज अलम्बुष रणक्षेत्रमें उनका सामना छोड़कर द्रोणाचार्यकी सेनामें भाग गया ॥ ४२ ॥

तस्मिंस्तु निर्जिते राजन् राक्षसेन्द्रे महात्मना।
अनादयन् सिंहनादैः पाण्डवाः सर्वतो दिशम् ॥ ४३ ॥

राजन् ! महामना भीमसेनके द्वारा राक्षसराज अलम्बुषके पराजित हो जानेपर पाण्डव-सैनिकोंने सम्पूर्ण दिशाओंको अपने सिंहनादोंसे निनादित कर दिया ॥ ४३ ॥

अपूजयन् मारुतिं च संहृष्टास्ते महाबलम्।
प्रह्रादं समरे जित्वा यथा शक्रं मरुद्गणाः ॥ ४४ ॥

उन्होंने अत्यन्त हर्षमें भरकर महाबली भीमसेनकी उसी प्रकार भूरि-भूरि प्रशंसा की, जैसे मरुद्गणोंने समराङ्गणमें प्रह्लादको जीतकर आये हुए देवराज इन्द्रकी स्तुति की थी॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषपराजये अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अलम्बुषकी पराजयविषयक एक सौ आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०८ ॥

नवाधिकशततमोऽध्यायः

घटोत्कचद्वारा अलम्बुषका वध और पाण्डवसेनामें हर्ष-ध्वनि

संजय उवाच

अलम्बुषं तथा युद्धे विचरन्तमभीतवत्।
हैडिम्बिः प्रययौ तूर्णं विव्याध निशितैः शरैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! युद्धमें इस प्रकार निर्भय-से विचरते हुए अलम्बुषके पास हिडिम्बाकुमार घटोत्कच बड़े वेगसे जा पहुँचा और उसे अपने तीखे बाणोंद्वारा बींधने लगा ॥

तयोः प्रतिभयं युद्धमासीद् राक्षससिंहयोः।
कुर्वतोर्विविधा मायाः शक्रशम्बरयोरिव ॥ २॥

वे दोनों राक्षसोंमें सिंहके समान पराक्रमी थे और इन्द्र तथा शम्बरासुरके समान नाना प्रकारकी मायाओंका प्रयोग करते थे। उन दोनोंमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ ॥ २ ॥

अलम्बुषो भृशं क्रुद्धो घटोत्कचमताडयत्।
तयोर्युद्धं समभवद् रक्षोग्रामणिमुख्ययोः ॥ ३ ॥
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोः प्रभो।

अलम्बुषने अत्यन्त कुपित होकर घटोत्कचको घायल कर दिया। वे दोनों राक्षस समाजके मुखिया थे। प्रभो ! जैसे पूर्वकालमें श्रीराम और रावणका संग्राम हुआ था, उसी प्रकार उन दोनोंमें भी युद्ध हुआ ॥ ३½ ॥

घटोत्कचस्तु विंशत्या नाराचानां स्तनान्तरे ॥ ४ ॥
अलम्बुषमथो विद्ध्वा सिंहवद् व्यनदन्मुहुः।

घटोत्कचने बीस नाराचोंद्वारा अलम्बुषकी छातीमें गहरी चोट पहुँचाकर बारंबार सिंहके समान गर्जना की ॥

तथैवालम्बुषो राजन् हैडिम्बिं युद्धदुर्मदम् ॥ ५ ॥
विद्ध्वा विद्ध्वा नदद्धृष्टः पूरयन् खं समन्ततः।

राजन् ! इसी प्रकार अलम्बुष भी युद्धदुर्मद घटोत्कचको बारंबार घायल करके समूचे आकाशको हर्षपूर्वक गुँजाता हुआ सिंहनाद करता था ॥ ५½ ॥

तथा तौ भृशसंक्रुद्धौ राक्षसेन्द्रौ महाबलौ ॥ ६ ॥
निर्विशेषमयुध्येतां मायाभिरितरेतरम्।

इस प्रकार अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए वे दोनों महाबली

राक्षसराज परस्पर मायाओंका प्रयोग करते हुए समानरूपसे युद्ध करने लगे ॥ ६½ ॥

मायाशतसृजौ नित्यं मोहयन्तौ परस्परम् ॥ ७ ॥
मायायुद्धेषु कुशलौ मायायुद्धमयुध्यताम् ।

वे प्रतिदिन सैकड़ों मायाओंकी सृष्टि करनेवाले थे और दोनों ही मायायुद्धमें कुशल थे । अतः एक दूसरेको मोहित करते हुए मायाद्वारा ही युद्ध करने लगे ॥ ७½ ॥

यां यां घटोत्कचो युद्धे मायां दर्शयते नृप ॥ ८ ॥
तां तामलम्बुषो राजन् माययैव निजघ्निवान् ।

नरेश्वर ! घटोत्कच युद्धस्थलमें जो-जो माया दिखाता, उसे अलम्बुष अपनी मायाद्वारा ही नष्ट कर देता था ॥

तं तथा युध्यमानं तु मायायुद्धविशारदम् ॥ ९ ॥
अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं दृष्ट्वाकुध्यन्त पाण्डवाः ।

मायायुद्धविशारद राक्षसराज अलम्बुषको इस प्रकार युद्ध करते देख समस्त पाण्डव कुपित हो उठे ॥ ९½ ॥

त एनं भृशसंविग्नाः सर्वतः प्रवरा रथैः ॥ १० ॥
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनादयो नृप ।

राजन् ! वे अत्यन्त उद्विग्न हुए भीमसेन आदि श्रेष्ठ वीर क्रोधमें भरकर रथोंद्वारा सब ओरसे अलम्बुषपर टूट पड़े ॥

त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ॥ ११ ॥
सर्वतो व्यकिरन् बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् ।

माननीय नरेश ! जैसे जलती हुई उल्काओंद्वारा चारों ओरसे घेरकर हाथीपर प्रहार किया जाता है, उसी प्रकार रथसमूहके द्वारा अलम्बुषको कोष्ठबद्ध करके वे सब लोग चारों ओरसे उसपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ११½ ॥

स तेषामस्त्रवेगं तं प्रतिहत्यास्त्रमायया ॥ १२ ॥
तस्माद् रथव्रजान्मुक्तो वनदाहादिव द्विपः ।

उस समय अलम्बुष अपने अस्त्रोंकी मायासे उनके उस महान् अस्त्रवेगको दबाकर रथसमूहके उस घेरेसे मुक्त हो गया, मानो कोई गजराज दावानलके घेरेसे बाहर हो गया हो ॥

स विस्फार्य धनुर्घोरमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ १३ ॥
मारुतिं पञ्चविंशत्या भैमसेनिं च पञ्चभिः ।

उसने इन्द्रके वज्रकी भाँति घोर टंकार करनेवाले अपने भयंकर धनुषको तानकर भीमसेनको पचीस और उनके पुत्र घटोत्कचको पाँच बाण मारे ॥ १३½ ॥

युधिष्ठिरं त्रिभिर्विद्ध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥ १४ ॥
नकुलं च त्रिसप्तत्या द्रौपदेयांश्च मारिष ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्विद्ध्वा घोरं नादं ननाद ह ॥ १५ ॥

आर्य ! उसने युधिष्ठिरको तीन, सहदेवको सात, नकुलको तिहत्तर और द्रौपदी-पुत्रोंको पाँच-पाँच बाणोंसे घायल करके घोर गर्जना की ॥ १४-१५ ॥

तं भीमसेनो नवभिः सहदेवस्तु पञ्चभिः ।
युधिष्ठिरः शतेनैव राक्षसं प्रत्यविध्यत ॥ १६ ॥

तब भीमसेनने नौ, सहदेवने पाँच और युधिष्ठिरने सौ बाणोंसे राक्षस अलम्बुषको घायल कर दिया ॥ १६ ॥

नकुलस्तु चतुःषष्ट्या द्रौपदेयास्त्रिभिस्त्रिभिः ।
हैडिम्बो राक्षसं विद्ध्वा युद्धे पञ्चाशता शरैः ॥ १७ ॥
पुनर्विव्याध सप्तत्या ननाद च महाबलः ।

तत्पश्चात् नकुलने चौसठ और द्रौपदीकुमारोंने तीन-तीन बाणोंसे अलम्बुषको बींध डाला । तदनन्तर महाबली हिडिम्बाकुमारने युद्धस्थलमें उस राक्षसको पचास बाणोंसे घायल करके पुनः सत्तर बाणोंद्वारा बींध डाला और बड़े जोरसे गर्जना की ॥ १७½ ॥

तस्य नादेन महता कम्पितेयं वसुंधरा ॥ १८ ॥
सपर्वतवना राजन् सपादपजलाशया ।

राजन् ! उसके महान् सिंहनादसे वृक्षों, जलाशयों, पर्वतों और वनोंसहित यह सारी पृथ्वी काँप उठी ॥१८½॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासैः सर्वतस्तैर्महारथैः ॥ १९ ॥
प्रतिविव्याध तान् सर्वान् पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।

उन महाधनुर्धर महारथियोंद्वारा सब ओरसे अत्यन्त घायल होकर बदलेमें अलम्बुषने भी पाँच-पाँच बाणोंसे उन सबको वेध दिया ॥ १९½ ॥

तं क्रुद्धं राक्षसं युद्धे प्रतिक्रुद्धस्तु राक्षसः ॥ २० ॥
हैडिम्बो भरतश्रेष्ठ शरैर्विव्याध सप्तभिः ।

भरतश्रेष्ठ ! उस युद्धस्थलमें कुपित हुए राक्षस अलम्बुषको क्रोधमें भरे हुए निशाचर घटोत्कचने सात बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २०½ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता राक्षसेन्द्रो महाबलः ॥ २१ ॥
व्यसृजत् सायकांस्तूर्णं रुक्मपुङ्खान् शिलाशितान् ।

बलवान् घटोत्कचद्वारा अत्यन्त क्षत-विक्षत होकर उस महाबली राक्षसराजने तुरंत ही सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥२१½॥

ते शरा नतपर्वाणो विविशू राक्षसं तदा ॥ २२ ॥
रुषिताः पन्नगा यद्वद् गिरिशृङ्गं महाबलाः ।

जैसे रोषमें भरे हुए महाबली सर्प पर्वतके शिखरपर चढ़ जाते हैं, उसी प्रकार अलम्बुषके वे झुकी हुई गाँठवाले बाण उस समय घटोत्कचके शरीरमें घुस गये ॥ २२½ ॥

ततस्ते पाण्डवा राजन् समन्तान्निशिताञ्शरान् ॥ २३ ॥
प्रेषयामासुरुद्विग्ना हैडिम्बश्च घटोत्कचः ।

राजन् ! तदनन्तर पाण्डव तथा हिडिम्बाकुमार घटोत्कच सबने उद्विग्न होकर सब ओरसे अलम्बुषपर पैने बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ २३½ ॥

स विध्यमानः समरे पाण्डवैर्जितकाशिभिः ॥ २४ ॥
मर्त्यधर्ममनुप्राप्तः कर्तव्यं नान्वपद्यत ।

विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डवोंद्वारा समरभूमिमें विद्ध होकर मर्त्यधर्मको प्राप्त हुए अलम्बुषसे कुछ भी करते न बना ॥ २४½ ॥

ततः समरशौण्डो वै भैमसेनिर्महाबलः ॥ २५ ॥
समीक्ष्य तदवस्थं तं वधायास्य मनो दधे ।

तब समरकुशल महाबली भीमसेन-कुमारने अलम्बुषको उस अवस्थामें देखकर मन-ही-मन उसके वधका निश्चय किया॥

वेगं चक्रे महान्तं च राक्षसेन्द्ररथं प्रति ॥ २६ ॥
दग्धाद्रिकूटशृङ्गाभं भिन्नाञ्जनचयोपमम् ।

उसने जले हुए पर्वतशिखर तथा कटे-छटे कोयलेके पहाड़के समान प्रतीत होनेवाले राक्षसराज अलम्बुषके रथपर पहुँचनेके लिये महान् वेग प्रकट किया ॥ २६½ ॥

रथाद् रथमभिद्रुत्य क्रुद्धो हैडिम्बिराक्षिपत् ॥ २७ ॥
उद्बबर्ह रथाच्चापि पन्नगं गरुडो यथा ।

क्रोधमें भरे हुए हिडिम्बाकुमारने अपने रथसे अलम्बुषके रथपर कूदकर उसे पकड़ लिया और जैसे गरुड सर्पको टाँग लेता है, उसी प्रकार उसने भी अलम्बुषको रथसे उठा लिया ॥

समुत्क्षिप्य च बाहुभ्यामाविध्य च पुनः पुनः ॥ २८ ॥
निष्पिपेष क्षितौ क्षिप्रं पूर्णकुम्भमिवाश्मनि ।

दोनों भुजाओंसे अलम्बुषको ऊपर उठाकर घटोत्कचने बारंबार घुमाया और जैसे जलसे भरे हुए घड़ेको पत्थरपर पटक दिया जाय, उसी प्रकार उसे शीघ्र ही पृथ्वीपर दे मारा॥

बललाघवसम्पन्नः सम्पन्नो विक्रमेण च ॥ २९ ॥
भैमसेनी रणे क्रुद्धः सर्वसैन्यान्यभीषयत् ।

घटोत्कचमें बल और फुर्ती दोनों विद्यमान थे । वह अद्भुत पराक्रमसे सम्पन्न था । उसने रणक्षेत्रमें कुपित होकर आपकी समस्त सेनाओंको भयभीत कर दिया ॥ २९½ ॥

स विस्फारितसर्वाङ्गश्चूर्णितास्थिर्विभीषणः ॥ ३० ॥
घटोत्कचेन वीरेण हतः शालकटङ्कटः ।

वीर घटोत्कचके द्वारा मारे गये शालकटंकटाके पुत्र अलम्बुषके सारे अङ्ग फट गये थे । उसकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयी थीं और वह बड़ा भयंकर दिखायी देता था॥३०½॥

ततः सुमनसः पार्था हते तस्मिन् निशाचरे ॥ ३१ ॥
चुक्रुशुः सिंहनादांश्च वासांस्यादुधुवुश्च ह ।

उस निशाचर अलम्बुषके मारे जानेपर कुन्तीके सभी पुत्र प्रसन्नचित्त हो सिंहनाद करने और वस्त्र हिलाने लगे ॥

तावकाश्च हतं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं महाबलम् ॥ ३२ ॥
अलम्बुषं तथा शूरा विशीर्णमिव पर्वतम् ।
हाहाकारमकार्षुश्च सैन्यानि भरतर्षभ ॥ ३३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! टूट-फूटकर गिरे हुए पर्वतके समान महाबली राक्षसराज अलम्बुषको मारा गया देख आपके शूरवीर योद्धा तथा उनकी सारी सेनाएँ हाहाकार करने लगीं। ३२-३३।

जनाश्च तद् ददृशिरे रक्षः कौतूहलान्विताः ।
यदृच्छया निपतितं भूमावङ्गारकं यथा ॥ ३४ ॥

पृथ्वीपर अकस्मात् टूटकर गिरे हुए मंगल ग्रहके समान धराशायी हुए उस राक्षसको बहुत-से मनुष्य कौतूहल-वश देखने लगे ॥ ३४ ॥

घटोत्कचस्तु तद्धत्वा रक्षो बलवतां वरम् ।
मुमोच बलवन्नादं बलं हत्वेव वासवः ॥ ३५ ॥

जैसे इन्द्रने बलासुरका वध करके महान् सिंहनाद किया था, उसी प्रकार घटोत्कचने उस बलवानोंमें श्रेष्ठ अलम्बुषको मारकर बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ३५ ॥

(ततोऽभिगम्य राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
स्वकर्मावेदयन्मूर्ध्ना साञ्जलिर्निपपात ह ॥
मूर्ध्न्युपाघ्राय तं ज्येष्ठः परिष्वज्य च पाण्डवः ।
प्रीतोऽस्मीत्यब्रवीद् राजन् हर्षादुत्फुल्ललोचनः ॥
घटोत्कचेन निष्पिष्टे मृते शालकटङ्कटे ।
बभूवुर्मुदिताः सर्वे हते तस्मिन् निशाचरे ॥)

तदनन्तर घटोत्कच धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके पास जाकर हाथ जोड़ मस्तक नवाकर अपना कर्म निवेदन करता हुआ उनके चरणोंमें गिर पड़ा । राजन् ! तब ज्येष्ठ पाण्डवने उसका मस्तक सूँघकर उसे हृदयसे लगा लिया और कहा—'वत्स ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ ।' उस समय युधिष्ठिरके नेत्र हर्षसे खिल उठे थे । शालकटंकटाके पुत्र राक्षस अलम्बुषको जब घटोत्कचने पृथ्वीपर रगड़कर मार डाला, तब सब लोग बहुत प्रसन्न हुए ॥

स पूज्यमानः पितृभिः सबान्धवै-
र्घटोत्कचः कर्मणि दुष्करे कृते ।
रिपुं निहत्याभिननन्द वै तदा
ह्यलम्बुषं पक्वमलम्बुषं यथा ॥ ३६ ॥

पके हुए अलम्बुष (मुंडीर) फलके समान अपने शत्रु अलम्बुषको मारकर घटोत्कच वह दुष्कर पराक्रम करनेके कारण अपने पिता पाण्डवों तथा बन्धु-बान्धवोंसे सम्मानित एवं प्रशंसित हो उस समय बड़ी प्रसन्नताका अनुभव करने लगा ॥ ३६ ॥

ततो निनादः सुमहान् समुत्थितः
सशङ्खनानाविधबाणघोषवान् ।
निशम्य तं प्रत्यनदंस्तु पाण्डवा-
स्ततो ध्वनिर्भुवनमथास्पृशद् भृशम् ॥ ३७ ॥

तदनन्तर पाण्डवपक्षमें शङ्खध्वनि तथा नाना प्रकारके



घटोत्कचद्वारा अलम्बुषका वध

बाणोंकी सनसनाहटके शब्दसे मिला हुआ बड़ा भारी आनन्द-कोलाहल प्रकट हुआ। उसे सुनकर समस्त पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए। वह आनन्दध्वनि जगत्में बहुत दूरतक फैल गयी ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषवधे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अलम्बुषवधविषयक एक सौ नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ४० श्लोक हैं)

दशाधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्य और सात्यकिका युद्ध तथा युधिष्ठिरका सात्यकिकी प्रशंसा करते हुए उसे अर्जुनकी सहायताके लिये कौरवसेनामें प्रवेश करनेका आदेश

धृतराष्ट्र उवाच

भारद्वाजं कथं युद्धे युयुधानो न्यवारयत् ।
संजयाचक्ष्व तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! सात्यकिने युद्धमें द्रोणाचार्यको किस प्रकार रोका ? यह यथार्थरूपसे बताओ। इसे सुननेके लिये मेरे मनमें महान् कौतूहल हो रहा है ॥ १ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन् महाप्राज्ञ संग्रामं लोमहर्षणम् ।
द्रोणस्य पाण्डवैः सार्धं युयुधानपुरोगमैः ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन् ! महामते ! द्रोणाचार्यका सात्यकि आदि पाण्डव-योद्धाओंके साथ जो रोमाञ्चकारी संग्राम हुआ था, उसका वर्णन सुनिये ॥ २ ॥

वध्यमानं बलं दृष्ट्वा युयुधानेन मारिष ।
अभ्यद्रवत् स्वयं द्रोणः सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ३ ॥

माननीय नरेश ! द्रोणाचार्यने जब अपनी सेनाको युयुधानके द्वारा पीड़ित होते देखा, तब वे सत्यपराक्रमी सात्यकिपर स्वयं ही टूट पड़े ॥ ३ ॥

तमापतन्तं सहसा भारद्वाजं महारथम् ।
सात्यकिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ ४ ॥

उस समय सहसा आते हुए महारथी द्रोणाचार्यको सात्यकिने पचीस बाण मारे ॥ ४ ॥

द्रोणोऽपि युधि विक्रान्तो युयुधानं समाहितः ।
अविध्यत् पञ्चभिस्तूर्णं हेमपुङ्खैः शरैः शितैः ॥ ५ ॥

तब पराक्रमी द्रोणाचार्यने भी युद्धस्थलमें एकाग्रचित्त हो तुरंत ही सोनेके पंखवाले पाँच पैने बाणोंद्वारा युयुधानको घायल कर दिया ॥ ५ ॥

ते वर्म भित्त्वा सुदृढं द्विषत्पिशितभोजनाः ।
अभ्ययुर्धरणीं राजञ्श्वसन्त इव पन्नगाः ॥ ६ ॥

राजन् ! द्रोणाचार्यके बाण शत्रुओंके मांस खानेवाले थे। वे सात्यकिके सुदृढ़ कवचको छिन्न-भिन्न करके फुफकारते हुए सर्पोंके समान धरतीमें समा गये ॥ ६ ॥

दीर्घबाहुरभिक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः ।
द्रोणं पञ्चाशताविध्यन्नाराचैरग्निसंनिभैः ॥ ७ ॥

तब अंकुशकी मार खाये हुए गजराजके समान अत्यन्त कुपित हुए महाबाहु सात्यकिने अग्निके समान तेजस्वी पचास नाराचोंद्वारा द्रोणाचार्यको बेध दिया ॥ ७ ॥

भारद्वाजो रणे विद्धो युयुधानेन सत्वरम् ।
सात्यकिं बहुभिर्बाणैर्यतमानमविध्यत ॥ ८ ॥

सात्यकिके द्वारा समराङ्गणमें घायल हो द्रोणाचार्यने शीघ्र ही बहुत-से बाण मारकर विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले सात्यकिको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ८ ॥

ततः क्रुद्धो महेष्वासो भूय एव महाबलः ।
सात्वतं पीडयामास शरेणानतपर्वणा ॥ ९ ॥

तदनन्तर महाधनुर्धर महाबली द्रोणने पुनः कुपित होकर झुकी हुई गाँठवाले एक बाणद्वारा सात्यकिको गहरी चोट पहुँचायी ॥ ९ ॥

स वध्यमानः समरे भारद्वाजेन सात्यकिः ।
नान्वपद्यत कर्तव्यं किञ्चिदेव विशाम्पते ॥ १० ॥

प्रजानाथ ! समरभूमिमें द्रोणाचार्यके द्वारा क्षत-विक्षत होकर सात्यकिसे कुछ भी करते नहीं बना ॥ १० ॥

विषण्णवदनश्चापि युयुधानोऽभवन्नृप ।
भारद्वाजं रणे दृष्ट्वा विसृजन्तं शिताञ्शरान् ॥ ११ ॥

नरेश्वर ! रणक्षेत्रमें पैने बाणोंकी वर्षा करते हुए द्रोणाचार्यको देखकर युयुधानके मुखपर विषाद छा गया ॥ ११ ॥

तं तु सम्प्रेक्ष्य ते पुत्राः सैनिकाश्च विशाम्पते ।
प्रहृष्टमनसो भूत्वा सिंहवद् व्यनदन् मुहुः ॥ १२ ॥

प्रजापालक नरेश ! उन्हें उस अवस्थामें देखकर आपके पुत्र और सैनिक प्रसन्नचित्त होकर बारंबार सिंहनाद करने लगे ॥ १२ ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं पीड्यमानं च माधवम् ।
युधिष्ठिरोऽब्रवीद् राजा सर्वसैन्यानि भारत ॥ १३ ॥

भारत ! उनकी वह घोर गर्जना सुनकर और सात्यकिको पीड़ित देखकर राजा युधिष्ठिरने अपने समस्त सैनिकोंसे कहा— ॥

एष वृष्णिवरो वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
ग्रस्यते युधि वीरेण भानुमानिव राहुणा ॥ १४ ॥
अभिद्रवत गच्छध्वं सात्यकिर्यत्र युध्यते ।

'योद्धाओ ! जैसे राहु सूर्यको ग्रस लेता है, उसी प्रकार यह वृष्णिवंशका श्रेष्ठ वीर सत्यपराक्रमी सात्यकि युद्धस्थलमें वीर द्रोणाचार्यके द्वारा कालके गालमें जाना चाहता है। अतः तुमलोग दौड़ो और वहीं जाओ, जहाँ सात्यकि युद्ध करता है' ॥ १४½ ॥

धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यमिदमाह जनाधिपः ॥ १५ ॥
अभिद्रव द्रुतं द्रोणं किमु तिष्ठसि पार्षत।
न पश्यसि भयं द्रोणाद् घोरं नः समुपस्थितम् ॥ १६ ॥

इसके बाद राजाने पाञ्चाल-राजकुमार धृष्टद्युम्नसे इस प्रकार कहा—'द्रुपदनन्दन ! खड़े क्यों हो ? तुरंत ही द्रोणाचार्यपर धावा करो। क्या तुम नहीं देखते कि द्रोणकी ओरसे हमलोगोंपर घोर भय उपस्थित हो गया है ?॥ १५-१६ ॥

असौ द्रोणो महेष्वासो युयुधानेन संयुगे।
क्रीडते सूत्रबद्धेन पक्षिणा बालको यथा ॥ १७ ॥

'जैसे कोई बालक डोरमें बँधे हुए पक्षीके साथ खेलता है, उसी प्रकार ये महाधनुर्धर द्रोण युद्धस्थलमें युयुधानके साथ क्रीड़ा करते हैं ॥ १७ ॥

तत्रैव सर्वे गच्छन्तु भीमसेनपुरोगमाः।
त्वयैव सहिताः सर्वे युयुधानरथं प्रति ॥ १८ ॥

'अतः तुम्हारे साथ भीमसेन आदि सभी महारथी वहीं युयुधानके रथके समीप जायँ ॥ १८ ॥

पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि त्वामहं सहसैनिकः।
सात्यकिं मोक्षयस्वाद्य यमदंष्ट्रान्तरं गतम् ॥ १९ ॥

'फिर मैं भी सम्पूर्ण सैनिकोंके साथ तुम्हारे पीछे-पीछे आऊँगा। इस समय यमराजकी दाढ़ोंमें पहुँचे हुए सात्यकिको छुड़ाओ' ॥ १९ ॥

एवमुक्त्वा ततो राजा सर्वसैन्येन भारत।
अभ्यद्रवद् रणे द्रोणं युयुधानस्य कारणात् ॥ २० ॥

भारत ! ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिरने उस समय रणक्षेत्रमें युयुधानकी रक्षाके लिये अपनी सारी सेनाके साथ द्रोणाचार्य-पर आक्रमण किया ॥ २० ॥

तत्रारावो महानासीद् द्रोणमेकं युयुत्सताम्।
पाण्डवानां च भद्रं ते सृञ्जयानां च सर्वशः ॥ २१ ॥

राजन् ! आपका भला हो। अकेले द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे आये हुए पाण्डवों और सृञ्जयोंका वहाँ सब ओर महान् कोलाहल छा गया ॥ २१ ॥

ते समेत्य नरव्याघ्रा भारद्वाजं महारथम्।
अभ्यवर्षञ्शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २२ ॥

वे मनुष्योंमें व्याघ्रके समान पराक्रमी सैनिक महारथी द्रोणाचार्यके पास जाकर कंक और मोरके पंखोंसे युक्त तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २२ ॥

स्मयन्नेव तु तान् वीरान् द्रोणः प्रत्यग्रहीत् स्वयम्।
अतिथीनागतान् यद्वत् सलिलेनासनेन च ॥ २३ ॥
तर्पितास्ते शरैस्तस्य भारद्वाजस्य धन्विनः।
आतिथेयं गृहं प्राप्य नृपतेऽतिथयो यथा ॥ २४ ॥

राजन् ! जैसे घरपर आये हुए अतिथियोंका जल और आसन आदिके द्वारा सत्कार किया जाता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यने स्वयं उन समस्त आक्रमणकारी वीरोंकी मुसकराते हुए ही अगवानी की। जैसे अतिथिसत्कारमें निपुण गृहस्थके घर जाकर अतिथि तृप्त होते हैं, उसी प्रकार धनुर्धर द्रोणाचार्यके बाणोंसे उन सबकी यथेष्ट तृप्ति की गयी ॥ २३-२४ ॥

भारद्वाजं च ते सर्वे न शेकुः प्रतिवीक्षितुम्।
मध्यंदिनमनुप्राप्तं सहस्रांशुमिव प्रभो ॥ २५ ॥

प्रभो ! जैसे दोपहरके प्रचण्ड मार्तण्डकी ओर देखना कठिन होता है, उसी प्रकार वे समस्त योद्धा भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यकी ओर देखनेमें भी समर्थ न हो सके ॥ २५ ॥

तांस्तु सर्वान् महेष्वासान् द्रोणः शस्त्रभृतां वरः।
अतापयच्छरव्रातैर्गभस्तिभिरिवांशुमान् ॥ २६ ॥

शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य उन समस्त महाधनुर्धरोंको अपने बाणसमूहोंद्वारा उसी प्रकार संतप्त करने लगे, जैसे अंशुमाली सूर्य अपनी किरणोंसे जगत्को संताप देते हैं ॥

वध्यमाना महाराज पाण्डवाः सृञ्जयास्तथा।
त्रातारं नाध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः ॥ २७ ॥

महाराज ! उस समय द्रोणाचार्यकी मार खाते हुए पाण्डव और सृंजय सैनिक कीचड़में फँसे हुए हाथियोंके समान कोई रक्षक न पा सके ॥ २७ ॥

द्रोणस्य च व्यदृश्यन्त विसर्पन्तो महाशराः।
गभस्तय इवार्कस्य प्रतपन्तः समन्ततः ॥ २८ ॥

जैसे सूर्यकी किरणें सब ओर ताप प्रदान करती हुई फैल जाती हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके विशाल बाण सब ओर फैलते और शत्रुओंको संतप्त करते दिखायी देते थे ॥ २८ ॥

तस्मिन् द्रोणेन निहताः पञ्चालाः पञ्चविंशतिः।
महारथाः समाख्याता धृष्टद्युम्नस्य सम्मताः ॥ २९ ॥

उस युद्धमें द्रोणाचार्यके द्वारा पाञ्चालोंके पचीस सुप्रसिद्ध महारथी मारे गये, जो धृष्टद्युम्नको बहुत ही प्रिय थे ॥ २९ ॥

पाण्डूनां सर्वसैन्येषु पञ्चालानां तथैव च।
द्रोणं स्म ददृशुः शूरं विनिघ्नन्तं वरान् वरान् ॥ ३० ॥

लोगोंने देखा, पाण्डवों और पाञ्चालोंकी समस्त सेनाओंमें जो मुख्य-मुख्य योद्धा हैं, उन्हें शूरवीर द्रोणाचार्य चुन-चुनकर मार रहे हैं ॥ ३० ॥

केकयानां शतं हत्वा विद्राव्य च समन्ततः।
द्रोणस्तस्थौ महाराज व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ३१ ॥

महाराज ! सौ केकय-योद्धाओंको मारकर शेष सैनिकोंको चारों ओर खदेड़नेके पश्चात् द्रोणाचार्य मुँह बाये हुए यमराज-के समान खड़े हो गये ॥ ३१ ॥

पञ्चालान् सृञ्जयान् मत्स्यान् केकयांश्च नराधिप ।
द्रोणोऽजयन्महाबाहुः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३२ ॥

नरेश्वर ! महाबाहु द्रोणाचार्यने पाञ्चाल, सृञ्जय, मत्स्य और केकयोंके सैकड़ों तथा सहस्रों वीरोंको परास्त किया ॥

तेषां समभवच्छब्दो विद्धानां द्रोणसायकैः ।
वनौकसामिवारण्ये व्याप्तानां धूम्रकेतुना ॥ ३३ ॥

जैसे घोर जंगलमें दावानलसे व्याप्त हुए वनवासी जन्तुओंकी क्रन्दनध्वनि सुनायी पड़ती है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके बाणोंसे घायल हुए उन विपक्षी योद्धाओंका आर्तनाद वहाँ श्रवणगोचर होता था ॥ ३३ ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः पितरश्चाब्रुवन् नृप ।
एते द्रवन्ति पञ्चालाः पाण्डवाश्च ससैनिकाः ॥ ३४ ॥

नरेश्वर ! उस समय वहाँ आकाशमें खड़े हुए देवता, पितर और गन्धर्व कहते थे, ये पाञ्चाल और पाण्डव अपने सैनिकोंके साथ भागे जा रहे हैं ॥ ३४ ॥

तं तथा समरे द्रोणं निघ्नन्तं सोमकान् रणे ।
न चाप्यभिययुः केचिदपरे नैव विव्यधुः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार समराङ्गणमें सोमकोंका वध करते हुए द्रोणाचार्यके सामने न तो कोई जा सके और न कोई उन्हें चोट ही पहुँचा सके ॥ ३५ ॥

वर्तमाने तथा रौद्रे तस्मिन् वीरवरक्षये ।
अशृणोत् सहसा पार्थः पाञ्चजन्यस्य निःस्वनम् ॥ ३६ ॥

बड़े-बड़े वीरोंका संहार करनेवाला वह भयंकर संग्राम चल ही रहा था कि सहसा कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने पाञ्चजन्य-की ध्वनि सुनी ॥ ३६ ॥

पूरितो वासुदेवेन शङ्खराट् स्वनते भृशम् ।
युध्यमानेषु वीरेषु सैन्धवस्याभिरक्षिषु ॥ ३७ ॥
नदत्सु धार्तराष्ट्रेषु विजयस्य रथं प्रति ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषे विप्रणष्टे समन्ततः ॥ ३८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके फूँकनेपर वह शङ्खराज पाञ्चजन्य बड़े जोरसे अपनी ध्वनिका विस्तार कर रहा था । सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षामें नियुक्त हुए वीरगण युद्धमें संलग्न थे । अर्जुनके रथके पास आपके पुत्र और सैनिक गरज रहे थे तथा गाण्डीव धनुषकी टङ्कार सब ओरसे दब गयी थी ॥ ३७-३८ ॥

कश्मलाभिहतो राजा चिन्तयामास पाण्डवः ।
न नूनं स्वस्ति पार्थाय यथा नदति शङ्खराट् ॥ ३९ ॥
कौरवाश्च यथा हृष्टा विनदन्ति मुहुर्मुहुः ।

तब पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर मोहके वशीभूत होकर इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'जिस प्रकार शङ्खराज पाञ्चजन्य-की ध्वनि हो रही है और जिस तरह कौरव-सैनिक बारंबार हर्षनाद कर रहे हैं, उससे जान पड़ता है, निश्चय ही अर्जुनकी कुशल नहीं है' ॥ ३९½ ॥

एवं स चिन्तयित्वा तु व्याकुलेनान्तरात्मना ॥ ४० ॥
अजातशत्रुः कौन्तेयः सात्वतं प्रत्यभाषत ।
बाष्पगद्गदया वाचा मुह्यमानो मुहुर्मुहुः ।
कृत्यस्यानन्तरापेक्षी शैनेयं शिनिपुङ्गवम् ॥ ४१ ॥

ऐसा विचारकर अजातशत्रु कुन्तीकुमार युधिष्ठिरका हृदय व्याकुल हो उठा । वे चाहते थे कि जयद्रथवधका कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो जाय; अतः बारंबार मोहित हो अश्रु-गद्गद वाणीमें शिनिप्रवर सात्यकिको सम्बोधित करके बोले ॥

युधिष्ठिर उवाच

यः स धर्मः पुरा दृष्टः सद्भिः शैनेय शाश्वतः ।
साम्पराये सुहृत्कृत्ये तस्य कालोऽयमागतः ॥ ४२ ॥

युधिष्ठिरने कहा—शैनेय ! साधु पुरुषोंने पूर्वकालमें विपत्तिके समय एक सुहृद्के कर्तव्यके विषयमें जिस सनातन धर्मका साक्षात्कार किया है, आज उसीके पालनका अवसर उपस्थित हुआ है ॥ ४२ ॥

सर्वेष्वपि च योधेषु चिन्तयञ्शिनिपुङ्गव ।
त्वत्तः सुहृत्तमं कञ्चिन्नाभिजानामि सात्यके ॥ ४३ ॥

शिनिप्रवर सात्यके ! इस दृष्टिसे विचार करनेपर मैं समस्त योद्धाओंमें किसीको भी तुमसे बढ़कर अपना अतिशय सुहृत् नहीं समझ पाता हूँ ॥ ४३ ॥

यो हि प्रीतमना नित्यं यश्च नित्यमनुव्रतः ।
स कार्ये साम्पराये तु नियोज्य इति मे मतिः ॥ ४४ ॥

जो सदा प्रसन्नचित्त रहता हो तथा जो नित्य-निरन्तर अपने प्रति अनुराग रखता हो, उसीको संकटकालमें किसी महत्त्वपूर्ण कार्यका सम्पादन करनेके लिये नियुक्त करना चाहिये, ऐसा मेरा मत है ॥ ४४ ॥

यथा च केशवो नित्यं पाण्डवानां परायणम् ।
तथा त्वमपि वार्ष्णेय कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥ ४५ ॥

वार्ष्णेय ! जैसे भगवान् श्रीकृष्ण सदा पाण्डवोंके परम आश्रय हैं, उसी प्रकार तुम भी हो । तुम्हारा पराक्रम भी श्रीकृष्णके समान ही है ॥ ४५ ॥

सोऽहं भारं समाधास्ये त्वयि तं वोढुमर्हसि ।
अभिप्रायं च मे नित्यं न वृथा कर्तुमर्हसि ॥ ४६ ॥

अतः मैं तुमपर जो कार्यभार रख रहा हूँ, उसका तुम्हें निर्वाह करना चाहिये । मेरे मनोरथको सदा सफल बनानेकी ही तुम्हें चेष्टा करनी चाहिये ॥ ४६ ॥

स त्वं भ्रातुर्वयस्यस्य गुरोरपि च संयुगे ।
कुरु कृच्छ्रे सहायार्थमर्जुनस्य नरर्षभ ॥ ४७ ॥

नरश्रेष्ठ ! अर्जुन तुम्हारा भाई, मित्र और गुरु है। वह युद्धके मैदानमें संकटमें पड़ा हुआ है। अतः तुम उसकी सहायताके लिये प्रयत्न करो ॥ ४७ ॥

त्वं हि सत्यव्रतः शूरो मित्राणामभयङ्करः।
लोके विख्यायसे वीर कर्मभिः सत्यवागिति ॥ ४८ ॥

तुम सत्यव्रती, शूरवीर तथा मित्रोंको अभय देनेवाले हो। वीर ! तुम अपने कर्मोंद्वारा संसारमें सत्यवादीके रूपमें विख्यात हो ॥ ४८ ॥

यो हि शैनेय मित्रार्थे युध्यमानस्त्यजेत् तनुम्।
पृथिवीं च द्विजातिभ्यो यो दद्यात् स समो भवेत्॥४९॥

शैनेय ! जो मित्रके लिये युद्ध करते हुए शरीरका त्याग करता है तथा जो ब्राह्मणोंको समूची पृथ्वीका दान कर देता है, वे दोनों समान पुण्यके भागी होते हैं ॥ ४९ ॥

श्रुताश्च बहवोऽस्माभी राजानो ये दिवं गताः।
दत्त्वेमां पृथिवीं कृत्स्नां ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि ॥ ५०॥

हमने सुना है कि बहुत-से राजा ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक इस समूची पृथ्वीका दान करके स्वर्गलोकमें गये हैं॥५०॥

एवं त्वामपि धर्मात्मन् प्रयाचेऽहं कृताञ्जलिः।
पृथिवीदानतुल्यं स्यादधिकं वा फलं विभो ॥ ५१॥

धर्मात्मन् ! इसी प्रकार तुमसे भी मैं अर्जुनकी सहायताके लिये हाथ जोड़कर याचना करता हूँ। प्रभो ! ऐसा करनेसे तुम्हें पृथ्वीदानके समान अथवा उससे भी अधिक फल प्राप्त होगा ॥ ५१ ॥

एक एव सदा कृष्णो मित्राणामभयङ्करः।
रणे संत्यजति प्राणान् द्वितीयस्त्वं च सात्यके ॥ ५२ ॥

सात्यके ! मित्रोंको अभय प्रदान करनेवाले एक तो भगवान् श्रीकृष्ण ही सदा हमारे लिये युद्धमें अपने प्राणोंका परित्याग करनेके लिये उद्यत रहते हैं और दूसरे तुम ॥५२॥

विक्रान्तस्य च वीरस्य युद्धे प्रार्थयतो यशः।
शूर एव सहायः स्यान्नेतरः प्राकृतो जनः ॥ ५३ ॥

युद्धमें सुयश पानेकी इच्छा रखकर पराक्रम करनेवाले वीर पुरुषकी सहायता कोई शूरवीर पुरुष ही कर सकता है। दूसरा कोई निम्न कोटिका मनुष्य उसका सहायक नहीं हो सकता ॥ ५३ ॥

ईदृशे तु परामर्दे वर्तमानस्य माधव।
त्वदन्यो हि रणे गोप्ता विजयस्य न विद्यते ॥ ५४ ॥

माधव ! ऐसे घोर युद्धमें लगे हुए रणक्षेत्रमें अर्जुनका सहायक एवं संरक्षक होनेयोग्य तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नहीं है॥

श्लाघन्नेव हि कर्माणि शतशस्तव पाण्डवः।
मम संजनयन् हर्षं पुनः पुनरकीर्तयत् ॥ ५५ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुनने तुम्हारे सैकड़ों कार्योंकी प्रशंसा करते और मेरा हर्ष बढ़ाते हुए बारंबार तुम्हारे गुणोंका वर्णन किया था ॥ ५५ ॥

लघुहस्तश्चित्रयोधी तथा लघुपराक्रमः।
प्राज्ञः सर्वास्त्रविच्छूरो मुह्यते न च संयुगे ॥ ५६ ॥

वह कहता था—'सात्यकिके हाथोंमें बड़ी फुर्ती है। वह विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाला और शीघ्रतापूर्वक पराक्रम दिखानेवाला है। सम्पूर्ण अस्त्रोंका ज्ञाता, विद्वान् एवं शूरवीर सात्यकि युद्धस्थलमें कभी मोहित नहीं होता है ॥५६॥

महास्कन्धो महोरस्को महाबाहुर्महाहनुः।
महाबलो महावीर्यः स महात्मा महारथः ॥ ५७ ॥

'उसके कंधे महान्, छाती चौड़ी, भुजाएँ बड़ी-बड़ी और ठोढ़ी विशाल एवं हृष्ट-पुष्ट हैं। वह महाबली, महापराक्रमी, महामनस्वी और महारथी है ॥ ५७ ॥

शिष्यो मम सखा चैव प्रियोऽस्याहं प्रियश्च मे।
युयुधानः सहायो मे प्रमथिष्यति कौरवान् ॥ ५८ ॥

'सात्यकि मेरा शिष्य और सखा है। मैं उसको प्रिय हूँ और वह मुझे। युयुधान मेरा सहायक होकर मेरे विपक्षी कौरवोंका संहार कर डालेगा ॥ ५८ ॥

अस्मदर्थं च राजेन्द्र संनह्येद् यदि केशवः।
रामो वाप्यनिरुद्धो वा प्रद्युम्नो वा महारथः ॥ ५९ ॥
गदो वा सारणो वापि साम्बो वा सह वृष्णिभिः।
सहायार्थं महाराज संग्रामोत्तममूर्धनि ॥ ६० ॥
तथाप्यहं नरव्याघ्रं शैनेयं सत्यविक्रमम्।
साहाय्ये विनियोक्ष्यामि नास्ति मेऽन्यो हि तत्समः॥६१॥

'राजेन्द्र ! महाराज ! यदि युद्धके श्रेष्ठ मुहानेपर हमारी सहायताके लिये भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम, अनिरुद्ध, महारथी प्रद्युम्न, गद, सारण अथवा वृष्णिवंशियोंसहित साम्ब कवच धारण करके तैयार होंगे, तो भी मैं पुरुषसिंह सत्यपराक्रमी शिनिपौत्र सात्यकिको अवश्य ही अपनी सहायताके कार्यमें नियुक्त करूँगा; क्योंकि मेरी दृष्टिमें दूसरा कोई सात्यकिके समान नहीं है' ॥ ५९—६१ ॥

इति द्वैतवने तात मामुवाच धनंजयः।
परोक्षे त्वद्गुणांस्तथ्यान् कथयन्नार्यसंसदि ॥ ६२ ॥

तात ! इस प्रकार अर्जुनने द्वैतवनमें श्रेष्ठ पुरुषोंकी सभामें तुम्हारे यथार्थ गुणोंका वर्णन करते हुए परोक्षमें मुझसे उपर्युक्त बातें कही थीं ॥ ६२ ॥

तस्य त्वमेवं संकल्पं न वृथा कर्तुमर्हसि।
धनंजयस्य वार्ष्णेय मम भीमस्य चोभयोः ॥ ६३ ॥

वार्ष्णेय ! अर्जुनका, मेरा, भीमसेनका तथा दोनों माद्रीकुमारोंका तुम्हारे विषयमें जो वैसा संकल्प है, उसे तुम्हें व्यर्थ नहीं करना चाहिये ॥ ६३ ॥

यत्रापि तीर्थानि चरन्नगच्छं द्वारकां प्रति ।
तत्राहमपि ते भक्तिमर्जुनं प्रति दृष्टवान् ॥ ६४ ॥

जब मैं तीर्थोंमें विचरता हुआ द्वारकामें गया था, वहाँ भी अर्जुनके प्रति जो तुम्हारा भक्तिभाव है, उसे मैंने प्रत्यक्ष देखा था ॥ ६४ ॥

न तत् सौहृदमन्येषु मया शैनेय लक्षितम् ।
यथा त्वमस्मान् भजसे वर्तमानानुपप्लवे ॥ ६५ ॥

शैनेय ! इस विनाशकारी संकटमें पड़े हुए हमलोगोंकी तुम जिस प्रकार सेवा एवं सहायता कर रहे हो, वैसा सौहार्द मैंने तुम्हारे सिवा दूसरोंमें नहीं देखा है ॥ ६५ ॥

सोऽभिजात्या च भक्त्या च सख्यस्याचार्यकस्य च ।
सौहृदस्य च वीर्यस्य कुलीनत्वस्य माधव ॥ ६६ ॥
सत्यस्य च महाबाहो अनुकम्पार्थमेव च ।
अनुरूपं महेष्वास कर्म त्वं कर्तुमर्हसि ॥ ६७ ॥

महाबाहु महाधनुर्धर माधव ! वही तुम हमलोगोंपर कृपा करनेके लिये ही उत्तम कुलमें जन्म-ग्रहण, अर्जुनके प्रति भक्तिभाव, मैत्री, गुरुभाव, सौहार्द, पराक्रम, कुलीनता और सत्यके अनुरूप कर्म करो ॥ ६६-६७ ॥

सुयोधनो हि सहसा गतो द्रोणेन दंशितः ।
पूर्वमेवानुयातास्ते कौरवाणां महारथाः ॥ ६८ ॥

द्रोणाचार्यद्वारा दी गयी कवचधारणासे सुरक्षित हो दुर्योधन सहसा अर्जुनका सामना करनेके लिये गया है । बहुतेरे कौरव महारथियोंने पहलेसे ही उसका पीछा किया था ॥

सुमहान् निनदश्चैव श्रूयते विजयं प्रति ।
स शैनेय जवेनाशु गन्तुमर्हसि मानद ॥ ६९ ॥

जहाँ अर्जुन हैं, उस ओर बड़े जोरकी गर्जना सुनायी दे रही है । अतः दूसरोंको मान देनेवाले शैनेय ! तुम्हें शीघ्रतापूर्वक बड़े वेगसे वहाँ जाना चाहिये ॥ ६९ ॥

भीमसेनो वयं चैव संयत्ताः ससैनिकाः ।
द्रोणमावारयिष्यामो यदि त्वां प्रति यास्यति ॥ ७० ॥

भीमसेन और हमलोग अपने सैनिकोंके साथ सब प्रकारसे सावधान हैं । यदि द्रोणाचार्य तुम्हारा पीछा करेंगे तो हम सब लोग उन्हें रोकेंगे ॥ ७० ॥

पश्य शैनेय सैन्यानि द्रवमाणानि संयुगे ।
महान्तं च रणे शब्दं दीर्यमाणां च भारतीम् ॥ ७१ ॥

शैनेय ! वह देखो, उधर युद्धस्थलमें सेनाएँ भाग रही हैं । रणक्षेत्रमें महान् कोलाहल हो रहा है और मोरचेबंदी करके खड़ी हुई कौरवी सेनामें दरारें पड़ रही हैं ॥

महामारुतवेगेन समुद्रमिव पर्वसु ।
धार्तराष्ट्रबलं तात विक्षिप्तं सव्यसाचिना ॥ ७२ ॥

तात ! पूर्णिमाके दिन प्रचण्ड वायुके वेगसे विक्षुब्ध हुए समुद्रके समान सव्यसाची अर्जुनके द्वारा पीड़ित हुई दुर्योधनकी सेनामें हलचल मच गयी है ॥ ७२ ॥

रथैर्विपरिधावद्भिर्मनुष्यैश्च हयैश्च ह ।
सैन्यं रजःसमुद्भूतमेतत् सम्परिवर्तते ॥ ७३ ॥

इधर-उधर भागते हुए रथों, मनुष्यों और घोड़ोंके द्वारा उड़ी हुई धूलसे आच्छादित हुई यह सारी सेना चक्कर काट रही है ॥ ७३ ॥

संवृतः सिन्धुसौवीरैर्नखरप्रासयोधिभिः ।
अत्यन्तोपचितैः शूरैः फाल्गुनः परवीरहा ॥ ७४ ॥

शत्रु-वीरोंका संहार करनेवाला अर्जुन, नखर (बघनखे) और प्रासोंद्वारा युद्ध करनेवाले तथा अधिक संख्यामें एकत्र हुए सिन्धु-सौवीर देशके शूरवीर सैनिकोंसे घिर गया है ॥ ७४ ॥

नैतद् बलमसंवार्य शक्यो जेतुं जयद्रथः ।
एते हि सैन्धवस्यार्थे सर्वे संत्यक्तजीविताः ॥ ७५ ॥

इस सेनाका निवारण किये बिना जयद्रथको जीतना असम्भव है। ये सभी सैनिक सिन्धुराजके लिये अपना जीवन न्यौछावर कर चुके हैं ॥ ७५ ॥

शरशक्तिध्वजवरं हयनागसमाकुलम् ।
पश्यैतद् धार्तराष्ट्राणामनीकं सुदुरासदम् ॥ ७६ ॥

बाण, शक्ति और ध्वजाओंसे सुशोभित तथा घोड़े और हाथियोंसे भरी हुई कौरवोंकी इस दुर्जय सेनाको देखो ॥ ७६ ॥

शृणु दुन्दुभिनिर्घोषं शङ्खशब्दांश्च पुष्कलान् ।
सिंहनादरवांश्चैव रथनेमिस्वनांस्तथा ॥ ७७ ॥

सुनो, डंकोंकी आवाज हो रही है, जोर-जोरसे शङ्ख बज रहे हैं, वीरोंके सिंहनाद तथा रथोंके पहियोंकी घर्घराहटके शब्द सुनायी पड़ रहे हैं ॥ ७७ ॥

नागानां शृणु शब्दं च पत्तीनां च सहस्रशः ।
सादिनां द्रवतां चैव शृणु कम्पयतां महीम् ॥ ७८ ॥

हाथियोंके चिग्घाड़नेकी आवाज सुनो । सहस्रों पैदल सिपाहियों तथा पृथ्वीको कम्पित करते हुए दौड़ लगानेवाले घुड़सवारोंके शब्द सुन लो ॥ ७८ ॥

पुरस्तात् सैन्धवानीकं द्रोणानीकं च पृष्ठतः ।
बहुत्वाद्धि नरव्याघ्र देवेन्द्रमपि पीडयेत् ॥ ७९ ॥

नरव्याघ्र ! अर्जुनके सामने सिन्धुराजकी सेना है और पीछे द्रोणाचार्यकी । इसकी संख्या इतनी अधिक है कि यह देवराज इन्द्रको भी पीड़ित कर सकती है ॥ ७९ ॥

अपर्यन्ते बले मग्नो जह्यादपि च जीवितम् ।
तस्मिंश्च निहते युद्धे कथं जीवेत मादृशः ॥ ८० ॥
सर्वथाहमनुप्राप्तः सुकृच्छ्रं त्वयि जीवति ।

इस अनन्त सैन्यसमुद्रमें डूबकर अर्जुन अपने प्राणोंका भी परित्याग कर देगा। युद्धमें उसके मारे जानेपर मेरे-जैसा

मनुष्य कैसे जीवित रह सकता है ? युयुधान ! तुम्हारे जीते-जी मैं सब प्रकारसे बड़े भारी संकटमें पड़ गया हूँ ॥८०½॥

श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयश्च पाण्डवः ॥ ८१ ॥
लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च प्रविष्टस्तात भारतीम् ।
सूर्योदये महाबाहुर्दिवसश्चातिवर्तते ॥ ८२ ॥

निद्राविजयी पाण्डुकुमार अर्जुन श्यामवर्णवाला दर्शनीय तरुण है। वह शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलाता और विचित्र रीतिसे युद्ध करता है। तात ! उस महाबाहु वीरने सूर्योदयके समय अकेले ही कौरवी सेनामें प्रवेश किया था और अब दिन बीतता चला जा रहा है ॥ ८१-८२ ॥

तन्न जानामि वार्ष्णेय यदि जीवति वा न वा ।
कुरूणां चापि तत् सैन्यं सागरप्रतिमं महत् ॥ ८३ ॥
एक एव च बीभत्सुः प्रविष्टस्तात भारतीम् ।
अविषह्यां महाबाहुः सुरैरपि महाहवे ॥ ८४ ॥

वार्ष्णेय ! पता नहीं, इस समयतक अर्जुन जीवित है या नहीं । महासमरमें जिसके वेगको सहन करना देवताओंके लिये भी असम्भव है, कौरवोंकी वह सेना समुद्रके समान विशाल है, तात ! उस कौरवी सेनामें महाबाहु अर्जुनने अकेले ही प्रवेश किया है ॥ ८३-८४ ॥

न हि मे वर्तते बुद्धिरद्य युद्धे कथंचन ।
द्रोणोऽपि रभसो युद्धे मम पीडयते बलम् ॥ ८५ ॥

आज किसी प्रकार मेरी बुद्धि युद्धमें नहीं लग रही है । इधर द्रोणाचार्य भी युद्धस्थलमें बड़े वेगसे आक्रमण करके मेरी सेनाको पीड़ित कर रहे हैं ॥ ८५ ॥

प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथासौ चरति द्विजः ।
युगपच्च समेतानां कार्याणां त्वं विचक्षणः ॥ ८६ ॥

महाबाहो ! विप्रवर द्रोणाचार्य जैसा कार्य कर रहे हैं, वह सब तुम्हारी आँखोंके सामने है । एक ही समय प्राप्त हुए अनेक कार्योंमेंसे किसका पालन आवश्यक है, इसका निर्णय करनेमें तुम कुशल हो ॥ ८६ ॥

महार्थं लघुसंयुक्तं कर्तुमर्हसि मानद ।
तस्य मे सर्वकार्येषु कार्यमेतन्मतं महत् ॥ ८७ ॥
अर्जुनस्य परित्राणं कर्तव्यमिति संयुगे ।

मानद ! सबसे महान् प्रयोजनको तुम्हें शीघ्रतापूर्वक सम्पन्न करना चाहिये । मुझे तो सब कार्योंमें सबसे महान् कार्य यही जान पड़ता है कि युद्धस्थलमें अर्जुनकी रक्षा की जाय ॥ ८७½ ॥

नाहं शोचामि दाशार्हं गोप्तारं जगतः पतिम् ॥ ८८ ॥
स हि शक्तो रणे तात त्रींल्लोकानपि संगतान् ।
विजेतुं पुरुषव्याघ्रः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ८९ ॥
किं पुनर्धार्तराष्ट्रस्य बलमेतत् सुदुर्बलम् ।

तात ! मैं दशार्हनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके लिये शोक नहीं करता । वे तो सम्पूर्ण जगत्के संरक्षक और स्वामी हैं । युद्धस्थलमें तीनों लोक संघटित होकर आ जायँ तो भी वे पुरुषसिंह श्रीकृष्ण उन सबको परास्त कर सकते हैं, यह तुमसे सच्ची बात कहता हूँ । फिर दुर्योधनकी इस अत्यन्त दुर्बल सेनाको जीतना उनके लिये कौन बड़ी बात है ? ॥ ८८-८९½ ॥

अर्जुनस्त्वेष वार्ष्णेय पीडितो बहुभिर्युधि ॥ ९० ॥
प्रजह्यात् समरे प्राणांस्तस्माद् विन्दामि कश्मलम् ।

परंतु वार्ष्णेय ! यह अर्जुन तो युद्धस्थलमें बहुसंख्यक सैनिकोंद्वारा पीड़ित होनेपर समराङ्गणमें अपने प्राणोंका परित्याग कर देगा । इसीलिये मैं शोक और दुःखमें डूबा जा रहा हूँ ॥ ९०½ ॥

तस्य त्वं पदवीं गच्छ गच्छेयुस्त्वादृशा यथा ॥ ९१ ॥
तादृशस्येदृशे काले मादृशेनाभिनोदितः ।

अतः तुम मेरे-जैसे मनुष्यसे प्रेरित हो ऐसे संकटके समय अर्जुन-जैसे प्रिय सखाके पथका अनुसरण करो, जैसा कि तुम्हारे-जैसे वीर पुरुष किया करते हैं ॥ ९१½ ॥

रणे वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवातिरथौ स्मृतौ ॥ ९२ ॥
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं च सात्वत विश्रुतः ।

सात्वत ! वृष्णिवंशी प्रमुख वीरोंमें रणक्षेत्रके लिये दो ही व्यक्ति अतिरथी माने गये हैं—एक तो महाबाहु प्रद्युम्न और दूसरे सुविख्यात वीर तुम ॥ ९२½ ॥

अस्त्रे नारायणसमः संकर्षणसमो बले ॥ ९३ ॥
वीरतायां नरव्याघ्र धनंजयसमो ह्यसि ।

नरव्याघ्र ! तुम अस्त्रविद्याके ज्ञानमें भगवान् श्रीकृष्णके समान, बलमें बलरामजीके तुल्य और वीरतामें धनंजयके समान हो ॥ ९३½ ॥

भीष्मद्रोणावतिक्रम्य सर्वयुद्धविशारदम् ॥ ९४ ॥
त्वामेव पुरुषव्याघ्रं लोके सन्तः प्रचक्षते ।

इस जगत्में भीष्म और द्रोणके बाद तुझ पुरुषसिंह सात्यकि-को ही श्रेष्ठ पुरुष सम्पूर्ण युद्धकलामें निपुण बताते हैं ॥९४½॥

(सदेवासुरगन्धर्वान् सकिन्नरमहोरगान् ।
योधयेत् स जगत् सर्वं विजयेत रिपून् बहून् ॥
इति ब्रुवन्ति लोकेषु जनास्तव गुणान् सदा ।
समागमेषु जल्पन्ति पृथगेव च सर्वदा ॥)

जब अच्छे पुरुषोंका समाज जुटता है, उस समय उसमें आये हुए सब लोग संसारमें तुम्हारे गुणोंको सदा-सर्वदा सबसे विलक्षण ही बतलाते हैं । उनका कहना है कि सात्यकि देवता, असुर, गन्धर्व, किन्नर तथा बड़े-बड़े नागोंसहित बहुसंख्यक शत्रुओंपर विजय पा सकते हैं । सम्पूर्ण जगत्से अकेले ही युद्ध कर सकते हैं ॥

नाशक्यं विद्यते लोके सात्यकेरिति माधव ॥ ९५ ॥
तत् त्वां यदभिवक्ष्यामि तत् कुरुष्व महाबल ।
सम्भावना हि लोकस्य मम पार्थस्य चोभयोः ॥ ९६ ॥
नान्यथा तां महाबाहो सम्प्रकर्तुमिहार्हसि ।
परित्यज्य प्रियान् प्राणान् रणे चर विभीतवत् ॥ ९७ ॥

माधव ! लोग कहते हैं कि संसारमें सात्यकिके लिये कोई कार्य असाध्य नहीं है । महाबली वीर ! सब लोगोंकी तथा मेरी और अर्जुनकी—दोनों भाइयोंकी तुम्हारे विषयमें बड़ी उत्तम भावना है । अतः मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसका पालन करो । महाबाहो ! तुम हमारी पूर्वोक्त धारणाको बदल न देना । समराङ्गणमें प्यारे प्राणोंका मोह छोड़कर निर्भयके समान विचरो ॥ ९५—९७ ॥

न हि शैनेय दाशार्हा रणे रक्षन्ति जीवितम् ।
अयुद्धमनवस्थानं संग्रामे च पलायनम् ॥ ९८ ॥
भीरूणामसतां मार्गो नैष दाशार्हसेवितः ।

शैनेय ! दशार्हकुलके वीर पुरुष रणक्षेत्रमें अपने प्राण बचानेकी चेष्टा नहीं करते हैं । युद्धसे मुँह मोड़ना, युद्धस्थलमें डटे न रहना और संग्रामभूमिमें पीठ दिखाकर भागना यह कायरों और अधम पुरुषोंका मार्ग है । दशार्हकुलके वीर पुरुष इससे दूर रहते हैं ॥ ९८½ ॥

तवार्जुनो गुरुस्तात धर्मात्मा शिनिपुङ्गव ॥ ९९ ॥
वासुदेवो गुरुश्चापि तव पार्थस्य धीमतः ।

तात ! शिनिप्रवर ! धर्मात्मा अर्जुन तुम्हारा गुरु है तथा भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे और बुद्धिमान् अर्जुनके भी गुरु हैं ॥ ९९½ ॥

कारणद्वयमेतद्धि जानंस्त्वामहमब्रुवम् ॥ १०० ॥
मावमंस्था वचो मह्यं गुरुस्तव गुरोर्ह्यहम् ।

इन दोनों कारणोंको जानकर मैं तुमसे इस कार्यके लिये कह रहा हूँ । तुम मेरी बातकी अवहेलना न करो; क्योंकि मैं तुम्हारे गुरुका भी गुरु हूँ ॥ १००½ ॥

वासुदेवमतं चैव मम चैवार्जुनस्य च ॥ १०१ ॥
सत्यमेतन्मयोक्तं ते याहि यत्र धनंजयः ।

तुम्हारा वहाँ जाना भगवान् श्रीकृष्णको, मुझको तथा अर्जुनको भी प्रिय है । यह मैंने तुमसे सच्ची बात कही है । अतः जहाँ अर्जुन है, वहाँ जाओ ॥ १०१½ ॥

एतद् वचनमाज्ञाय मम सत्यपराक्रम ॥ १०२ ॥
प्रविशैतद् बलं तात धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ।

सत्यपराक्रमी वत्स ! तुम मेरी इस बातको मानकर दुर्बुद्धि दुर्योधनकी इस सेनामें प्रवेश करो ॥ १०२½ ॥

प्रविश्य च यथान्यायं संगम्य च महारथैः ।
यथार्हमात्मनः कर्म रणे सात्वत दर्शय ॥ १०३ ॥

सात्वत ! इसमें प्रवेश करके यथायोग्य सब महारथियोंसे मिलकर युद्धमें अपने अनुरूप पराक्रम दिखाओ ॥ १०३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें युधिष्ठिरवाक्यविषयक एक सौ दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल १०५ श्लोक हैं)

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकि और युधिष्ठिरका संवाद

संजय उवाच

प्रीतियुक्तं च हृद्यं च मधुराक्षरमेव च ।
कालयुक्तं च चित्रं च न्याय्यं यच्चापि भाषितुम् ॥ १ ॥
धर्मराजस्य तद् वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः ।
सात्यकिर्भरतश्रेष्ठ प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! धर्मराजका वह वचन प्रेमपूर्ण, मनको प्रिय लगनेवाला, मधुर अक्षरोंसे युक्त, सामयिक, विचित्र, कहने योग्य तथा न्यायसङ्गत था । भरतश्रेष्ठ ! उसे सुनकर शिनिप्रवर सात्यकिने युधिष्ठिरको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १-२ ॥

श्रुतं ते गदतो वाक्यं सर्वमेतन्मयाच्युत ।
न्याययुक्तं च चित्रं च फाल्गुनार्थे यशस्करम् ॥ ३ ॥

'अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले नरेश ! आपने अर्जुनकी सहायताके लिये जो-जो बातें कही हैं, वह सब मैंने सुन लीं । आपका कथन अद्भुत, न्यायसङ्गत और यशकी वृद्धि करनेवाला है ॥ ३ ॥

एवंविधे तथा काले मादृशं प्रेक्ष्य सम्मतम् ।
वक्तुमर्हसि राजेन्द्र यथा पार्थं तथैव माम् ॥ ४ ॥

'राजेन्द्र ! ऐसे समयमें मेरे-जैसे प्रिय व्यक्तिको देखकर आप जैसी बात कह सकते हैं, वैसी ही कही है । आप अर्जुनसे जो कुछ कह सकते हैं, वही आपने मुझसे भी कहा है ॥ ४ ॥

न मे धनंजयस्यार्थे प्राणा रक्ष्याः कथंचन ।
त्वत्प्रयुक्तः पुनरहं किं न कुर्यां महाहवे ॥ ५ ॥

'महाराज ! अर्जुनके हितके लिये मुझे किसी प्रकार भी अपने प्राणोंकी रक्षाकी चिन्ता नहीं करनी है; फिर आपका आदेश मिलनेपर मैं इस महायुद्धमें क्या नहीं कर सकता हूँ ! ॥ ५ ॥

लोकत्रयं योधयेयं सदेवासुरमानुषम् ।
त्वत्प्रयुक्तो नरेन्द्रेह किमुतैतत् सुदुर्बलम् ॥ ६ ॥

'नरेन्द्र ! आपकी आज्ञा हो तो देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंसहित तीनों लोकोंके साथ मैं युद्ध कर सकता हूँ। फिर यहाँ इस अत्यन्त दुर्बल कौरवी सेनाका सामना करना कौन बड़ी बात है ? ॥ ६ ॥

सुयोधनबलं त्वद्य योधयिष्ये समन्ततः ।
विजेष्ये च रणे राजन् सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥

'राजन् ! मैं रणक्षेत्रमें आज चारों ओर घूमकर दुर्योधनकी सेनाके साथ युद्ध करूँगा और उसपर विजय पाऊँगा; यह मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ ॥ ७ ॥

कुशल्यहं कुशलिनं समासाद्य धनंजयम् ।
हते जयद्रथे राजन् पुनरेष्यामि तेऽन्तिकम् ॥ ८ ॥

'राजन् ! मैं कुशलपूर्वक रहकर सकुशल अर्जुनके पास पहुँच जाऊँगा और जयद्रथके मारे जानेपर उनके साथ ही आपके पास लौट आऊँगा ॥ ८ ॥

अवश्यं तु मया सर्वं विज्ञाप्यस्त्वं नराधिप ।
वासुदेवस्य यद् वाक्यं फाल्गुनस्य च धीमतः ॥ ९ ॥

'परंतु नरेश्वर ! भगवान् श्रीकृष्ण तथा बुद्धिमान् अर्जुनने युद्धके लिये जाते समय मुझसे जो कुछ कहा था, वह सब आपको सूचित कर देना मेरे लिये अत्यन्त आवश्यक है ॥ ९ ॥

दृढं त्वभिपरीतोऽहमर्जुनेन पुनः पुनः ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ १० ॥

'अर्जुनने सारी सेनाके बीचमें भगवान् श्रीकृष्णके सुनते हुए मुझे बारंबार कहकर दृढतापूर्वक बाँध लिया है ॥ १० ॥

अद्य माधव राजानमप्रमत्तोऽनुपालय ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा यावद्धन्मि जयद्रथम् ॥ ११ ॥

'उन्होंने कहा था—'माधव ! आज मैं जबतक जयद्रथका वध करता हूँ, तबतक युद्धमें तुम श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय लेकर पूरी सावधानीके साथ राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो ॥ ११ ॥

त्वयि चाहं महाबाहो प्रद्युम्ने वा महारथे ।
नृपं निक्षिप्य गच्छेयं निरपेक्षो जयद्रथम् ॥ १२ ॥

''महाबाहो ! मैं तुमपर अथवा महारथी प्रद्युम्नपर ही भरोसा करके राजाको धरोहरकी भाँति सौंपकर निरपेक्षभावसे जयद्रथके पास जा सकता हूँ ॥ १२ ॥

जानीषे हि रणे द्रोणं रभसं श्रेष्ठसम्मतम् ।
प्रतिज्ञा चापि ते नित्यं श्रुता द्रोणस्य माधव ॥ १३ ॥

''माधव! तुम जानते ही हो कि रणक्षेत्रमें श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा सम्मानित आचार्य द्रोण कितने वेगशाली हैं। उन्होंने जो प्रतिज्ञा कर रक्खी है, उसे भी तुम प्रतिदिन सुनते ही होगे ॥ १३ ॥

ग्रहणे धर्मराजस्य भारद्वाजोऽपि गृध्यति ।
शक्तश्चापि रणे द्रोणो निग्रहीतुं युधिष्ठिरम् ॥ १४ ॥

''द्रोणाचार्य भी धर्मराजको बंदी बनाना चाहते हैं और वे समराङ्गणमें राजा युधिष्ठिरको कैद करनेमें समर्थ भी हैं ॥ १४ ॥

एवं त्वयि समाधाय धर्मराजं नरोत्तमम् ।
अहमद्य गमिष्यामि सैन्धवस्य वधाय हि ॥ १५ ॥

''ऐसी अवस्थामें नरश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिरकी रक्षाका सारा भार तुमपर ही रखकर आज मैं सिन्धुराजके वधके लिये जाऊँगा ॥ १५ ॥

जयद्रथं च हत्वाहं द्रुतमेष्यामि माधव ।
धर्मराजं न चेद् द्रोणो निगृह्णीयाद् रणे बलात् ॥ १६ ॥

''माधव ! यदि द्रोणाचार्य रणक्षेत्रमें धर्मराजको बलपूर्वक बंदी न बना सकें तो मैं जयद्रथका वध करके शीघ्र ही लौट आऊँगा ॥ १६ ॥

निगृहीते नरश्रेष्ठे भारद्वाजेन माधव ।
सैन्धवस्य वधो न स्यान्ममाप्रीतिस्तथा भवेत् ॥ १७ ॥

''मधुवंशी वीर ! यदि द्रोणाचार्यने नरश्रेष्ठ युधिष्ठिरको कैद कर लिया तो सिन्धुराजका वध नहीं हो सकेगा और मुझे भी महान् दुःख होगा ॥ १७ ॥

एवंगते नरश्रेष्ठे पाण्डवे सत्यवादिनि ।
अस्माकं गमनं व्यक्तं वनं प्रति भवेत् पुनः ॥ १८ ॥

''यदि सत्यवादी नरश्रेष्ठ पाण्डुकुमार युधिष्ठिर इस प्रकार बंदी बनाये गये तो निश्चय ही हमें पुनः वनमें जाना पड़ेगा ॥ १८ ॥

सोऽयं मम जयो व्यक्तं व्यर्थ एव भविष्यति ।
यदि द्रोणो रणे क्रुद्धो निगृह्णीयाद् युधिष्ठिरम् ॥ १९ ॥

''यदि द्रोणाचार्य रणक्षेत्रमें कुपित होकर युधिष्ठिरको कैद कर लेंगे तो मेरी यह विजय अवश्य ही व्यर्थ हो जायगी ॥ १९ ॥

स त्वमद्य महाबाहो प्रियार्थं मम माधव ।
जयार्थं च यशोऽर्थं च रक्ष राजानमाहवे ॥ २० ॥

''महाबाहु माधव ! इसलिये तुम आज मेरा प्रिय करने, मुझे विजय दिलाने और मेरे यशकी वृद्धि करनेके लिये युद्धस्थलमें राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो' ॥ २० ॥

स भवान् मयि निक्षेपो निक्षिप्तः सव्यसाचिना ।
भारद्वाजाद् भयं नित्यं मन्यमानेन वै प्रभो ॥ २१ ॥

'प्रभो ! इस प्रकार द्रोणाचार्यसे निरन्तर भय मानते हुए सव्यसाची अर्जुनने आपको मेरे पास धरोहरके रूपमें रख छोड़ा है ॥ २१ ॥

तस्यापि च महाबाहो नित्यं पश्यामि संयुगे ।
नान्यं हि प्रतियोद्धारं रौक्मिणेयादृते प्रभो ॥ २२ ॥

'महाबाहो ! प्रभो ! मैं प्रतिदिन युद्धस्थलमें रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नके सिवा दूसरे किसी वीरको ऐसा नहीं देखता, जो द्रोणाचार्यके सामने खड़ा होकर उनसे युद्ध कर सके ॥ २२ ॥

मां चापि मन्यते युद्धे भारद्वाजस्य धीमतः ।
सोऽहं सम्भावनां चैतामाचार्यवचनं च तत् ॥ २३ ॥
पृष्ठतो नोत्सहे कर्तुं त्वां वा त्यक्तुं महीपते ।

'अर्जुन मुझे भी बुद्धिमान् द्रोणाचार्यका सामना करनेमें समर्थ योद्धा मानते हैं । महीपते ! मैं अपने आचार्यकी इस सम्भावनाको तथा उनके उस आदेशको न तो पीछे ढकेल सकता हूँ और न आपको ही त्याग सकता हूँ ॥ २३½ ॥

आचार्यो लघुहस्तत्वादभेद्यकवचावृतः ॥ २४ ॥
उपलभ्य रणे क्रीडेद् यथा शकुनिना शिशुः ।

'द्रोणाचार्य अभेद्य कवचसे सुरक्षित हैं । वे शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेके कारण रणक्षेत्रमें अपने विपक्षीको पाकर उसी प्रकार क्रीड़ा करते हैं, जैसे कोई बालक पक्षीके साथ खेल रहा हो ॥ २४½ ॥

यदि कार्ष्णिर्धनुष्पाणिरिह स्यान्मकरध्वजः ॥ २५ ॥
तस्मै त्वां विसृजेयं वै स त्वां रक्षेद् यथार्जुनः ।

'यदि कामदेवके अवतार श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न यहाँ हाथमें धनुष लेकर खड़े होते तो उन्हें मैं आपको सौंप देता । वे अर्जुनके समान ही आपकी रक्षा कर सकते थे ॥ २५½ ॥

कुरु त्वमात्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि ॥ २६ ॥
यः प्रतीयाद् रणे द्रोणं यावद् गच्छामि पाण्डवम् ।

'आप पहले अपनी रक्षाकी व्यवस्था कीजिये । मेरे चले जानेपर कौन आपका संरक्षण करनेवाला है, जो रणक्षेत्रमें तबतक द्रोणाचार्यका सामना करता रहे, जबतक कि मैं अर्जुनके पास जाता (और लौटता) हूँ ॥ २६½ ॥

मा च ते भयमद्यास्तु राजन्नर्जुनसम्भवम् ॥ २७ ॥
न स जातु महाबाहुर्भारमुद्यम्य सीदति ।

'महाराज ! आज आपके मनमें अर्जुनके लिये भय नहीं होना चाहिये । वे महाबाहु किसी कार्यभारको उठा लेनेपर कभी शिथिल नहीं होते हैं ॥ २७½ ॥

ये च सौवीरका योधास्तथा सैन्धवपौरवाः ॥ २८ ॥
उदीच्या दाक्षिणात्याश्च ये चान्येऽपि महारथाः ।
ये च कर्णमुखा राजन् रथोदाराः प्रकीर्तिताः ॥ २९ ॥
एतेऽर्जुनस्य क्रुद्धस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।

'राजन् ! जो सौवीर, सिन्धु तथा पुरुदेशके योद्धा हैं, जो उत्तर और दक्षिणके निवासी एवं अन्य महारथी हैं तथा जो कर्ण आदि श्रेष्ठ रथी बताये गये हैं; वे कुपित हुए अर्जुनकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं ॥ २८-२९½ ॥

उद्युक्ता पृथिवी सर्वा ससुरासुरमानुषा ॥ ३० ॥
सराक्षसगणा राजन् सकिन्नरमहोरगा ।
जङ्गमाः स्थावराः सर्वे नालं पार्थस्य संयुगे ॥ ३१ ॥

'नरेश्वर ! देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, किन्नर तथा महान् सर्पगणोंसहित यह समूची पृथ्वी और सभी स्थावर-जङ्गम प्राणी युद्धके लिये उद्यत हो जायँ, तो भी सब मिलकर भी युद्धस्थलमें अर्जुनका सामना नहीं कर सकते हैं ॥ ३०-३१ ॥

एवं ज्ञात्वा महाराज व्येतु ते भीर्धनंजये ।
यत्र वीरौ महेष्वासौ कृष्णौ सत्यपराक्रमौ ॥ ३२ ॥
न तत्र कर्मणो व्यापत् कथञ्चिदपि विद्यते ।

'महाराज ! ऐसा जानकर अर्जुनके विषयमें आपका भय दूर हो जाना चाहिये । जहाँ सत्यपराक्रमी और महाधनुर्धर वीर श्रीकृष्ण एवं अर्जुन विद्यमान हैं, वहाँ किसी प्रकार भी कार्यमें व्याघात नहीं हो सकता ॥ ३२½ ॥

दैवं कृतास्त्रतां योगममर्षमपि चाहवे ॥ ३३ ॥
कृतज्ञतां दयां चैव भ्रातुस्त्वमनुचिन्तय ।

'आपके भाई अर्जुनमें जो दैवीशक्ति, अस्त्रविद्याकी निपुणता, योग, युद्धस्थलमें अमर्ष, कृतज्ञता और दया आदि सद्गुण हैं, उनका आप बारंबार चिन्तन कीजिये ॥ ३३½ ॥

मयि चापि सहाये ते गच्छमानेऽर्जुनं प्रति ॥ ३४ ॥
द्रोणे चित्रास्त्रतां संख्ये राजंस्त्वमनुचिन्तय ।

'राजन् ! मैं आपका सहायक रहा हूँ, यदि मैं भी अर्जुनके पास चला जाता हूँ तो युद्धमें द्रोणाचार्य जिन विचित्र अस्त्रोंका प्रयोग करेंगे, उनपर भी आप अच्छी तरह विचार कर लीजिये ॥ ३४½ ॥

आचार्यो हि भृशं राजन् निग्रहे तव गृध्यति ॥ ३५ ॥
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन् सत्यां कर्तुं च भारत ।

'भरतवंशी नरेश ! द्रोणाचार्य आपको कैद करनेकी बड़ी इच्छा रखते हैं । वे अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करते हुए उसे सत्य कर दिखाना चाहते हैं ॥ ३५½ ॥

कुरुष्वाद्यात्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि ॥ ३६ ॥
यस्याहं प्रत्ययात् पार्थ गच्छेयं फाल्गुनं प्रति ।

'अब आप अपनी रक्षाका प्रबन्ध कीजिये । पार्थ ! मेरे चले जानेपर कौन आपका रक्षक होगा, जिसपर विश्वास करके मैं अर्जुनके पास चला जाऊँ ॥ ३६½ ॥

न ह्यहं त्वां महाराज अनिक्षिप्य महाहवे ॥ ३७ ॥
क्वचिद् यास्यामि कौरव्य सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।

'महाराज ! कुरुनन्दन ! मैं आपको इस महासमरमें किसी वीरके संरक्षणमें रक्खे बिना कहीं नहीं जाऊँगा; यह मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ ॥ ३७½ ॥

एतद्विचार्य बहुशो बुद्ध्या बुद्धिमतां वर ॥ ३८ ॥
दृष्ट्वा श्रेयः परं बुद्ध्या ततो राजन् प्रशाधि माम् ॥ ३९ ॥

'बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महाराज ! अपनी बुद्धिसे इस विषयमें बहुत सोच-विचार करके आपको जो परम मङ्गलकारक कृत्य जान पड़े, उसके लिये मुझे आज्ञा दें' ॥ ३८-३९ ॥

युधिष्ठिर उवाच

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव ।
न तु मे शुद्ध्यते भावः श्वेताश्वं प्रति मारिष ॥ ४० ॥

युधिष्ठिर बोले—महाबाहु माधव ! तुम जैसा कहते हो, वही ठीक है । आर्य ! श्वेतवाहन द्रोणाचार्यकी ओरसे मेरा हृदय शुद्ध (निश्चिन्त) नहीं हो रहा है ॥ ४० ॥

करिष्ये परमं यत्नमात्मनो रक्षणे ह्यहम् ।
गच्छ त्वं समनुज्ञातो यत्र यातो धनंजयः ॥ ४१ ॥

मैं अपनी रक्षाके लिये महान् प्रयत्न करूँगा । तुम मेरी आज्ञासे वहीं जाओ, जहाँ अर्जुन गया है ॥ ४१ ॥

आत्मसंरक्षणं संख्ये गमनं चार्जुनं प्रति ।
विचार्यैतत् स्वयं बुद्ध्या गमनं तत्र रोचय ॥ ४२ ॥

मुझे युद्धमें अपनी रक्षा करनी चाहिये या अर्जुनके पास तुम्हें भेजना चाहिये । इन दोनों बातोंपर तुम स्वयं ही अपनी बुद्धिसे विचार करके वहाँ जाना ही पसंद करो ॥

स त्वमातिष्ठ यानाय यत्र यातो धनंजयः ।
ममापि रक्षणं भीमः करिष्यति महाबलः ॥ ४३ ॥

अतः जहाँ अर्जुन गया है, वहाँ जानेके लिये तुम तैयार हो जाओ । महाबली भीमसेन मेरी भी रक्षा कर लेंगे ॥ ४३ ॥

पार्षतश्च ससोदर्यः पार्थिवाश्च महाबलाः ।
द्रौपदेयाश्च मां तात रक्षिष्यन्ति न संशयः ॥ ४४ ॥

तात ! भाइयोंसहित धृष्टद्युम्न, महाबली भूपालगण तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्र मेरी रक्षा कर लेंगे; इसमें संशय नहीं है ॥ ४४ ॥

केकया भ्रातरः पञ्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
विराटो द्रुपदश्चैव शिखण्डी च महारथः ॥ ४५ ॥
धृष्टकेतुश्च बलवान् कुन्तिभोजश्च मातुलः ।
नकुलः सहदेवश्च पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा ॥ ४६ ॥
एते समाहितास्तात रक्षिष्यन्ति न संशयः ।

तात ! पाँच भाई केकय-राजकुमार, राक्षस घटोत्कच, विराट, द्रुपद, महारथी शिखण्डी, धृष्टकेतु, बलवान् मामा कुन्तिभोज (पुरुजित्), नकुल, सहदेव, पाञ्चाल तथा सृंजय-वीरगण—ये सभी सावधान होकर निःसंदेह मेरी रक्षा करेंगे ॥ ४५-४६½ ॥

न द्रोणः सह सैन्येन कृतवर्मा च संयुगे ॥ ४७ ॥
समासादयितुं शक्तो न च मां धर्षयिष्यति ।

सेनासहित द्रोणाचार्य तथा कृतवर्मा—ये युद्धस्थलमें मेरे पास नहीं पहुँच सकते और न मुझे परास्त ही कर सकेंगे ॥

धृष्टद्युम्नश्च समरे द्रोणं क्रुद्धं परंतपः ॥ ४८ ॥
वारयिष्यति विक्रम्य वेलेव मकरालयम् ।

शत्रुओंको संताप देनेवाला धृष्टद्युम्न समराङ्गणमें कुपित हुए द्रोणाचार्यको पराक्रम करके रोक लेगा । ठीक वैसे ही, जैसे तटकी भूमि समुद्रको आगे बढ़नेसे रोक देती है ॥

यत्र स्थास्यति संग्रामे पार्षतः परवीरहा ॥ ४९ ॥
द्रोणो न सैन्यं बलवत् क्रामेत् तत्र कथंचन ।

जहाँ शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला द्रुपदकुमार संग्राम-भूमिमें खड़ा होगा, वहाँ मेरी प्रबल सेनापर द्रोणाचार्य किसी तरह आक्रमण नहीं कर सकते ॥ ४९½ ॥

एष द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात् ॥ ५० ॥
कवची स शरी खड्गी धन्वी च वरभूषणः ।

यह धृष्टद्युम्न, द्रोणाचार्यका नाश करनेके लिये कवच, धनुष, बाण, खड्ग और श्रेष्ठ आभूषणोंके साथ अग्निसे प्रकट हुआ है ॥ ५०½ ॥

विश्रब्धं गच्छ शैनेय मा कार्षीर्मयि सम्भ्रमम् ।
धृष्टद्युम्नो रणे क्रुद्धं द्रोणमावारयिष्यति ॥ ५१ ॥

अतः शिनिनन्दन ! तुम निश्चिन्त होकर जाओ । मेरे लिये संदेह मत करो । धृष्टद्युम्न रणक्षेत्रमें कुपित हुए द्रोणाचार्य-को सर्वथा रोक देगा ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरसात्यकिवाक्ये एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें युधिष्ठिर और सात्यकिका संवादविषयक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १११ ॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिकी अर्जुनके पास जानेकी तैयारी और सम्मानपूर्वक विदा होकर उनका प्रस्थान तथा साथ आते हुए भीमको युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये लौटा देना

संजय उवाच

धर्मराजस्य तद् वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः ।
स पार्थाद् भयमाशंसन् परित्यागान्महीपतेः ॥ १ ॥
अपवादं ह्यात्मनश्च लोकात् पश्यन् विशेषतः ।

ते मां भीतमिति ब्रूयुरायान्तं फाल्गुनं प्रति ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! धर्मराजका वह कथन सुनकर शिनिप्रवर सात्यकिके मनमें राजाको छोड़कर जानेसे अर्जुनके अप्रसन्न होनेकी आशङ्का उत्पन्न हुई। विशेषतः उन्हें अपने लिये लोकापवादका भय दिखायी देने लगा। वे सोचने लगे—मुझे अर्जुनकी ओर आते देख सब लोग यही कहेंगे कि यह डरकर भाग आया है ॥ १-२ ॥

निश्चित्य बहुधैवं स सात्यकिर्युद्धदुर्मदः।
धर्मराजमिदं वाक्यमब्रवीत् पुरुषर्षभः ॥ ३ ॥

युद्धमें दुर्जय वीर पुरुषरत्न सात्यकिने इस प्रकार भाँति-भाँतिसे विचार करके धर्मराजसे यह बात कही—॥ ३ ॥

कृतां चेन्मन्यसे रक्षां स्वस्ति तेऽस्तु विशाम्पते।
अनुयास्यामि बीभत्सुं करिष्ये वचनं तव ॥ ४ ॥

'प्रजानाथ! यदि आप अपनी रक्षाकी व्यवस्था की हुई मानते हैं तो आपका कल्याण हो। मैं अर्जुनके पास जाऊँगा और आपकी आज्ञाका पालन करूँगा ॥ ४ ॥

न हि मे पाण्डवात् कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।
यो मे प्रियतरो राजन् सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ५ ॥

'राजन्! मैं आपसे सच कहता हूँ कि तीनों लोकोंमें कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो मुझे पाण्डुनन्दन अर्जुनसे अधिक प्रिय हो ॥ ५ ॥

तस्याहं पदवीं यास्ये संदेशात् तव मानद।
त्वत्कृते न च मे किंचिदकर्तव्यं कथंचन ॥ ६ ॥

'मानद! मैं आपके आदेश और संदेशसे अर्जुनके पथका अनुसरण करूँगा। आपके लिये कोई ऐसा कार्य नहीं है, जिसे मैं किसी प्रकार न कर सकूँ ॥ ६ ॥

यथा हि मे गुरोर्वाक्यं विशिष्टं द्विपदां वर।
तथा तवापि वचनं विशिष्टतरमेव मे ॥ ७ ॥

'नरश्रेष्ठ! मेरे गुरु अर्जुनका वचन मेरे लिये जैसा महत्त्व रखता है, आपका वचन भी वैसा ही है, बल्कि उससे भी बढ़कर है ॥ ७ ॥

प्रिये हि तव वर्तेते भ्रातरौ कृष्णपाण्डवौ।
तयोः प्रिये स्थितं चैव विद्धि मां राजपुङ्गव ॥ ८ ॥

'नृपश्रेष्ठ! दोनों भाई श्रीकृष्ण और अर्जुन आपके प्रिय साधनमें लगे हुए हैं और उन दोनोंके प्रिय कार्यमें आप मुझे तत्पर जानिये ॥ ८ ॥

तवाज्ञां शिरसा गृह्य पाण्डवार्थमहं प्रभो।
भित्त्वेदं दुर्भिदं सैन्यं प्रयास्ये नरपुङ्गव ॥ ९ ॥

'प्रभो! नरश्रेष्ठ! मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके पाण्डुनन्दन अर्जुनके लिये इस दुर्भेद्य सैन्यव्यूहका भेदनकर उनके पास जाऊँगा ॥ ९ ॥

द्रोणानीकं विशाम्येष क्रुद्धो झष इवार्णवम्।
तत्र यास्यामि यत्रासौ राजन् राजा जयद्रथः ॥ १० ॥

'राजन्! जैसे महामत्स्य महासागरमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार मैं भी कुपित होकर द्रोणाचार्यकी सेनामें घुसता हूँ। मैं वहीं जाऊँगा, जहाँ राजा जयद्रथ है ॥ १० ॥

यत्र सेनां समाश्रित्य भीतस्तिष्ठति पाण्डवात्।
गुप्तो रथवरश्रेष्ठैर्द्रौणिकर्णकृपादिभिः ॥ ११ ॥

'पाण्डुनन्दन अर्जुनसे भयभीत हो अपनी सेनाका आश्रय लेकर जयद्रथ जहाँ अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्य आदि श्रेष्ठ महारथियोंसे सुरक्षित होकर खड़ा है, वहीं मुझे पहुँचना है ॥ ११ ॥

इतस्त्रियोजनं मन्ये तमध्वानं विशाम्पते।
यत्र तिष्ठति पार्थोऽसौ जयद्रथवधोद्यतः ॥ १२ ॥

'प्रजापालक नरेश! इस समय जहाँ जयद्रथ-वधके लिये उद्यत हुए अर्जुन खड़े हैं, उस स्थानको मैं यहाँसे तीन योजन दूर मानता हूँ ॥ १२ ॥

त्रियोजनगतस्यापि तस्य यास्याम्यहं पदम्।
आसैन्धववधाद् राजन् सुदृढेनान्तरात्मना ॥ १३ ॥

'राजन्! अर्जुनके तीन योजन दूर चले जानेपर भी मैं जयद्रथ-वधके पहले ही सुदृढ़ हृदयसे अर्जुनके स्थानपर पहुँच जाऊँगा ॥ १३ ॥

अनादिष्टस्तु गुरुणा को नु युध्येत मानवः।
आदिष्टस्तु यथा राजन् को न युध्येत मादृशः ॥ १४ ॥

'नरेश्वर! गुरुकी आज्ञा प्राप्त हुए बिना कौन मनुष्य युद्ध करेगा और गुरुकी आज्ञा मिल जानेपर मेरे-जैसा कौन वीर युद्ध नहीं करेगा? ॥ १४ ॥

अभिजानामि तं देशं यत्र यास्याम्यहं प्रभो।
हलशक्तिगदाप्रासचर्मखड्गर्ष्टितोमरम् ॥ १५ ॥
इष्वस्त्रवरसम्बाधं क्षोभयिष्ये बलार्णवम्।

'प्रभो! मुझे जहाँ जाना है, उस स्थानको मैं जानता हूँ। वह हल, शक्ति, गदा, प्रास, ढाल, तलवार, ऋष्टि और तोमरोंसे भरा है। श्रेष्ठ धनुष-बाणोंसे परिपूर्ण शत्रु-सैन्यरूपी महासागरको मैं मथ डालूँगा ॥ १५½ ॥

यदेतत् कुञ्जरानीकं साहस्रमनुपश्यसि ॥ १६ ॥
कुलमाञ्जनकं नाम यत्रैते वीर्यशालिनः।
आस्थिता बहुभिर्म्लेच्छैर्युद्धशौण्डैः प्रहारिभिः ॥ १७ ॥

'महाराज! यह जो आप हजारों हाथियोंकी सेना देखते हैं, इसका नाम है आञ्जनककुल। इसमें पराक्रमशाली गजराज खड़े हैं, जिनके ऊपर प्रहारकुशल और युद्धनिपुण बहुत-से म्लेच्छ योद्धा सवार हैं ॥ १६-१७ ॥

नागा मेघनिभा राजन् क्षरन्त इव तोयदाः।
नैते जातु निवर्तेरन् प्रेषिता हस्तिसादिभिः ॥ १८ ॥
अन्यत्र हि वधादेषां नास्ति राजन् पराजयः।

'राजन्! ये हाथी मेघोंकी घटाके समान दिखायी देते हैं और पानी बरसानेवाले बादलोंके समान मदकी वर्षा करते हैं। हाथीसवारोंके हाँकनेपर ये कभी युद्धसे पीछे नहीं हटते हैं। महाराज! वधके अतिरिक्त और किसी उपायसे इनकी पराजय नहीं हो सकती ॥ १८½ ॥

अथ यान् रथिनो राजन् सहस्रमनुपश्यसि ॥ १९ ॥
एते रुक्मरथा नाम राजपुत्रा महारथाः ।
रथेष्वस्त्रेषु निपुणा नागेषु च विशाम्पते ॥ २० ॥

'राजन्! आप जिन सहस्रों रथियोंको देख रहे हैं, ये रुक्मरथ नामवाले महारथी राजकुमार हैं। प्रजानाथ! ये रथों, अस्त्रों और हाथियोंके संचालनमें भी निपुण हैं॥१९-२०॥

धनुर्वेदे गताः पारं मुष्टियुद्धे च कोविदाः ।
गदायुद्धविशेषज्ञा नियुद्धकुशलास्तथा ॥ २१ ॥

'ये सब-के-सब धनुर्वेदके पारंगत विद्वान् हैं। मुष्टि-युद्धमें भी निपुण हैं, गदायुद्धके विशेषज्ञ हैं और मल्लयुद्धमें भी कुशल हैं ॥ २१ ॥

खड्गप्रहरणे युक्ताः सम्पाते चासिचर्मणोः ।
शूराश्च कृतविद्याश्च स्पर्धन्ते च परस्परम् ॥ २२ ॥

'तलवार चलानेका भी इन्हें अच्छा अभ्यास है। ये ढाल, तलवार लेकर विचरनेमें समर्थ हैं। शूर और अस्त्र-शस्त्रोंके विद्वान् होनेके साथ ही परस्पर स्पर्धा रखते हैं ॥

नित्यं हि समरे राजन् विजिगीषन्ति मानवान् ।
कर्णेन विहिता राजन् दुःशासनमनुव्रताः ॥ २३ ॥

'नरेश्वर! ये सदा समरभूमिमें मनुष्योंको जीतनेकी इच्छा रखते हैं। महाराज! कर्णने इन्हें दुःशासनका अनुगामी बना रक्खा है ॥ २३ ॥

एतांस्तु वासुदेवोऽपि रथोदारान् प्रशंसति ।
सततं प्रियकामाश्च कर्णस्यैते वशे स्थिताः ॥ २४ ॥

'भगवान् श्रीकृष्ण भी इन श्रेष्ठ महारथियोंकी प्रशंसा करते हैं, ये सब-के-सब कर्णके वशमें स्थित हैं और सदा उसका प्रिय करनेकी अभिलाषा रखते हैं ॥ २४ ॥

तस्यैव वचनाद् राजन् निवृत्ताः श्वेतवाहनात् ।
ते न क्लान्ता न च श्रान्ता दृढावरणकार्मुकाः ॥ २५ ॥

'राजन्! कर्णके ही कहनेसे ये अर्जुनकी ओरसे इधर लौट आये हैं। इनके कवच और धनुष अत्यन्त सुदृढ़ हैं। वे न तो थके हैं और न पीड़ित ही हुए हैं ॥ २५ ॥

मदर्थेऽधिष्ठिता नूनं धार्तराष्ट्रस्य शासनात् ।
एतान् प्रमथ्य संग्रामे प्रियार्थं तव कौरव ॥ २६ ॥
प्रयास्यामि ततः पश्चात् पदवीं सव्यसाचिनः ।

'दुर्योधनके आदेशसे ये निश्चय ही मुझसे युद्ध करनेके लिये खड़े हैं। कुरुनन्दन! मैं आपका प्रिय करनेके लिये इन सबको संग्राममें मथकर सव्यसाची अर्जुनके मार्गपर जाऊँगा॥

यांस्त्वेतानपरान् राजन् नागान् सप्त शतानिमान् ॥ २७ ॥
प्रेक्षसे वर्मसंछन्नान् किरातैः समधिष्ठितान् ।
किरातराजो यान् प्रादाद् द्विरदान् सव्यसाचिनः ॥ २८ ॥
स्वलंकृतांस्तदा प्रेष्यानिच्छञ्जीवितमात्मनः ।

'महाराज! जिन दूसरे इन सात सौ हाथियोंको आप देख रहे हैं, जो कवचसे आच्छादित हैं और जिनपर किरात योद्धा चढ़े हुए हैं, ये वे ही हाथी हैं, जिन्हें दिग्विजयके समय अपने प्राण बचानेकी इच्छा रखकर किरातराजने सव्यसाची अर्जुनको भेंट किया था। ये सजे-सजाये हाथी उन दिनों आपके सेवक थे ॥ २७-२८½ ॥

आसन्नेते पुरा राजंस्तव कर्मकरा दृढम् ॥ २९ ॥
त्वामेवाद्य युयुत्सन्ते पश्य कालस्य पर्ययम् ।

'महाराज! यह कालचक्रका परिवर्तन तो देखिये—जो पूर्वकालमें दृढ़तापूर्वक आपकी सेवा करनेवाले थे, वे आज आपसे ही युद्ध करना चाहते हैं ॥ २९½ ॥

एषामेते महामात्राः किराता युद्धदुर्मदाः ॥ ३० ॥
हस्तिशिक्षाविदश्चैव सर्वे चैवाग्नियोनयः ।
एते विनिर्जिताः संख्ये संग्रामे सव्यसाचिना ॥ ३१ ॥

'ये रणदुर्मद किरात इन हाथियोंके महावत और इन्हें शिक्षा देनेमें कुशल हैं। ये सब-के-सब अग्निसे उत्पन्न हुए हैं। सव्यसाची अर्जुनने इन सबको संग्रामभूमिमें पराजित कर दिया था ॥ ३०-३१ ॥

मदर्थमद्य संयत्ता दुर्योधनवशानुगाः ।
एतान् हत्वा शरै राजन् किरातान् युद्धदुर्मदान् ॥ ३२ ॥
सैन्धवस्य वधे यत्तमनुयास्यामि पाण्डवम् ।

'राजन्! आज दुर्योधनके वशीभूत होकर ये मेरे साथ युद्ध करनेको तैयार खड़े हैं। इन रण-दुर्मद किरातोंका अपने बाणोंद्वारा संहार करके मैं सिंधुराजके वधके प्रयत्नमें लगे हुए पाण्डुनन्दन अर्जुनके पास जाऊँगा ॥ ३२½ ॥

ये त्वेते सुमहानागा अञ्जनस्य कुलोद्भवाः ॥ ३३ ॥
कर्कशाश्च विनीताश्च प्रभिन्नकरटामुखाः ।
जाम्बूनदमयैः सर्वे वर्मभिः सुविभूषिताः ॥ ३४ ॥
लब्धलक्ष्या रणे राजन्नैरावणसमा युधि ।
उत्तरात् पर्वतादेते तीक्ष्णैर्दस्युभिरास्थिताः ॥ ३५ ॥

'ये जो बड़े-बड़े गजराज दृष्टिगोचर हो रहे हैं, ये अञ्जन-नामक दिग्गजके कुलमें उत्पन्न हुए हैं*। इनका स्वभाव

---

* अञ्जनके कुलमें उत्पन्न हुए हाथियोंका लक्षण इस प्रकार बतलाया गया है—

स्निग्धनीलाम्बुदप्रख्या बलिनो विपुलैः करैः ।
सुविभक्तमहाशीर्षा करिणोऽञ्जनवंशजाः ॥

स्निग्ध एवं नील-वर्णके मेघोंकी घटाके समान काले,

बड़ा ही कठोर है। इन्हें युद्धकी अच्छी शिक्षा मिली है। इनके गण्डस्थल और मुखसे मदकी धारा बहती रहती है। वे सब-के-सब सुवर्णमय कवचोंसे विभूषित हैं। राजन्! ये पहले भी युद्धस्थलमें अपने लक्ष्यपर विजय पा चुके हैं और समराङ्गणमें ऐरावतके समान पराक्रम प्रकट करते हैं। उत्तर पर्वत (हिमाचल-प्रदेश) से आये हुए तीखे स्वभाववाले लुटेरे और डाकू इन हाथियोंपर सवार हैं॥ ३३—३५॥

कर्कशैः प्रवरैर्योधैः कार्ष्णायसतनुच्छदैः।
सन्ति गोयोनयश्चात्र सन्ति वानरयोनयः॥ ३६॥
अनेकयोनयश्चान्ये तथा मानुषयोनयः।

'वे कर्कश स्वभाववाले तथा श्रेष्ठ योद्धा हैं। उन्होंने काले लोहेके बने हुए कवच धारण कर रक्खे हैं। उनमेंसे बहुत-से दस्यु गायोंके पेटसे उत्पन्न हुए हैं। कितने ही बंदरियोंकी संतानें हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जिनमें अनेक योनियोंका सम्मिश्रण है तथा कितने ही मानव-संतान भी हैं॥

अनीकं समवेतानां धूम्रवर्णमुदीर्यते॥ ३७॥
म्लेच्छानां पापकर्तॄणां हिमदुर्गनिवासिनाम्।

'यहाँ एकत्र हुए हिमदुर्गनिवासी पापाचारी म्लेच्छोंकी यह सेना धूएँके समान काली प्रतीत होती है॥ ३७½॥

एतद् दुर्योधनो लब्ध्वा समग्रं राजमण्डलम्॥ ३८॥
कृपं च सौमदत्तिं च द्रोणं च रथिनां वरम्।
सिन्धुराजं तथा कर्णमवमन्यत पाण्डवान्॥ ३९॥
कृतार्थमथ चात्मानं मन्यते कालचोदितः।

'कालसे प्रेरित हुआ दुर्योधन इन समस्त राजाओंके समुदायको तथा रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भूरिश्रवा, जयद्रथ और कर्णको पाकर पाण्डवोंका अपमान करता है तथा अपने-आपको कृतार्थ मान रहा है॥ ३८—३९½॥

ते तु सर्वेऽद्य सम्प्राप्ता मम नाराचगोचरम्॥ ४०॥
न विमोक्ष्यन्ति कौन्तेय यद्यपि स्युर्मनोजवाः।

'कुन्तीनन्दन! वे सब लोग आज मेरे नाराचोंके लक्ष्य बने हुए हैं। वे मनके समान वेगशाली हों तो भी मेरे हाथोंसे छूट नहीं सकेंगे॥ ४०½॥

तेन सम्भाविता नित्यं परवीर्योपजीविना॥ ४१॥
विनाशमुपयास्यन्ति मच्छरौघनिपीडिताः।

'दूसरोंके बलपर जीनेवाले दुर्योधनने इन सब लोगोंका सदा आदरपूर्वक भरण-पोषण किया है; परंतु ये मेरे बाण-समूहोंसे पीड़ित होकर आज विनष्ट हो जायँगे॥ ४१½॥

ये त्वेते रथिनो राजन् दृश्यन्ते काञ्चनध्वजाः॥ ४२॥
एते दुर्वारणा नाम काम्बोजा यदि ते श्रुताः।

बलवान्, विशाल शुण्डदण्डसे सुशोभित तथा सुन्दर विभागयुक्त विशाल मस्तकवाले हाथी अंजनकुलकी संतानें हैं।

'राजन्! ये जो सोनेकी ध्वजावाले रथी दिखायी देते हैं, ये दुर्वारण नामवाले काम्बोज सैनिक हैं। आपने इनका नाम सुना होगा॥ ४२½॥

शूराश्च कृतविद्याश्च धनुर्वेदे च निष्ठिताः॥ ४३॥
संहताश्च भृशं ह्येते अन्योन्यस्य हितैषिणः।

'ये शूर, विद्वान् तथा धनुर्वेदमें परिनिष्ठित हैं। इनमें परस्पर बड़ा संगठन है। ये एक दूसरेका हित चाहनेवाले हैं॥

अक्षौहिण्यश्च संरब्धा धार्तराष्ट्रस्य भारत॥ ४४॥
यत्ता मदर्थे तिष्ठन्ति कुरुवीराभिरक्षिताः।
अप्रमत्ता महाराज मामेव प्रत्युपस्थिताः॥ ४५॥

'भरतनन्दन! दुर्योधनकी क्रोधमें भरी हुई ये कई अक्षौहिणी सेनाएँ कौरववीरोंसे सुरक्षित हो मेरे लिये तैयार खड़ी हैं। महाराज! ये सब सावधान होकर मुझपर ही आक्रमण करनेवाली हैं॥ ४४—४५॥

तानहं प्रमथिष्यामि तृणानीव हुताशनः।
तस्मात् सर्वानुपासंगान् सर्वोपकरणानि च॥ ४६॥
रथे कुर्वन्तु मे राजन् यथावद् रथकल्पकाः।

'परंतु जैसे आग तिनकोंको जला डालती है, उसी प्रकार मैं उन समस्त कौरव-सैनिकोंको मथ डालूँगा। अतः राजन्! रथको सुसज्जित करनेवाले लोग आज मेरे रथपर यथावत् रूपसे भरे हुए तरकसों तथा अन्य सब आवश्यक उपकरणोंको रख दें॥

अस्मिंस्तु किल सम्मर्दे ग्राह्यं विविधमायुधम्॥ ४७॥
यथोपदिष्टमाचार्यैः कार्यः पञ्चगुणो रथः।

'इस संग्राममें नाना प्रकारके आयुधोंका उसी प्रकार संग्रह कर लेना चाहिये, जैसा कि आचार्योंने उपदेश किया है। रथपर रक्खी जानेवाली युद्धसामग्री पहलेसे पाँचगुनी कर देनी चाहिये॥ ४७½॥

काम्बोजैर्हि समेष्यामि तीक्ष्णैराशीविषोपमैः॥ ४८॥
नानाशस्त्रसमावायैर्विविधायुधयोधिभिः।

'आज मैं विषधर सर्पके समान क्रूर स्वभाववाले उन काम्बोज-सैनिकोंके साथ युद्ध करूँगा, जो नाना प्रकारके शस्त्रसमुदायोंसे सम्पन्न और भाँति-भाँतिके आयुधोंद्वारा युद्ध करनेमें कुशल हैं॥ ४८½॥

किरातैश्च समेष्यामि विषकल्पैः प्रहारिभिः॥ ४९॥
लालितैः सततं राज्ञा दुर्योधनहितैषिभिः।

'दुर्योधनका हित चाहनेवाले और विषके समान घातक उन प्रहारकुशल किरात-योद्धाओंके साथ भी संग्राम करूँगा, जिनका राजा दुर्योधनने सदा ही लालन-पालन किया है॥

शकैश्चापि समेष्यामि शक्रतुल्यपराक्रमैः॥ ५०॥
अग्निकल्पैर्दुराधर्षैः प्रदीप्तैरिव पावकैः।

'प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी, दुर्धर्ष एवं इन्द्रके

समान पराक्रमी शकोंके साथ भी आज मैं भिड़ जाऊँगा ॥

तथान्यैर्विविधैर्योधैः कालकल्पैर्दुरासदैः ॥ ५१ ॥
समेष्यामि रणे राजन् बहुभिर्युद्धदुर्मदैः ।

'राजन्! इनके सिवा और भी जो नाना प्रकारके बहुसंख्यक युद्धदुर्मद, कालके तुल्य भयंकर तथा दुर्जय योद्धा हैं, रणक्षेत्रमें उन सबका सामना करूँगा ॥ ५१½ ॥

तस्माद् वै वाजिनो मुख्या विश्रान्ताः शुभलक्षणाः॥ ५२॥
उपावृत्ताश्च पीताश्च पुनर्युज्यन्तु मे रथे ।

'इसलिये उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न श्रेष्ठ घोड़े, जो विश्राम कर चुके हों, जिन्हें टहलाया गया हो और पानी भी पिला दिया गया हो, पुनः मेरे रथमें जोते जायँ' ॥ ५२½ ॥

संजय उवाच

तस्य सर्वानुपासंगान् सर्वोपकरणानि च ॥ ५३ ॥
रथे चास्थापयद् राजा शस्त्राणि विविधानि च ।

संजय कहते हैं—महाराज! तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने सात्यकिके रथपर भरे हुए सारे तरकसों, समस्त उपकरणों तथा भाँति-भाँतिके शस्त्रोंको रखवा दिया ॥ ५३½ ॥

ततस्तान् सर्वतो युक्तान् सदश्वांश्चतुरो जनाः॥ ५४ ॥
रसवत् पाययामासुः पानं मदसमीरणम् ।

तदनन्तर सब प्रकारसे सुशिक्षित उन चारों उत्तम घोड़ोंको सेवकोंने मदमत्त बना देनेवाला रसीला पेय पदार्थ पिलाया ॥ ५४½ ॥

पीतोपवृत्तान् स्नातांश्च जग्धान्नान् समलंकृतान् ॥५५॥
विनीतशल्यांस्तुरगांश्चतुरो हेममालिनः ।
तान् युक्तान् रुक्मवर्णाभान् विनीताञ्शीघ्रगामिनः॥५६॥
संहृष्टमनसोऽव्यग्रान् विधिवत्कल्पितान् रथे।
महाध्वजेन सिंहेन हेमकेसरमालिना ॥ ५७ ॥
संवृते केतकैर्हेमैर्मणिविद्रुमचित्रितैः ।
पाण्डुराभ्रप्रकाशाभिः पताकाभिरलंकृते ॥ ५८ ॥
हेमदण्डोच्छ्रितच्छत्रे बहुशस्त्रपरिच्छदे ।
योजयामास विधिवद्धेमभाण्डविभूषितान् ॥ ५९ ॥

जब वे पी चुके तो उन्हें टहलाया और नहलाया गया। उसके बाद दाना और चारा खिलाया गया। फिर उन्हें सब प्रकारसे सुसज्जित किया गया। उनके अङ्गोंमें गड़े हुए बाण पहले ही निकाल दिये गये थे। वे चारों घोड़े सोनेकी मालाओंसे विभूषित थे। उन योग्य अश्वोंकी कान्ति सुवर्णके समान थी। वे सुशिक्षित और शीघ्रगामी थे। उनके मनमें हर्ष और उत्साह था। तनिक भी व्यग्रता नहीं थी। उन्हें विधिपूर्वक सजाया गया था। स्वर्णमय अलङ्कारोंसे अलङ्कृत उन अश्वोंको सारथिने विधिपूर्वक रथमें जोता। वह रथ सुवर्णमय केशरोंसे सुशोभित सिंहके चिह्नवाले विशाल ध्वजसे सम्पन्न था। मणियों और मूँगोंसे चित्रित सोनेकी शलाकाओंसे शोभायमान एवं श्वेत पताकाओंसे अलंकृत था। उस रथके ऊपर स्वर्णमय दण्डसे विभूषित छत्र तना हुआ था तथा रथके भीतर नाना प्रकारके शस्त्र तथा अन्य आवश्यक सामान रक्खे गये थे ॥ ५५–५९ ॥

दारुकस्यानुजो भ्राता सूतस्तस्य प्रियः सखा ।
न्यवेदयद् रथं युक्तं वासवस्येव मातलिः ॥ ६० ॥

जैसे मातलि इन्द्रका सारथि और सखा भी है, उसी प्रकार दारुकका छोटा भाई सात्यकिका सारथि और प्रिय सखा था। उसने सात्यकिको यह सूचना दी कि रथ जोतकर तैयार है ॥ ६० ॥

ततः स्नातः शुचिर्भूत्वा कृतकौतुकमङ्गलः ।
स्नातकानां सहस्रस्य स्वर्णनिष्कानथो ददौ ॥ ६१ ॥

तदनन्तर सात्यकिने स्नान करके पवित्र हो यात्राकालिक मङ्गलकृत्य सम्पन्न करनेके पश्चात् एक सहस्र स्नातकोंको सोनेकी मुद्राएँ दान कीं ॥ ६१ ॥

आशीर्वादैः परिष्वक्तः सात्यकिः श्रीमतां वरः ।
ततः स मधुपर्कार्हः पीत्वा कैलातकं मधु ॥ ६२ ॥
लोहिताक्षो बभौ तत्र मदविह्वललोचनः ।
आलभ्य वीरकांस्यं च हर्षेण महतान्वितः ॥ ६३ ॥
द्विगुणीकृततेजा हि प्रज्वलन्निव पावकः ।
उत्सङ्गे धनुरादाय सशरं रथिनां वरः ॥ ६४ ॥
कृतस्वस्त्ययनो विप्रैः कवची समलंकृतः ।
लाजैर्गन्धैस्तथा माल्यैः कन्याभिश्चाभिनन्दितः ॥ ६५ ॥

ब्राह्मणोंके आशीर्वाद पाकर तेजस्वी पुरुषोंमें श्रेष्ठ एवं मधुपर्कके अधिकारी सात्यकिने कैलातक नामक मधुका पान किया। उसे पीते ही उनकी आँखें लाल हो गयीं। मदसे नेत्र चञ्चल हो उठे, फिर उन्होंने अत्यन्त हर्षमें भरकर वीरकांस्यपात्रका स्पर्श किया। उस समय प्रज्वलित अग्निके समान रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिका तेज दूना हो गया। उन्होंने बाणसहित धनुषको गोदमें लेकर ब्राह्मणोंके मुखसे स्वस्तिवाचनका कार्य सम्पन्न कराकर कवच एवं आभूषण धारण किये, फिर कुमारी कन्याओंने लावा, गन्ध तथा पुष्पमालाओंसे उनका पूजन एवं अभिनन्दन किया ॥ ६२–६५ ॥

युधिष्ठिरस्य चरणावभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
तेन मूर्धन्युपाघ्रात आरुरोह महारथम् ॥ ६६ ॥

इसके बाद सात्यकिने हाथ जोड़कर युधिष्ठिरके चरणोंमें प्रणाम किया और युधिष्ठिरने उनका मस्तक सूँघा। फिर वे उस विशाल रथपर आरूढ़ हो गये ॥ ६६ ॥

ततस्ते वाजिनो हृष्टाः सुपुष्टाः वातरंहसः ।
अजय्या जैत्रमूहुस्तं विकुर्वाणाः स्म सैन्धवाः ॥ ६७ ॥

तदनन्तर वे हृष्ट-पुष्ट वायुके समान वेगशाली एवं अजेय सिंधुदेशीय घोड़े मदमत्त हो उस विजयशील रथको लेकर चल दिये ॥ ६७ ॥

तथैव भीमसेनोऽपि धर्मराजेन पूजितः ।
प्रायात् सात्यकिना सार्धमभिवाद्य युधिष्ठिरम् ॥ ६८ ॥

इसी प्रकार धर्मराजसे सम्मानित भीमसेन भी युधिष्ठिरको प्रणाम करके सात्यकिके साथ चले ॥ ६८ ॥

तौ दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तौ तव सेनामरिंदमौ ।
संयत्तास्तावकाः सर्वे तस्थुर्द्रोणपुरोगमाः ॥ ६९ ॥

उन दोनों शत्रुदमन वीरोंको आपकी सेनामें प्रवेश करनेके लिये इच्छुक देख द्रोणाचार्य आदि आपके सारे सैनिक सावधान होकर खड़े हो गये ॥ ६९ ॥

संनद्धमनुगच्छन्तं दृष्ट्वा भीमं स सात्यकिः ।
अभिनन्द्याब्रवीद् वीरस्तदा हर्षकरं वचः ॥ ७० ॥

उस समय भीमसेनको कवच आदिसे सुसज्जित होकर अपने पीछे आते देख उनका अभिनन्दन करके वीर सात्यकिने उनसे यह हर्षवर्धक वचन कहा— ॥ ७० ॥

त्वं भीम रक्ष राजानमेतत् कार्यतमं हि ते ।
अहं भित्त्वा प्रवेक्ष्यामि कालपक्वमिदं बलम् ॥ ७१ ॥

'भीमसेन ! तुम राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो । यही तुम्हारे लिये सबसे महान् कार्य है । जिसे कालने राँधकर पका दिया है, इस कौरवसेनाको चीरकर मैं भीतर प्रवेश कर जाऊँगा ॥

आयत्यां च तदात्वे च श्रेयो राज्ञोऽभिरक्षणम् ।
जानीषे मम वीर्यं त्वं तव चाहमरिंदम ॥ ७२ ॥
तस्माद् भीम निवर्तस्व मम चेदिच्छसि प्रियम् ।

'शत्रुदमन वीर ! इस समय और भविष्यमें भी राजाकी रक्षा करना ही श्रेयस्कर है । तुम मेरा बल जानते हो और मैं तुम्हारा । अतः भीमसेन ! यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो लौट जाओ ॥ ७२½ ॥

तथोक्तः सात्यकिं प्राह व्रज त्वं कार्यसिद्धये ॥ ७३ ॥
अहं राज्ञः करिष्यामि रक्षां पुरुषसत्तम ।

सात्यकिके ऐसा कहनेपर भीमसेनने उनसे कहा—'अच्छा भैया ! तुम कार्यसिद्धिके लिये आगे बढ़ो । पुरुषप्रवर ! मैं राजाकी रक्षा करूँगा' ॥ ७३½ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच भीमसेनं स माधवः ॥ ७४ ॥
गच्छ गच्छ ध्रुवं पार्थ ध्रुवो हि विजयो मम ।

भीमसेनके ऐसा कहनेपर सात्यकिने उनसे कहा—'कुन्तीकुमार ! तुम जाओ । निश्चय ही लौट जाओ । मेरी विजय अवश्य होगी ॥ ७४½ ॥

यन्मे गुणानुरक्तश्च त्वमद्य वशमास्थितः ॥ ७५ ॥
निमित्तानि च धन्यानि यथा भीम वदन्ति माम् ।
निहते सैन्धवे पापे पाण्डवेन महात्मना ॥ ७६ ॥
परिष्वजिष्ये राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।

'भीमसेन ! तुम जो मेरे गुणोंमें अनुरक्त होकर मेरे वशमें हो गये हो तथा इस समय दिखायी देनेवाले शुभ शकुन मुझे जैसी बात बता रहे हैं, इससे जान पड़ता है कि महात्मा अर्जुनके द्वारा पापी जयद्रथके मारे जानेपर मैं निश्चय ही लौटकर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरका आलिङ्गन करूँगा' ॥ ७५-७६½ ॥

एतावदुक्त्वा भीमं तु विसृज्य च महायशाः ॥ ७७ ॥
सम्प्रैक्षत् तावकं सैन्यं व्याघ्रो मृगगणानिव ।

भीमसेनसे ऐसा कहकर उन्हें विदा करनेके पश्चात् महायशस्वी सात्यकिने आपकी सेनाकी ओर उसी प्रकार देखा, जैसे बाघ मृगोंके झुंडकी ओर देखता है ॥ ७७½ ॥

तं दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तं सैन्यं तव जनाधिप ॥ ७८ ॥
भूय एवाभवन्मूढं सुभृशं चाप्यकम्पत ।

नरेश्वर ! सात्यकिको अपने भीतर प्रवेश करनेके लिये उत्सुक देख आपकी सेनापर पुनः मोह छा गया और वह बारंबार काँपने लगी ॥ ७८½ ॥

ततः प्रयातः सहसा तव सैन्यं स सात्यकिः ॥ ७९ ॥
दिदृक्षुरर्जुनं राजन् धर्मराजस्य शासनात् ।

राजन् ! तदनन्तर धर्मराजकी आज्ञाके अनुसार अर्जुनसे मिलनेके लिये सात्यकि आपकी सेनाकी ओर वेगपूर्वक बढ़े ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका कौरवसेनामें प्रवेशविषयक एक सौ बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११२ ॥

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिका द्रोण और कृतवर्माके साथ युद्ध करते हुए काम्बोजोंकी सेनाके पास पहुँचना

संजय उवाच

प्रयाते तव सैन्यं तु युयुधाने युयुत्सया ।
धर्मराजो महाराज स्वेनानीकेन संवृतः ॥ १ ॥
प्रायाद् द्रोणरथं प्रेप्सुर्युयुधानस्य पृष्ठतः ।

संजय कहते हैं—महाराज ! जब युयुधान युद्धकी इच्छासे आपकी सेनाकी ओर बढ़े, उस समय अपने सैनिकोंसे घिरे हुए धर्मराज युधिष्ठिर द्रोणाचार्यके रथका सामना करनेके लिये उनके पीछे-पीछे गये ॥ १½ ॥

ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः समरदुर्मदः ॥ २ ॥
प्राक्रोशत् पाण्डवानीके वसुदानश्च पार्थिवः ।
आगच्छत प्रहरत द्रुतं विपरिधावत ॥ ३ ॥
यथा सुखेन गच्छेत सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
महारथा हि बहवो यतिष्यन्त्यस्य निर्जये ॥ ४ ॥

तदनन्तर समरभूमिमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न तथा राजा वसुदानने पाण्डवसेनामें पुकारकर कहा—'योद्धाओ ! आओ, दौड़ो और शीघ्रतापूर्वक प्रहार करो, जिससे रणदुर्मद सात्यकि सुखपूर्वक आगे जा सकें; क्योंकि बहुत-से कौरव महारथी इन्हें पराजित करनेका प्रयत्न करेंगे' ॥ २–४ ॥

इति ब्रुवन्तो वेगेन निपेतुस्ते महारथाः ।
वयं प्रतिजिगीषन्तस्तत्र तान् समभिद्रुताः ॥ ५ ॥

सेनापतिकी पूर्वोक्त बात दुहराते हुए सभी पाण्डव महारथी बड़े वेगसे वहाँ आ पहुँचे । उस समय हमलोगोंने भी उन्हें जीतनेकी अभिलाषासे उनपर धावा कर दिया ॥

(बाणशब्दरवान् कृत्वा विमिश्राञ्शङ्खनिस्वनैः।
युयुधानरथं दृष्ट्वा तावका अभिदुद्रुवुः ॥)

युयुधानके रथको देखकर आपके सैनिक शङ्खध्वनिसे मिश्रित बाणोंका शब्द प्रकट करते हुए उनके सामने दौड़े आये॥

ततः शब्दो महानासीद् युयुधानरथं प्रति ।
आकीर्यमाणा धावन्ती तव पुत्रस्य वाहिनी ॥ ६ ॥
सात्वतेन महाराज शतधाभिव्यशीर्यत ।

तदनन्तर सात्यकिके रथके समीप महान् कोलाहल मच गया । महाराज ! चारों ओरसे दौड़कर आती हुई आपके पुत्रकी सेना सात्यकिके बाणोंसे आच्छादित हो सैकड़ों टुकड़ियोंमें बँटकर तितर-बितर हो गयी ॥ ६½ ॥

तस्यां विदीर्यमाणायां शिनेः पौत्रो महारथः ॥ ७ ॥
सप्त वीरान् महेष्वासानग्रानीकेष्वपोथयत् ।

उस सेनाके छिन्न-भिन्न होते ही शिनिके महारथी पौत्रने सेनाके मुहानेपर खड़े हुए सात महाधनुर्धर वीरोंको मार गिराया ॥ ७½ ॥

अथान्यानपि राजेन्द्र नानाजनपदेश्वरान् ॥ ८ ॥
शरैरनलसंकाशैर्निन्ये वीरान् यमक्षयम् ।

राजेन्द्र ! तदनन्तर विभिन्न जनपदोंके स्वामी अन्यान्य वीर राजाओंको भी उन्होंने अपने अग्निसदृश बाणोंद्वारा यमलोक पहुँचा दिया ॥ ८½ ॥

शतमेकेन विव्याध शतेनैकं च पत्रिणाम् ॥ ९ ॥
द्विपारोहान् द्विपांश्चैव हयारोहान् हयांस्तथा ।
रथिनः साश्वसूतांश्च जघानेशः पशूनिव ॥ १० ॥

वे एक बाणसे सैकड़ों वीरोंको और सैकड़ों बाणोंसे एक-एक वीरको घायल करने लगे । जिस प्रकार भगवान् पशुपति पशुओंका संहार कर डालते हैं, उसी प्रकार सात्यकिने हाथीसवारों और हाथियोंको, घुड़सवारों और घोड़ोंको तथा घोड़े और सारथिसहित रथियोंको मार डाला ॥ ९-१० ॥

तं तथाद्भुतकर्माणं शरसम्पातवर्षिणम् ।
न केचनाभ्यधावन् वै सात्यकिं तव सैनिकाः ॥ ११ ॥

इस प्रकार बाणधाराकी वर्षा करनेवाले उस अद्भुत पराक्रमी सात्यकिके सामने जानेका साहस आपके कोई सैनिक न कर सके ॥ ११ ॥

ते भीता मृद्यमानाश्च प्रमृष्टा दीर्घबाहुना ।
आयोधनं जहुर्वीरा दृष्ट्वा तमतिमानिनम् ॥ १२ ॥

उस महाबाहु वीरने अपने बाणोंसे रौंदकर आपके सारे सिपाहियोंको मसल डाला । वे वीर सिपाही ऐसे डर गये कि उस अत्यन्त मानी शूरवीरको देखते ही युद्धका मैदान छोड़ देते थे॥

तमेकं बहुधापश्यन् मोहितास्तस्य तेजसा ।
रथैर्विमथितैश्चैव भग्ननीडैश्च मारिष ॥ १३ ॥
चक्रैर्विमथितैश्छत्रैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः ।
अनुकर्षैः पताकाभिः शिरस्त्राणैः सकाञ्चनैः ॥ १४ ॥
बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैश्च विशाम्पते ।
हस्तिहस्तोपमैश्चापि भुजङ्गाभोगसंनिभैः ॥ १५ ॥
ऊरुभिः पृथिवी च्छन्ना मनुजानां नराधिप ।

माननीय नरेश ! सारे कौरव सैनिक सात्यकिके तेजसे मोहित हो अकेले होनेपर भी उन्हें अनेक रूपोंमें देखने लगे । वहाँ बहुसंख्यक रथ चूर-चूर हो गये थे । उनकी बैठकें टूट-फूट गयी थीं । पहियोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे । छत्र और ध्वज छिन्न-भिन्न होकर धरतीपर पड़े थे । अनुकर्ष, पताका, शिरस्त्राण, सुवर्णभूषित अङ्गदयुक्त चन्दनचर्चित भुजाएँ, हाथीकी सूँड़ तथा सर्पोंके शरीरके समान मोटे-मोटे ऊरु सब ओर बिखरे पड़े थे । नरेश्वर ! मनुष्योंके विभिन्न अंगों तथा रथके पूर्वोक्त अवयवोंसे वहाँकी भूमि आच्छादित हो गयी थी॥

शशाङ्कसंनिभैश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ १६ ॥
पतितैर्ऋषभाक्षाणां सा बभावति मेदिनी ।

वृषभके समान बड़े-बड़े नेत्रोंवाले वीरोंके गिरे हुए मनोहर कुण्डलमण्डित चन्द्रमा-जैसे मुखोंसे वहाँकी भूमि अत्यन्त शोभा पा रही थी ॥ १६½ ॥

गजैश्च बहुधा छिन्नैः शयानैः पर्वतोपमैः ॥ १७ ॥
रराजातिभृशं भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः ।

अनेकों टुकड़ोंमें कटकर धराशायी हुए पर्वताकार गजराजोंसे वहाँकी भूमि इस प्रकार अत्यन्त शोभासम्पन्न हो रही थी, मानो वहाँ बहुत-से पर्वत बिखरे हुए हों ॥

तपनीयमयैर्योक्त्रैर्मुक्ताजालविभूषितैः ॥ १८ ॥
उरश्छदैर्विचित्रैश्च व्यशोभन्त तुरङ्गमाः ।
गतसत्त्वा महीं प्राप्य प्रमृष्टा दीर्घबाहुना ॥ १९ ॥

कितने ही घोड़े सुनहरी रस्सियों तथा मोतीकी जालियोंसे विभूषित विचित्र आच्छादन वस्त्रोंसे विशेष शोभायमान हो रहे थे । महाबाहु सात्यकिके द्वारा रौंदे जाकर वे धरतीपर पड़े थे और उनके प्राण-पखेरू उड़ गये ॥ १८-१९ ॥

नानाविधानि सैन्यानि तव हत्वा तु सात्वतः ।
प्रविष्टस्तावकं सैन्यं द्रावयित्वा चमूं भृशम् ॥ २० ॥

इस प्रकार आपकी नाना प्रकारकी सेनाओंका संहार करके तथा बहुत-से सैनिकोंको भगाकर सात्यकि आपकी सेनाके भीतर घुस गये ॥ २० ॥

ततस्तेनैव मार्गेण येन यातो धनंजयः ।
इयेष सात्यकिर्गन्तुं ततो द्रोणेन वारितः ॥ २१ ॥

तदनन्तर जिस मार्गसे अर्जुन गये, उसीसे सात्यकिने भी जानेका विचार किया; परंतु द्रोणाचार्यने उन्हें रोक दिया॥

भारद्वाजं समासाद्य युयुधानश्च सात्यकिः ।
न न्यवर्तत संक्रुद्धो वेलामिव जलाशयः ॥ २२ ॥

अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए सत्यकनन्दन युयुधान द्रोणाचार्यके पास पहुँचकर रुक तो गये; परंतु पीछे नहीं लौटे । जैसे क्षुब्ध जलाशय अपनी तटभूमितक पहुँचकर फिर पीछे नहीं लौटता है ॥ २२ ॥

निवार्य तु रणे द्रोणो युयुधानं महारथम् ।
विव्याध निशितैर्बाणैः पञ्चभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २३ ॥

द्रोणाचार्यने रणक्षेत्रमें महारथी युयुधानको रोककर मर्मस्थलको विदीर्ण कर देनेवाले पाँच पैने बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया ॥ २३ ॥

सात्यकिस्तु रणे द्रोणं राजन् विव्याध सप्तभिः ।
हेमपुङ्खैः शिलाधौतैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २४ ॥

राजन् ! तब सात्यकिने भी समराङ्गणमें शानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पाँखवाले तथा कंक और मोरकी पाँखोंसे संयुक्त हुए सात बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको क्षत-विक्षत कर डाला ॥ २४ ॥

तं षड्भिः सायकैर्द्रोणः साश्वयन्तारमार्दयत् ।
स तं न ममृषे द्रोणं युयुधानो महारथः ॥ २५ ॥

फिर द्रोणने छः बाण मारकर घोड़ों और सारथिसहित सात्यकिको पीड़ित कर दिया । द्रोणाचार्यके इस पराक्रमको महारथी युयुधान सहन न कर सके ॥ २५ ॥

सिंहनादं ततः कृत्वा द्रोणं विव्याध सात्यकिः ।
दशभिः सायकैश्चान्यैः षड्भिरष्टाभिरेव च ॥ २६ ॥

उन्होंने सिंहनाद करके लगातार दस, छः और आठ बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको गहरी चोट पहुँचायी ॥ २६ ॥

युयुधानः पुनर्द्रोणं विव्याध दशभिः शरैः ।
एकेन सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ २७ ॥
ध्वजमेकेन बाणेन विव्याध युधि मारिष ।

माननीय नरेश ! तदनन्तर युयुधानने पुनः दस बाण मारकर द्रोणाचार्यको घायल कर दिया । फिर एक बाणसे उनके सारथिको, चारसे चारों घोड़ोंको और एक बाणसे उनकी ध्वजाको युद्धस्थलमें बींध डाला ॥ २७½ ॥

तं द्रोणः साश्वयन्तारं सरथध्वजमाशुगैः ॥ २८ ॥
त्वरन् प्राच्छादयद् बाणैः शलभानामिव व्रजैः ।

इसके बाद द्रोणाचार्यने उतावले होकर टिड्डीदलोंके समान अपने शीघ्रगामी बाणोंद्वारा घोड़े, सारथि, रथ और ध्वजसहित सात्यकिको आच्छादित कर दिया ॥ २८½ ॥

तथैव युयुधानोऽपि द्रोणं बहुभिराशुगैः ॥ २९ ॥
आच्छादयदसम्भ्रान्तस्ततो द्रोण उवाच ह ।

इसी प्रकार सात्यकिने भी बिना किसी घबराहटके बहुत-से शीघ्रगामी बाणोंकी वर्षा करके द्रोणाचार्यको ढक दिया । तब द्रोणाचार्य बोले—॥ २९½ ॥

तवाचार्यो रणं हित्वा गतः कापुरुषो यथा ॥ ३० ॥
युध्यमानं च मां हित्वा प्रदक्षिणमवर्तत ।
त्वं हि मे युध्यतो नाद्य जीवन् यास्यसि माधव ॥ ३१ ॥
यदि मां त्वं रणे हित्वा न यास्याचार्यवद् द्रुतम् ।

'माधव ! तुम्हारे आचार्य अर्जुन तो कायरके समान युद्धका मैदान छोड़कर चले गये हैं । मैं युद्ध कर रहा था तो भी मुझे छोड़कर मेरी परिक्रमा करते हुए चल दिये । तुम भी अपने आचार्यके समान तुरंत ही समराङ्गणमें मुझे छोड़कर चले नहीं जाओगे तो युद्धमें तत्पर रहते हुए मेरे हाथसे आज जीवित बचकर नहीं जा सकोगे' ॥ ३०-३१½ ॥

सात्यकिरुवाच

धनंजयस्य पदवीं धर्मराजस्य शासनात् ॥ ३२ ॥
गच्छामि स्वस्ति ते ब्रह्मन् न मे कालात्ययो भवेत् ।
आचार्यानुगतो मार्गः शिष्यैरन्वास्यते सदा ॥ ३३ ॥
तस्मादेव व्रजाम्याशु यथा मे स गुरुर्गतः ।

सात्यकिने कहा—ब्रह्मन् ! आपका कल्याण हो । मैं धर्मराजकी आज्ञासे धनंजयके मार्गपर जा रहा हूँ । आप ऐसा करें, जिससे मुझे विलम्ब न हो । शिष्यगण तो सदासे ही अपने आचार्यके मार्गका ही अनुसरण करते आये हैं । अतः जिस प्रकार मेरे गुरुजी गये हैं, उसी प्रकार मैं भी शीघ्र ही चला जाता हूँ ॥ ३२-३३½ ॥

संजय उवाच

एतावदुक्त्वा शैनेय आचार्यं परिवर्जयन् ॥ ३४ ॥
प्रयातः सहसा राजन् सारथिं चेदमब्रवीत् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसा कहकर सात्यकि सहसा द्रोणाचार्यको छोड़कर चल दिये और सारथिसे इस प्रकार बोले—॥ ३४½ ॥

द्रोणः करिष्यते यत्नं सर्वथा मम वारणे ॥ ३५ ॥
यत्तो याहि रणे सूत शृणु चेदं वचः परम् ।

'सूत ! द्रोणाचार्य मुझे रोकनेके लिये सब प्रकारसे प्रयत्न करेंगे, अतः तुम रणक्षेत्रमें सावधान होकर चलो और मेरी यह दूसरी बात भी सुन लो ॥ ३५½ ॥

एतदालोक्यते सैन्यमावन्त्यानां महाप्रभम् ॥ ३६ ॥
अस्यानन्तरतस्त्वेतद् दाक्षिणात्यं महद् बलम् ।
तदनन्तरमेतच्च बाह्लिकानां महद् बलम् ॥ ३७ ॥

'यह अवन्तिनिवासियोंकी अत्यन्त तेजस्विनी सेना दिखायी देती है । इसके बाद यह दाक्षिणात्योंकी विशाल सेना है । उसके पश्चात् यह बाह्लिकोंकी विशाल वाहिनी है ॥

बाह्लिकाभ्याशतो युक्तं कर्णस्य च महद् बलम् ।
अन्योन्येन हि सैन्यानि भिन्नान्येतानि सारथे ॥ ३८ ॥

'बाह्लिकोंके पास ही उनसे जुड़ी हुई कर्णकी बड़ी भारी सेना खड़ी है । सारथे ! ये सारी सेनाएँ एक दूसरीसे भिन्न हैं॥

अन्योन्यं समुपाश्रित्य न त्यक्ष्यन्ति रणाजिरम् ।
एतदन्तरमासाद्य चोदयाश्वान् प्रहृष्टवत् ॥ ३९ ॥

'ये सब-की-सब एक दूसरीका सहारा लेकर युद्धके लिये डटी हुई हैं । ये कभी भी समराङ्गणका परित्याग नहीं करेंगी । तुम इन्हींके बीचमें होकर प्रसन्नतापूर्वक अपने घोड़ोंको आगे बढ़ाओ ॥ ३९ ॥

मध्यमं जवमास्थाय वह मामत्र सारथे ।
बाह्लिका यत्र दृश्यन्ते नानाप्रहरणोद्यताः ॥ ४० ॥

'सारथे ! मध्यम वेगका आश्रय लेकर तुम मुझे वहाँ ले चलो, जहाँ नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये युद्धके लिये उद्यत हुए बाह्लिकदेशीय सैनिक दिखायी देते हैं ॥ ४० ॥

दाक्षिणात्याश्च बहवः सूतपुत्रपुरोगमाः ।
हस्त्यश्वरथसम्बाधं यस्यानीकं विलोक्यते ॥ ४१ ॥
नानादेशसमुत्थैश्च पदातिभिरधिष्ठितम् ।

'जहाँ सूतपुत्र कर्णको आगे करके बहुत-से दाक्षिणात्य योद्धा खड़े हैं, हाथी, घोड़ों और रथोंसे भरी हुई जो वह सेना दृष्टिगोचर हो रही है, उसमें अनेक देशोंके पैदल सैनिक मौजूद हैं; तुम वहाँ भी मेरे रथको ले चलो' ॥ ४१½ ॥

एतावदुक्त्वा यन्तारं ब्राह्मणं परिवर्जयन् ॥ ४२ ॥
स व्यतीयाय यत्रोग्रं कर्णस्य च महद् बलम् ।

सारथिसे ऐसा कहकर सात्यकि ब्राह्मण द्रोणाचार्यको छोड़ते हुए सबको लाँघकर उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ कर्णकी भयंकर एवं विशाल सेना खड़ी थी ॥ ४२½ ॥

तं द्रोणोऽनुययौ क्रुद्धो विकिरन् विशिखान् बहून् ॥ ४३ ॥
युयुधानं महाभागं गच्छन्तमनिवर्तिनम् ।

युद्धसे पीछे न हटनेवाले महाभाग युयुधानको आगे बढ़ते देख द्रोणाचार्य कुपित हो उठे और वे बहुत-से बाणोंकी वर्षा करते हुए कुछ दूरतक उनके पीछे-पीछे दौड़े ॥ ४३½ ॥

कर्णस्य सैन्यं सुमहदभिहत्य शितैः शरैः ॥ ४४ ॥
प्राविशद् भारतीं सेनामपर्यन्तां च सात्यकिः ।

सात्यकि कर्णकी विशाल वाहिनीको अपने पैने बाणोंद्वारा घायल करके अपार कौरवी सेनामें घुस गये ॥ ४४½ ॥

प्रविष्टे युयुधाने तु सैनिकेषु द्रुतेषु च ॥ ४५ ॥
अमर्षी कृतवर्मा तु सात्यकिं पर्यवारयत् ।

सात्यकिके प्रवेश करते ही सारे कौरव-सैनिक भागने लगे । तब क्रोधमें भरे हुए कृतवर्माने उन्हें आ घेरा ॥ ४५½ ॥

तमापतन्तं विशिखैः षड्भिराहत्य सात्यकिः ॥ ४६ ॥
चतुर्भिश्चतुरोऽस्याश्वानाजघानाशु वीर्यवान् ।

उसे आते देख पराक्रमी सात्यकिने छः बाणोंद्वारा उसे चोट पहुँचाकर चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको शीघ्र ही घायल कर दिया ॥ ४६½ ॥

ततः पुनः षोडशभिर्नतपर्वभिराशुगैः ॥ ४७ ॥
सात्यकिः कृतवर्माणं प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ।

तदनन्तर पुनः झुकी हुई गाँठवाले सोलह बाण मारकर सात्यकिने कृतवर्माकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४७½ ॥

स ताड्यमानो विशिखैर्बहुभिस्तिग्मतेजनैः ॥ ४८ ॥
सात्वतेन महाराज कृतवर्मा न चक्षमे ।

महाराज ! सात्यकिके प्रचण्ड तेजवाले बहुसंख्यक बाणोंद्वारा घायल होनेपर कृतवर्मा सहन न कर सका ॥ ४८½ ॥

स वत्सदन्तं संधाय जिह्मगानलसंनिभम् ॥ ४९ ॥
आकृष्य राजन्नाकर्णाद् विव्याधोरसि सात्यकिम् ।

राजन् ! वक्रगतिसे चलनेवाले अग्निके समान तेजस्वी

वत्सदन्तनामक बाणको धनुषपर रखकर कृतवर्माने उसे कानतक खींचा और उसके द्वारा सात्यकिकी छातीमें प्रहार किया॥

स तस्य देहावरणं भित्त्वा देहं च सायकः ॥ ५० ॥
सपुङ्खपत्रः पृथिवीं विवेश रुधिरोक्षितः ।

वह बाण सात्यकिके शरीर और कवच दोनोंको विदीर्ण करके खूनसे लथपथ हो पङ्ख एवं पत्रसहित धरतीमें समा गया ॥

अथास्य बहुभिर्बाणैरच्छिनत् परमास्त्रवित् ॥ ५१ ॥
समार्गणगणं राजन् कृतवर्मा शरासनम् ।

राजन्! कृतवर्मा उत्तम अस्त्रोंका ज्ञाता है। उसने बहुत-से बाण चलाकर बाणसमूहोंसहित सात्यकिके शरासनको काट दिया ॥ ५१½ ॥

विव्याध च रणे राजन् सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ५२ ॥
दशभिर्विशिखैस्तीक्ष्णैरभिक्रुद्धः स्तनान्तरे ।

नरेश्वर! इसके बाद क्रोधमें भरे हुए कृतवर्माने सत्यपराक्रमी सात्यकिकी छातीमें पुनः दस पैने बाणोंद्वारा गहरा आघात किया ॥ ५२½ ॥

ततः प्रशीर्णे धनुषि शक्त्या शक्तिमतां वरः ॥ ५३ ॥
जघान दक्षिणं बाहुं सात्यकिः कृतवर्मणः ।

धनुष कट जानेपर शक्तिशाली शूरवीरोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने कृतवर्माकी दाहिनी भुजापर शक्तिद्वारा ही प्रहार किया ॥ ५३½ ॥

ततोऽन्यत् सुदृढं चापं पूर्णमायम्य सात्यकिः ॥ ५४ ॥
व्यसृजद् विशिखांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ।
सरथं कृतवर्माणं समन्तात् पर्यवारयत् ॥ ५५ ॥

तदनन्तर दूसरे सुदृढ़ धनुषको अच्छी तरह खींचकर सात्यकि तुरंत ही सैकड़ों और हजारों बाणोंकी वर्षा की और रथसहित कृतवर्माको सब ओरसे ढक दिया ॥ ५४-५५ ॥

छादयित्वा रणे राजन् हार्दिक्यं स तु सात्यकिः ।
अथास्य भल्लेन शिरः सारथेः समकृन्तत ॥ ५६ ॥

राजन्! रणक्षेत्रमें इस प्रकार कृतवर्माको आच्छादित करके सात्यकिने एक भल्लद्वारा उसके सारथिका सिर काट दिया ॥ ५६ ॥

स पपात हतः सूतो हार्दिक्यस्य महारथात् ।
ततस्ते यन्तृरहिताः प्राद्रवंस्तुरगा भृशम् ॥ ५७ ॥

उनके द्वारा मारा गया सारथि कृतवर्माके विशाल रथसे नीचे गिर पड़ा। फिर तो सारथिके बिना उसके घोड़े बड़े जोरसे भागने लगे ॥ ५७ ॥

अथ भोजस्तु सम्भ्रान्तो निगृह्य तुरगान् स्वयम् ।
तस्थौ वीरो धनुष्पाणिस्तत् सैन्यान्यभ्यपूजयन् ॥ ५८ ॥

इससे कृतवर्माको बड़ी घबराहट हुई; परंतु वह वीर स्वयं ही घोड़ोंको काबूमें करके हाथमें धनुष ले युद्धके लिये डट गया। उसके इस कर्मकी सभी सैनिकोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ५८ ॥

स मुहूर्तमिवाश्वस्य सदश्वान् समनोदयत् ।
व्यपेतभीरमित्राणामावहत् सुमहद् भयम् ॥ ५९ ॥

उसने थोड़ी ही देरमें आश्वस्त होकर अपने उत्तम घोड़ोंको आगे बढ़ाया तथा स्वयं निर्भय रहकर शत्रुओंके हृदयमें महान् भय उत्पन्न कर दिया ॥ ५९ ॥

सात्यकिश्चाभ्यगात् तस्मात् स तु भीममुपाद्रवत् ।
युयुधानोऽपि राजेन्द्र भोजानीकाद् विनिःसृतः ॥ ६० ॥
प्रययौ त्वरितस्तूर्णं काम्बोजानां महाचमूम् ।
स तत्र बहुभिः शूरैः संनिरुद्धो महारथैः ॥ ६१ ॥
न चचाल तदा राजन् सात्यकिः सत्यविक्रमः ।

राजेन्द्र! यहीं अवसर पाकर सात्यकि वहाँसे आगे निकल गये। तब कृतवर्माने भीमसेनपर धावा किया। कृतवर्माकी सेनासे निकलकर युयुधान तुरंत ही काम्बोजोंकी विशाल वाहिनीके पास आ पहुँचे। वहाँ बहुत-से शूरवीर महारथियोंने उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया। महाराज! तो भी उस समय सत्यपराक्रमी सात्यकि विचलित नहीं हुए ॥ ६०-६१½ ॥

संधाय च चमूं द्रोणो भोजे भारं निवेश्य च ॥ ६२ ॥
अभ्यधावद् रणे यत्तो युयुधानं युयुत्सया ।

द्रोणाचार्यने अपनी बिखरी हुई सेनाको एकत्र करके उसकी रक्षाका भार कृतवर्माको सौंपकर समराङ्गणमें सात्यकिके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे उद्यत हो उनके पीछे-पीछे दौड़े ॥ ६२½ ॥

तथा तमनुधावन्तं युयुधानस्य पृष्ठतः ॥ ६३ ॥
न्यवारयन्त संहृष्टाः पाण्डुसैन्ये बृहत्तमाः ।

इस प्रकार उन्हें युयुधानके पीछे दौड़ते देख पाण्डव-सेनाके प्रमुख वीर हर्षमें भरकर द्रोणाचार्यको रोकनेका प्रयत्न करने लगे ॥ ६३½ ॥

समासाद्य तु हार्दिक्यं रथानां प्रवरं रथम् ॥ ६४ ॥
पञ्चाला विगतोत्साहा भीमसेनपुरोगमाः ।

परंतु रथियोंमें श्रेष्ठ महारथी कृतवर्माके पास पहुँचकर भीमसेनको आगे करके आक्रमण करनेवाले पाञ्चालोंका उत्साह नष्ट हो गया ॥ ६४½ ॥

विक्रम्य वारिता राजन् वीरेण कृतवर्मणा ॥ ६५ ॥
यतमानांश्च तान् सर्वानीषद्विगतचेतसः ।

अभितस्तांञ्शरौघेण क्रान्तवाहानकारयत् ॥ ६६ ॥

राजन्! वीर कृतवर्माने पराक्रम करके उनको रोक दिया। वे सभी वीर कुछ-कुछ शिथिल एवं अचेत-से हो रहे थे, तो भी अपनी विजयके लिये प्रयत्नशील थे; परंतु कृतवर्माने सब ओरसे उनके ऊपर बाण-समूहोंकी वर्षा करके उनके वाहनोंको व्याकुल कर दिया ॥ ६५-६६ ॥

निगृहीतास्तु भोजेन भोजानीकेप्सवो रणे।
अतिष्ठन्नार्यवद् वीराः प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ ६७ ॥

कृतवर्माद्वारा रोके जानेपर वे पाण्डव वीर रणक्षेत्रमें महान् यशकी इच्छा करते हुए उसीकी सेनाके साथ युद्धकी अभिलाषा करके श्रेष्ठ पुरुषोंके समान डटकर खड़े हो गये ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिप्रवेशविषयक एक सौ तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ६८ श्लोक हैं)

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका विषादयुक्त वचन, संजयका धृतराष्ट्रको ही दोषी बताना, कृतवर्माका भीमसेन और शिखण्डीके साथ युद्ध तथा पाण्डवसेनाकी पराजय

धृतराष्ट्र उवाच

एवं बहुगुणं सैन्यमेवं प्रविचितं बलम्।
व्यूढमेवं यथान्यायमेवं बहु च संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय! मेरी सेना इस प्रकार अनेक गुणोंसे सम्पन्न है और इस तरह अधिक संख्यामें इसका संग्रह किया गया है। पाण्डवसेनाकी अपेक्षा यह प्रबल भी है। इसकी व्यूहरचना भी इस प्रकार शास्त्रीय विधिके अनुसार की जाती है और इस तरह बहुत-से योद्धाओंका समूह जुट गया है ॥ १ ॥

नित्यं पूजितमस्माभिरभिकामं च नः सदा।
प्रौढमत्यद्भुताकारं पुरस्ताद् दृष्टविक्रमम् ॥ २ ॥

हमलोगोंने सदा अपनी सेनाका आदर-सत्कार किया है तथा वह हमारे प्रति सदासे ही अनुरक्त भी है। हमारे सैनिक युद्धकी कलामें बढ़े-चढ़े हैं। हमारा सैन्य-समुदाय देखनेमें अद्भुत जान पड़ता है तथा इस सेनामें वे ही लोग चुन-चुनकर रक्खे गये हैं, जिनका पराक्रम पहलेसे ही देख लिया गया है ॥ २ ॥

नातिवृद्धमबालं च नाकृशं नातिपीवरम्।
लघुवृत्तायतप्रायं सारगात्रमनामयम् ॥ ३ ॥

इसमें न तो कोई अधिक बूढ़ा है, न बालक है, न अधिक दुबला है और न बहुत ही मोटा है। उनका शरीर हल्का, सुडौल तथा प्रायः लंबा है। शरीरका एक-एक अवयव सारवान् (सबल) तथा सभी सैनिक नीरोग एवं स्वस्थ हैं ॥ ३ ॥

आत्तसंनाहसंछन्नं बहुशस्त्रपरिच्छदम्।
शस्त्रग्रहणविद्यासु बह्वीषु परिनिष्ठितम् ॥ ४ ॥

इन सैनिकोंका शरीर बँधे हुए कवचसे आच्छादित है। इनके पास शस्त्र आदि आवश्यक सामग्रियोंकी बहुतायत है। ये सभी सैनिक शस्त्रग्रहणसम्बन्धी बहुत-सी विद्याओंमें प्रवीण हैं ॥ ४ ॥

आरोहे पर्यवस्कन्दे सरणे सान्तरप्लुते।
सम्यक्प्रहरणे याने व्यपयाने च कोविदम् ॥ ५ ॥

चढ़ने, उतरने, फैलने, कूद-कूदकर चलने, भली-भाँति प्रहार करने, युद्धके लिये जाने और अवसर देखकर पलायन करनेमें भी कुशल हैं ॥ ५ ॥

नागेष्वश्वेषु बहुशो रथेषु च परीक्षितम्।
परीक्ष्य च यथान्यायं वेतनेनोपपादितम् ॥ ६ ॥

हाथियों, घोड़ों तथा रथोंपर बैठकर युद्ध करनेकी कलामें सब लोगोंकी परीक्षा ली जा चुकी है और परीक्षा लेनेके पश्चात् उन्हें यथायोग्य वेतन दिया गया है ॥ ६ ॥

न गोष्ठ्या नोपकारेण न सम्बन्धनिमित्ततः।
नानाहूतं नाप्यभृतं मम सैन्यं बभूव ह ॥ ७ ॥

हमने किसीको भी गोष्ठीद्वारा बहकाकर, उपकार करके अथवा किसी सम्बन्धके कारण सेनामें भर्ती नहीं किया है। इनमें ऐसा भी कोई नहीं है, जिसे बुलाया न गया हो अथवा जिसे बेगारमें पकड़कर लाया गया हो। मेरी सारी सेनाकी यही स्थिति है ॥ ७ ॥

कुलीनार्यजनोपेतं तुष्टपुष्टमनुद्धतम्।
कृतमानोपचारं च यशस्वि च मनस्वि च ॥ ८ ॥

इसमें सभी लोग कुलीन, श्रेष्ठ, हृष्ट-पुष्ट, उद्दण्डताशून्य, पहलेसे सम्मानित, यशस्वी तथा मनस्वी हैं ॥ ८ ॥

सचिवैश्चापरैर्मुख्यैर्बहुभिः पुण्यकर्मभिः।
लोकपालोपमैस्तात पालितं नरसत्तमैः ॥ ९ ॥

तात ! हमारे मन्त्री तथा अन्य बहुतेरे प्रमुख कार्यकर्ता जो पुण्यात्मा, लोकपालोंके समान पराक्रमी और मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं, सदा इस सेनाका पालन करते आये हैं ॥ ९ ॥

बहुभिः पार्थिवैर्गुप्तमस्मत्प्रियचिकीर्षुभिः ।
अस्मानभिसृतैः कामात् सबलैः सपदानुगैः ॥ १० ॥

हमारा प्रिय करनेकी इच्छावाले तथा सेना और अनुचरों-सहित स्वेच्छासे ही हमारे पक्षमें आये हुए बहुत-से भूपालगण भी इसकी रक्षामें तत्पर रहते हैं ॥ १० ॥

महोदधिमिवापूर्णमापगाभिः समन्ततः ।
अपक्षैः पक्षिसंकाशै रथैरश्वैश्च संवृतम् ॥ ११ ॥

सम्पूर्ण दिशाओंसे बहकर आयी हुई नदियोंसे परिपूर्ण होनेवाले महासागरके समान हमारी यह सेना अगाध और अपार है । पक्षरहित एवं पक्षियोंके समान तीव्र वेगसे चलनेवाले रथों और घोड़ोंसे यह भरी हुई है ॥ ११ ॥

प्रभिन्नकरटैश्चैव द्विरदैरावृतं महत् ।
यदहन्यत मे सैन्यं किमन्यद् भागधेयतः ॥ १२ ॥

गण्डस्थलसे मद बहानेवाले गजराजोंद्वारा आवृत यह मेरी विशाल वाहिनी यदि शत्रुओंद्वारा मारी गयी है तो इसमें भाग्यके सिवा दूसरा क्या कारण हो सकता है ? ॥ १२ ॥

योधाक्षय्यजलं भीमं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ।
क्षेपण्यसिगदाशक्तिशरप्रासझषाकुलम् ॥ १३ ॥
ध्वजभूषणसम्बाधरत्नोपलसुसंचितम् ।
वाहनैरभिधावद्भिर्वायुवेगविकम्पितम् ॥ १४ ॥
द्रोणगम्भीरपातालं कृतवर्ममहाह्रदम् ।
जलसंधमहाग्राहं कर्णचन्द्रोदयोद्धतम् ॥ १५ ॥

संजय ! मेरी सेना भयंकर समुद्रके समान जान पड़ती है । योद्धा ही इसके अक्षय्य जल हैं, वाहन ही इसकी तरङ्गमालाएँ हैं, क्षेपणीय, खड्ग, गदा, शक्ति, बाण और प्रास आदि अस्त्र-शस्त्र इसमें मछलियोंके समान भरे हुए हैं । ध्वजा और आभूषणोंके समुदाय इसके भीतर रत्नोंके समान संचित हैं । दौड़ते हुए वाहन ही वायुके वेग हैं, जिनसे यह सैन्यसमुद्र कम्पित एवं क्षुब्ध-सा जान पड़ता है । द्रोणाचार्य ही इसकी पातालतक फैली हुई गहराई है । कृतवर्मा इसमें महान् ह्रदके समान है, जलसंध विशाल ग्राह है और कर्णरूपी चन्द्रमाके उदयसे यह सदा उद्वेलित होता रहता है ॥ १३–१५ ॥

गते सैन्यार्णवं भित्त्वा तरसा पाण्डवर्षभे ।
संजयैकरथेनैव युयुधाने च मामकम् ॥ १६ ॥
तत्र शेषं न पश्यामि प्रविष्टे सव्यसाचिनि ।
सात्वते च रथोदारे मम सैन्यस्य संजय ॥ १७ ॥

संजय ! ऐसे मेरे सैन्यरूपी महासागरका वेगपूर्वक भेदन करके जब पाण्डवश्रेष्ठ सव्यसाची अर्जुन तथा सात्वत-वंशी उदार महारथी युयुधान एकमात्र रथकी सहायतासे इसके भीतर घुस गये, तब मैं अपनी सेनाके शेष रहनेकी आशा नहीं देखता हूँ ॥ १६-१७ ॥

तौ तत्र समतिक्रान्तौ दृष्ट्वातीव तरस्विनौ ।
सिन्धुराजं तु सम्प्रेक्ष्य गाण्डीवस्येषुगोचरे ॥ १८ ॥
किं नु वा कुरवः कृत्यं विदधुः कालचोदिताः ।
दारुणैकायने काले कथं वा प्रतिपेदिरे ॥ १९ ॥

उन दोनों अत्यन्त वेगशाली वीरोंको वहाँ सबका उल्लङ्घन करके घुसे हुए देख तथा सिन्धुराज जयद्रथको गाण्डीवसे छूटे हुए बाणोंकी सीमामें उपस्थित पाकर काल-प्रेरित कौरवोंने वहाँ कौन-सा कार्य किया ? उस दारुण संहारके समय, जहाँ मृत्युके सिवा दूसरी कोई गति नहीं थी, किस प्रकार उन्होंने कर्तव्यका निश्चय किया ? ॥ १८-१९ ॥

ग्रस्तान् हि कौरवान् मन्ये मृत्युना तात संगतान् ।
विक्रमोऽपि रणे तेषां न तथा दृश्यते हि वै ॥ २० ॥

तात ! मैं युद्धस्थलमें एकत्र हुए कौरवोंको कालका ग्रास ही मानता हूँ; क्योंकि रणक्षेत्रमें उनका पराक्रम भी पहले-जैसा नहीं दिखायी देता है ॥ २० ॥

अक्षतौ संयुगे तत्र प्रविष्टौ कृष्णपाण्डवौ ।
न च वारयिता कश्चित् तयोरस्तीह संजय ॥ २१ ॥

संजय ! श्रीकृष्ण और अर्जुन बिना कोई क्षति उठाये युद्धस्थलमें मेरी सेनाके भीतर घुस गये; परंतु इसमें कोई भी वीर उन दोनोंको रोकनेवाला न निकला ॥ २१ ॥

भृताश्च बहवो योधाः परीक्ष्यैव महारथाः ।
वेतनेन यथायोगं प्रियवादेन चापरे ॥ २२ ॥

हमने दूसरे बहुत-से महारथी योद्धाओंकी परीक्षा करके ही उन्हें सेनामें भर्ती किया है और यथायोग्य वेतन देकर तथा प्रिय वचन बोलकर उनका सत्कार किया है ॥ २२ ॥

असत्कारभृतस्तात मम सैन्ये न विद्यते ।
कर्मणा ह्यनुरूपेण लभ्यते भक्तवेतनम् ॥ २३ ॥

तात ! मेरी सेनामें कोई भी ऐसा नहीं है, जिसे अनादर-पूर्वक रक्खा गया हो । सबको उनके कार्यके अनुरूप ही भोजन और वेतन प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

न चायोधोऽभवत् कश्चिन्मम सैन्ये तु संजय ।
अल्पदानभृतस्तात तथा चाभृतको नरः ॥ २४ ॥

तात संजय ! मेरी सेनामें ऐसा एक भी योद्धा नहीं रहा होगा, जिसे थोड़ा वेतन दिया जाता हो अथवा बिना वेतनके ही रक्खा गया हो ॥ २४ ॥

पूजितो हि यथाशक्त्या दानमानासनैर्मया ।
तथा पुत्रैश्च मे तात ज्ञातिभिश्च सबान्धवैः ॥ २५ ॥

तात ! मैंने, मेरे पुत्रोंने तथा कुटुम्बीजनों एवं बन्धु-बान्धवोंने भी सभी सैनिकोंका यथाशक्ति दान, मान और आसन आदि देकर सत्कार किया है ॥ २५ ॥

ते च प्राप्यैव संग्रामे निर्जिताः सव्यसाचिना ।
शैनेयेन परामृष्टाः किमन्यद् भागधेयतः ॥ २६ ॥

तथापि सव्यसाची अर्जुनने संग्रामभूमिमें पहुँचते ही उन सबको पराजित कर दिया है और सात्यकिने भी उन्हें कुचल डाला है। इसे भाग्यके सिवा और क्या कहा जा सकता है ? ॥ २६ ॥

रक्ष्यते यश्च संग्रामे ये च संजय रक्षिणः ।
एकः साधारणः पन्था रक्ष्यस्य सह रक्षिभिः ॥ २७ ॥

संजय ! संग्राममें जिसकी रक्षा की जाती है और जो लोग रक्षक हैं, उन रक्षकोंसहित रक्षणीय पुरुषके लिये एकमात्र साधारण मार्ग रह गया है पराजय ॥ २७ ॥

अर्जुनं समरे दृष्ट्वा सैन्धवस्याग्रतः स्थितम् ।
पुत्रो मम भृशं मूढः किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ २८ ॥

अर्जुनको समराङ्गणमें सिन्धुराजके सामने खड़ा देख अत्यन्त मोहग्रस्त हुए मेरे पुत्रने कौन-सा कर्तव्य निश्चित किया ? ॥ २८ ॥

सात्यकिं च रणे दृष्ट्वा प्रविशन्तमभीतवत् ।
किं नु दुर्योधनः कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥ २९ ॥

सात्यकिको रणक्षेत्रमें निर्भय-सा प्रवेश करते देख दुर्योधनने उस समयके लिये कौन-सा कर्तव्य उचित माना ?॥ २९ ॥

सर्वशस्त्रातिगौ सेनां प्रविष्टौ रथिसत्तमौ ।
दृष्ट्वा कां वै धृतिं युद्धे प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥ ३० ॥

सम्पूर्ण शस्त्रोंकी पहुँचसे परे होकर जब रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकि और अर्जुन मेरी सेनामें प्रविष्ट हो गये, तब उन्हें देखकर मेरे पुत्रोंने युद्धस्थलमें किस प्रकार धैर्य धारण किया?॥

दृष्ट्वा कृष्णं तु दाशार्हमर्जुनार्थे व्यवस्थितम् ।
शिनीनामृषभं चैव मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३१ ॥

मैं समझता हूँ कि अर्जुनके लिये रथपर बैठे हुए दशार्हनन्दन भगवान् श्रीकृष्णको तथा शिनिप्रवर सात्यकिको देखकर मेरे पुत्र शोकमग्न हो गये होंगे ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वा सेनां व्यतिक्रान्तां सात्वतेनार्जुनेन च ।
पलायमानांश्च कुरून् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३२ ॥

सात्यकि और अर्जुनको सेना लाँघकर जाते और कौरव-सैनिकोंको युद्धस्थलसे भागते देखकर मैं समझता हूँ कि मेरे पुत्र शोकमें डूब गये होंगे ॥ ३२ ॥

विद्रुतान् रथिनो दृष्ट्वा निरुत्साहान् द्विषज्जये ।
पलायनकृतोत्साहान् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३३ ॥

मेरे मनमें यह बात आती है कि अपने रथियोंको शत्रु-विजयकी ओरसे उत्साहशून्य होकर भागते और भागनेमें ही बहादुरी दिखाते देख मेरे पुत्र शोक कर रहे होंगे॥ ३३॥

शून्यान् कृतान् रथोपस्थान् सात्वतेनार्जुनेन च ।
हतांश्च योधान् संदृश्य मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३४ ॥

सात्यकि और अर्जुनने हमारी रथोंकी बैठकें सूनी कर दी हैं और योद्धाओंको मार गिराया है, यह देखकर मैं सोचता हूँ कि मेरे पुत्र बहुत दुखी हो गये होंगे ॥ ३४॥

व्यश्वनागरथान् दृष्ट्वा तत्र वीरान् सहस्रशः ।
धावमानान् रणे व्यग्रान् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः॥ ३५ ॥

सहस्रों वीरोंको वहाँ युद्धके मैदानमें घोड़े, रथ और हाथियोंसे रहित एवं उद्विग्न होकर भागते देखकर मैं मानता हूँ कि मेरे पुत्र शोकमग्न हो गये होंगे ॥ ३५ ॥

महानागान् विद्रवतो दृष्ट्वार्जुनशराहतान् ।
पतितान् पततश्चान्यान् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३६ ॥

अर्जुनके बाणोंसे आहत होकर बड़े-बड़े गजराजोंको भागते, गिरते और गिरे हुए देखकर मैं समझता हूँ कि मेरे पुत्र शोक कर रहे होंगे ॥ ३६ ॥

विहीनांश्च कृतानश्वान् विरथांश्च कृतान् नरान् ।
तत्र सात्यकिपार्थाभ्यां मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३७ ॥

सात्यकि और अर्जुनने घोड़ोंको सवारोंसे हीन और मनुष्योंको रथसे वञ्चित कर दिया है। यह देख-सुनकर मेरे पुत्र शोकमें डूब रहे होंगे ॥ ३७ ॥

हयौघान् निहतान् दृष्ट्वा द्रवमाणांस्ततस्ततः ।
रणे माधवपार्थाभ्यां मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३८ ॥

रणक्षेत्रमें सात्यकि और अर्जुनद्वारा मारे गये तथा इधर-उधर भागते हुए अश्वसमूहोंको देखकर मैं मानता हूँ कि मेरे पुत्र शोकदग्ध हो रहे होंगे ॥ ३८ ॥

पत्तिसंघान् रणे दृष्ट्वा धावमानांश्च सर्वशः ।
निराशा विजये सर्वे मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३९ ॥

पैदल सिपाहियोंको रणक्षेत्रमें सब ओर भागते देख मैं समझता हूँ, मेरे सभी पुत्र विजयसे निराश हो शोक कर रहे होंगे ॥ ३९ ॥

द्रोणस्य समतिक्रान्तावनीकमपराजितौ ।
क्षणेन दृष्ट्वा तौ वीरौ मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ४० ॥

मेरे मनमें यह बात आती है कि किसीसे पराजित न होनेवाले दोनों वीर अर्जुन और सात्यकिको क्षणभरमें द्रोणा-

चार्यकी सेनाका उल्लङ्घन करते देख मेरे पुत्र शोकाकुल हो गये होंगे ॥ ४० ॥

सम्मूढोऽस्मि भृशं तात श्रुत्वा कृष्णधनंजयौ ।
प्रविष्टौ मामकं सैन्यं सात्वतेन सहाच्युतौ ॥ ४१ ॥

तात ! अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुनके सात्यकिसहित अपनी सेनामें घुसनेका समाचार सुनकर मैं अत्यन्त मोहित हो रहा हूँ ॥ ४१ ॥

तस्मिन् प्रविष्टे पृतनां शिनीनां प्रवरे रथे ।
भोजानीकं व्यतिक्रान्ते किमकुर्वत कौरवाः ॥ ४२ ॥

शिनिप्रवर महारथी सात्यकि जब कृतवर्माकी सेनाको लाँघकर कौरवी सेनामें प्रविष्ट हो गये, तब कौरवोंने क्या किया ? ॥ ४२ ॥

तथा द्रोणेन समरे निगृहीतेषु पाण्डुषु ।
कथं युद्धमभूत् तत्र तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ४३ ॥

संजय ! जब द्रोणाचार्यने समर-भूमिमें पूर्वोक्त प्रकारसे पाण्डवोंको रोक दिया, तब वहाँ किस प्रकार युद्ध हुआ ? यह सब मुझे बताओ ॥ ४३ ॥

द्रोणो हि बलवाञ्श्रेष्ठः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
पञ्चालास्ते महेष्वासं प्रत्यविध्यन् कथं रणे ॥ ४४ ॥
बद्धवैरास्ततो द्रोणे धनंजयजयैषिणः ।

द्रोणाचार्य अस्त्रविद्यामें निपुण, युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले, बलवान् एवं श्रेष्ठ वीर हैं । पाञ्चालसैनिकोंने उस समय रणक्षेत्रमें महाधनुर्धर द्रोणको किस प्रकार घायल किया ? क्योंकि वे द्रोणाचार्यसे वैर बाँधकर अर्जुनकी विजयकी अभिलाषा रखते थे ॥ ४४½ ॥

भारद्वाजसुतस्तेषु दृढवैरो महारथः ॥ ४५ ॥
अर्जुनश्चापि यच्चक्रे सिन्धुराजवधं प्रति ।
तन्मे सर्वं समाचक्ष्व कुशलो ह्यसि संजय ॥ ४६ ॥

संजय ! भरद्वाजके पुत्र महारथी अश्वत्थामा भी पाञ्चालोंसे दृढ़तापूर्वक वैर बाँधे हुए थे । अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथका वध करनेके लिये जो-जो उपाय किया, वह सब मुझसे कहो; क्योंकि तुम कथा कहनेमें कुशल हो ॥ ४५-४६ ॥

संजय उवाच

आत्मापराधात् सम्भूतं व्यसनं भरतर्षभ ।
प्राप्य प्राकृतवद् वीर न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ४७ ॥

संजयने कहा—भरतश्रेष्ठ ! यह सारी विपत्ति आपको अपने ही अपराधसे प्राप्त हुई है । वीर ! इसे पाकर निम्न कोटिके मनुष्योंकी भाँति शोक न कीजिये ॥ ४७ ॥

पुरा यदुच्यसे प्राज्ञैः सुहृद्भिर्विदुरादिभिः ।
मा हार्षीः पाण्डवान् राजन्निति तन्न त्वया श्रुतम् ॥४८॥

पहले जब आपके बुद्धिमान् सुहृद् विदुर आदिने आपसे कहा था कि राजन् ! आप पाण्डवोंके राज्यका अपहरण न कीजिये, तब आपने उनकी यह बात नहीं सुनी थी ॥४८॥

सुहृदां हितकामानां वाक्यं यो न शृणोति ह ।
स महद् व्यसनं प्राप्य शोचते वै यथा भवान् ॥ ४९ ॥

जो हितैषी सुहृदोंकी बात नहीं सुनता है, वह भारी संकटमें पड़कर आपके ही समान शोक करता है ॥ ४९ ॥

याचितोऽसि पुरा राजन् दाशार्हेण शमं प्रति ।
न च तं लब्धवान् कामं त्वत्तः कृष्णो महायशाः॥ ५० ॥

राजन् ! दशार्हनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने पहले आपसे शान्तिके लिये याचना की थी; परंतु आपकी ओरसे उन महायशस्वी श्रीकृष्णकी वह इच्छा पूरी नहीं की गयी ॥

तव निर्गुणतां ज्ञात्वा पक्षपातं सुतेषु च ।
द्वैधीभावं तथा धर्मे पाण्डवेषु च मत्सरम् ॥ ५१ ॥
तव जिह्ममभिप्रायं विदित्वा पाण्डवान् प्रति ।
आर्तप्रलापांश्च बहून् मनुजाधिपसत्तम ॥ ५२ ॥
सर्वलोकस्य तत्त्वज्ञः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
वासुदेवस्ततो युद्धं कुरूणामकरोन्महत् ॥ ५३ ॥

नृपश्रेष्ठ ! सम्पूर्ण लोकोंके तत्त्वज्ञ तथा सर्वलोकेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने जब यह जान लिया कि आप सर्वथा सद्गुणशून्य हैं, अपने पुत्रोंपर पक्षपात रखते हैं, धर्मके विषयमें आपके मनमें दुविधा बनी हुई है, पाण्डवोंके प्रति आपके हृदयमें डाह है, आप उनके प्रति कुटिलतापूर्ण मनसूबे बाँधते रहते हैं और व्यर्थ ही आर्त मनुष्योंके समान बहुत-सी बातें बनाते हैं, तब उन्होंने कौरव-पाण्डवोंके महान् युद्धका आयोजन किया ॥ ५१-५३ ॥

आत्मापराधात् सुमहान् प्राप्तस्ते विपुलः क्षयः ।
नैनं दुर्योधने दोषं कर्तुमर्हसि मानद ॥ ५४ ॥

मानद ! अपने ही अपराधसे आपके सामने यह महान् जनसंहार प्राप्त हुआ है । आपको यह सारा दोष दुर्योधनपर नहीं मढ़ना चाहिये ॥ ५४ ॥

न हि ते सुकृतं किंचिदादौ मध्ये च भारत ।
दृश्यते पृष्ठतश्चैव त्वन्मूलो हि पराजयः ॥ ५५ ॥

भारत ! मुझे तो आगे, पीछे या बीचमें आपका कोई भी शुभ कर्म नहीं दिखायी देता । इस पराजयकी जड़ आप ही हैं ॥ ५५ ॥

तस्मादवस्थितो भूत्वा ज्ञात्वा लोकस्य निर्णयम् ।
शृणु युद्धं यथावृत्तं घोरं देवासुरोपमम् ॥ ५६ ॥

इसलिये स्थिर होकर और लोकके नियत स्वभावको

जानकर देवासुर-संग्रामके समान भयंकर इस कौरव-पाण्डव-युद्धका यथार्थ वृत्तान्त सुनिये ॥ ५६ ॥

प्रविष्टे तव सैन्यं तु शैनेये सत्यविक्रमे ।
भीमसेनमुखाः पार्थाः प्रतीयुर्वाहिनीं तव ॥ ५७ ॥

जब सत्यपराक्रमी सात्यकि कौरव-सेनामें प्रविष्ट हो गये, तब भीमसेन आदि कुन्तीकुमारोंने आपकी विशाल वाहिनीपर आक्रमण किया ॥ ५७ ॥

आगच्छतस्तान् सहसा क्रुद्धरूपान् सहानुगान्।
दधारैको रणे पाण्डून् कृतवर्मा महारथः ॥ ५८ ॥

सेवकोंसहित कुपित होकर सहसा आक्रमण करनेवाले उन पाण्डववीरोंको रणक्षेत्रमें एकमात्र महारथी कृतवर्माने रोका ॥

यथोद्वृत्तं वारयते वेला वै सलिलार्णवम् ।
पाण्डुसैन्यं तथा संख्ये हार्दिक्यः समवारयत् ॥ ५९ ॥

जैसे उद्वेलित हुए महासागरको किनारेकी भूमि आगे बढ़नेसे रोकती है, उसी प्रकार युद्धस्थलमें कृतवर्माने पाण्डव-सेनाको रोक दिया ॥ ५९ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम हार्दिक्यस्य पराक्रमम् ।
यदेनं सहिताः पार्था नातिचक्रमुराहवे ॥ ६० ॥

वहाँ हमने कृतवर्माका अद्भुत पराक्रम देखा । सारे पाण्डव एक साथ मिलकर भी समराङ्गणमें उसे लाँघ न सके॥

ततो भीमस्त्रिभिर्विद्ध्वा कृतवर्माणमाशुगैः ।
शङ्खं दध्मौ महाबाहुर्हर्षयन् सर्वपाण्डवान् ॥ ६१ ॥

तदनन्तर महाबाहु भीमने तीन बाणोंद्वारा कृतवर्माको घायल करके समस्त पाण्डवोंका हर्ष बढ़ाते हुए शङ्ख बजाया॥

सहदेवस्तु विंशत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः ।
शतेन नकुलश्चापि हार्दिक्यं समविध्यत ॥ ६२ ॥

सहदेवने बीस, धर्मराजने पाँच और नकुलने सौ बाणोंसे कृतवर्माको बींध डाला ॥ ६२ ॥

द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या सप्तभिश्च घटोत्कचः ।
धृष्टद्युम्नस्त्रिभिश्चापि कृतवर्माणमार्दयत् ॥ ६३ ॥

द्रौपदीके पुत्रोंने तिहत्तर, घटोत्कचने सात और धृष्टद्युम्नने तीन बाणोंद्वारा उसे गहरी चोट पहुँचायी ॥६३॥

विराटो द्रुपदश्चैव याज्ञसेनिश्च पञ्चभिः ।
शिखण्डी चैव हार्दिक्यं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ॥६४॥
पुनर्विव्याध विंशत्या सायकानां हसन्निव ।

विराट, द्रुपद और उनके पुत्र धृष्टद्युम्नने पाँच-पाँच बाणोंसे उसको घायल किया । फिर शिखण्डीने पहले पाँच बाणोंद्वारा चोट करके फिर हँसते हुए ही बीस बाणोंसे कृतवर्माको बींध डाला ॥ ६४ ॥

कृतवर्मा ततो राजन् सर्वतस्तान् महारथान् ॥ ६५ ॥
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा भीमं विव्याध सप्तभिः ।
धनुर्ध्वजं चास्य तथा रथाद् भूमावपातयत् ॥ ६६ ॥

राजन् ! उस समय कृतवर्माने चारों ओर बाण चलाकर उन महारथियोंमेंसे प्रत्येकको पाँच बाणोंद्वारा बींध डाला और भीमसेनको सात बाणोंसे घायल कर दिया । फिर तत्काल ही उनके धनुष और ध्वजको काटकर रथसे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ६५–६६ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तत्या निशितैः शरैः ॥ ६७ ॥

भीमसेनका धनुष कट जानेपर महारथी कृतवर्माने कुपित हो बड़ी उतावलीके साथ सत्तर पैने बाणोंद्वारा उनकी छातीमें गहरा आघात किया ॥ ६७ ॥

स गाढविद्धो बलवान् हार्दिक्यस्य शरोत्तमैः ।
चचाल रथमध्यस्थः क्षितिकम्पे यथाचलः ॥ ६८ ॥

कृतवर्माके श्रेष्ठ बाणोंद्वारा अत्यन्त घायल हुए बलवान् भीमसेन रथके भीतर बैठे हुए ही भूकम्पके समय हिलनेवाले पर्वतके समान काँपने लगे ॥ ६८ ॥

भीमसेनं तथा दृष्ट्वा धर्मराजपुरोगमाः ।
विसृजन्तः शरान् राजन् कृतवर्माणमार्दयन् ॥ ६९ ॥

राजन् ! भीमसेनको वैसी अवस्थामें देखकर धर्मराज आदि महारथियोंने बाणोंकी वर्षा करके कृतवर्माको बड़ी पीड़ा दी ॥ ६९ ॥

तं तथा कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ।
विव्यधुः सायकैर्हृष्टा रक्षार्थं मारुतेर्मृधे ॥ ७० ॥

माननीय नरेश ! हर्षमें भरे हुए पाण्डव सैनिक भीमसेन-की रक्षाके लिये अपने रथसमूहद्वारा कृतवर्माको कोष्ठबद्ध-सा करके उसे युद्धस्थलमें अपने बाणोंका निशाना बनाने लगे ॥ ७० ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां भीमसेनो महाबलः ।
शक्तिं जग्राह समरे हेमदण्डामयस्मयीम् ॥ ७१ ॥

इसी बीचमें महाबली भीमसेनने सचेत होकर समराङ्गणमें सुवर्णमय दण्डसे विभूषित एक लोहेकी शक्ति हाथमें ले ली॥

चिक्षेप च रथात् तूर्णं कृतवर्मरथं प्रति ।
सा भीमभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसंनिभा ॥ ७२ ॥
कृतवर्माणमभितः प्रजज्वाल सुदारुणा ।

और शीघ्र ही उसे अपने रथसे कृतवर्माके रथपर चला दिया । भीमसेनके हाथोंसे छूटी हुई, केंचुलसे निकले हुए सर्पके समान वह भयङ्कर शक्ति कृतवर्माके समीप जाकर प्रज्वलित हो उठी ॥ ७२½ ॥

तामापतन्तीं सहसा युगान्ताग्निसमप्रभाम् ॥ ७३ ॥
द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिक्यो निजघान द्विधा तदा।

उस समय अपने ऊपर आती हुई प्रलयकालकी अग्निके समान उस शक्तिको सहसा दो बाण मारकर कृतवर्माने उसके दो टुकड़े कर दिये ॥ ७३½ ॥

सा छिन्ना पतिता भूमौ शक्तिः कनकभूषणा ॥ ७४ ॥
द्योतयन्ती दिशो राजन् महोल्केव नभश्च्युता ।

राजन् ! सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करती हुई वह सुवर्णभूषित शक्ति कटकर आकाशसे गिरी हुई बड़ी भारी उल्काके समान पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ७४½ ॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा भीमश्चुक्रोध वै भृशम् ॥ ७५ ॥
ततोऽन्यद् धनुरादाय वेगवत् सुमहास्वनम् ।
भीमसेनो रणे क्रुद्धो हार्दिक्यं समवारयत् ॥ ७६ ॥

अपनी शक्तिको कटी हुई देख भीमसेनको बड़ा क्रोध हुआ । उन्होंने बड़ी भारी टङ्कारध्वनि करनेवाले दूसरे वेगशाली धनुषको हाथमें लेकर समराङ्गणमें कुपित हो कृतवर्माका सामना किया ॥ ७५–७६ ॥

अथैनं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।
भीमो भीमबलो राजंस्तव दुर्मन्त्रितेन च ॥ ७७ ॥

राजन् ! आपकी ही कुमन्त्रणासे वहाँ भयङ्कर बलशाली भीमसेनने कृतवर्माकी छातीमें पाँच बाण मारे ॥ ७७ ॥

भोजस्तु क्षतसर्वाङ्गो भीमसेनेन मारिष ।
रक्ताशोक इवोत्फुल्लो व्यभ्राजत रणाजिरे ॥ ७८ ॥

माननीय नरेश ! भीमसेनने उन बाणोंद्वारा कृतवर्माके सम्पूर्ण अङ्गोंको क्षत-विक्षत कर दिया । वह रणाङ्गणमें खूनसे लथपथ हो खिले हुए लाल फूलोंवाले अशोकवृक्षके समान सुशोभित होने लगा ॥ ७८ ॥

ततः क्रुद्धस्त्रिभिर्बाणैर्भीमसेनं हसन्निव ।
अभिहत्य दृढं युद्धे तान् सर्वान् प्रत्यविध्यत ॥ ७९ ॥
त्रिभिस्त्रिभिर्महेष्वासो यतमानान् महारथान् ।

तदनन्तर उस महाधनुर्धरने क्रोधमें भरकर हँसते हुए ही तीन बाणोंद्वारा भीमसेनको गहरी चोट पहुँचाकर युद्धमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले उन सभी महारथियोंको तीन-तीन बाणोंसे बींध डाला ॥ ७९½ ॥

तेऽपि तं प्रत्यविध्यन्त सप्तभिः सप्तभिः शरैः ॥ ८० ॥
शिखण्डिनस्ततः क्रुद्धः क्षुरप्रेण महारथः ।
धनुश्चिच्छेद समरे प्रहसन्निव सात्वतः ॥ ८१ ॥

तब उन महारथियोंने भी कृतवर्माको सात-सात बाण मारे । उस समय क्रोधमें भरे हुए महारथी कृतवर्माने हँसते हुए ही समराङ्गणमें एक क्षुरप्रद्वारा शिखण्डीका धनुष काट डाला ॥ ८०–८१ ॥

शिखण्डी तु ततः क्रुद्धश्छिन्ने धनुषि सत्वरः ।
असिं जग्राह समरे शतचन्द्रं च भास्वरम् ॥ ८२ ॥

धनुष कट जानेपर शिखण्डीने तुरंत ही कुपित हो उस युद्धस्थलमें सौ चन्द्रमाओंके चिह्नसे युक्त चमकीली ढाल और तलवार हाथमें ले ली ॥ ८२ ॥

भ्रामयित्वा महच्चर्म चामीकरविभूषितम् ।
तमसिं प्रेषयामास कृतवर्मरथं प्रति ॥ ८३ ॥

उसने स्वर्णभूषित विशाल ढालको घुमाकर कृतवर्माके रथपर वह तलवार दे मारी ॥ ८३ ॥

स तस्य सशरं चापं छित्त्वा राजन् महानसिः ।
अभ्यगाद् धरणीं राजंश्च्युतं ज्योतिरिवाम्बरात्॥ ८४॥

राजन् ! वह महान् खड्ग कृतवर्माके बाणसहित धनुषको काटकर आकाशसे टूटे हुए तारेके समान धरतीमें समा गया ॥ ८४ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु त्वरमाणं महारथाः ।
विव्यधुः सायकैर्गाढं कृतवर्माणमाहवे ॥ ८५ ॥

इसी समय पाण्डव महारथियोंने युद्धमें जल्दी-जल्दी हाथ चलानेवाले कृतवर्माको अपने बाणोंद्वारा भारी चोट पहुँचायी ॥ ८५ ॥

अथान्यद् धनुरादाय त्यक्त्वा तच्च महद् धनुः ।
विशीर्णं भरतश्रेष्ठ हार्दिक्यः परवीरहा ॥ ८६ ॥
विव्याध पाण्डवान् युद्धे त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
शिखण्डिनं च विव्याध त्रिभिः पञ्चभिरेव च ॥ ८७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले कृतवर्माने टूटे हुए उस विशाल धनुषको त्यागकर दूसरा धनुष हाथमें ले लिया और युद्धमें पाण्डवोंको तीन-तीन बाण मारकर घायल कर दिया । साथ ही शिखण्डीको भी तीन और पाँच बाणोंसे बींध डाला ॥ ८६-८७ ॥

धनुरन्यत् समादाय शिखण्डी तु महायशाः ।
अवारयत् कूर्मनखैराशुगैर्हृदिकात्मजम् ॥ ८८ ॥

तत्पश्चात् महायशस्वी शिखण्डीने भी दूसरा धनुष लेकर कछुओंके नखोंके समान धारवाले बाणोंद्वारा कृतवर्माका सामना किया ॥ ८८ ॥

ततः क्रुद्धो रणे राजन् हार्दिक्यस्यात्मसम्भवः ।
अभिदुद्राव वेगेन याज्ञसेनिं महारथम् ॥ ८९ ॥
भीष्मस्य समरे राजन् मृत्योर्हेतुं महात्मनः ।
विदर्शयन् बलं शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ९० ॥

राजन्! जैसे सिंह हाथीपर आक्रमण करता है, उसी प्रकार उस रणक्षेत्रमें कुपित हुए शूरवीर कृतवर्माने समराङ्गणमें महात्मा भीष्मकी मृत्युका कारण बने हुए महारथी शिखण्डीपर अपने बलका प्रदर्शन करते हुए बड़े वेगसे धावा किया ॥ ८९-९० ॥

तौ दिशां गजसंकाशौ ज्वलिताविव पावकौ ।
समापेततुरन्योन्यं शरसङ्घैररिंदमौ ॥ ९१ ॥

प्रज्वलित अग्नियोंके समान तेजस्वी तथा शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों वीर अपने बाण-समूहोंद्वारा दो दिग्गजोंके समान एक दूसरेपर टूट पड़े ॥ ९१ ॥

विधुन्वानौ धनुःश्रेष्ठे संदधानौ च सायकान् ।
विसृजन्तौ च शतशो गभस्तीनिव भास्वरौ ॥ ९२ ॥

जैसे दो सूर्य पृथक्-पृथक् अपनी किरणोंका विस्तार करते हों, उसी प्रकार वे दोनों वीर अपने श्रेष्ठ धनुष हिलाते और उनपर सैकड़ों बाणोंका संधान करके छोड़ते थे ॥ ९२ ॥

तापयन्तौ शरैस्तीक्ष्णैरन्योन्यं तौ महारथौ ।
युगान्तप्रतिमौ वीरौ रेजतुर्भास्कराविव ॥ ९३ ॥

अपने पैने बाणोंद्वारा एक दूसरेको संताप देते हुए वे दोनों महारथी वीर प्रलयकालके दो सूर्योंके समान शोभा पा रहे थे ॥ ९३ ॥

कृतवर्मा च समरे याज्ञसेनिं महारथम् ।
विद्ध्वेषुभिस्त्रिसप्तत्या पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ९४ ॥

कृतवर्माने समराङ्गणमें महारथी शिखण्डीको पहले तिहत्तर बाणोंसे घायल करके फिर सात बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ९४ ॥

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः ॥ ९५ ॥

उन बाणोंकी गहरी चोट खाकर शिखण्डी व्यथित एवं मूर्छित हो धनुष-बाण त्यागकर रथकी बैठकमें बैठ गया ॥ ९५ ॥

तं विषण्णं रणे दृष्ट्वा तावकाः पुरुषर्षभ ।
हार्दिक्यं पूजयामासुर्वासांस्यादुधुवुश्च ह ॥ ९६ ॥

नरश्रेष्ठ! रणक्षेत्रमें शिखण्डीको विषादग्रस्त देख आपके सैनिक कृतवर्माकी प्रशंसा करने और वस्त्र हिलाने लगे ॥ ९६ ॥

शिखण्डिनं तथा ज्ञात्वा हार्दिक्यशरपीडितम् ।
अपोवाह रणाद् यन्ता त्वरमाणो महारथम् ॥ ९७ ॥

महारथी शिखण्डीको कृतवर्माके बाणोंसे पीड़ित जान सारथि बड़ी उतावलीके साथ उसे रणभूमिसे बाहर ले गया ॥ ९७ ॥

सादितं तु रथोपस्थे दृष्ट्वा पार्थाः शिखण्डिनम् ।
परिवव्रू रथैस्तूर्णं कृतवर्माणमाहवे ॥ ९८ ॥

कुन्तीकुमारोंने शिखण्डीको रथके पिछले भागमें बेसुध होकर बैठा देख तुरंत ही कृतवर्माको रणभूमिमें अपने रथोंद्वारा चारों ओरसे घेर लिया ॥ ९८ ॥

तत्राद्भुतं परं चक्रे कृतवर्मा महारथः ।
यदेकः समरे पार्थान् वारयामास सानुगान् ॥ ९९ ॥

वहाँ महारथी कृतवर्माने अत्यन्त अद्भुत पराक्रम प्रकट किया। उसने अकेले होनेपर भी सेवकोंसहित समस्त पाण्डवोंका समरभूमिमें सामना किया ॥ ९९ ॥

पार्थाञ्जित्वाजयच्चेदीन् पञ्चालान् सृञ्जयानपि ।
केकयांश्च महावीर्यान् कृतवर्मा महारथः ॥ १०० ॥

महारथी कृतवर्माने पाण्डवोंको जीतकर चेदिदेशीय सैनिकोंको परास्त किया, फिर पाञ्चालों, सृंजयों और महापराक्रमी केकयोंको भी हरा दिया ॥ १०० ॥

ते वध्यमानाः समरे हार्दिक्येन स्म पाण्डवाः ।
इतश्चेतश्च धावन्तो नैव चक्रुर्धृतिं रणे ॥ १०१ ॥

समराङ्गणमें कृतवर्माके बाणोंकी मार खाकर पाण्डव सैनिक इधर-उधर भागने लगे। वे रणभूमिमें कहीं भी स्थिर न हो सके ॥ १०१ ॥

जित्वा पाण्डुसुतान् युद्धे भीमसेनपुरोगमान् ।
हार्दिक्यः समरेऽतिष्ठद् विधूम इव पावकः ॥ १०२ ॥

युद्धमें भीमसेन आदि पाण्डवोंको जीतकर कृतवर्मा उस रणक्षेत्रमें धूमरहित अग्निके समान शोभा पाता हुआ खड़ा था ॥ १०२ ॥

ते द्राव्यमाणाः समरे हार्दिक्येन महारथाः ।
विमुखाः समपद्यन्त शरवृष्टिभिरार्दिताः ॥ १०३ ॥

समराङ्गणमें कृतवर्माके द्वारा खदेड़े गये और उसकी बाणवर्षासे पीड़ित हुए पूर्वोक्त सभी महारथियोंने युद्धसे मुँह मोड़ लिया ॥ १०३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे कृतवर्मपराक्रमे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका कौरवसेनामें प्रवेश तथा कृतवर्माका पराक्रमविषयक एक सौ चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११४ ॥

रजि० सं० ए० ८५४

श्रीहरिः

ग्राहक बनिये ! ग्राहक बनाइये !!

कल्याणका जनवरी १९५७ का विशेषाङ्क 'तीर्थाङ्क'

पृष्ठ-संख्या ७३६, रंगीन चित्र ३४, दुरंगा १, लाइन १, मान-चित्र ८, सादे चित्र ५३२, मू० ७॥), वार्षिक चन्दा विशेषाङ्कसहित ७॥), डाक-खर्च हमारा ।

इस तीर्थाङ्कमें १८०० से ऊपर तीर्थोंका विवरण दिया गया है । उनमेंसे प्रायः सभी प्राचीन पुराणप्रसिद्ध तीर्थोंका शास्त्रोक्त माहात्म्य भी दिया गया है । साथ ही २१ प्रधान गणपति-क्षेत्रों, १०८ दिव्य शिव-क्षेत्रों, २७४ पवित्र शैव-स्थलों, १२ ज्योतिर्लिङ्गों, १०८ दिव्य विष्णु-स्थानों, १०८ वैष्णव दिव्य-देशों, १०८ दिव्य शक्ति-स्थानों, ५१ शक्तिपीठों एवं १२ प्रधान देवी-विग्रहोंका वर्णन भी आया है । इनके अतिरिक्त प्रायः सभी मुख्य धार्मिक सम्प्रदायोंके तीर्थस्थलोंका भी विवरण संगृहीत किया गया है । कुछ उपयोगी लेख भी दिये गये हैं । साथ ही पञ्चदेवोंकी पूजन-विधि, विष्णु-शिव आदिके ध्यान, तीर्थयात्राकी विधि, तीर्थयात्रियोंके लिये पालनीय नियम, तीर्थोंमें श्राद्ध करनेकी विधि तथा प्रधान-प्रधान तीर्थों एवं प्रसिद्ध विग्रहोंकी स्तुतियाँ भी दी गयी हैं । अङ्ककी उपयोगिता एवं रोचकता बढ़ानेके लिये इसमें ८ मानचित्र, ३४ रंगीन एवं पाँच सौसे ऊपर सादे स्थल-चित्रोंका समावेश किया गया है । इस प्रकार सभी दृष्टियोंसे यह अङ्क अत्यन्त संग्रहणीय एवं कामकी वस्तु बन गया है । रोचकतामें तथा चित्रोंकी संख्या एवं सामग्रीकी विविधताकी दृष्टिसे तो यह अङ्क 'कल्याण'के अबतकके सभी विशेषाङ्कोंसे बाजी मार ले गया है ।

इस 'तीर्थाङ्क' में जिन तीर्थों एवं भगवद्विग्रहोंका वर्णन तथा चित्राङ्कन किया गया है, उनकी स्मृति भी अन्तःकरणको पवित्र करनेवाली, पापोंका नाश करनेवाली तथा भगवद्भाव एवं संत-महिमासे हृदयको भर देनेवाली है । साथ ही इसमें आये हुए वर्णनोंके पढ़नेसे पवित्र भारतभूमिके विभिन्न भागोंका महत्त्व प्रकट होता है, वहाँकी विशेषताओंका ज्ञान होता है, राष्ट्रियता एवं पारस्परिक एकताके भाव जाग्रत् होते हैं तथा क्षुद्र, संकीर्ण विचारोंसे ऊपर उठकर व्यापक दृष्टिकोण बनानेमें सहायता मिलती है । इसके अतिरिक्त इस अङ्कमें विविध लेखोंद्वारा तीर्थयात्रा, तीर्थदर्शन एवं तीर्थोंमें अवगाहनका महत्त्व व्यक्त किया गया है तथा उन विभिन्न स्थलोंकी यात्राका मार्गनिर्देश तथा आवश्यक परिचय भी दिया गया है, जिससे तीर्थयात्रियोंके लिये यह विशेष उपयोगी बन गया है । इस दृष्टिसे इसका जितना प्रचार-प्रसार होगा, उतना ही देशका कल्याण होगा । अतएव प्रत्येक कल्याणप्रेमी महोदय विशेष प्रयत्न करके 'कल्याण' के दो-दो नये ग्राहक बना देनेकी कृपा करें ।

व्यवस्थापक—कल्याण-कार्यालय, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)